
इकाई 1 : भारतीय प्रशासन का विकास

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 भारतीय प्रशासन विकास

1.3.1 मौर्य प्रशासन

1.3.2 मुगल प्रशासन

1.3.3 ब्रिटिश प्रशासन

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

यद्यपि लोक प्रशासन एक अध्ययन के विषय के रूप में नवीन विषय है जिसका जन्म 1887 में वुडरो विल्सन की राजनीति-प्रशासन द्वैतभाव की विचारधारा के प्रतिपादन के परिणामस्वरूप हुआ, तथापि लोक प्रशासन एक कार्य या प्रक्रिया के रूप में सभ्यता के अस्तित्व के साथ ही दिखाई देता है। जब से सभ्यता का अस्तित्व के साथ ही दिखाई देता। जब से सभ्यता का अस्तित्व है तब से मानव के विकास हेतु निरंतर संगठित प्रयास होते रहें और सभ्यता के अस्तित्व के साथ ही प्रशासन का अस्तित्व भी देखने को मिलता है।

भारतीय परिवेश में भी प्रशासन का विकास प्राचीन काल से ही देखा जा सकता है। हड़प्पा सभ्यता से लेकर आज तक भारतीय प्रशासन अनेक उतार-चढ़ावों से गुजरा है। भारतीय प्रशासन अपने वर्तमान रूप में विरासत और निरंतरता का परिणाम है जिसके विकास की कड़ियां किसी न किसी रूप में अतीत से जुड़ी हुई हैं। हालांकि वर्तमान भारतीय शासन प्रणाली मूल रूप से ब्रिटिश काल की देन मानी जाती है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हम --

1. भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे |
2. मौर्यकाल में भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे |
3. मुगलकाल में भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे |
4. ब्रिटिश शासन में भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे |

1.3 भारतीय प्रशासन विकास

वी. सुब्रह्मण्यम के अनुसार वर्तमान प्रशासनिक प्रक्रिया का सिलसिला सदियों तक विचारों का रहा, न कि संस्थाओं का। संस्थागत सिलसिला अंग्रेजों के शासनकाल की देन है।

भारतीय प्रशासन के विकास में मौर्यकाल, मुगलकाल तथा ब्रिटिशकाल का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

1.3.1 मौर्य प्रशासन

मौर्य प्रशासन का अथवा भारतीय इतिहास में दिलचस्पी का विषय है। मौर्य प्रशासन का अध्ययन पूर्ववर्ती प्रक्रियाओं के परिप्रेक्ष्य में ही किया जा सकता है, अर्थात् इसकी स्थिति वैदिक कबायली संरचना और सामांतवादी युग के बीच की है। मौर्यकाल में भारत ने पहली बार राजनीतिक एकता प्राप्त की तथा एक विशाल साम्राज्य पर मौर्य शासकों ने शासन किया। इस विशाल साम्राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालने वाले अनेक ऐतिहासिक स्रोत उपलब्ध हैं। कौटिल्य का अर्थशास्त्र, मेगस्थनीज की इंडिका, अशोक के शिलालेख व अनेक यूनानर रचनाओं से मौर्य शासन प्रणाली के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा अपने गुरु और प्रधानमंत्री चाणक्य की सहायता से जिस शासन प्रणाली का प्रारंभ किया गया, उसके अनेक तत्व वर्तमान प्रशासन में भी दृष्टिगोचर होते हैं।

मौर्य प्रशासन के दौरान निम्नांकित बातों पर विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है-

1. यह एक अति केन्द्रीकृत प्रशासन था जिसकी पहुँच नागरिक जीवन के सभी क्षेत्रों में थी। इसकी चिंता बाजार-व्यवस्था के नियंत्रण से लेकर नागरिक जीवन में नैतिक मूल्यों की सुरक्षा तक थी।
2. यह एक नौकरशाही पर आधारित प्रशासन था जिसमें सबल एवं निर्बल दोनों पक्ष थे।
3. वस्तुतः मौर्य प्रशासन कोई नवीन प्रशासन नहीं था वरन् नंद शासकों की पद्धति का ही एक विकसित रूप था अर्थात् केन्द्रीकरण की प्रक्रिया नंद शासकों के समय ही शुरू हो गई थी।

केन्द्रीय प्रशासन:-

मौर्य साम्राज्य का स्वरूप राजतंत्रात्मक था। अतः शासन का प्रधान राजा होता था। राजपद एक महत्वपूर्ण पद होगया और इस पद की शक्ति एवं अधिकार बढ़ गए। राजा, राज्य का प्रमुख होता था। जिसके पास कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका के अधिकारों के साथ वित्तीय शक्तियां भी थी।

राजा की खुशी प्रजा की खुशी पर निर्भर करती थी। जनकल्याण पर राजा का कल्याण आश्रित था। राज्य में रहने वाले लोगों के हितों का संपादन ही राजा का प्रमुख कर्तव्य था।

राजा अब केवल दूरस्थ संरक्षक नहीं वरन् जनता का एक निकट संरक्षक बन गया। राजशक्ति निरंकुश पितृसत्तावाद पर आधारित थी। अशोक ने स्पष्ट रूप से अपने धौली शिलालेख में घोषणा की “कि सारी प्रजा मेरी संतान है”। अर्थात् मौर्य शासक जनता के व्यक्तिगत जीवन में भी हस्तक्षेप करने लगे थे। राजा अब न केवल धर्मशास्त्र के द्वारा संचालित होता था। बल्कि अर्थशास्त्र के द्वारा संचालित होता था। अर्थशास्त्र में राजा की विवेकशीलता पर बल दिया गया, अर्थात् राजा न केवल पुराने कानूनों का पालन करवा सकता था वरन् प्रशासनिक आवश्यकताओं से प्रेरित होकर नए कानूनों का निर्माण भी कर सकता था और फिर परंपरागत कानून तथा राजा के कानून में किसी प्रकार का विरोधाभास उत्पन्न होने की दशा में राजा का कानून ही ज्यादा मान्य होता था। अर्थशास्त्र के अनुसार प्रशासन के प्रत्येक पहलू में राजा का आदेश या विचार ही सर्वोपरि है।

अर्थशास्त्र में राजा के कर्तव्यों का भी निर्धारण किया गया। अर्थशास्त्र ने इस बात पर बल दिया, कि राजा को किसी भी समय कर्मचारियों एवं जनता की पहुँच से परे नहीं होना चाहिए। ऐसा होने पर गड़बड़ी एवं असंतो फैलेगा और राजा शत्रुओं का शिकार हो जाएगा। मेगस्थनीज का भी कहना है कि मालिश करवाते समय राजा से विचार विमर्श के लिए मिला जा सकता है। अशोक के शिलालेख भी इस बात की पुष्टि करते हैं। अर्थशास्त्र में राजा के कुछ आवश्यक गुण भी निर्धारित किए गये, जिसके अनुसार जनसाधारण, राजा नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त राजा को दैवीय बुद्धि व शक्ति वाला, वृद्धजनों की बात सुनने वाला, धार्मिक व सत्यवादी होना आवश्यक है।

मंत्रिपरिषद्-

सिद्धांत के रूप में मौर्य काल में राज्य की संपूर्ण शक्ति राजा के हाथों में ही केंद्रित थी, किंतु व्यवहार में अनेक प्रतिबंधों के कारण राजा की शक्ति की निरंकुशता सीमित थी विशाल मंत्रिपरिषद् व प्राचीन परंपराओं के पालन ने मौर्य शासकों की निरंकुशता पर सदैव अंकुश लगाए रखा। राजा को अपने कर्तव्यों के निर्वहन में सहायता हेतु एक मंत्रिपरिषद् होती थी। अर्थशास्त्र एवं अशोक के अभिलेखों में मंत्रिपरिषद् का जिक्र है। अर्थशास्त्र के अनुसार राज्यरूपी रथ केवल एक पहिए (राजा) के द्वारा नहीं चल सकता। अतएव दूसरे पहिए के रूप में उसे मंत्रिपरिषद् की आवश्यकता होती है।

मंत्रिपरिषद् एक परामर्शदात्री निकाय थी जिसकी शक्ति राजा एवं मंत्रियों की परस्पर स्थिति पर निर्भर करती थी। सामान्यतः राजा के समानांतर मंत्रिपरिषद् की शक्ति कजोर थी और राजा मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं था। राजा के समानांतर मंत्रियों की स्थिति का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि राजा अपने मंत्री को स्वयं नियुक्त करता था। मेगस्थनीज के अनुसार

राजा के सलाहकार एक विशेष जाति से नियुक्त होते थे। राजा द्वारा मुख्यमंत्री तथा पुरोहित का चुनाव उनके चरित्र की भली भांति जांच के बाद किया जाता था।

अर्थशास्त्र में मंत्रियों के कुछ गुण निर्धारित किए गये अर्थात् उनमें उच्चकुल में जन्म, वीर, बुद्धिमान, ईमानदारी जैसे गुण होने चाहिए। मंत्रिपरिषद् से 3-4 मंत्रियों की एक छोटी उपसमिति भी बनती थी जो राजा को कुछ विशिष्ट बातों में परामर्श देती थी। कौटिल्य ने नीति निर्धारण की गोपनीयता पर बल दिया है। मंत्रिपरिषद् का अपना सचिव होता था जिस पर उसके कार्यालय की देखभाल का भार था। कौटिल्य ने उसे मंत्रिपरिषद् अध्यक्ष कहा है। डॉ. आर. सी. मजूमदार ने मौर्यकालीन मंत्रिपरिषद् की तुलना इंग्लैण की प्रिवि-कौंसिल से की है।

नौकरशाही

मंत्रिपरिषद् व राजा के द्वारा मुख्यतः नीति निर्धारण का कार्य किया जाता था। तत्पश्चात् उन नीतियों को कार्यान्वित करने का प्रमुख कार्य नौकरशाही के द्वारा किया जाता था। मौर्यकालीन नौकरशाही अत्यधिक सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित थी। प्रशासन के संचालन में कौटिल्य ने 18 तीर्थों (अधिकारियों का नाम) एवं 27 अध्यक्षों की भूमिका पर बल दिया है। मौर्यकाल में प्रशासन की सुविधा के लिए 18 विभागों की स्थापना की गई थी जिन्हें तीर्थ कहते थे। प्रत्येक विभाग के संचालन व निरीक्षण के लिए अध्यक्ष होता था। एक महत्वपूर्ण केंद्रीय अधिकारी सन्निधाता अर्थात् कोषाध्यक्ष होता था। वह केन्द्रीय खजाने का प्रभारी होता था। वह एक दूसरे महत्वपूर्ण अधिकारी समाहर्ता से मिलकर कार्य करता था। समाहर्ता भू-राजस्व की वसूली से जुड़ा हुआ था। युवराज, राजा का उत्तराधिकारी होता था। मंत्री सर्वोच्च सलाहकार था। पुरोहित शासकीय तथा धार्मिक मामलों में राजा का परमर्शदाता था।

अर्थशास्त्र में राजस्व के महत्वपूर्ण स्रोतों की चर्चा की गई है, जैसे भूमि, खन, जंगल, सड़क आदि। महत्वपूर्ण राजकीय खर्च वेतन, सार्वजनिक कार्य निर्माण, सड़क एवं कुएं, विश्रामगृह, सिंचाई से संबंधित कार्यों में होता था। अर्थशास्त्र में राष्ट्रीय कोष एवं राजा के व्यक्तिगत कोष में कोई अंतर नहीं किया गया था।

राज्य का सप्तांग सिद्धातः-

कौटिल्य के अनुसार राज्य एक आवश्यक और अनिवार्य संस्था है। राज्य की स्थापना के बिना समाज में अराजकता तथा मत्स्य न्याय की स्थापना हो जाएगी तथा शक्तिशाली, दुर्बल को अपने हित का साधन बना लेगा। कौटिल्य राज्य की उत्पत्ति के संदर्भ में सामाजिक समझौते के सिद्धात में विश्वास करता है। राजा व प्रजा के बीच समझौते के परिणामस्वरूप राज्य अस्तित्व में आया। चूंकि राज्य, व्यक्ति के लिए हितकारी संस्था है। अतः व्यक्ति की निष्ठा एवं आस्था राज्य में होती है।

कौटिल्य के अनुसार राज्य के 7 अंग हैं जिन पर राज्य की व्यवस्था, स्थिरता और अस्तित्व निर्भर करता है। ये 7 अंग हैं- राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोषालय, सशस्त्र सेना तथा मित्र। राज्य के इन भागों में सावयव एकता होती है। राजा राज्य का प्राण है। अर्थशास्त्र के अनुसार राजा धर्म का रक्षक होता है। उसमें निर्भयता, आत्मनियंत्रण, निर्णय लेने की क्षमता तथा विचार करने की शक्ति होनी चाहिए। यदि राजा अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार नहीं करता, तो वह आदर योग्य नहीं है। अयोग्य राजा को पद से हटा देना चाहिए।

राजा के बाद पदसोपान में दूसरा स्थान अमात्म का आता है। वह आजकल के मंत्रिमंडलीय सचिव के समान शासकीय अधिकारियों में सबसे उच्च अधिकारी होता था। अमात्य प्रशासन संबंधी बातों को देखता था। राजा कुशल, बुद्धिवान तथा निर्णय लेने की क्षमता वाले व्यक्ति को अमात्य पद के लिए चयन करता था।

जनपद, राज्य का तीसरा अंग था। इसमें भूमि-भाग के साथ साथ क्षेत्र में रहने वाले लोगों भी सम्मिलित होते थे। कौटिल्य के अनुसार श्रेष्ठ जनपद वह है जो प्राकृतिक सीमाओं जैसे नदी, पहाड़, जंगल में बसा हो। जनपद की भूमि उपजाऊ होनी चाहिए तथा रहने वाले लोग मेहनती, बुद्धिमान, वफादार होने चाहिए।

दुर्ग भी राज्य का एक अनिवार्य अंग था। राज्य की स्थिरता और युद्धों में सुरक्षा के लिए दुर्ग की भूमिका अहम होती थी। दुर्ग में पर्याप्त खाद्य सामग्री, अस्त्र-शस्त्र, पानी, दवाईयां आदि का रहना आवश्यक था जो समय पर काम आ सके।

कोष व कोषालय भी राज्य के अस्तित्व के लिए अनिवार्य था। मौर्यकाल में वित्त की व्यवस्था बेहतर थी। विभिन्न प्रकार के करों से प्राप्त राशि कोषालय में एकत्रित होती थी। विभिन्न खर्चों के लिए बजट में व्यवस्था होती थी। आपात स्थितियों से निपटने के लिए आपात निधि की आवश्यकता थी।

सेना की राज्य में महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। कौटिल्य ने मौर्य सेना के संगठन तथा सैन्यशास्त्र का व्यापक चित्रण किया है। सैनिकों से राज भक्ति, साहस, बहादुरी की अपेक्षा की जाती थी। सीमा विस्तार पर विशेष ध्यान देने की वजह से सेना राज्य का आवश्यक अंग थी।

मित्र से तात्पर्य मित्र राज्यों से था। राज्य की प्रगति इस बात पर निर्भर करती है कि पड़ोसी राज्यों के साथ उसके संबंध मैत्रीपूर्ण हैं या नहीं।

इस प्रकार कौटिल्य ने राज्य के अस्तित्व एवं स्थिरता हेतु राज्य के सात अंगों पर आधारित होने की बात कही। इन अंगों के बीच उचित संतुलन अनिवार्य था।

प्रांतीय प्रशासन:-

मौर्यकाल में संपूर्ण साम्राज्य का विभाजन प्रांतों में किया गया था। पाँच प्रांतीय राजधानियां प्रमुख थी तथा उत्तरापथ की राजधानी तक्षशिला, अवंति राज्य की राजधानी उज्जैन, कलिंग प्रांत की राजधानी तोसली, दक्षिणापथ की राजधानी सुवर्णगिरि और पूर्वी प्रांत की राजधानी पाटलिपुत्र। ये पाँच महत्वपूर्ण एवं बड़े प्रांत थे तथा इनके अधीन छोटे छोटे प्रांत भी थे। बड़े प्रांतों का प्रशासक राजकुल का होता था। अशोक के फरमानों में उन्हें कुमार या आर्यपुत्र कहा गया है। अर्थशास्त्र में इस बात की चेतावनी दी गई कि कुमार या आर्यपुत्र खतरे का कारण हो सकता है। इसलिए उसे राज्य पर संपूर्ण नियंत्रण नहीं होना चाहिए। प्रांतीय प्रशासन में केंद्रीकरण की प्रकृति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है क्योंकि प्रांतीय मंत्रिपरिषदों को यह स्वतन्त्रता थी कि वह प्रांतीय प्रशासक को सूचित किए बिना राजा को महत्वपूर्ण सूचना प्रेषित कर सकती है। इस बात की पूर्ण दिव्यावदान से भी होती है।

किंतु क्षेत्रीय स्तर पर मौर्य प्रशासन में कुछ स्वायत्तता प्रदान की गई थी अर्थात् संबंधित क्षेत्र के व्यक्ति को ही उस क्षेत्र का प्रशासक नियुक्त किया जाता था। उदाहरण के लिए रुद्रदमन के जूनागढ़ अभिलेखों से ज्ञात होता है कि काठियावाड़ का शासक यौनराज तुशाष्क था।

स्थानीय प्रशासन:-

प्रांतों का विभाजन विभिन्न जिलों में किया गया था। जिले को विषय या आहार कहा जाता था। जिला प्रशासन से जुड़े तीन पदाधिकारी थे- प्रादेशिक, रज्जुक और युक्त। प्रादेशिक नामक अधिकारी कानून एवं व्यवस्था को बनाए रखने और भू-राजस्व की वसूली से जुड़े हुए थे जबकि रज्जुक नामक अधिकारी विशेष रूप से न्यायिक कार्यों से जुड़े हुए थे। रज्जुक की नियुक्ति ग्रामीण जन कल्याण के उद्देश्य से की जाती थी। उसके अतिरिक्त युक्त का कर्तव्य सचिव एवं लेखा संबंधी काम देखना था। अशोक के अभिलेखों में इन अधिकारियों की चर्चा की गई है।

जिला एवं ग्रामीण प्रशासन के बीच एक और प्रशासनिक इकाई थी। जो संभवतः 5 या 10 गांवों का समूह होती थी। इसका महत्वपूर्ण अधिकारी गोप होता था जिसका काम सामान्य प्रशासन की देख रक रेख करना था। गोप के अतिरिक्त स्थानिका नामक अधिकारी भी होता था जिसका मुख्य कार्य कर की वसूली था। वह सीधे प्रादेशिक के अधीन था। ऐसा प्रतीत होता है कि स्थानिका आधुनिक सहायक कलेक्टर और प्रादेशिका जिला कलेक्टर के समान थे और ये दोनों अधिकारी समाहर्ता या चीफ कलेक्टर के अधीन होते थे।

सबसे निचले स्तर पर ग्रामीण प्रशासन था जिसका प्रधान मुखिया होता था। वह ग्रामीण वृद्धजनों में से निर्वाचित होता था। छोटे गांवों में मुखिया ही एक मात्र अधिकारी होता था किंतु बड़े गांवों में

मुखिया की सहायता के लिए लेखपाल एवं लिपिकों की नियुक्ति की जाती थी और अधिकारियों का वेतन या तो भू-राजस्व से या फिर भूमि प्रदान करके पूरा किया जाता था।

नगर प्रशासन:-

मौर्यकाल में नगर प्रशासन का अपना श्रेणीबद्ध संगठन था। नगर प्रशासन का प्रधान नगरक नामक अधिकारी होता था। अशोक के एक अभिलेख में नगर-व्यवहारिक की चर्चा की गई है। नगरक या नगर निरीक्षक का काम नगर कानून व्यवस्था बनाए रखना था। आकाल पड़ने पर गोदामों से अनाज बंटवाने का काम भी नगरक करता था। इस नगरक नामक अधिकारी की सहायता एवं मंत्रणा के लिए समाहर्ता एवं प्रादेशिका नामक अधिकारी होते थे। मेगस्थनीज के इंडिका में विस्तार से पाटलिपुत्र के नगर प्रशासन की चर्चा की गई है। मेगस्थनीज के अनुसार पाटलिपुत्र के प्रशासक के लिए पांच-पांच सदस्यों की 6 समितियां होती थी जिनके कार्य एवं कार्तव्य निम्नलिखित थे।

1. उद्योगों व शिल्पों का निरीक्षण
2. विदेशियों की देखभाल
3. जन्म मरण का पंजीकरण
4. वाणिज्य व्यापार की देखभाल
5. सार्वजनिक बिक्री का निरीक्षण
6. बिक्री कर संग्रह

कौटिल्य के अर्थशास्त्र की प्रासंगिकता:-

कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्राचीन भारत में लोक प्रशासन पर किया गया सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। यद्यपि अर्थशास्त्र में स्पष्ट रूप से लोक प्रशासन के सिद्धांत नहीं रखे गए हैं लेकिन इसमें वर्णित सरकारी कार्यप्रणाली महत्वपूर्ण है। कौटिल्य ने एक कल्याणकारी प्रशासन की बात की थी। राजा को प्रजा के हित के लिए कार्य करना चाहिए, उसे प्रजा को पुत्र की भांति पालना चाहिए, क्योंकि 'प्रजा हिते, हिते राज्ये, प्रजानाम च सुखे सुखम्'। अर्थात् प्रजा के हित में ही राज्य का हित है और प्रजा के सुख से ही राज्य सुखी है। कल्याणकारी प्रशासन के साथ ही कौटिल्य ने सुशासन की बात की है अर्थात् जनता की सारी सुविधाओं को सरकार द्वारा मुहैया कराया जाना चाहिए। क्षेत्रों की आवश्यकतानुसार उन्हें संसाधन उपलब्ध कराना राष्ट्र का दायित्व है।

कौटिल्य ने राजस्व संग्रहण के संदर्भ में उचित करारोपण को महत्व दिया है। करारोपण राज्य की आवश्यकता व प्रजा की स्थिति के अनुरूप होना चाहिए, उसके अनुसार उचित करारोपण की व्यवस्था वैसी ही होनी चाहिए, जैसे वृक्ष से फल गिरते हैं। कौटिल्य ने जट को जनता को खुशहाली की गारंटी देती है। कौटिल्य का कथन है कि सभी उद्यम वित्त पर निर्भर है अतः कोषागार पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

कौटिल्य का विचार है कि राजा का लोकसेवक कोषागार रक्षक मात्र होना चाहिए। प्रशासन के नियमों का उल्लंघन करने पर न्यायपालिका के दायरे में नहीं आते, किंतु निजी गुप्तचर व्यवस्था तथा

विदेश संबंधी आदि विषयों पर कौटिल्य के द्वारा दिए गए विचार वर्तमान भारतीय प्रशासन के संदर्भ में पर्याप्त रूप से प्रासंगिक है।

1.3.2 मुगल प्रशासन

केन्द्रीय प्रशासन

प्रशासन के शीर्ष पर बादशाह होता था। वह सभी प्रकार के सैनिक एवं असैनिक मामलों का प्रधान होता है था। बादशाह मुगल साम्राज्य के प्रशासन की धुरी था बादशाह की उपाधि धारण करता था, जिसका आशय था कि राजा अन्य किसी भी सत्ता के अधीन नहीं है। वह समस्त धार्मिक तथा धर्मोत्तर मामलों में अंतिम निर्णायक व अंतिम सत्ताधिकारी है। वह सेना, राजनीतिक, न्याय आदि का सर्वोच्च पदाधिकार है। वह संपूर्ण सत्ता का केन्द्र है तथा खुदा का प्रतिनिधि है।

मुगल बादशाह बहुत शान शौकत का जीवन व्यतीत करते थे। उनको बहुत से विशेषाधिकार प्राप्त थे और उनकी इच्छा ही कानून थी। तुर्की मंगोल परंपरा से ही मुगल प्रशासन को केन्द्रीकृत प्रशासन की अवधारणा विरासत में प्राप्त हुई थी। वैसे कुछ विद्वानों का मानना है कि अकबर के समय केन्द्रीकृत तुर्की मंगोल परंपरा में संशोधन किया गया। इन सबके उपरांत भी राजा का जीवन नियमों से बंधा हुआ था और यह माना जाता था कि जनता की भलाई में ही राजा की भलाई है। कुरान में स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि प्रजा के कल्याण का पूरा उत्तरदायित्व राजा के कंधों पर है। केन्द्रीय प्रशासन के संचालन हेतु राजा के द्वारा निम्नांकित पदाधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी।

1. वकील या वजीर -

वकील संपूर्ण प्रशासन का पर्यवेक्षण करता था। इसे राजस्व और वित्त का अधिभार दिया गया था। यह भू-राजस्व का आकलन करता था और उसकी वसूली का निरीक्षण करता था। वह इससे संबंधित हिसाब की जांच भी करता था।

2. दीवाने-आला या दीवाने-कुल:-

दीवाने आला वित्तीय शक्तियां रखता था। इसे राजस्व और वित्त का अधिभार दिया गया था। यह भू-राजस्व का आकलन करता था और उसकी वसूली का निरीक्षण करता था। वह इससे संबंधित हिसाब की जांच भी करता था।

3. मीर बखशी:-

यह साम्राज्य का सर्वोच्च भुगतान अधिकारी होता था क्योंकि मुगलकाल में मनसबदारी प्रथा प्रचलित थी तथा सैनिक एवं असैनिक सेवाओं का एकीकरण किया गया था। इसलिए यह साम्राज्य के सभी अधिकारियों को भुगतान करता था। यह मनसबदारों की नियुक्ति की सिफारिश करता था और उनके लिए जागीर की अनुशंसा करता था।

4. दीवाने-शामा/खान-ए-शामा:-

यह राजकीय कारखनों का निरीक्षण करता था तथा राजकीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उन कारखानों के उत्पादन को नियंत्रित करता था।

5. सद्र-उस-सूद्र:-

यह बादशाह का मुख्य धार्मिक परामर्शदाता होता था। यह धार्मिक अनुदानों को नियंत्रित करता था। साथ ही यह धार्मिक मामलों से संबंधित मुकद्दों भी देखता था।

6. मुख्य काजी:-

यह न्याय विभाग का प्रधान होता था।

7. मुहतसिब:-

यह जनता के नैतिक आचरण का निरीक्षण करता था और देखता था कि शरीयत के अनुसार कार्य हो रहा है या नहीं साथ ही यह माप तौल का निरीक्षण भी करता था।

उपरोक्त 7 अधिकारियों के अतिरिक्त केन्द्रीय प्रशासन में कुछ छोटे छोटे पद भी होते थे, जैसे- दरोगा-ए-तोपखाना, दरोगा-ए-डाकचौकी, मीर -माल (टकसाल प्रधान), मीर-बर् (वन अधीक्षक) आदि।

प्रांतीय प्रशासन

मुगल सम्राट बाबर ने अपने साम्राज्य का विभाजन जागीरों में किया था तथा उसके समय किसी प्रकार की प्रांतीय प्रशासनिक व्यवस्था विकसित नहीं हुई थी। सबसे पहले पहले एकरूप प्रांतों का निर्माण अकबर के शासनकाल में हुआ। सन् 1580 में अकबर ने अपने साम्राज्य का विभाजन 12 प्रांतों में किया, जिसकी संख्या शहजहां के काल तक 22 हो गई। अकबर की प्रशासनिक नीति प्रशासनिक एक रूपता तथा रोक और संतुलन के सिद्धांतों पर आधारित थी परिणामस्वरूप प्रांतीय प्रशासन का ही प्रतिरूप था।

प्रांतीय प्रशासन का प्रमुख सूबादार/नजीम कहलाता था जिसकी नियुक्ति बादशाह करता था। आमतौर पर सूबादार का कार्यकाल 3 वर्ष का होता था। नजीम की सहायता हेतु कुछ अन्य अधिकारी भी होते थे। प्रांतीय दीवान की नियुक्ति केंद्रीय दिवान की अनुसंज्ञा पर बादशाह करता था। प्रांतीय दीवान, नजीम के बराबर का अधिकारी होता था और कभी-कभी श्रेष्ठ अमीर को भी दीवान का पद दे दिया जाता था। इसी तरह प्रांतीय बखशी की नियुक्ति केंद्रीय बखशी की अनुसंज्ञा पर होती थी और प्रांतीय बखशी सुरक्षा से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण बातें नजीम को बताए बिना केन्द्रीय बखशी तक प्रेषित कर देता था। अकबर ने केंद्रीय सद्र शक्ति को कम करने के लिए प्रांतीय सद्र को नियुक्त करना शुरू किया। अब प्रांतीय सद्र के परामर्श से भी धार्मिक बातों का निर्णय लिया जा सकता था। इनके अतिरिक्त प्रांतीय स्तर पर काजी भी होता था।

स्थानिय प्रशासन

प्रांतों के विभाजन सरकार में होता था। सरकार से जुड़े हुए अधिकारी थे फौजदार, अमालगुजार, खजानदार आदि। फौजदार शांति व्यवस्था की देखरेख करता था और अमालगुजार भू-राजस्व से जुड़ा अधिकारी था। खजानदार सरकार के खजाने का संरक्षक होता था। कभी-कभी एक सरकार में कई फौजदार होते थे और कभी-कभी दो सरकारों पर एक फौजदार भी होता था। सरकार का विभाजन परगनों में होता था। परगनों से जुड़े अधिकारी सिकदार, आमिल, पोतदार, कानूनगों आदि थे। सिकदार शांति व्यवस्था का संरक्षक होता था और भू-राजस्व संग्रह में आमिल की सहायता करता था। आमिल भू-राजस्व प्रशासन से जुड़ा अधिकारी था। पोतदार, खजांची को कहा जाता था तथा कानूनगों गांव के पटवारियों का मुखिया होता था और स्वयं कृष्य भूमि का पर्यवेक्षण करता था।

सबसे नीचे ग्राम होता था जिससे जुड़े अधिकारी मुकद्दम और पटवारी थे। मुगलकाल में ग्राम पंचायत की व्यवस्था थी। इस विभाजन के अतिरिक्त नगरों में कानून व्यवस्था की देखरेख के लिए कोतवाल की नियुक्ति होती थी। अबुल फजल के आइने-अकबरी में कोतवाल के कार्यों का विवरण दिया गया है। इसी तरह प्रत्येक किले पर किलेदार की नियुक्ति होती थी।

इस प्रकार मुगल प्रशासन केंद्रीय प्रशासन से लेकर गांव तक शृंखलाबद्ध था लेकिन कुछ इतिहासकार जिनमें इरफान हबीब और आर्थर अली महत्वपूर्ण हैं मुगल प्रशासनिक ढांचे को अतिकेन्द्रीकृत मानते हैं।

मनसबदारी व्यवस्था:-

अकबर के द्वारा स्थापित की गई मनसबदारी पद्धति मौलिक रूप से एक प्रशासनिक सामरिक उपकरण थी जिनका उद्देश्य अमीरों एवं सेना का एक सक्षम संगठन स्थापित करता था। वस्तुतः

मनसबदारी पद्धति की व्याख्या केन्द्रीकृत रातनैतिक ढांचे के परिप्रेक्ष्य में की जा सकती है। इसके साथ साम्राज्य की शक्ति को एक चैनल में बांध दिया गया और अमीर वर्ग सेना तथा नोकरशाही तीनों को जोड़ दिया गया।

मुगल साम्राज्य के सभी पंजीकृत अधिकारियों को एक मनसब प्रदान किया गया, जो जोड़े के अंक में प्रस्तुत किया जाता था। प्रथम, संबन्धित अधिकारी के जात रैंक का बोध होता था तथा दूसरे उसके सवार रैंक का बोध कराता था। जात रैंक किसी भी अधिकारी का विभन्न अधिकारियों के पदानुक्रम में पद और स्थान को निर्धारित करता था। दूसरी तरफ सवार रैंक उसके सैनिक उत्तरदायित्व को रेखांकित करता था। सैद्धांतिक रूप से मनसब के कुल 66 ग्रेड होते थे। निम्नतम 10 और उच्चतम 10 हजार होता था किन्तु व्यवहारिक रूप में केवल 33 ग्रेड ही प्रचलित थे। पांच हजार से अधिक रैंक सामान्यतः राजकीय व्यक्ति को ही प्रदान किए जाते थे किंतु यह प्रतिष्ठा कुछ राजपूत योद्धाओं को भी प्राप्त हुई।

जगीरदारी प्रथा:-

वस्तुतः जागीरदारी पद्धति की स्थापना के पीछे साम्राज्य का एक व्यापक उद्देश्य था जिसके द्वारा उन राजपूत जमींदारों से भू-राजस्व संग्रह करना संभव हो गया, जो सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली थे और जाति, गोत्र के आधार पर विभाजित थे। अकबर मनसबदारों का वेतन नकद में देना चाहता था किन्तु उस समय के कुलीन वर्ग को भू-संपत्ति से जबर्दस्त आकर्षण था। इसलिए जागीरदारी प्रथा के अंतर्गत कुछ अधिकारियों को जागीर में वेतन दिया जाता था।

दिल्ली सल्तनत काल में इक्तादारी पद्धति प्रचलित थी और इक्ता के मालिक इक्तादार कहे जाते थे। इक्तादारी पद्धति भी कृषकों से अधिशेष प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण जरिया था किन्तु इक्ता और जागीर में एक महत्वपूर्ण अंतर यह था कि इक्ता में भूमि का आबंटन होता था जबकि जागीर में भू-राजस्व का आबंटन होता था। जागीरदारी व्यवस्था और इक्तादारी व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण अंतर यह भी था कि जागीरदारों को केवल भू-राजस्व की वसूली का अधिकार दिया गया था संबंधित क्षेत्र के प्रशासन का नहीं, जागीरदार को राजकीय नियमों के अनुरूप केवल प्राधिकृत राजस्व वसूलने का अधिकार था तथा प्रशासनिक कार्यों के लिए राज्य जिम्मेदार था। यदि भू-राजस्व की वसूली में किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित होता, तो जागीरदार उस क्षेत्र के फौजदार से सैनिक सहायता भी प्राप्त कर सकता था। जागीरदारी व्यवस्था के द्वारा प्रशासनिक केन्द्रीकरण का प्रयास हुआ था और नौकरशाही को ग्रामीण समुदाय पर आरोपित कर दिया गया था।

1.3.3 ब्रिटिश प्रशासन

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन के साथ ब्रिटिश प्रशासन के बीज पड़े। सन् 1600 में एक व्यापारिक कंपनी के रूप में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन हुआ, किन्तु देखते ही देखते यह कंपनी और इसके माध्यम से ब्रिटिश संसद का भारत पर साम्राज्य स्थापित हो गया। प्रारंभ में कंपनी का उद्देश्य व्यापार करना था और बंबई, कलकत्ता तथा मद्रास के बंदरगाहों से होकर शेष भारत से इसका संपर्क रहता था। धीरे धीरे कंपनी की प्रादेशिक महत्वकांक्षा प्रबल होती गई और शीघ्र ही वह भारत में एक प्रमुख यूरोपीय शक्ति बन गई। यही कंपनी आगे चलकर मुगल शासन की उत्तराधिकारी बनी। प्लासी और बक्सर के युद्ध के बाद भारत में कंपनी की साम्राज्यीय महत्वकांक्षाएं प्रबल हुईं और 1765 की इलाहाबाद की संधि के द्वारा कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अधिकार प्राप्त हुए, परिणामस्वरूप द्वैध शासन की शुरुआत हुई, जहां कि राजस्व संग्रहण का कार्य ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार में था, लेकिन सामान्य प्रशासन की जिम्मेदारी संबंधित प्रांत में मुगल प्रशासन द्वारा नियुक्त नवाब के जिम्मे होती थी। इस प्रकार कर्तव्य नवाब के पास थे लेकिन शक्तियां कंपनी के पास। यद्यपि नवाब की नियुक्ति में भी कंपनी का हस्तक्षेप होता था और उप नवाब की नियुक्ति का अधिकार तो कंपनी के पास ही था। इस प्रकार सारी शक्तियां कंपनी के हाथ में केन्द्रीत हो गई, लेकिन कर्तव्य और उत्तरदायित्व नहीं, परिणामस्वरूप द्वैध शासन की वजह से अकाल, अव्यवस्था जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ा।

कंपनी के शासन की शुरुआत होने और उसकी शक्तियों में वृद्धि होने के साथ-साथ ब्रिटिश संसद का भी भारतीय प्रशासन संबंधी मामलों में कंपनी के माध्यम से अप्रत्यक्ष नियंत्रण प्रारम्भ हुआ, जो कि 1857 की क्रांति के बाद कंपनी शासन की समाप्ति और भारत में प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन की स्थापना में परिणत हो गया।

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन की स्थापना के बाद ब्रिटिश संसद ने समय समय पर विभिन्न अधिनियम पारित करके कंपनी के शासन पर नियंत्रण करने का प्रयास किया, जिनकी संक्षिप्त चर्चा निम्नांकित रूप में की जा सकती है-

केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद् का विकास

1. 1773 से 1858 तक प्रशासनिक व्यवस्था - भारतीय संवैधानिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था के विकास में 1773 के रेग्यूलेटिंग एक्ट का विशेष महत्व है। सरकार ने कंपनी के आर्थिक, प्रशासनिक एवं सैनिक कार्यों पर संसद के आंशिक नियंत्रण के लिए यह अधिनियम पारित किया था। इस अधिनियम के द्वारा बंगाल के गवर्नर को कंपनी के भारतीय प्रदेशों का गवर्नर जनरल बनाया गया तथा इसकी सहायता के लिए 4 सदस्यों की एक परिषद् की स्थापना की गई इस कानून में बंबई और मद्रास के प्रेसीडेंसी को कलकत्ता प्रेसीडेंसी बंगाल के अधीन कर दिया गया। साथ ही भारतीय

मामलों में ससंद का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप आरंभ हुआ। परिणामस्वरूप इस कानून से भारत में प्रशासन के केन्द्रीकरण का कार्य शुरू हुआ।

1784 में पिट्स इंडिया एक् के माध्यम से गवर्नर जनरल की कौंसिल में सदस्यों की संख्या 4 से घटाकर 3 कर दी गई। साथ ही मद्रास तथा बंबई प्रेसीडेंसियों पर गवर्नर जनरल के निरीक्षण एवं नियंत्रण के अधिकार अधिक स्पष्ट कर दिए गए। इस अधिनियम का उद्देश्य कंपनी पर ब्रिटिश क्राउन का नियंत्रण बढ़ाना था। अतः ब्रिटेन में 6 सदस्यों के बोर्ड ऑफ कंट्रोल की स्थापना की गई। 1786 के अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल को परिषद् से अधिक शक्तियां प्रदान की गईं और उसे मुख्य सेनापति बनाया गया।

1793 के अधिनियम से गवर्नर जनरल को अपनी कौंसिल की अनुशंसा को रद्द करने का अधिकार दिया गया। 1813 के चार्टर एक्ट द्वारा भारत में ब्रिटिश कंपनी का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिया गया, लेकिन भू-राजस्व प्रशासन एवं भारतीय प्रशासन का कार्य कंपनी के अधीन रहने दिया गया। 1833 के चार्टर अधिनियम से बंगाल का गवर्नर भारत का गवर्नर जनरल कहलाने लगा। बंबई एवं मद्रास प्रेसीडेंसी को पूर्णतः बंगाल के अधीन कर दिया गया। संपूर्ण भारत के लिए विधि निर्माण का एकाधिकार गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद् को प्रदान किया गया तथा बंबई और मद्रास प्रेसीडेंसी से विधि निर्माण के अधिकार छीन लिए गए। अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल की काउंसिल में एक चौथा सदस्य फिर से जोड़ा गया, जिसे विधि सदस्य का नाम दिया गया। इस प्रकार इस अधिनियम से भारत में केन्द्रीकृत प्रशासन की स्थापना हुई।

2. 1858 से 1919 तक-1858 के अधिनियम द्वारा भारत पर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के स्थान पर ब्रिटिश संसद के शासन की स्थापना हुई। भारत सचिव के पद का सृजन किया गया। तथा समस्त संवैधानिक, प्रशासनिक तथा वित्तीय शक्तियां भारत सचिव तथा उसकी 15 सदस्यीय परिषद् में केंद्रित हो गईं। भारत में सत्ता का केन्द्रीकरण गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद में निहित हो गया। गवर्नर जनरल को वायसराय कहा जाने लगा।

1861 के अधिनियम द्वारा भारतीय प्रशासन में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। पहली बार प्रांतीय विधायिकाओं की स्थापना हुई। यद्यपि इनके कई अधिकार सीमित थे। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद तथा विधायिका का पुनर्गठन किया गया। अधिनियम की व्यवस्था द्वारा कार्यकारिणी के महत्व में कमी एवं गवर्नर जनरल के प्रभाव में वृद्धि हुई। गवर्नर जनरल को इस बात के लिए अधिकृत किया गया कि वह प्रशासनिक व्यवस्था हेतु विधि बनाए। कैनिंग के द्वारा विभागीय व्यवस्था की शुरुआत की गई। अधिनियम के द्वारा मद्रास और बंबई प्रेसीडेंसी को पुनः

विक्रम निर्माण के अधिकार तथा अन्य प्रांतों में ऐसी ही विधायिकाओं की स्थापना की व्यवस्था करके विधि निर्माण में विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया की नींव पड़ी।

1892 के भारतीय परिषद् अधिनियम के अंतर्गत विधायिकाओं की सदस्य संख्या और शक्ति में वृद्धि हुई तथा प्रतिनिधि संस्थाओं की सिफारिशों पर मनोनीत किया जाने लगा। 1909 के मार्ले-मिन्टो सुधारों द्वारा विधायिकाओं की सदस्य संख्या में वृद्धि हुई परंतु बहुमत सरकारी सदस्यों का ही बना रहा। अधिनियम में अप्रत्यक्ष चुनाव पद्धति को अपनाया गया अर्थात् केंद्रीय विधान परिषद् में विभिन्न प्रांतों से सदस्य चुनकर आने थे। इस अधिनियम का सबसे बड़ा दोष पृथक निर्वाचन व्यवस्था थी।

1919 में मांटैग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार द्वारा वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् में भारतीयों को स्थान दिया गया। केन्द्रीय स्तर पर द्वि-संदनीय व्यवस्थापिका की स्थापना हुई। अधिनियम के द्वारा केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया। आरक्षित विषयों का प्रशासन गवर्नर को अपने पार्षदों की सहायता से करना था तथा हस्तांतरित विषयों का प्रशासन निर्वाचित मंत्रियों की सहायता से किया जाना था।

3. सन् 1919 से स्वतंत्रता तक प्रशासनिक व्यवस्था 1935 के भारत सरकार अधिनियम का भारत के संवैधानिक इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इस अधिनियम ने भारत में संघात्मक व्यवस्था का सूत्रपात किया। इस संघ का निर्माण ब्रिटिश भारत के प्रांतों, देशों राज्यों और कमिश्नरी के प्रशासनिक क्षेत्र को मिलाकर किया जाना था। संघ स्तर पर द्वैध शासन प्रणाली को अपनाया गया और आंशिक उत्तरदायी शासन की स्थापना करने का प्रावधान किया गया। संघीय कार्यपालिका, संघीय विधानमंडल तथा संघीय न्यायालय की स्थापना की गई। प्रांतों में प्रांतीय सरकार तथा प्रांतीय सरकार की कार्यपालिका शक्ति समस्त प्रांतीय विषयों तक स्थापित हो गई। प्रांतों से द्वैध शासन प्रणाली का अंत कर दिया गया, किंतु व्यवहार में गवर्नर की शक्ति अब भी बनी रही। गवर्नर की शक्तियों को तीन भागों में विभाजित किया गया-

1. स्वेच्छा से काम में आने वाली शक्तियां
2. व्यक्तिगत शक्तियां
3. विधायिका के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों की सलाह से काम में आने वाली शक्तियां

इस अधिनियम का सबसे विवादास्पद पहलू धारा 93 थी जिसके अनुसार गवर्नर विशेष परिस्थितियों में प्रांतीय प्रशासन को अपने नियंत्रण में ले सकता था। इसी शक्तियों का प्रयोग कर 1939 में विभिन्न

प्रांतों में गवर्नर ने शासन कार्य अपने हाथ में ले लिया। भारतीय स्वतंत्रता तक इसी अधिनियम के अनुसार भारतीय प्रशासन का संचालन किया जाता रहा। स्वतंत्रता के बाद भारतीय प्रशासन स्वतंत्र भारत के संविधान द्वारा प्रारंभ हुआ।

केन्द्रीय सचिवालय का विकास

स्वतंत्र भारत में केन्द्रीय सचिवालय औपचारिक रूप से 30 जनवरी, 1948 को स्थापित हुआ, लेकिन मूल रूप से केन्द्रीय सचिवालय अन्य प्रशासनिक संस्थाओं की भांति ब्रिटिश शासनकाल की देन है। ब्रिटिश काल में इसे “इंपीरियल सेक्रेटैरिएट” कहा जाता था। ब्रिटिश साम्राज्य के समय भारत में प्रशासनिक एकता स्थापित करने में केन्द्रीय सचिवालय की विशेष भूमिका थी। समय के परिवर्तन के साथ जैसे जैसे सरकार का कार्यभार बढ़ता गया, विभागों की संख्या भी बढ़ती गई। 1919 से 1947 तक का काल केन्द्रीय सचिवालय में विभिन्न सुधारों के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहा। सन् 1919 की लिविलियन स्मिथ कमेटी के सुझाव पर -

1. विभागीय विषयों को पुनर्गठित किया गया।
2. लिखित आलेखों की प्रथा प्रारंभ की गई।
3. केन्द्रीकृत भर्ती की व्यवस्था आरंभ हुई
4. सचिवालय में प्रतिनियुक्ति व्यवस्था को सुदृढ़ किया गया।

1919 में पुनर्गठित सचिवालय में कुल 11 विभाग थे।

सन् 1936-37 में नियुक्त होने वाली व्हीलर समिति और मैक्सवेल समिति (संगठन तथा प्रक्रिया समिति) ने केन्द्रीय सचिवालय के संगठन और कार्य पद्धति में सुधार हेतु और भी सुझाव प्रस्तुत किए। आजादी के उपरांत गठित सरकार को कुछ ऐसी विशेष समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिनके परिणामस्वरूप केन्द्रीय सचिवालय का कार्यभार अत्यधिक हो गया। ये समस्याएं निम्नांकित थी - -

1. देश का विभाजन होने के कारण पाकिस्तान से आए शरणार्थियों को भारत में बसाना
2. जम्मू-कश्मीर में बाह्य आक्रमण की समस्या
3. रियासतों का भारतीय संघ में एकीकरण
4. आंतरिक सुरक्षा की समस्या

5. आवश्यक वस्तुओं के अभाव की समस्या

6. प्रशासनिक अधिकारियों की संख्या में भारी मात्रा में कमी

कल्याणकारी राज्य की स्थापना से प्रेरित होने के कारण भी सरकार के कार्यभार में अत्यधिक मात्रा में बढ़ांतरी हुई, परिणामस्वरूप केन्द्रीय सचिवालय का कार्यभार बढ़ा 15 अगस्त, 1947 को जब सत्ता का हस्तांतरण हुआ तो केन्द्रीय सचिवालय में 19 विभाग थे जिनका फिर से पुनर्गठन एवं सुधार करने के लिए स्वतंत्र भारत की सरकार ने सर गिरिजा शंकर बाजपेयी की अध्यक्षता में सचिवालय पुनर्गठन समिति की स्थापना की। कालांतर में विभागों की संख्या बढ़ी जैसे 1978 में 69 विभाग और 2001 में 81 विभाग।

वित्तीय प्रशासन का विकास

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासक स्थापित होने के बाद प्रांतों को वित्त के संबंध में बहुत अधिक सीमा तक स्वतंत्रता दी गई, किन्तु 1833 के चार्टर अधिनियम के द्वारा वित्त का केन्द्रीकरण कर दिया गया। अधिनियम के द्वारा यह निश्चित किया गया कि किसी प्रांतीय सरकार को नए पद तथा नए वेतन भत्ते की स्वीकृति का अधिकार नहीं होगा, जब तक कि गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति न मिल जाए।

1833-1870 तक प्रांतीय सरकारें केन्द्र सरकार के अभिकर्ता के रूप में ही कार्य करती रहीं उन्हें कर लगाने अथवा उसे खर्च करने का कोई अधिकार नहीं था। सर्वप्रथम 1870 में वित्तीय विकेन्द्रीकरण की दिशा में लार्ड मेयो की सरकार द्वारा एक निश्चित योजना को अपनाया गया।

1. जिसके अंतर्गत जेलें, रजिस्ट्रेशन, पुलिस, शिक्षा, सड़कें, चिकित्सा सेवाएँ, छपाई आदि के व्यय की मदों तथा उनसे प्राप्त होने वाले राजस्व को प्रांतीय सरकारों के नियंत्रण में हस्तांतरित कर दिया गया।

2. प्रांतों को कुछ निश्चित वार्षिक अनुदान देने की व्यवस्था की गई।

1877 में स्ट्रेची द्वारा प्रस्तावित नवीन योजना के अंतर्गत भूमि कर, स्थानीय चुंगी, स्टाम्प, स्टेशनरी, कानून व न्याय और सामान्य प्रशासन की कुछ व्यय मदें प्रांतीय सरकारों के नियंत्रण में हस्तांतरित कर दी गई। वित्तीय विकेन्द्रीकरण की दिशा में 1882 में प्रस्तावित नई योजना के अनुसार राजस्व के समस्त साधनों को तीन भागों में विभक्त किया गया। केन्द्रीय, प्रांतीय व विभाजित

केन्द्रीय मदों से प्राप्त होने वाले राजस्व को केन्द्रीय नियंत्रण में तथा प्रांतीय राजस्व को प्रांतीय नियंत्रण में रखा गया। विभाजित मदों से प्राप्त होने वाली आय को केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों के बीच

बराबर बराबर बाटने का निश्चय किया गया। विकेन्द्रीकरण के संबंध में 1907 में चार्ल्स होब हाऊस की अध्यक्षता में एक शाही आयोग नियुक्त किया गया। आयोग ने सिफारिश की, कि गवर्नर जनरल को प्रांतीय राजस्व में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। 1919 के अधिनियम द्वारा प्रांतीय बजट केन्द्र सरकार से बिल्कुल पृथक कर दिए गए और प्रांतीय सरकारों को अपने बजट के निर्माण का पूर्ण अधिकार दिया गया। प्रांतों को पहली बार प्रांतीय या स्थानीय प्रकृति के कर लगाने का अधिकार मिला। 1935 के अधिनियम द्वारा प्रांतीय स्वायत्ता की व्यवस्था की गई और संघीय सरकार तथा प्रांतों के बीच तीन सूचियों के आधार पर न केवल कार्यों का वर्गीकरण किया गया, बल्कि वित्तीय साधनों का भी विभाजन किया गया। संघ सरकार तथा राज्यों के पृथक पृथक आय साधन रखे गए। कुछ सीमा में प्रांतों को उधार लेने का अधिकार भी दिया गया। प्रांतों को अपना घाटा पूरा करने के लिए केन्द्र सरकार की ओर से निमेयर रिपोर्ट के अनुसार वित्तीय सहायता प्रदान की गई। निमेयर रिपोर्ट की इस बात को स्वीकार कर लिया गया, कि आयकर की भी अधी धनराशि प्रांतों में बांट दी जाए।

पुलिस प्रशासन का विकास

मुगल साम्राज्य के विघटन के उपरांत भारत में कानून-व्यवस्था की स्थिति बगड़ती गई। पुलिस शक्ति क्षेत्रीय जमींदारों के हाथ आ गई। जब क्लाइव ने बंगाल की दीवानी प्राप्त की तो उसने प्रचलित प्रशासनिक व्यवस्था को बनाए रखवा। वारेन हेस्टिंग्स ने भी पुलिस व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दिया। सर्वप्रथम कार्नवालिस ने एक संगठित पुलिस व्यवस्था की शुरुआत की। उसने थाना व्यवस्था का आधुनिकरण किया तथा प्रत्येक क्षेत्र में एक पुलिस थाने की स्थापना कर उसे एक दरोगा के अधीन रखा। जिला स्तर पर जिला पुलिस अधीक्षक के पद का सृजन किया गया। ग्राम स्तर पर चौकीदारों को पुलिस शक्ति दी गई। इस तरह आधुनिक पुलिस व्यवस्था की शुरुआत हुई।

सक्षम पुलिस व्यवस्था ने बहुत सारे उद्देश्य पूरे किए। मध्य भारत में ठगों का दमन, क्रांतिकारी षड्यंत्रों का पर्दाफाश तथा राष्ट्रीय आंदोलन को इसी पुलिस व्यवस्था के द्वारा कुचला गया। इसने भारतीय जनता के साथ क्रूर व्यवहार भी किया। 1813 ईस्वी में संसद की एक समिति ने रिपोर्ट दी कि पुलिस ने भारतीय जनता को डाकुओं की तरह प्रताड़ित किया है। वस्तुतः महत्वपूर्ण पदों पर भारतीयों की नियुक्ति के मामले में ब्रिटिश कंपनी सतर्क रही। कार्नवालिस ने तो स्पष्ट रूप से भारतीयों को भ्रष्ट मान लिया एवं उन्हें उत्तरदायी पदों से दूर रखा। कुछ छोटे-छोटे पदों पर भारतीयों की नियुक्ति अवश्य की गई, जैसे- अमीन एवं दरोगा। 1793 ईस्वी के बाद आधिकारिक नीति भारतीयों को महत्वपूर्ण पदों से वंचित करने की रही।

न्याय व्यवस्था का विकास

मुगल साम्राज्य के विघटन के बाद मुगलकालीन न्याय व्यवस्था टूट गई। मुगलकाल के उत्तरार्द्ध में भूमि सुपुर्दगी प्रथा से समृद्ध भू-स्वामियों के हाथों में आ गई। न्यायिक शक्तियां भी भू-स्वामियों के हाथों में आ गई। बंगाल की दीवानी प्राप्त करने के बाद क्लाइव ने प्रचलित व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। न्याय व्यवस्था में सुधार की दृष्टि से वारेन हेस्टिंग्स का काल महत्वपूर्ण है। भारत में ब्रिटिश न्याय प्रणाली की स्थापना इसी काल में हुई। ब्रिटिश न्याय प्रशासन भारतीय और ब्रिटिश प्रणालियों तथा संस्थाओं का सम्मिश्रण था। कानून के शासन तथा न्याय पालिका की स्वतंत्रता इस प्रणाली की विशेषता थी। वारेन हेस्टिंग्स ने सिविल तथा फौजदारी मामलों के लिए अलग-अलग अदालतें स्थापित कीं। उसने न्याय सुधार में मुगल व्यवस्था को ही आधार बनाया।

सर्वप्रथम वारेन हेस्टिंग्स ने सिविल अदालतों की शृंखला स्थापित की। सबसे नीचे मुखिया, फिर जिले में जिला दीवानी अदालत तथा सबसे ऊपर कलकत्ता की सदर दीवानी अदालत थी। इसी तरह फौजदारी अदालतों का पुनर्गठन किया गया। प्रत्येक जिले में एक फौजदारी अदालत स्थापित की गई, जो काजी, मुफ्ती एवं मौलवी के अधीन होती थी। इसके ऊपर कलकत्ता की सदर दीवानी अदालत थी।

कार्नवालिस के द्वारा उपरोक्त व्यवस्था में सुधार किए गए। उसके सुधारों में यूरोपीय तत्व प्रबल थे। कार्नवालिस ने शक्ति पृथक्करण सिद्धांत के अंतर्गत लगान प्रबंध से दीवानी प्रशासन को पृथक् कर दिया। 1793 में कार्नवालिस संहिता द्वारा कलेक्टर से न्यायिक एवं फौजदारी शक्तियां लेली गईं। जिला अदालतों के लिए श्रेणी निर्धारित की गई तथा दीवानी अदालतों का पुनर्गठन हुआ। फौजदारी अदालतों की भी नई शृंखला बनाई गई। इसके अतिरिक्त विचारधारा से प्रेरित होने के कारण दंड-संहिता में परिवर्तन किया। विलियम बैंटिक के शासनकाल में उपयोगितावादी विचार धारा से प्रेरित होने के कारण दंड विधान की कठोरता को कम करने का प्रयत्न किया गया। कुछ महत्वपूर्ण न्यायिक पदों पर भारतीयों को नियुक्त किया गया। 1859 से 1861 के बीच दंड विधि, सिविल कार्य विधि तथा दंड प्रक्रिया पारित की गई। इन सुधारों में संपूर्ण भारत के लिए एक ही विधि प्रणाली लागू की गई। 1861 में भारतीय उच्च न्यायालय अधिनियम पारित हुआ तथा कलकत्ता एवं मद्रास में उच्च न्यायालय की स्थापना की गई। आगे लाहौर, पटना आदि स्थानों पर भी उच्च न्यायालय स्थापित हुए।

1935 के भारत शासन अधिनियम के आधार पर एक संघीय न्यायालय की स्थापना की गई। इस न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधीश तथा सरकार द्वारा नियुक्त अन्य न्यायाधीश होते थे। न्यायालय के क्षेत्र में प्रारंभिक एवं अपीलीय तथा परामर्श संबंधी विषय थे। प्रांतीय न्यायालयों को दीवानी,

आपराधिक, वसीयती, गैर वसीयती और वैवाहिक क्षेत्राधिकार मौलिक एवं अपीलीय दोनों प्रकार के प्राप्त थे न ।

अभ्यास प्रश्न -

1. रेग्यूलेटिंग एक्ट कब पारित हुआ।
2. पिट्स इंडिया एक्ट कब पारित हुआ।
3. सन् में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन हुआ।
4. 1919 के अधिनियम को किस नाम जाना जाता है।
5. केन्द्रीय स्तर पर द्विसं-दनीय व्यवस्थापिका की स्थापना किस अधिनियम से हुई।
6. अशोक ने किस शिलालेख में घोषणा की “कि सारी प्रजा मेरी संतान है”।
7. अर्थशास्त्र के लेखक कौन है।
8. मेगस्थनीज की पुस्तक का क्या नाम है।

1.4 सारांश

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन के पश्चात आप यह जानने और समझने में सक्षम हो गये होंगे कि किस प्रकार से भारतीय प्रशासन प्राचीन मौर्य काल से अपनी विकास की यात्रा शुरू करके मुगल काल से होते हुए ब्रिटिश काल तक की यात्रा पूर्ण की है। इस अध्ययन में आप ने यह देखा कि मौर्य साम्राज्य का स्वरूप राजतंत्रात्मक था जिसमें शासन का प्रधान राजा होता था। राजपद एक महत्वपूर्ण पद होगया और इस पद की शक्ति एवं अधिकार बढ़ गए। राजा, राज्य का प्रमुख होता था। जिसके पास कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका के अधिकारों के साथ वित्तीय शक्तियां भी थी। राजा की खुशी प्रजा की खुशी पर निर्भर करती थी। जनकल्याण पर राजा का कल्याण आश्रित था। राज्य में रहने वाले लोगों के हितों का संपादन ही राजा का प्रमुख कर्तव्य था। प्रशासन के शीर्ष पर बादशाह होता था। वह सभी प्रकार के सैनिक एवं असैनिक मामलों का प्रधान होता है था। बादशाह मुगल साम्राज्य के प्रशासन की धुरी था बादशाह की उपाधि धारण करता था, जिसका आशय था कि राजा अन्य किसी भी सत्ता के अधीन नहीं है। वह समस्त धार्मिक तथा धर्मोत्तर मामलों में अंतिम निर्णायक व अंतिम सत्ताधिकारी है। वह सेना, राजनीतिक, न्याय आदि का सर्वोच्च पदाधिकार है। वह संपूर्ण सत्ता का केन्द्र है तथा खुदा का प्रतिनिधि है। इसके बाद भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन के साथ ब्रिटिश प्रशासन के बीज पड़े। सन् 1600 में एक व्यापारिक कंपनी के रूप में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन हुआ, किन्तु देखते ही देखते यह कंपनी और इसके माध्यम से ब्रिटिश संसद का

भारत पर साम्राज्य स्थापित हो गया। ब्रिटिश साम्राज्य का भारतीय प्रशासन के विविध पक्षों पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

1.5 शब्दावली

राजतंत्र -राजतंत्र वह शासन है जिसमें शासन का प्रधान राजा होता है। राजा, राज्य का प्रमुख होता था। जिसके पास कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका के अधिकारों के साथ वित्तीय शक्तियां निहित हों।

सद्र-उस-सूद्र -यह बादशाह का मुख्य धार्मिक परामर्शदाता होता था। यह धार्मिक अनुदानों को नियंत्रित करता था। साथ ही यह धार्मिक मामलों से संबंधित मुकद्दों भी देखता था।

मुख्य काजी - मुगल काल में यह न्याय विभाग का प्रधान होता था।

जागीरदारी प्रथा - मुगल काल में राजपूत जमींदारों के माध्यम से भू- राजस्व संग्रह करने की प्रथा, जो सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली थे और जाति, गोत्र के आधार पर विभाजित थे। अकबर मनसबदारों का वेतन नकद में देना चाहता था किन्तु उस समय के कुलीन वर्ग को भू-संपत्ति से जबर्दस्त आकर्षण था। इसलिए जागीरदारी प्रथा के अंतर्गत कुछ अधिकारियों को जागीर में वेतन दिया जाता था।

इक्तादारी और जागीरदारी प्रथा - दिल्ली सल्तनत काल में इक्तादारी पद्धति प्रचलित थी और इक्ता के मालिक इक्तादार कहे जाते थे। इक्तादारी पद्धति भी कृषकों से अधिशेष प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण जरिया था किन्तु इक्ता और जागीर में एक महत्वपूर्ण अंतर यह था कि इक्ता में भूमि का आबंटन होता था जबकि जागीर में भू-राजस्व का आबंटन होता था। जागीरदारी व्यवस्था और इक्तादारी व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण अंतर यह भी था कि जागीरदारों को केवल भू-राजस्व की वसूली का अधिकार दिया गया था संबंधित क्षेत्र के प्रशासन का नहीं

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.1773 2. 1784 3. 1600 4. मांटैग्यू-चेम्सफोर्ड 5. मांटैग्यू-चेम्सफोर्ड 6. धौली शिलालेख
7. कौटिल्य 8. इंडिका

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया

भारतीय लोक प्रशासन	-	अवस्थी एवं अवस्थी
--------------------	---	-------------------

1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	डी.डी. बसु
भारतीय लोक प्रशासन	-	एस.सी. सिंहल

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश काल में भारतीय प्रशासन के विकास पर निबंध लिखिए।
2. मुगल प्रशासन, केन्द्रीय प्रशासन था। स्पष्ट कीजिए।
3. मौर्य प्रशासन में राजा पर कर्तव्य का अंकुश था। व्याख्या कीजिए।

इकाई 2 : भारतीय प्रशासन की विशेषताएँ

इकाई की संरचना

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारण
- 2.4 भारतीय प्रशासन की विशेषताएँ
 - 2.4.1 गतिशील प्रशासन
 - 2.4.2 विकास प्रशासन
 - 2.4.3 उत्तरदायी प्रशासन
 - 2.4.4 नौकरशाही एवं लालफीताशाही
 - 2.4.5 प्रशासन की तटस्थता
 - 2.4.6 सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ
 - 2.4.7 प्रशासन की बढ़ती हुई शक्तियाँ
 - 2.4.8 प्रशासन का लक्ष्य सामाजिक – आर्थिक न्याय
 - 2.4.9 समन्वित प्रशासन
- 2.5 सारांश
- 2.6 शब्दावली
- 2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इसके पहले इकाई १ के अध्ययन के पश्चात आप यह जानने और समझने में सक्षम हो गये होंगे कि किस प्रकार से भारतीय प्रशासन प्राचीन मौर्य काल से अपनी विकास की यात्रा शुरू करके मुगल काल से होते हुए ब्रिटिश काल तक की यात्रा पूर्ण की है। भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन के साथ ब्रिटिश प्रशासन के बीज पड़े। सन् 1600 में एक व्यापारिक कंपनी के रूप में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन हुआ, किन्तु देखते ही देखते यह कंपनी और इसके माध्यम से ब्रिटिश संसद का भारत पर साम्राज्य स्थापित हो गया। ब्रिटिश साम्राज्य का भारतीय प्रशासन के विविध पक्षों पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

इस इकाई २ में हम भारतीय प्रशासन की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे, जिसमें हम स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारणों का अध्ययन करते हुए संसदीय लोकतंत्र, संघात्मक शासन, स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन की बदलती प्रकृति (प्रशासन के लक्ष्यों और उद्देश्यों में परिवर्तन) का अध्ययन करेंगे। साथ ही यह भी देखेंगे कि किस प्रकार भारतीय संविधान, समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करता है। और अंततः हम यह अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार भारतीय प्रशासन, गतिशील प्रशासन है, विकास प्रशासन है, उत्तरदायी प्रशासन है और राजनीतिक उथल-पुथल से अपने को अलग रखते हुए सामाजिक-आर्थिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समन्वित रूप से कार्य कर रहा है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम

1. स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारणों को जान सकेंगे।
2. भारतीय प्रशासन की विशेषताओं को जान सकेंगे।
3. संसदीय लोकतंत्र की स्थापना के उद्देश्यों को जान सकेंगे।
4. संघात्मक शासन और उसकी स्थापना के कारणों को जान सकेंगे।

2.3 स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारण

जैसाकि हम जानते है कि १५ अगस्त १९४७ को हमारे देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। देश को आजादी मिलाने के साथ ही उन सपनों को साकार करने के लिए भी प्रयास शुरू किये जाने लगे, जिनको लक्ष्य मानकर आजादी के दीवानों ने संघर्ष किया था। लेकिन उन सपनों को साकार करने के लिए यह आवश्यक था कि, उसके अनुरूप प्रशासनिक तंत्र का निर्माण किया जाए साथ ही साथ इस नवनिर्मित प्रशासनिक तंत्र के लक्ष्य भी स्पष्ट किये जाए। स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई कारण उत्तरदाई थे जो निम्नलिखित हैं –

१. संसदीय लोकतंत्र की स्थापना --

स्वतंत्रता के पश्चात देश में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गई। आजादी के पूर्व कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थी, वह केवल ब्रिटिश आकाओं के प्रति ही उत्तरदायी थी। परन्तु संसदीय लोकतंत्र की स्थापना के साथ ही कार्यपालिका को विधायिका के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। कार्यपालिका का अर्थ मंत्रिमंडल से है, जबकि विधायिका का तात्पर्य कानून निर्माण करने वाली संस्था संसद से है। कार्यपालिका का गठन संसद के सदस्यों में से किया जाता है और कार्यपालिका के गठन का अवसर उस दल को मिलाता है जिसे संसद के निम्न सदन में बहुमत प्राप्त होता है। और संसद के निम्न सदन में जनप्रतिनिधि होते हैं जो जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुनकर आते है। इस प्रकार से स्पष्ट होता है कि कार्यपालिका अपने अस्तित्व के लिए जनप्रतिनिधियों के बहुमत के साथ समर्थन पर निर्भर करती है, और ये जनप्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार अब प्रशासन, ब्रिटिश शासन के विपरीत, जनता के प्रति उत्तरदायी है।

२. संघात्मक शासन की स्थापना

ब्रिटिश शासन के समय हमारे देश में एकात्मक शासन था जिसमे एक केंद्र से शासन संचालित किया जाता था। जब कि हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नतायें पाई जाती है, इन भिन्नताओं के साथ इनकी समस्याएँ भी भिन्न प्रकृति की होती हैं, इस लिये इनका स्थानीय स्तर पर बेहतर समाधान किया जा सकता है। इस लिए शक्ति विभाजन के सिद्धांत के आधार संघात्मक शासन की स्थापना की गई। जो, सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नताओं को बनाए रखने के साथ ही उनकी समस्याओं के स्थानीय स्तर पर समाधान संभव हो सका।

३. प्रशासन की प्रकृति में परिवर्तन (प्रशासन के लक्ष्यों और उद्देश्यों में परिवर्तन)

जैसा कि यह सर्वविदित है कि भारतीय संविधान में उन लक्ष्यों और उद्देश्यों का स्पष्ट प्रावधान किया गया है, जिनकी सिद्धि के लिए प्रशासन को करना है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि स्वतंत्रता के पहले हमारे देश का प्रशासन नियामकीय प्रकृति का था, दूसरे शब्दों में प्रशासन के कार्य मुख्यतः नियामकीय थे अर्थात् प्रशासन का मुख्य कार्य कानून और व्यवस्था बनाये रखना था। जिससे अंग्रेज शासन को अपने लक्ष्यों की सिद्धि में अनवरत सहूलियत बनी रहे।

परन्तु स्वतंत्रता के उपरान्त संविधान निर्माताओं ने, स्पष्ट रूप से उन लक्ष्यों का प्रावधान किया जिनको ध्यान में रखकर प्रशासन को संचालित किया जाना था। पहले प्रशासन जनता पर अपना दबाव बनाकर कार्य करता था, जनता के कोई मौलिक अधिकार नहीं थे, जनता का यह दायित्व था की प्रशासन के निर्देशों का पालन करता रहे। किन्तु आजादी के बाद अब प्रशासन जनता के लिए काम करता है क्यों कि जिसकी हम आप को ऊपर बता चुके हैं कि हमारे देश में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गयी। जिसमें सरकार जनता द्वारा निर्वाचित होती है और जनता के लिए काम करती है, इस लिए अब प्रशासन जनता के दबाव में काम करता है। संविधान के द्वारा मौलिक अधिकारों का प्रावधान किया गया। ये वे अधिकार हैं जो राज्य और व्यक्तियों के विरुद्ध प्रदान किये गए हैं। अर्थात् इन अधिकारों के उल्लंघन होने पर चाहे वे व्यक्ति के द्वारा हों या राज्य के द्वारा हों, व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अनुच्छेद ३२ के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद २२६ के तहत उच्च न्यायालय में जा सकता है।

इसी के साथ – साथ संविधान के भाग ४ में नीतिनिदेशक तत्वों का उपबंध भी करके राज्य को कुछ कल्याणकारी दायित्व भी सौंपे गए, जिनको लागू करने की जिम्मेदारी प्रशासन की है।

४. समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष राज्य – हमारे मूल संविधान में समाजवादी और पंथनिरपेक्ष शब्द का समावेश नहीं किया गया था। ४२ वें संवैधानिक संशोधन १९७६ के द्वारा इनका समावेश संविधान किया गया। इन शब्दों के समावेश से प्रशासन के लक्ष्यों में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया। इसको और अधिक स्पष्ट करने के ले इनके अर्थ को भी स्पष्ट करना आवश्यक है। समाजवाद का तात्पर्य है कि राज्य लोगों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने प्रयास करेगा। पंथनिरपेक्ष का अर्थ – राज्य का अपना कोई राजधर्म नहीं होगा, इसका तात्पर्य यह भी है कि राज्य सभी धर्मों के साथ सामान वर्ताव करेगा, किसी के साथ किसी भी प्रकार का पक्षपातपूर्ण व्यवहार नहीं करेगा। यद्यपि इन शब्दोंके सम्बन्धान्में समावेश के पूर्व भी ऐसे लक्ष्यों की पूर्ती के लिए थे। इन उपबंधों से प्रशासन की जिम्मेदारी में आमूलचूल परिवर्तन आया है।

2.4 भारतीय प्रशासन की विशेषताएँ

इस प्रकार से स्वतंत्रता के उपरांत भारतीय प्रशासन के उद्देश्यों और लक्ष्यों में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन के कारण भारतीय प्रशासन में निम्नलिखित विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं, जो इस प्रकार हैं ---

2.4.1 गतिशील प्रशासन

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं कि आजादी के बाद प्रशासन के उद्देश्यों और लक्ष्यों में आमूलचूल परिवर्तन देखने को मिल रहा है। आज प्रशासन जनता की आवश्यकताओं की पुत्री का साधन बन गया है। समय के बदलाव के साथ नित्य नई आवश्यकताएं और समस्याएं पैदा होती रहती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति और समस्याओं के समाधान हेतु प्रशासन को निरंतर तत्पर रहना होता है। और बदलती परिस्थितियों के अनुरूप अपने ढालते रहना है। क्योंकि अब प्रशासन जनता के स्वामी के रूप में नहीं वरन सेवक के रूप में कार्य कर रहा है।

2.4.2 विकास प्रशासन

विकास प्रशासन एक परिवर्तनशील अवधारणा है। जो निरंतर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को लाने के लिए प्रयत्नशील है, साथ ही इन परिवर्तनों को सकारात्मक दिशा देने का भी कार्य कर रहा है। इसका सम्बन्ध योजना के निर्माण, इसके निर्माण हेतु आवश्यक पूर्वाश्रयताओं की पूर्ति से भी सम्बन्ध रखता है। विकास प्रशासन का सम्बन्ध नीतियों के कार्यान्वयन से है। इसलिए सरकार के जनकल्याणकारी और सशक्तिकरण संबंधी नीतियों के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी भी इसी पर होती है।

2.4.3 उत्तरदायी प्रशासन

संसदीय शासन की एक प्रमुख विशेषता, उत्तरदायी शासन की स्थापना। चूँकि हमारे देश में संसदीय शासन में निम्न सदन (लोक सभा) के सदस्यों का चुनाव जनता के द्वारा, प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। मंत्रिपरिषद का गठन संसद के सदस्यों में से ही किया जाता है। मंत्रिपरिषद के सदस्य सम्बंधित विभाग के अध्यक्ष (राजनीतिक प्रमुख) होते हैं। इस लिए अपने विभाग के कार्यों के लिए, वे जनता के प्रति उत्तरदायी होती हैं।

2.4.4 नौकरशाही एवं लालफीताशाही

हमारे देश में नौकरशाही का एक विस्तृत ढांचा विद्यमान है, जो नीति निर्माण में सहयोगी भूमिका से लेकर, नीति के क्रियान्वयन तक के कार्यों में सक्रिय रहती है। परन्तु यह नौकरशाही अपने दायित्वों के निर्वहन में नियम - कानून और प्रक्रिया पर ज्यादा जोर देती दिखायी देती है, जिससे ये नियम -

कानून और प्रक्रिया पर ज्यादा जोर देना ही साध्य के रूप में दिखायी देने लगता है , जिससे लालफीताशाही का दोष प्रशासन में उभरकर सामने आता है |

2.4.5 प्रशासन की तटस्थता

भारतीय प्रशासन की एक और महत्वपूर्ण विशेषता इसकी राजनीतिक तटस्थता | अर्थात् लोकसेवक अपने सार्वजनिक जीवन में राजनीतिक अभिव्यक्तियों अर्थात् राजनीतिक विचारों और व्यवहारों से सर्वथा दूर रखता है | इसका परिणाम यह होता है कि प्रशासनिक अधिकारी विना किसी दलीय निष्ठा के ,पूर्वाग्रह से मुक्त होकर अपने दायित्वों का निर्वहन करता है | सरकार चाहे किसी भी दल की हो , उसका सम्बन्ध केवल नीतियों के निष्पक्ष क्रियान्वयन से होता है ,न कि दलीय भावना से | इस तरह के राजनीतिक तटस्थता के लिए लोक सेवकों हेतु भारतीय संविधान में उपबंध किये गए हैं

2.4.6 सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ

आजादी के बाद सामान्य रूप से प्रशासन में सामान्यग्यों की नियुक्ति होती थी किन्तु उसके बाद के समय में विभिन्न प्रकार की जरूरतों को पूरा करने के लिए विशेषज्ञों की भी नियुक्ति की जाने लगी | जैसे डॉक्टर, इंजीनीयर, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक ,कृषि वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री ,विधिवेत्ता आदि |

2.4.7 प्रशासन की बढ़ती हुई शक्तियाँ

स्वतन्त्रता के पूर्व प्रशासन की प्रकृति नियामकीय थी ,जिसका प्रमुख लक्ष्य कानून और व्यवस्था बनाए रखना था | परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गई ,जिसमें सरकार जनता की भलाई के लिए कार्य करती है ,न कि अपने लाभ के लिए जैसा कि अंग्रेज शासन काल में हुआ करता था | स्वतन्त्रता के पश्चात संविधान निर्माताओं ने ,मूलभूत सामाजिक आर्थिक लक्ष्यों की घोषणा की है | इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नियोजन प्रक्रिया प्रारम्भ की गई | इस कारण से प्रशासन की शक्तियों में अभूतपूर्व वृद्धि कर दी है | नित्य नवीन कल्याणकारी योजनाएं लागू की जा रही हैं ,इनको लागू करने की जिम्मेदारी प्रशासन पर ही होती है | इसके साथ ही साथ अब तो सशक्तिकरण से सम्बंधित नीतियां भी लागू की जा रही हैं जिससे समाज में अब तक हासिए पर रहे समुदायों को भी ,समाज की मुख्य धरा से जोड़ा जा सके | यदि इन सब बातों को हम संक्षेप में कहें तो यह है कि व्यक्ति के जन्म से पूर्व माँ के स्वास्थ्य ,जन्मोपरान्त –जन्म प्रमाणपत्र ,बच्चे के स्वास्थ्य ,पोषण ,नाना प्रकार के टीके ,जनगणना ,उसकी शिक्षा ,रोजगार ,विवाह पंजीकरण ,बृद्धावस्था में उनके हित में विभिन्न प्रकार के सामाजिक सुरक्षा संबंधी कार्यक्रम ,और अंततः मृत्यु पंजीकरण और इसी प्रकार से अन्य जो भी लोकहित में आवश्यक कार्य हों प्रशासन के द्वारा ही किये जाते हैं | लोकतंत्र में प्रशासन की बढ़ती जिम्मेदारियों ने उसकी शक्तियों में भी अभूतपूर्व वृद्धि कर दी है |

2.4.8 प्रशासन का लक्ष्य सामाजिक – आर्थिक न्याय

लंबे संघर्ष के पश्चात देश को आजादी मिली थी | जिसका उद्देश्य देशवासियों को उन सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों से सुसज्जित करना जिनसे अभी तक वे वंचित रहे हैं | क्यों कि परम्परागत भारतीय समाज में कुछ सामाजिक और आर्थिक नियोग्यताएं प्रचलित थी | जैसे अश्वृश्यता (छुआ - छूत), व्यवसाय की नियोग्यताएं आदि | हमारे संविधान में एक तरफ तो इन नियोग्यताओं को समाप्त किया गया तो दूसरी तरफ, संविधान के द्वारा देशवासियों को विभिन्न प्रकार के सामाजिक और आर्थिक अधिकार प्रदान किये गए जिससे वे सम्मान पूर्वक अपना जीवन यापन कर सकें | इस प्रकार के व्यापक उपबंध हमारे संविधान भाग ३ में मूलाधिकार और भाग ४ के नीति निर्देशक तत्वों में किये गए हैं |

2.4.9 समन्वित प्रशासन –

हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधताएं हैं | इस बात को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने संघात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया गया | जिसकी मुख्य विशेषता – लिखित, निर्मित और कठोर संविधान, संघ सरकार और राज्य सरकार के बीच शक्तियों का विभाजन, संविधान की व्याख्या, नागरिकों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा और संघ सरकार और राज्य सरकार के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों का निराकरण करने के लिए स्वतन्त्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना | इसके साथ ही साथ मजबूत केंद्र की स्थापना के लिए एकात्मक शासन के मुख्य प्रावधानों को भी सम्मिलित किया गया | ऐसा इस लिए किया गया क्योंकि देश, स्वतंत्रता के समय दुखद विभाजन को देख चुका था | इसी बात को ध्यान में रखते हुए संघ और राज्य के लिए सम्मिलित सेवाओं का प्रावधान किया गया, जिसे अखिल भारतीय सेवा कहते हैं | जिसमें तीन अखिल भारतीय सेवा

हैं- १. भारतीय प्रशासनिक सेवा २. भारतीय पुलिस सेवा ३. भारतीय वन सेवा | इन सेवाओं का उद्देश्य केंद्र और राज्य के बीच सहयोग को निरंतर प्रोत्साहित करना, जिससे राष्ट्र निर्माण का कार्य सफलता पूर्वक किया जा सके और कल्याणकारी और सशक्तिकारक नीतियों को भी सफलतापूर्वक लागू किया जा सके | यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि केंद्र सरकार के पास अपना कोई अलग प्रशासनिक तंत्र नहीं है अपितु केंद्र की नीतियों को भी सफलतापूर्वक लागू करने में राज्य के प्रशासनिक तंत्र से सहयोग लिया जाता है |

भारतीय प्रशासन की उपर्युक्त विशेषताओं के साथ ही साथ इसके कुछ अन्य पक्षों का भी अध्ययन करना आवश्यक होगा जो कि, इनमें प्रायः दिखाई देता है ---

1. पिछले कुछ वर्षों में यह तथ्य उभरकर सामने आया है की प्रशासनिक अधिकारियों के अपने दायित्वों के निर्वहन में, राजनीतिक हस्तक्षेप दिखाई दे रहा है, परिणामस्वरूप प्रशासकों में निराशा

की भावना प्रबल होती दिखाई देती है। राजनीति में अपराधीकरण बहुत ही चिंता का विषय है, यदि इसके निराकरण हेतु कोई संस्थागत उपाय और उन उपायों का समुचित क्रियान्वयन का प्रबंध करना उपयोगी होगा।

२. कल्याणकारी योजनाओं, विकास कार्यों और सशक्तिकारक नीतियों के क्रियान्वयन में जनता की सक्रिय भागीदारी नहीं हो पाती है जिसके फलस्वरूप नीतियों और कार्यक्रमों की सफलता संदिग्ध हो जाती है। इसका प्रमुख कारण प्रशासन के द्वारा जनता को साथ लेकर न चलने की प्रवृत्ति है। इस लिए आवश्यकता इस बात की है प्रशासन को जनता के प्रति संवेदनशील बनाया जाये, और प्रशासकों को भी नियत अंतराल पर नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किये जाते रहें। साथ ही जिस क्षेत्र और जिस समुदाय विशेष के लिए नीति का निर्माण किया जाना है, उसकी भी नीति निर्माण में भागीदारी सुनिश्चित करने के उपाय किये जाने चाहिए।

३. देश को आजाद हुए छः दशक से अधिक हो चुके हैं, परन्तु आज भी समाज का ढांचा सामंतवादी ही दिखाई देता है, फलस्वरूप बहुत से कार्यक्रमों का लाभ आम आदमी तक नहीं पहुँच पाता है। जिसकी चर्चा हमारे एक पूर्व प्रधानमंत्री कर चुके हैं, जिसमें उन्होंने यहाँ तक कहा कि गाँव के लिए भेजे गए एक रुपये में, मात्र १५ पैसे ही उन् तक पहुँच पाता है। इस लिए आवश्यकता इस बात की है कि इस तरह की सुविधाएं देश के आम आदमी तक पहुँचे, इसके लिए सामाजिक अंकेक्षण जैसे उपायों के साथ, इस प्रकार के अन्य उपायों को भी अपनाने पर जोर दिया जाना चाहिए।

४. वोहरा समिति (१९९५) ने अपने प्रतिवेदन में राजनीतिज्ञों, प्रशासकों और माफियाओं के बीच संबंधों को उजागर करके यह स्पष्ट कर दिया कि अधिकतर योजनाएं आम आदमी के नाम से संचालित तो हो रही है परन्तु उनका वास्तविक लाभ लक्षित व्यक्ति और समूह तक नहीं पहुँच पा रहा है।

अभ्यास प्रश्न

1. १५ अगस्त १९४७ को हमारे देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। सत्य / असत्य
2. संसद के निम्न सदन के जनप्रतिनिधि, जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुनकर आते हैं। सत्य / असत्य
3. शक्ति विभाजन के सिद्धांत के आधार संघात्मक शासन की स्थापना की गई है।
4. मूल अधिकारों के उल्लंघन होने पर व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अनुच्छेद ३२ के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद २२६ के तहत उच्च न्यायालय में जा सकता है। सत्य / असत्य
5. संविधान के भाग ४ में नीतिनिदेशक तत्वों का उपबंध किया गया है। सत्य / असत्य

6. पंथनिरपेक्ष शब्द का समावेश नहीं किया गया था | सत्य / असत्य
7. ४२ वें संवैधानिक संशोधन १९७६ के द्वारा समाजवादी ,पंथनिरपेक्ष और अखंडता का समावेश संविधान किया गया | सत्य / असत्य
8. संविधान भाग ३ में मूलाधिकारों का प्रावधान किया गया है | सत्य / असत्य

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमने स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारणों का अध्ययन किया जिसमें संसदीय लोकतंत्र , संघात्मक शासन ,स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन की बदलती प्रकृति (प्रशासन के लक्ष्यों और उद्देश्यों में परिवर्तन) का अध्ययन किया है साथ ही यह भी अध्ययन किया कि किस प्रकार भारतीय संविधान ,समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करता है । और अंततःहमने यह अध्ययन किया कि, किस प्रकार भारतीय प्रशासन ,गतिशील प्रशासन है , विकास प्रशासन है , उत्तरदायी प्रशासन है और राजनीतिक उथल – पुथल से अपने को अलग रखते हुए सामाजिक - आर्थिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समन्वित रूप से कार्य कर रहा है । साथ ही यह भी देखा कि किस प्रकार से प्रशासन में लालफीताशाही के दुर्गुण उभरे हैं ,जिसमें सामाजिक - आर्थिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया को इतना महत्व देते दिखाई देते हैं कि ,लक्ष्य गौण हो जाते है ।

परन्तु बावजूद इसके स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय प्रशासन ने सामाजिक - आर्थिक न्याय की स्थापना के मार्ग पर चलने का अच्छा प्रयास किया है किन्तु बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालकर जन आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है ।

2.6 शब्दावली

संसद – भारत में कानून निर्माण की सर्वोच्च संस्था है ,जो राष्ट्रपति, राज्य सभा और लोक सभा से मिलकर बनती है

संघात्मक शासन – स्थानीय स्वायत्तता के साथ राष्ट्रीय एकता और सुरक्षा को ध्यान में रखकर स्थापित की जाने वाली शासन व्यवस्था है ,जिसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है १. शासन के तीनों अंगों में शक्ति विभाजन २.लिखित निर्मित और कठोर संविधान ३.स्वतन्त्र ,निष्पक्ष सर्वोच्च न्यायालय ।

समाजवादी – भारत के सन्दर्भ में इसका अर्थ यह है कि –राज्य लोगों के बीच आर्थिक असमानताओं को न्यूनतमकरने का प्रयास करेगा ।

पंथनिरपेक्ष- इसका अर्थ है कि राज्य का अपना कोई राजधर्म नहीं होगा ,और वह सभी धर्मों को सामान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

सत्य 2 सत्य.3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य 6. असत्य 7. सत्य 8. सत्य

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया
भारतीय लोक प्रशासन	-	अवस्थी एवं अवस्थी

2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	डी.डी. बसु
भारतीय लोक प्रशासन	-	एस.सी. सिंहल

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय प्रशासन के विशेषताओं की विवेचना कीजिये
2. स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय प्रशासन की प्रकृति में परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट कीजिये

इकाई 3 : भारतीय प्रशासन सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीति आर्थिक संवैधानिक पर्यावरण

इकाई की संरचना

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 भारतीय प्रशासन का पर्यावरण
 - 3.3.1 भारतीय प्रशासन सांस्कृतिक, पर्यावरण
 - 3.3.2 भारतीय प्रशासन सामाजिक, पर्यावरण
 - 3.3.3 भारतीय प्रशासन राजनीति पर्यावरण
 - 3.3.4 भारतीय प्रशासन आर्थिक पर्यावरण
 - 3.3.5 भारतीय प्रशासन संवैधानिक पर्यावरण
- 3.4 सारांश
- 3.5 शब्दावली
- 3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 3.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पर्यावरण दो शब्द परि और आवरण से मिलकर बना है। जिसका शब्दिक अर्थ हैं चारो ओर घिरा हुआ। समाजिक विज्ञान में पर्यावरण का स्वरूप प्राकृतिक विज्ञान के जैविकिय एवं अजैविकिय संघटनों से भिन्न है। यद्यपि लोकप्रशासन में पर्यावरण या परिवेश अथवा परिस्थिति के अध्ययन का विचार वनस्पति विज्ञान से ग्रहण किया गया है। परन्तु तात्विक रूप से दोनों में भिन्नता है।

डा० एम० पी० शर्मा के अनुसार किसी भी सामाजिक व्यवस्था में पर्यावरण का अर्थ होता है संस्थान, इतिहास, विधि, आचार शास्त्र, दर्शन, धर्म, शिक्षा, परम्परा, विश्वास, मूल्य, प्रतीक, पौराणिक गाथाएं आदि जिसमें भौतिक एवं अभौतिक नाचने गाने तथा अन्य प्रकार के मनोरंजन और कलाएं सम्मिलित है।

जबकि जीव विज्ञान में पर्यावरण से तात्पर्य सृष्टि के छोटे बड़े सभी जीवधरियां और प्रकृति के समस्त अजैविक तत्वों का समाहार है। जो जीवित प्राणियों के अस्तत्व जीवन ओर पुनरूत्पादन को प्रभावित करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से हम यह जान सकेंगे कि

1. भारतीय प्रशासन में पर्यावरण का क्या तात्पर्य है।
2. किस प्रकार से भारतीय प्रशासन सांस्कृतिक, पर्यावरण से प्रभावित होता है।
3. किस प्रकार से भारतीय प्रशासन सामाजिक, पर्यावरण से प्रभावित होता है।
4. किस प्रकार से भारतीय प्रशासन, राजनीति पर्यावरण से प्रभावित होता है।
5. किस प्रकार से भारतीय प्रशासन आर्थिक पर्यावरण से प्रभावित होता है।
6. किस प्रकार से भारतीय प्रशासन संवैधानिक पर्यावरण से प्रभावित होता है।

3.3 भारतीय प्रशासन का पर्यावरण

सन् 1961 में एफ. डी. रिक्स की पुस्तक 'द इकोलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक ने इस क्षेत्र में तहलका मचा दिया। इस पुस्तक में लोक प्रशासन तथा पर्यावरण के बीच परस्पर क्रिया को तुलनात्मक ढंग से समझने का प्रयास किया गया था। रिक्स के अतिरिक्त जॉन एम. ग्रास, संवर टफल, रास्कों पार्टिन आदि विद्वानों ने लोक प्रशासन में पर्यावरण के अध्ययन को व्यापक विस्तृत बनाया है। आज जब राज्य का स्वरूप प्रशासनिक हो गया है। किसी भी संस्थान या संगठन के विस्तृत विवेचन हेतु पर्यावरण का अध्ययन एवं विवेचन आवश्यक हो गया है। यह निर्विवाद सत्य है कि लोक प्रशासन कई तत्वों से प्रभावित होता है जैसे सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिवेश। लोक प्रशासन समाज विज्ञान के अन्तर्गत है। इसे समझने के लिए देश में चारों ओर होने वाली घटनाओं का अध्ययन आवश्यक है। अब लोक प्रशासन के विषय के अन्तर्गत यहां भारतीय प्रशासन के संदर्भ पर्यावरण की चर्चा करेंगे।

3.3.1 भारतीय प्रशासन सांस्कृतिक, पर्यावरण

संस्कृति शब्द मूल रूप से संस्कृत भाषा का शब्द है। संस्कृति अंग्रेजी भाषा के कलचर शब्द का रूपान्तरण है। कलचर शब्द लैटिन भाषा के कलचुरा तथा कोलियर शब्द से बना है जिसका अर्थ है उत्पादन और परिष्कार। अतः संस्कृति के अंतर्गत समुदाय के रहन सहन, खानपान, जीवन शैली, बौद्धिक उपलब्धियों एवं जीवन दर्शन आते हैं। जी. ई. ग्लैडन ने अपनी पुस्तक 'डायनामिक ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' में लोक प्रशासन और संस्कृति पर्यावरण के संबंधों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि यदि प्रशासनिक संस्कृति रूपान्तरण के कारण हुई प्रगति से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाती तो सामाजिक असंतोष हिंसा से सामाजिक ढांचा अंततः ध्वस्त हो जायेगा। सामाजिक संस्कृति की अनुकूल क्षमता ही प्रशासन में लोक सामंजस्य और व्यवस्था बनाये रखने में प्रमुख भूमिका निभाती है।

भारतीय संस्कृति के विषय में एक चिर परिचित और प्रिय उक्ति है। 'भारतीय संस्कृति में अनेकता में एकता का समावेश है। भारतीय संस्कृति की धारा का मूल स्रोत वैदिक धर्म है। यही सनातन धर्म के नाम से विख्यात है। यह भी सत्य है कि वैदिक आर्य और उनकी संस्कृति अपनी पूर्ववर्ती सिन्धु संस्कृति से भी प्रभावित रही है। कालान्तर में विकसित हिन्दू संस्कृति में कई अवैदिक तत्वों का समावेश किया गया है। जैसे शिव महादेव की कल्पना। पीपल की पूजा, पशुओं की देव वाहन के रूप में कल्पना आदि। भारतीय संस्कृति की धारा में निरन्तरता प्रवाहता सदैव बनी रही। मध्यकाल में इस्लामिक संस्कृति आगमन व ईसाई संस्कृति इसे अवरूद्ध ना कर सकी। बल्कि इसकी अपनी अमरता ने परिष्कृत ही किया हला मध्यकाल के भक्ति आंदोलन और आधुनिक काल के नवजागरण इसके प्रमाण हैं। भारत अनेक जातियों, धर्मों और भाषाओं का जमघट है। भारत के राजनैतिक

इतिहास में अनेक जातियों के प्रवेश किया है। उनकी न केवल भाषाओं बल्कि धर्म, विश्वास, परम्परा भिन्न रही है। 15 अगस्त, 1947 के बाद में भारत अपनी अखण्डता अक्षुण्ण अवश्य बनाये हुए है, परन्तु एकराष्ट्र राज के रूप में अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। इसकी सांस्कृतिक भिन्नताएं इसमें अवरोध उत्पन्न करती है। प्रशासनिक संदर्भ में तो भिन्नताएं बहुत अधिक पीड़ादायक सिद्ध हुईं।

सहिष्णुता जहां एक नैतिक आदर्श प्रस्तुत करके सामाजिक जीवन को सरल, सुगम दर्शन प्रदान करते हैं वहीं प्रशासनिक दृष्टिकोण से यही चीजें कठिनाईयां प्रस्तुत करती है। प्रशासन मानव जीवन को सुखमय और संघर्षरहित बनाने के लिए होता है। परन्तु महज सांस्कृतिक भिन्नता के कारण भिन्नसमुदायों के लिए भिन्न-2 कार्यक्रमों का निर्माण करना और उनको क्रियान्वित करना थोड़ा कठिन होता है। यद्यपि प्रशासनिक श्रेष्ठता या हीनता का यह एक मात्र कारण नहीं है। यहद संस्कृति में कुछ और गुण विद्वमान हों तो यह दुर्गुण प्राकृतिक गुण में बदल सकता है। भारतीय प्रशासन के माध्यम से जब सामाजिक बुराईयों को दूर करने एवं प्रतिशील व उन्नत कार्यक्रम चलाये जाते हैं तो सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण उसका विरोध किया जाता है। जब कभी कोई सामाजिक लक्ष्य प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है तो भारतीय समाज के विभिन्न वर्ग सिर्फ सांस्कृतिक अंतर्विरोधों के कारण उसका विरोध करते हैं। अतः लोकतांत्रिक पृष्ठभूमि के कारण प्रशासन अवसादग्रस्त हो जाता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्रीय भाषा का निधारण परिवार नियोजन के संबन्ध में कानून, और अनुच्छेद 44 का क्रियान्वयन इसके उदाहरण है।

सांस्कृतिक भिन्नता के कारण भारतीय समाज में सांस्कृतिक वैमनस्य को जन्म देता है। जिसके कारण पुलिस प्रशासन पर अत्यधिक दबाव रहता है। धर्म एवं जातिगत भिन्नता के कारण उनमें आपस में खानपान, वैवाहिक संबन्ध स्थापित नहीं हो पाते। परन्तु जब कभी शिक्षित युवा लड़के लड़कीयां प्रेम संबन्धों या वैवाहिक संबन्धों के कारण एक दूसरे के नजदीक आते हैं। तो जाति धर्म की भिन्नता उनके आड़े आती है। उत्तर भारत के कुछ राज्यों में- हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान, उत्तर प्रदेश बिहार में ऐसे संबन्धों का अभिभावक कड़ा विरोध करते हैं जिनका परिणाम कभी-2 ऑन किलिंग जैसे अपराधों में दृष्टिगत होता है।

भाषाई आधार पर प्रदेशों का निर्माण और प्रान्तों के बीच असहयोगपूर्ण बर्ताव सांस्कृतिक भिन्नता की पृष्ठभूमि पर आधारित है। प्रान्तों का बँटवारा भौगोलिक एवं प्रशासनिक सुविधा पर होना अधिक श्रेष्ठ और शलाघनीय है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था और प्रशासन के लिए एक दुखद सत्य है कि प्रान्तों के नेता चाहे वे सत्ता में हों या विपक्ष में राष्ट्रीय आदर्शों के प्रेरणा नहीं होते। वे मन के अनुकूल अधिक क्षेत्रीय या प्रान्तीय विभाजन चाहते हैं।

भारतीय जीवन धर्म तत्व से अनुप्राणित रहा है। धर्म शब्द स्वजातिक है। और इसका अनुवाद मजहब या रिलिजन नहीं हो सकता। यहां धर्म का अर्थ कर्तव्यों का पालन करना है। समग्र सृष्टि को अच्छी प्रकार से धारण एवं परिपालन करने वाले तत्वों की समष्टि को ही धर्म कहते हैं। अर्थात् वे तत्व जिनके रहने से समाज है। और जिनके न होने पर यह समाज नष्ट हो जाता है। धर्म के अन्तर्गत आते हैं। जैसे धैर्य, क्षमा, उदारता, संतोष, ईमानदारी, पवित्रता, ज्ञान, प्रेम, दया, अहिंसा, ममता, परोपकार, सहयोग तथा अपनी भांति दूसरों की चिन्ता करना आदि। श्रेष्ठ जीवन मूल्यों की श्रेष्ठ जीवन मूल्यों की समष्टि को ही भारतीय शास्त्रों में धर्म कहा गया है। इन तत्वों को धारण करने वाले व्यक्ति आध्यात्मिक शांति को प्राप्त कर समाज को व्यवस्थित एवं गतिमान बनाने में सहयोगी बनते हैं। चूंकि आज सत्ता धर्म के बिना संभव नहीं अतः धर्म के तत्वों की रक्षा में सक्रिय होना समाज के प्रत्येक विचारशील नागरिक का पवित्र कर्तव्य बन जाता है। भारतीय जीवन में धर्म एक अग्रणी तत्व रहा। धर्म एकान्त में रहकर जीवन यापन करने वाले मनुष्यों का प्रेरक नहीं है। धर्म सामाजिक जीवन का सद्गुण है। भारतीय राजनीतिक दर्शन में धर्म और राज्य में विरोधी संबंधों की कोई कल्पना नहीं की गई है। आदर्श राज्य में धर्म आत्मा के सदृश्य राज्य रूपी शरीर में विद्यमान व्यक्ति का राजकीय जीवन धार्मिक जीवन का पर्याय माना गया है। राम, कृष्ण, विदूर, भीष्म, मन, युधिष्ठिर, चाणक्य, गांधी और अनगिनत राजर्षि इसके उदाहरण हैं। भारतीय नागरिकों में कोई हिन्दू हैं और वे लोग अधार्मिक हैं जो किसी पंथ या संप्रदाय से नहीं जुड़े हैं। यह बात उतनी ही असत्य है जितना की यह कहना कि सूर्य पृथ्वी का चक्कर लगाता है। भारतीय समाज यदि पूणता धार्मिक होता तो इसके सामाजिक, राजनीतिक जीवन में इतनी बुराईयां ना होती। अधिकांश भारतीय धार्मिक होने का दावा करते हैं। परन्तु वे आचरण में धर्म की अभिव्यक्ति नहीं करते। आज की भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों का जो हास देखा जा रहा है उसके आधार पर राजनीतिक एवं प्रशासनिक जीवन के आदर्श का प्रतिनिधित्व भारतीय कर पायेंगे इसमें संदेह है। यह सच है कि भारतीय समाज मानव जीवन के विभिन्न कृत्यों को ईश्वरीय छाया से निष्पादित मानते हैं। परन्तु वे व्यवहारिक जीवन में उसे स्वीकार नहीं करते।

धर्म को जीवन और आचरण में पूर्णता उतार लेने के लिए और व्यक्ति के आत्मिक विकास के लिए भारत में विभिन्न दर्शनों, समुदायों का विकास हुआ है। भारत के ऐसे अनेक संप्रदाय हैं जिनमें अद्वैत, वैष्णो, शाक्त, जैन बौद्ध, सिख आदि प्रमुख हैं। इन विभिन्न संप्रदायों की उपासना पद्धतियों में भले ही भिन्नता हो परन्तु लक्ष्य सभी का परम् सत्य ओर धर्म ही है। अर्थात् धर्म साध्य है जबकि संप्रदाय साधन। भारतीय समाज सहिष्णुता के कारण अनेक उपसंप्रदायों को भी जन्म देता है बौद्धों में महायान, हीन यान, जैन में श्वेताम्बर, दिगाम्बर आदि हैं। यद्यपि ये भिन्नताएं प्रशासनिक दृष्टिकाण से बहुत महत्व नहीं रखती। राजनीतिक और संप्रदायिक षडयंत्रों के कारण देश का वातावरण बहुधा विषाक्त हो जाया करता है।

हिन्दू समाज की सहिष्णुता अनुपम है। भारतीय संस्कृति किसी दूसरे धर्म में हस्तक्षेप नहीं करती है। हमारे इतिहास में ऐसे विभिन्न उदाहरण देखने को मिलते हैं। जिनमें हमारे मनुष्यों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सत्य को प्राप्त करने के अनेक मार्ग हैं।

हमारे पूर्वजों का दृष्टिकोण सदैव अन्तर्राष्ट्रीय ही रहा है। मानव एक ही ईश्वर संतान है। यह संकल्पना सदैव उपस्थित रही है। वसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श आज से चार हजार वर्षों पूर्व भारतीय संस्कृति का नारा था। हिन्दू संस्कृति ने अनेक संस्कृतियों को पीकर अपनी ताकत बढ़ाई

है। यहां तक की इस्लाम जो अपने व्यक्तित्व को स्वतंत्र रखने का मनसूबा लेकर चला था वह भी भारत में आकर बहुत कुछ परिवर्तित हो गया है। बाज भारतीय मुसलमान सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीय है।

3.3.2 भारतीय प्रशासन सामाजिक, पर्यावरण

एफ. डब्लू. रिक्स ने अपनी पुस्तक इकॉलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन में कहा है कि इसी समुदाय का सामाजिक परिवेश उसके संस्थानों, संस्थागत नमूनों, जात संबंधों, परम्पराओं, धर्म मूल्यों की व्यवस्था, विश्वास आदि पर आधारित होता है। ये समस्त तत्व प्रशासन पर बड़ा गहरा प्रभाव डालते हैं। लोक प्रशासन में मानवीय तत्व विशेष तत्व का प्रभाव होता है। इसलिए लोक प्रशासन का मानवीय तत्व समाज विशेष का ऊपज होता है। विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाएं और संस्थाएं लोक कर्मचारियों के चरित्र की रचना करती हैं। भारत में आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक आदि आधारों पर अनेक वर्ग बन जाते हैं। समाज के इन वर्गों को पहचानना तथा उनमें जो वर्ग यह पिछड़ी जाति कमजोर है उसे विशेष सुविधा देकर ऊपर उठाना प्रशासन का महत्वपूर्ण दायित्व बन जाता है। प्रशासन को केवल कानूनी न्याय के आदर पर नहीं चलाया जा सकता। बल्कि प्रशासन के संचालन के लिए आज सामाजिक न्याय अधिक आवश्यक बन गया है। इसके साथ सामाजिक संस्थाओं का लोक प्रशासन की नौकर शाही से घनिष्ठ संबंध रहता है। सामाजिक संस्थाओं का प्रशासन पर निरन्तर दबाव रहता है। इस सामाजिक दबाव के कारण लोक प्रशासन सतर्क एवं उत्तरदायी बना रहता है। दूसरी ओर सामाजिक जागरूकता भी प्रशासनिक व्यवहार को जनोपयोगी बनाने में सहायता करती है। इससे स्पष्ट है कि प्रशासन को सामाजिक पर्यावरण के अनुसार संचालित होना पड़ता है। समाज प्रशासन के अनुसार कभी कभी ही क्रियाशील होता है। भारतीय समाज की विशेषता है कि वह बहुलवादी समाज है। जिसमें विविध संप्रदायों के अनुयायी भाषाभाषी एवं जाति धर्म वाले लोग रहते हैं। भारत में हिन्दू मुस्लिम सिख जैन बौद्ध, परसी आदि धर्माबलम्बी रहते हैं। भाषाओं की संख्या तो अनगिनत है। फिर भी संविधान की आठवीं सूची में 22 भाषाओं को रख गया है। भारत में 74% हिन्दू, 22% मुस्लिम, 2.5% ईसाई और 2% सिख हैं। बहुसंख्यक हिन्दू के

सामाजिक जीवन का आधार नूरातन काल से स्थापित वर्णाश्रम व्यवस्था है। यद्यपि वर्ण व्यवस्था अपनी पूर्व अवस्था में नहीं रह गई परन्तु अभी भी अघोषित रूप में समाजिक जीवन को इसी सिद्धान्त पर चिह्नित किया जाता है। वर्ण व्यवस्था का सूत्रपात श्रम और व्यवसायिक वर्गों के विभाजन से हुआ था। जो कालान्तर में जन्म पर आधारित बन गया। वर्ण व्यवस्था का सबसे हानिकारक पक्ष है। पीछड़ी जातियों के प्रति अस्पृश्यता का व्यवहार। उच्च वर्ग में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ग की स्थिति सम्मानित और गौरवशाली हुआ करती थी। परन्तु सुद्र वर्ग समाज में विपन्न और शोषित वर्ग हुआ करता था। स्वतंत्रता के पश्चात् वर्ण व्यवस्था को अवैध एवं गैरकानूनी घोषित किया गया और योग्यता के आधार पर व्यवसायों के चयन को प्रमाणित माना गया। परन्तु भारत के कुछ राज्यों में भूमि पर उच्च वर्गों का एकाधिकार अभी भी स्थापित है। बिहार, पंजाब, राजस्थान, जैसे राज्यों में भूआबंटन लागू ही नहीं हो पाया और कुछ राज्यों में लगभग ही क्रियान्वित हो सका। उदाहरणार्थ उत्तर प्रदेश में ठाकुर, राजपूत, जाट गुर्जर भूमि पर अधिकार रखते हैं। बिहार में भूमिहार, ब्राह्मण, कायस्थ, कोयरी और राजस्थान में जाट और ब्राह्मण जबकि आंध्र प्रदेश में रेड्डी, कम्मा और बेलगा भूमि पर अधिपत्य कायम किये हुए हैं।

भारत की राजनीति संरचना और प्रक्रियायें लोकतांत्रिक प्रक्रिया को प्रभावित करता है। पंचायती राज के तीनों स्तरों पर जो अलोकतांत्रिक एवं सामंती मानसिकता का उद्घाटन होता है। इस समाज की अलोकतांत्रिक मानसिकता परिलक्षित होती है। भारतीय राजनीतिक जीवन की सच्चाई है। भारतीय राजनीति अपराधियों, कानून भंजकों और बेईमान लोगों का व्यापार बन गया। यहां पर भारतीय समाज के कुछ विशेष मुद्दों पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

जाति -

भारतीय समाज की संचार का आधार जाति और उपजातियां हैं। भारतीय प्रशासन सदियों पुरानी समाजिक विषमता को ठीक करने में व्यस्त है। अनुसूचित जनजातियों, अनुसूचित जातियों और पीछड़ी जातियों के लिए शिक्षा एवं सेवाओं में आरक्षण का प्रावधान भारतीय समाज की एकरूपता एवं संरसता प्रदान करने का विवादित प्रयास है। आरक्षण की व्यवस्था आर्थिक पीछड़ेपन पर आधारित न होकर जाति पर आधारित है। दूसरे मूल संविधान में इसे दस वर्षों तक जारी रखने का प्रावधान था परन्तु संसद द्वारा इसे समय समय पर बढ़ाया जाता रहा। अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षण बहुत हद तक उचित है। परन्तु पीछड़ी जातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान राजनीतिक स्वार्थों से प्रेरित है। राजनीतिक दल वोट बैंक के लिए पीछड़ी जातियों के आरक्षण का समर्थन करते हैं।

प्रशासनिक स्तर पर जाति भावना एक गंभीर समस्या है। समजात वर्ग के अधिकारी एवं कर्मचारी एक दूसरे के लिए अवैध और अनुचित कार्यों को करने के लिए तैयार रहते हैं। परन्तु विजातीय लोगों के लिए उचित एवं वैध कार्यों के लिए टालमटोल करते हैं। जिस प्रकार से राजनीतिक स्तर पर जातियों को संगठित कर एक संगठित बोट बैंक के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है लगभग उसी प्रकार राजनेताओं द्वारा प्रशासनिक अधिकारियों का इस्तेमाल अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए किया जाता है। राज्यों के विधानसभा के उपचुनाव में इस जाति भावना का प्रशासन खुल कर प्रयोग होता है। आम जनमानस में प्रायः देखा और सुना जाता है कि समान जाति है तो एसमें अजीब आशा और विश्वास का संचार होता है। परन्तु जब वह विजातीय अधिकारी या कर्मचारी के पास जाते हैं तो उनमें भय और शंका का समावेश होता है।

भारतीय समाज का निम्न नैतिक स्तर:-

राष्ट्रीय आन्दोलन के काल में भारत के नेताओं ने नैतिक मूल्यों एवं आदर्श मानवीय गुणों का जो उद्घाटन किया था विश्व स्तर पर भारत के ब्रिटिश आधिपत्य को असंगत प्रमाणित किया था। विश्व के अनेक विद्वानों ने कहा- भारत को सभ्य बनाने का अधिकार ब्रिटेन को नहीं है। भारतीय पुर्नजागरण और स्वतंत्रता के काल तक भारत के नैतिक मूल्यों, आदर्शों के कारण भारत एक आध्यात्मिक गुरु के रूप में उभर रहा था। परन्तु पीछले साठ वर्षों से भारतीय समाज का नैतिक पतन बड़ी तीव्र गति से हो रहा था। भारतीय समाज ने मानवीय बुराईयों को फैशन बना लिया है। और समानय जनता इन वर्गों की बुराईयों को अनुयायी बनकर अपनाती जा रही है। उच्च वर्ग में भ्रष्टाचार, बेईमानी कत्तव्यहीनता, मिथ्या दंभ, बड़े होने और सभ्य होने के प्रमाण माने जाते हैं। अर्थ का लाभ भारतीय समाज को उसके आदर्शों से पदच्युत कर रहा है। राजनेता जितना बड़ा आर्थिक घोटाला करते हैं उतना ही उनके राजनैतिक कद का प्रमाण माना जाता है। समाज में नैतिक मूल्यों का पतन इतनी गहराई तक पहुँच गया है कि लोग सामाजिक, प्रशासनिक बुराईयों को मौन स्वीकृति प्रदान कर देते हैं।

भारतीय प्रशासन, भारतीय समाज के नैतिक पतन का प्रतिबिम्ब भारत के नब्बे प्रतिशत अधिकारी और कर्मचारी भ्रष्ट और चरित्रहीन होते हैं। यह सच है कि उन्हें भ्रष्ट होने और रिश्वतखोर होने के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद सभी नीतियों का इस्तेमाल प्रशासनिक वर्ग और राजनीतिक वर्ग द्वारा ही किया जाता है। भ्रष्टाचारमुक्त भारत सदगुणी व्यक्तियों के लिए अभी भी एक सपना है। प्रशासन के सभी विभागों में रिश्वतखोर, दलालों का जमघट होता है। पुलिस प्रशासन, स्वास्थ्य, शिक्षा, और राजस्व विभाग का निर्माण जैसे लोक कल्याण के लिए नहीं बल्कि जनता के उत्पीड़न के लिए हुआ है।

3.3.4 भारतीय प्रशासन आर्थिक पर्यावरण

अर्थ वह भौतिक तत्व जिस पर व्यक्ति के जीवन की गति निर्धारित होती है। राज्य की आर्थिक दशा और अर्थ के वितरण की व्यवस्था उसके सामाजिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक ढांचे का स्वरूप तय करता है। प्रशासन के स्वरूप के संबंध में कुछ समय पहले राजनीतिक परिस्थितियों को ही अधिक महत्व दिया जाता था। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से आर्थिक विकास के अनुसार ही प्रशासन की सफलता एवं असफलता के अध्ययन को भी सम्मिलित किया जाने लगा है।

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की आर्थिक स्थिति का वहां के लोकप्रशासन के स्वरूप संगठन और कार्यों पर प्रभाव पड़ता है। प्रायः सभी विकासशील देशों में द्रुत आर्थिक विकास एवं आधुनिकीकरण के लिए प्रशासनिक सुधारों को अनिवार्य समझा जाता है। आज आर्थिक विकास के लिए प्रशासनिक विकास की भी आवश्यकता है। प्रशासन को आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला जाता है और इसके लिए समय समय पर प्रशासनिक सुधार किये जाते हैं। किसी भी देश की योजना को लागू करने का दायित्व प्रशासन का होता है। अतः देश की प्रशासनिक प्रणाली वहां के आर्थिक जीवन को नियमित करती है। आज की प्रशासनिक व्यवस्था सिर्फ कानून और व्यवस्था के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि प्रशासन व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पहलु को अधिकाधिक खुशहाल बनाने के लिए लोक कल्याणकारी बन गया है।

भारतीय अर्थ व्यवस्था अपनी विशाल जनसंख्या के भार से दबी हुई है। आर्थिक प्रगति के बावजूद गरीबी, भुखमरी, कुपोषित जीवन जीने वालों की संख्या में वृद्धि हुई है। भारतीय राजनीतिक नेतृत्व व प्रशासन दोनों के लिए भारतीय समाज का समावेशी विकास एक दुसाध्य लक्ष्य बना हुआ है। लोकप्रशासन अनेक प्रकार से देश के जीवन को नियंत्रित करता है। जैसे एक बाजार व्यवस्था तभी सूचारू रूप से कार्य कर सकती है जब उसके ऊपर विभिन्न प्रकार की नियंत्रण लगाये जायें तथा प्रशासन द्वारा अनेक सुविधायें उपलब्ध करायी जाये। प्रशासन ही वह यंत्र है जो अल्प आर्थिक संसाधनों को अपने कौशल से अधिक उपयोगी और कल्याणकारी बना सकता है। और यदि प्रशासन तंत्र भ्रष्ट और लुटेरा हो तो विश्व के समस्त संसाधनों से दरिद्रता नहीं दूर की जा सकती। प्रशासन में भ्रष्टाचार का मूल आधार आर्थिक है। यदि हम प्रशासन को पवित्र और भ्रष्टाचाररहित बनाना चाहते हैं तो आर्थिक विषमताओं को दूर करना आवश्यक है। इसी प्रकार अकुशल प्रशासन निम्न आर्थिक स्तर का एक दुष्चक्र होता है। जब किसी राज्य की आर्थिक स्थिति खराब होती है तो वहां योग्य तथा कुशल कर्मचारी उपलब्ध नहीं हो पाते। फिर भी मैं कहूंगा कि भारतीय प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार न तो आर्थिक असमान्यता व दरिद्रता का परिणाम है और ना ही भारत की विकास योजनाओं की बल्कि यह नैतिक और चारित्रिक समस्या है।

स्वाधीनता के बाद देश का औद्योगिकीकरण एक पूंजीवादी मिश्रित अर्थव्यवस्था के आधार पर करने का प्रयत्न किया गया पूंजीवादी औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया ने कई तरह की बुराईयां उत्पन्न कर दी। उनसे अर्थ व्यवस्था की पुराने ढांचे को समाप्त कर दिया गया। किन्तु किसी नये ढांचे का निर्माण नहीं किया गया। पूंजी अपने निवेश के लिए उन्ही क्षेत्रों को चुनती है जो उसे प्रारंभिक सुविधायें प्रदान करते हैं। चूंकि ये सुविधायें पहले से मौजूद शहरी क्षेत्रों में प्राप्त होती हैं। अतः नये उद्यम और व्यवसायिक प्रतिष्ठान समान्यतः शहरों तथा शहरों के उपनगरीय क्षेत्रों में शुरू किये जाते हैं। इससे अनेक समस्यायें उत्पन्न हुईं जैसे आर्थिक विषमता असन्तुलित आर्थिक विकास आदि।

स्वाधीनता के बाद भारत ने विकसित देशों से उधार ली गई अत्यधिक पूंजी प्रदान टेकनॉलॉजी को अपनाया। भारी उद्योगों के निर्माण के लिए विदेशी सहायता लेनी पड़ी और देश की अर्थ व्यवस्था विदेशी निगमों के शिकंजे में फँसने लगी। आज देश की अर्थ व्यवस्था पर बड़े औद्योगिक घरानों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रभाव सर्वत्र दिखाई देता है। राजनीतिज्ञ, प्रशासक, सलाहाकार संस्थानएं, सामान्य जन की कल्याण उपेक्षा करके पूंजीपतियों के हितों को पैरवी करने नजर आते हैं। भारतीय अर्थ व्यवस्था के आर्थिक पर्यावरण को निम्न विशेषताओं के संदर्भ में समझा जा सकता है:-

कृषि की प्रधानता:-

भारतीय अर्थ व्यवस्था की प्रमुख विशेषता कृषि व्यवसाय की प्रधानता है। यहां की कुल कार्यशील जनसंख्या का 56% कृषि व्यवसाय में तथा 32% उद्योग व सेवाओं में लग हुआ है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था:-

भारतीय अर्थव्यवस्था ग्रामीण है। यहां लगभग 72.2% जनसंख्या गावों में निवास करती है। यह प्रतिशत अन्य देशों की तुलना में बहुत ज्यादा है। उदाहरण के लिए अमेरिका में 24% जापान में 22% व आस्ट्रेलिया में 15% जनसंख्या गावों में निवास करती है।

प्रतिव्यक्ति निम्न आय:-

भारतीय अर्थव्यवस्था की एक विशेषता यह है कि यहां प्रतिव्यक्ति आय बहुत निम्न है। इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो भारत की प्रति व्यक्ति आय जहां 460 डालर है वही विश्व की औसत प्रति व्यक्ति आय 5159 डालर है। भारत में प्रति व्यक्ति आय कम होने से गरीबी व्याप्त है। लेकिन यह गरीबी आँकड़ों से भी और अधिक है। क्योंकि एक अनुमान के अनुसार 20% जनसंख्या

को केवल एक ही समय भोजन मिल पाता है। वह 37.4% जनसंख्या को कम पौष्टिक भोजन मिलता है और वे कुपोषित जीवन जीते हैं।

व्यापक बेरोजगारी:-

भारत में व्यापक बेरोजगारी है और यह निरंतर बढ़ रही है। वर्तमान में 8 करोड़ व्यक्ति बेरोजगार हैं। इनमें से अधिकांश पाकेटमारी, चोरी, डकैती करते हैं। परन्तु सफेदपोश अपराधियों और सभ्य डाकूओं की अपेक्षा ये बेरोजगार चोर, पाकेटमारी, समाज का नुकसान कम ही करते हैं।

परम्परावादी समाज:-

भारतीय अर्थ व्यवस्था का एक लक्षण यह है कि यहां का समाज रूढ़िवादी, भागवादी और ढोंगी है। यही कारण है कि यहां बहुत सी कुरीतियां हैं जैसे मृत्युभोज व अनेक सामाजिक परम्पराएं हैं, जिनमें काफी धन व्यय कर दिया जाता है। ऐसी परम्पराओं और रीति रिवाजों के कारण यहां का समाज सुखी जीवन व्यतित नहीं कर पाता और अपने परिवार का जीवन स्तर नहीं उठा पाता।

भारत के आर्थिक परिवेश में प्रशासन के समक्ष अनेक चुनौतियां उपस्थित हो जाती हैं। पंचायती शासन के माध्यम से विकास योजनाओं का क्रियान्वयन आर्थिक संसाधनों के बंदरबांट का ज्वलंत उदाहरण है। प्रशासन को भारत की आर्थिक, सामाजिक समस्याओं का समाधान ढूंढना और एक स्वस्थ समाज का निर्माण करना है।

3.3.5 भारतीय प्रशासन संवैधानिक पर्यावरण

किसी भी देश का प्रशासन संवैधानिक व्यवस्था के अनुरूप ही होता है। जहां संविधान का शासन है वहां प्रशासन का स्रोत भी संविधान ही होता है। भारतीय प्रशासनिक संस्थाओं और उसकी कार्य प्रणाली का विस्तृत विवरण संविधान के अनुच्छेदों में बिखरा पड़ा है। इन संस्थाओं में निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग, वित्त आयोग आदि संवैधानिक संस्थाएं हैं। भारतीय संविधान की कुछ विशिष्ट विशेषताएं प्रशासन की प्रकृति व उसकी रूपरेखा, कार्यप्रणाली आदि का निर्धारण करती हैं। जैसे संसदीय शासन व्यवस्था प्रशासन में अनुचित राजनीतिक हस्तक्षेप की भूमिका तय करता है। दूसरी ओर मंत्रियों की अनभिज्ञता उन्हें प्रशासनिक कार्यों के प्रति उदासीन बनाती है और नौकरशाही का प्रभुत्व प्रशासन पर स्थापित हो जाता है। संविधान का लिखित होना प्रशासन के उद्देश्य एवं दिशा का निर्धारण करता है। नागरिकों के मौलिक अधिकार एवं राज्यों के नीति निर्देशक तत्व इस संबंध में द्रष्टव्य हैं। संघात्मक शासन के कारण प्रशासन के दो स्तर केन्द्रीय एवं प्रांतीय होते हैं। इस परिस्थिति में दोनों स्तरों में पर्याप्त सहयोग एवं सामंजस्य की आवश्यकता होती है। कभी-कभी सुरक्षा संबंधी मामलों में केन्द्रीय एवं प्रांतीय प्रशासनिक संस्थाओं में अंतर्विरोध देखा जाता है। उदाहरणार्थ

बिहार, बंगाल, उड़ीसा मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड में नकसली समस्याओं के संबंध में केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सुरक्षा एजेन्सीयों में सहयोग का अभाव दिखाता है।

संविधान में प्रशासकों के चयन प्रक्रिया को योग्यता पर आधारित ओर निष्पक्ष बनाने के लिए संघलोक सेवा आयोग, राज्य लोक सेवा आयोग जैसी संस्थाओं का प्रावधान किया गया है। स्वतंत्र न्याय पालिका के द्वारा लोक सेवकों के पदच्युति को भी न्यायिक प्रक्रिया का विषय बना दिया गया है। जिससे लोक सेवक बिना किसी भय के निष्पक्ष होकर कार्य कर सके। प्रशासनिक अधिकारियों एवं कर्मचारियों के अवैध कार्यों के विरुद्ध मुकद्दमा चलाने का अधिकार पिड़ितों को दिया गया है।

निःसंदेह भारतीय संविधान में जनता के कल्याण और मानव सम्मान व अन्य प्रतिष्ठा को ध्यान में रखा गया है। परन्तु अभी तक उस गिने चुने लोगों तक यह सीमित है। गरीबों और कमजोर लोगों के लिए 'अधिकार' 'न्याय' 'कानून' केवल शब्द मात्र है। स्वतंत्र न्यायिक व्यवस्था जनहित के मुकद्दमें जनसूचना का अधिकार की उपलब्धता का अधिकार न्याय एक दुर्लभ बस्तु बन गया है। उत्कृष्ट संविधान कानून और संस्थाओं के होते हुए भी समाज के उन्नति नहीं हो पा रही है। स्वतंत्रता के समय भारत की जनता समझती थी कि आजादी मिलने पर भारत एक नये युग में प्रवेश करेगा। परन्तु 60-64 वर्षों के उपरान्त औद्योगिक, तकनीकी आर्थिक प्रगति के बावजूद भारत की सामाजिक प्रगति और सामान्य जनता की स्थिति के संबंध में संशय है। जो देश अपने 60% जनसंख्या के लिए रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था ना कर सकी उसके लिए आर्थिक प्रगति, औद्योगिक उन्नति जैसे शब्द बेईमानी लगती है।

अभ्यास प्रश्न

1. पर्यावरण किन दो शब्दों से मिलकर बना है।
2. 'द इकोलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन के लेखक कौन है।
3. 'डायनामिक ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन'के लेखक कौन हैं।
4. भारत की लगभग जनसंख्या गावों में निवास करती है।

3.4 सारांश

उपरोक्त अध्ययन से आप समझ सके होंगे कि किस प्रकार देश का प्रशासन देश के संवैधानिक पर्यावरण की सीमाओं में रहकर ही कार्य करता है। भारतीय प्रशासन और संवैधानिक पर्यावरण को समझने के लिए भारतीय संविधान की विशेषताएं निर्मित, लिखित, लोकप्रिय संप्रभुता, लोक

कल्याण कार्य समाजवादी, धर्म निरपेक्ष राज्य, संसदीय व्यवस्था, स्वतंत्र न्याय पालिका, मूल अधिकारों की व्यवस्था, आदि को समझना आवश्यक है।

साथ ही अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ होगा कि देश विशेष की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, संवैधानिक, और सांस्कृतिक परिस्थितियां प्रशासन को न केवल प्रभावित करती हैं अपितु कार्यप्रणाली एवं ढांचे को नया रूप प्रदान करती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रशासन और पर्यावरण में घनिष्ठ संबंध है।

3.5 शब्दावली

पर्यावरण - पर्यावरण दो शब्द परि और आवरण से मिलकर बना है। जिसका शब्दिक अर्थ है चारों ओर घिरा हुआ। समाजिक विज्ञान में पर्यावरण का स्वरूप प्राकृतिक विज्ञान के जैविकीय एवं अजैविकीय संघटनों से भिन्न है। यद्यपि लोकप्रशासन में पर्यावरण या परिवेश अथवा परिस्थिति के अध्ययन का विचार वनस्पति विज्ञान से ग्रहण किया गया है। परन्तु तात्त्विक रूप से दोनों में भिन्नता है।

संस्कृति -संस्कृति के अंतर्गत समुदाय के रहन सहन, खानपान, जीवन शैली, बौद्धिक उपलब्धियों एवं जीवन दर्शन आते है।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. परि और आवरण. 2. एफ. डी. रिक्स 3. जी. ई. ग्लैडन 4. 72.2%

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया
भारतीय लोक प्रशासन	-	अवस्थी एवं अवस्थी

3.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	डी.डी. बसु
भारतीय लोक प्रशासन	-	एस.सी. सिंहल

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय प्रशासन के पर्यावरण पर निबंध लिखिए।
2. स्वतन्त्रता के बाद भारतीय प्रशासन के पर्यावरण में किस प्रकार का परिवर्तन आया है। स्पष्ट कीजिए।

इकाई 4 : भारतीय संविधान की विशेषताएं

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 प्रस्तावना
- 4.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं
- 4.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध
- 4.6 लोक कल्याणकारी राज्य
- 4.7 सारांश
- 4.8 शब्दावली
- 4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना -

इकाई एक में हमने भारतीय संविधान के निर्माण में विदेशी संविधान के प्रभावों का अध्ययन किया साथ ही भारतीय संविधान के महत्वपूर्ण पक्षों का भी अध्ययन किया है।

इस इकाई में भारतीय संविधान की विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा। जिससे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को समझने में और सुविधा हो सके। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि भारतीय संविधान में विश्व के संविधानों के उन्हीं पक्षों को शामिल किया गया है जो हमारे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। चाहे वह संसदीय शासन हो चाहे संघात्मक शासन हो या एकात्मक शासन हो। ब्रिटेन के संसदीय शासन को अपनाया गया किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि

1. भारतीय संविधान इतना विस्तृत क्यों हुआ?
2. भारतीय संविधान में संसदीय तत्व क्यों अपनाये गये
3. भारतीय संविधान में संघात्मक उपबलध क्यों किये गये
4. आप जान सकेंगे कि संसदीय शासन के बाद भी संविधान की सर्वोच्चता है

4.3 संविधान की प्रस्तावना

प्रत्येक देश का संविधान उसके देश-काल की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जाता है। चूंकि प्रत्येक देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं इसलिए संविधान निर्माण के समय उन सभी पक्षों को शामिल किया जाता है। इस भिन्नता के कारण यह संभव है कि किसी देश में कोई व्यवस्था सफल हो तो वह अन्य देश में उसी स्वरूप में न सफल हो या उसे उसी रूप में लागू न किया जा सके। यदि हम देखें तो हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय विश्व के प्रचलित संविधानों का अध्ययन किया, और उन संविधानों के महत्वपूर्ण प्रावधानों को अपने देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर अपनाने पर जोर दिया है। जैसे-हमारे देश में ब्रिटेन के संसदीय शासन का अनुसरण किया गया है किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है बल्कि संसदीय के साथ संज्ञात्मक शासन को अपनाया गया है। यहाँ यह स्पष्ट करना नितान्त आवश्यक है कि संसदीय के साथ एकात्मक शासन न अपनाकर संघात्मक शासन क्यों अपनाया गया है। चूंकि हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बहुलता पाई जाती है। इसलिए इनकी पहचान को बनाए रखने के लिए

संघात्मक शासन की स्थापना को महत्व प्रदान किया गया परन्तु संघात्मक शासन में पृथक पहचान, पृथकतावाद को बढ़ावा न दे, इसके लिए एकात्मक शासन के लक्षणों का भी समावेश किया गया है, जिससे राष्ट्रीय एकता को खतरा न उत्पन्न हो क्योंकि आजादी के समय हमारा देश विभाजन के दुःखद अनुभव को झेल चुका था।

यहाँ हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि अन्य देशों के संविधान की भांति हमारे देश के संविधान का प्रारम्भ भी प्रस्तावना से हुआ है। प्रस्तावना को प्रारम्भ में इसलिए रखा गया है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इस संविधान के निर्माण का उद्देश्य क्या था? साथ ही वैधानिक रूप से संविधान के किसी भाग की वैधानिक व्याख्या को लेकर यदि स्पष्टता नहीं है तो, प्रस्तावना मार्गदर्शक का कार्य करती है। संविधान की प्रस्तावना के महत्व को देखते हुए सर्वप्रथम प्रस्तावना का अध्ययन करना आवश्यक है:-

" हम भारत के लोग ,भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसंपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए ,तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक ,आर्थिक और राजनीतिक न्याय,

विचार,अभिव्यक्ति ,विश्वास ,धर्म और उपासना की स्वतंत्रता ,

प्रतिष्ठा और अवसर की समता ,

प्राप्त कराने के लिए ,तथा उन सब में

व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की

एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता

बढ़ाने के लिए

दृढसंकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख २६-११-१९४९ ई.(मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी ,संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत,अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।”

यहाँ हय स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में 'समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखण्डता' शब्द नहीं था। इसका भारतीय संविधान में समावेश 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है।

अब हम प्रस्तावना में प्रयोग में लाये गये महत्वपूर्ण शब्दों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे-

1. हम भारत के लोग- इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय संविधान का निर्माण किसी विदेशी सत्ता के द्वारा नहीं किया गया है। बस भारतीयों ने किया है। प्रभुत्व शक्ति की स्रोत स्वयं जनता है और अन्तिम सत्ता का निवास जनता में है।
2. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न- इसका तात्पर्य परम सत्ता या सर्वोच्च सत्ता से है, जो निश्चित भू-क्षेत्र अर्थात् भारत पर लागू होती है। वह परम सत्ता किसी राजे-महाराजे या विदेशी के पास न होकर स्वयं भारतीय जनता के पास है और भारतीय शासन अपने आंतरिक प्रशासन के संचालन और परराष्ट्र संबंधों के संचालन में पूरी स्वतंत्रता का उपयोग करेगा। यद्यपि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य है, परन्तु इससे उसके सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. पंथ निरपेक्ष:- यह शब्द मूल संविधान में नहीं था, वरन् इसका समावेश संविधान में 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इसका तात्पर्य है कि- राज्य किसी धर्म विशेष को 'राजधर्म' के रूप में संरक्षण नहीं प्रदान करेगा, वरन् वह सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करेगा और उन्हें समान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा।
4. गणराज्य- इसका तात्पर्य है कि भारतीय संघ का प्रधान, कोई वंशानुगत राजा या सम्राट न होकर के निर्वाचित राष्ट्रपति होगा। ब्रिटेन ने वंशानुगत राजा होता है जबकि अमेरिका में निर्वाचित राष्ट्रपति है इसलिए भारत अमेरिका के समान गणराज्य है।
5. न्याय- हमारा संविधान नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की गारण्टी देता है। न्याय का तात्पर्य है कि राज्य का उद्देश्य सर्वजन का कल्याण और सशक्तिकरण है न कि विशेष लोगों का। सामाजिक न्याय का तात्पर्य है कि अब तक हासिये पर रहे वंचित समुदायों को भी समाज की मुख्यधारा में लाने वाले प्रावधान किये जायें तथा उनका क्रियान्वयन भी सुनिश्चित किया जाए। आर्थिक न्याय का तात्पर्य है कि प्रत्येक नागरिक को अपनी न्यूनतम आवश्यकता को वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने का अवसर प्रदान किये जाएं। राजनीतिक न्याय का तात्पर्य है कि: प्रत्येक नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान का भेदभाव किये बिना उसे अपना प्रतिनिधि चुनने और स्वयं को प्रतिनिधि चुने जाने का अधिकार होना चाहिए।
6. एकता और अखण्डता - मूल संविधान में एकता शब्द ही था। परवें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा अखण्डता शब्द का समावेश किया गया। जिसका तात्पर्य यह है कि धर्म, भाषा, क्षेत्र, प्रान्त, जाति आदि की विभिन्नता के साथ एकता के आदर्श को अपनाया गया है। इसके साथ अखण्डता शब्द को जोड़कर 'अखण्ड एकता' को साकार करने का प्रयास किया गया है। इसके समर्थन में भारतीय संविधान में 16 वॉ संवैधानिक संशोधन भी किया गया है।

4.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

भारतीय संविधान की विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

1. लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान - संविधान के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है, प्रभुसत्ता अर्थात् सर्वोच्च सत्ता का स्रोत जनता है। प्रभुसत्ता का निवास जनता में है। इसको संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया है कि 'हम भारत के लोग ।'

2. विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान हमारा संविधान विश्व में सबसे बड़ा संविधान है। जिसमें 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ हैं। जबकि अमेरिका के संविधान में 7 अनुच्छेद, कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद हैं। भारतीय संविधान के इतना विस्तृत होने के कई कारण हैं जो निम्नलिखित हैं:-

अ. हमारे संविधान में संघ के प्रावधानों के साथ - साथ राज्य के शासन से सम्बन्धित प्रावधानों को भी शामिल किया है। राज्यों का कोई पृथक संविधान नहीं है (जम्मू कश्मीर को छोड़कर)। जबकि अमेरिका में संघ और राज्य का पृथक संविधान है।

ब. जातीय, सांस्कृतिक, भौगोलिक सामाजिक विविधता भी संविधान के विशाल आकार का कारण बना। क्योंकि इसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों, आगन्तुभारतीय, अल्पसंख्यक आदि के लिए पृथक रूप से प्रावधान किये गये हैं।

स. नागरिकों मूल अधिकारों का विस्तृत उल्लेख करने के साथ ही साथ नीतिनिदेशक तत्वों और बाद में मूलकर्तव्यों का समावेश किया जाना भी संविधान के विस्तृत होने का आधार प्रदान किया है।

ड. नवजात लोकतन्त्र के सुचारू रूप से संचालन के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रशासनिक एजेंसियों से सम्बन्धित प्रावधान भी किये गये हैं। जैसे निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग वित्त आयोग, भाषा आयोग, नियन्त्रक, महालेखा परीक्षक महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग आदि। संघात्मक शासन का प्रावधान करने के कारण केन्द्र राज्य संबन्धों का विस्तृत उपबन्ध संविधान में किया गया है।

3. सम्पूर्ण प्रमुख सम्पन्न लोकतान्त्रात्मक गणराज्य - जैसा कि हम ऊपर प्रस्तावना में स्पष्ट कर चुके हैं कि अन्तिम सत्ता जनता में निहित है। भारत अब किसी के अधीन नहीं है। वह अपने आन्तरिक और बाह्य मामले पूरी तरह से स्वतन्त्र है। संघ का प्रधान कोई वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित राष्ट्रपति है न कि ब्रिटेन की तरह सम्राट।

4. पंथ निरपेक्ष - भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। यद्यपि इस शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है, किन्तु इससे सम्बन्धित प्रावधान संविधान के विभिन्न भागों में पहले से विद्यमान है जैसे मूल अधिकार में और इसी प्रकार कुछ अन्य भागों में भी। पंथनिरपेक्षता का तात्पर्य है कि राज्य का अपना को राजधर्म नहीं है। सभी धर्मों के साथ वह समान व्यवहार करेगा और समान संरक्षण प्रदान करेगा।

5. समाजवादी राज्य - मूल -

इस शब्द को निश्चित रूप से परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है, परन्तु भारतीय सन्दर्भ में इसका तात्पर्य है कि राज्य विभिन्न समुदायों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।

6. कठोरता और लचीलेपन का समन्वय - संविधान में संशोधन प्रणाली के आधार पर दो प्रकार के संविधान होते हैं। 1- कठोर संविधान 2- लचीला संविधान कठोर संविधान वह संविधान, वह संविधान होता है जिसमें संशोधन, कानून निर्माण की सामान्य प्रक्रिया से नहीं किया जा सकता है। इसके लिए विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जैसा कि अमेरिका के संविधान में है - अमेरिका के संविधान में संशोधन तभी संभव है जबकि कांग्रेस के दोनो सदन (सीनेट, प्रतिनिध सभा) दो तिहाई बहुमत से संशोधन प्रस्ताव पारित करें और उसे अमेरिकी संघ के 50 राज्यों में से कम से कम तीन चौथाई राज्य उसका समर्थन करें। अर्थात् न्यूनतम राज्य।

लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। जैसे ब्रिटेन का संविधान। क्योंकि ब्रिटिश संसद साधारण बहुमत से ही यातायात कर लगा सकती तो वह साधारण बहुमत से ही क्राउन की शक्तियों को कम कर सकती है।

किन्तु भारतीय संविधान न तो अमेरिका के संविधान के संविधान के समान न तो कठोर है और न ही ब्रिटेन के संविधान के समान लचीला है। भारतीय संविधान में संशोधन तीन प्रकार से किया जा सकता है -

1. कुछ अनुच्छेदों में साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है।
2. संविधान के ज्यादातर अनुच्छेदों में संशोधन दोनो सदनों के अलग-अलग बहुमत से पारित करके साथ ही यह बहुमत उपस्थित सदस्यों का दो तिहाई है।

3. भारतीय संविधान में कुछ अनुच्छेद, जो संघात्मक शासन प्रणाली से सम्बन्धित हैं, उपरोक्त क्रम दो के साथ (दूसरे तरीका) कम से कम आधेराज्यों के विधान मण्डलों के द्वारा स्वीकृति देना भी आवश्यक है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान कठोरता और लचीलेपन का मिश्रित होने का उदाहरण पेश करता है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री **जवाहर लाल नेहरू** ने इसको स्पष्ट करते हुए कहा था कि - 'हम संविधान को इतना ठोस और स्थायी बनाना चाहते हैं, जितना हम बना सकें। परन्तु सच तो यह है कि संविधान तो स्थायी होते ही नहीं है। इनमें लचीलापन होना चाहिए। यदि आप सब कुछ कठोर और स्थायी बना दें तो आप राष्ट्र के विकास को तथा जीवित और चेतन लोगों के विकास को रोकते हैं। हम संविधान को इतना कठोर नहीं बना सकते कि वह बदलती हुई दशाओं के साथ न चल सके।

4. संसदीय शासन प्रणाली - हमारे संविधान के द्वारा ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह संसदीय प्रणाली न केवल संघ में वरन राज्यों में भी अपनाया गया है।

इस प्रणाली की विशेषता -

अ. नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद/नाममात्र की कार्यपालिका संघ में राष्ट्रप्रति और राज्य में राज्यपाल होता है जबकि वास्तविक कार्यपालिका संघ और राज्य दोनों में मंत्रिपरिषद होती है।

ब. राष्ट्रपति (संघ में) राज्यपाल (राज्य में) केवल संवैधानिक प्रधान होते हैं।

स. मन्त्रिपरिषद (संघ में) - लोक सभा के बहुमत के समर्थन पर ही अपने अस्तित्व के लिए निर्भर करती है। राज्य में मन्त्रिपरिषद अपने अस्तित्व के लिए विधानसभा के बहुमत के समर्थन पर निर्भर करती है। लोकसभा, विधान सभा - दोनों निम्न सदन हैं, जनप्रतिनिधि सदन है। इनका निर्वाचन जनता प्रत्यक्षरूप से करती है।

ड. कार्यपालिका और व्यवस्थापिक में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योंकि कार्यपालिका का गठन व्यवस्था के सदस्यों में से ही किया जाता है।

5. एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन - यद्यपि भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। किन्तु उसके साथ वहाँ के एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है। क्योंकि भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक बहुलता पाई जाती है। इस लिए इनकी अपनी

सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक अस्मिता की रक्षा के लिए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया है। लेकिन संघात्मक शासन के साथ राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है। इस क्रम में हम पहले भारतीय संविधान में संघात्मक शासन के लक्षणों को जानने का प्रयास करेंगे। जो निम्न लिखित है:-

1. लिखित निर्मित और कठोर संविधान
2. केन्द्र(संघ) और राज्य की शक्तियों का विभाजन (संविधान द्वारा)
3. स्वतन्त्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय जो संविधान के रक्षक के रूप में कार्य करेगी। संविधान के विधिक पक्ष में कहीं अस्पष्टता होगी तो उसकी व्याख्या करेगी। साथ ही साथ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करेगी।

किन्तु यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारतीय संघ हेतु, कनाडा के संघ का अनुसरण करते हुए संघीय सरकार (केन्द्र सरकार) को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। भारतीय संविधान के द्वारा यद्यपि संघात्मक शासन तो अपनाया गया है किन्तु उसके साथ मजबूत केन्द्र की स्थापना हेतु, निम्नलिखित एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है-

1- केन्द्र और राज्य में शक्ति विभाजन केन्द्र के पक्ष में हैं क्योंकि तीन सूची - संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची में। संघ सूची में संघ सरकार को, राज्य सूची पर राज्य सरकार को और समवर्ती सूची पर संघ और राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार होता है किन्तु दोनों के कानूनों में विवाद होने पर संघीय संसद द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होता है। इन तीन सूचियों के अतिरिक्त जो अवशिष्ट विषय हो अर्थात् जिनका उल्लेख इन सूचियों में न हो उन पर कानून बनाने का अधिकार भी केन्द्र सरकार का होता है।

इसके अतिरिक्त राज्य सूची के विषयों पर भी संघीय संसद को कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जैसे- संकट की घोषणा होने पर दो या दो से अधिक राज्यों द्वारा प्रस्ताव द्वारा निवेदन करने पर,, राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प के आधार पर।

एकात्मक लक्षण- इसके अतिरिक्त

इकहरी नागरिकता- संघात्मक शासन में दोहरी नागरिकता होती है एक तो उस राज्य की जिसमें वह निवास करता है दूसरी संघ की। जैसा कि अमेरिका में है। जबकि भारत में इकहरी नागरिकता है अर्थात् कोई व्यक्ति केवल भारत का नागरिक होता है।

एकीकृत न्यायपालिका- एक संविधान, अखिल भारतीय सेवाएँ, आपातकालीन उपबन्ध, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति आदि। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान संघात्मक शासन है जिसमें संकटकालीन स्थितियों से निपटने हेतु कुछ एकात्मक लक्षण भी पाए जाते हैं।

4.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर चुके हैं कि हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण की प्रक्रिया में दुनियाँ में तत्कालीन समय में प्रचलित कई संविधानों का अध्ययन किया और उसमें से महत्वपूर्ण पक्षों को, जो हमारे देश में उपयोगी हो सकते थे उन्हें अपने देश-काल की परिस्थितियों के अनुरूप ढालकर संविधान में उपबन्धित किया।

वे स्रोत निम्नलिखित हैं, जिनका प्रभाव भारतीय संविधान पर पड़ा-

स्रोत	विषय
भारतीय शासन अधिनियम १९३५	तीनों सूचियाँ, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियाँ
.2. ब्रिटिश संविधान	संसदीय शासन
.3. अमरीकी संविधान	प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, उपराष्ट्रपति का पद, संविधान में संशोधन प्रक्रिया
.4. आयरलैण्ड का संविधान	नीति निदेशक तत्व, राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचक मण्डल
.5. कनाडा का संविधान	संघात्मक शासन अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र के पास हैं।
.6. आस्ट्रेलिया का संविधान	समवर्ती सूची
.7. दक्षिण अफ्रीका का संविधान	संविधान में संशोधन की प्रक्रिया
.8. पूर्व सोवियत संघ	मूल कर्तव्य

4.6 लोक कल्याणकारी राज्य

लंबे संघर्ष के पश्चात् देश को आजादी मिली थी। जिसमें संसदीय लोकतन्त्र को लागू किया गया है। संसदीय लोकतन्त्र में अन्तिम सत्ता जनता में निहित होती है। इसलिए भारतीय संविधान के द्वारा ही भारत को कल्याणकारी राज्य के रूप में स्थापित करने का प्रावधान भारतीय संविधान के विभिन्न भागों में किए गए/ विशेष रूप से भाग 4 के नीति निर्देशक तत्व में / मौलिक अधिकारों में अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता के समाप्ति की घोषणा के साथ इसे दण्डनीय अपराध माना गया है। प्रस्तावना में सामाजिक आर्थिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य घोषित किया गया। मौलिक अधिकार के अध्याय में किसी भी नागरिक के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर विभेद का निषेध किया गया। साथ ही अब तक समाज की मुख्यधारा से कटे हुए वंचित समुदायों के लिए विशेष प्रावधान किए गए, जिससे वे भी समाज की मुख्यधारा से जुड़कर राष्ट्र के विकास में अपना अमूल्य योगदान दे सकें।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। सत्य असत्य/
2. संसदीय शासन प्रणाली की विशेषता -नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद। सत्य असत्य/
3. लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। सत्य असत्य/
4. भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। सत्य असत्य/
5. पंथ निरपेक्ष शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है। सत्य असत्य/

4.7 सारांश

इकाई ४ के अध्ययन के बाद आप को यह जानने में सहायक हुआ कि भारतीय संविधान की क्या विशेषताएं हैं जिसमें यह भी जानने का अवसर प्राप्त हुआ कि किन कारणों से यह संविधान इतना विस्तृत हुआ है क्योंकि हमारा नवजात लोकतंत्र की रक्षा और इसके विकास के लिए यह नितांत आवश्यक था कि संभावित सभी विषयों का स्पष्ट रूप से समावेश कर दिया जाए। जैसे मूल अधिकार और नीतिनिर्देशक तत्वों को मिलाकर संविधान एक बड़ा भाग हो जाता है इसी प्रकार से अनुसूचित जातियों और जनजातियों से सम्बंधित उपबंध संघात्मक शासन अपनाने के कारण केंद्र-राज्य सम्बन्ध और संविधान के संरक्षण, उसकी व्याख्या और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में स्वतंत्र निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना का प्रावधान किया गया है जिसकी वजह से

संविधान विस्तृत हुआ है इसके साथ-साथ विभिन्न संवैधानिक आयोगों की स्थापना जैसे निर्वाचन आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग, राजभाषा आयोग आदि कारणों से संविधान विस्तृत हुआ। इसके साथ ही साथ हमने इस तथ्य का भी अध्ययन किया की संविधान निर्माण में संविधान निर्माता किन देशों में प्रचलित किस पक्ष को अपने देश की आवश्यकताओं के अनुरूप पाए। जिस कारण से उन्होंने भारतीय संविधान में शामिल किया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमें संसदीय और अध्यक्षीय शासन के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त हुई।

4.8 शब्दावली:-

लोक प्रभुसत्ता:- जहाँ सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित हो वहाँ लोक प्रभुसत्ता होती है।

धर्म निरपेक्षता:- राज्य का कोई धर्म न हाना राज्य के द्वारा सभी धर्मों के प्रति समभाव का होना।

समाजवादी राज्य (भारतीय संन्दर्भ में):- जहाँ राज्य के द्वारा आर्थिक असमानताओं को कम करने का प्रयत्न किया जाए।

संघीय व्यवस्था:- केन्द्र और राज्य दोनों संविधान के द्वारा शक्ति विभाजन अपने-2 क्षेत्र में दोनों संविधान की सीमा में स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करें।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति	-	डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति	-	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति	-	महेन्द्र प्रताप सिंह

4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय संविधान	-	दुर्गादास बसु

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान की विशेषताओं की विवेचना कीजिये ?

2. आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं कि भारतीय संविधान एकात्मक लक्षणों वाले संघात्मक शासन की स्थापना करता है

इकाई 5 राष्ट्रपति

इकाई की संरचना

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 राष्ट्रपति
 - 5.3.1 राष्ट्रपति का निर्वाचन
- 5.4 राष्ट्रपति की शक्तियाँ
 - 5.4.1 कार्यपालिका शक्तियाँ
 - 5.4.2 विधायी शक्तियाँ
 - 5.4.3 राजनयिक शक्तियाँ
 - 5.4.4 सैनिक शक्तियाँ
 - 5.4.5 न्यायिक शक्तियाँ
 - 5.4.6 आपात कालीन शक्तियाँ
- 5.5 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति
- 5.6 सारांश
- 5.7 शब्दावली
- 5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाइयों के अध्ययन से आप को ,भारतीय प्रशासन के विभिन्न पक्षों के बारे में जानने में सहायता मिली है। प्रस्तुत इकाई में हम भारत में संघ के कार्यपालिका के प्रमुख ,राष्ट्रपति के बारे में जान सकेंगे। इसके अध्ययन से हम राष्ट्रपति के निर्वाचन ,उनकी शक्तियों और उनकी संवैधानिक स्थिति तथा वास्तविक स्थिति के बारे में भी जान सकेंगे।

इस इकाई के अध्ययन से हमें आगे की इकाइयों में प्रधानमन्त्री सहित मन्त्रिपरिषद के वास्तविक कार्यपालिका प्रधान के रूप में ,समझने में सहायता मिलेगी। साथ ही संसदीय शासन की परम्परा में राष्ट्रपति पद के महत्व को और भी स्पष्ट रूप से समझने में सहायता मिलेगी।

5.2 उद्देश्य -

इस इकाई के अध्ययन से आप राष्ट्रपति के बारे में जान सकेंगे-

1. इस इकाई के अध्ययन के बाद आप राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया के बारे में जान सकेंगे।
2. राष्ट्रपति की शक्तियों को जान सकेंगे।
3. आप यह जान सकेंगे कि वह कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान ही नहीं है।

5.3 राष्ट्रपति -

शासन के तीन अंग होते हैं। जो क्रमशः व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका हैं। व्यवस्थापिका का सम्बन्ध कानून निर्माण से है, कार्यपालिका का सम्बन्ध व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों और नीतियों के क्रियान्वयन से है, जबकि न्यायपालिका का सम्बन्ध न्यायिक कार्यों से है। संघ की कार्यपालिका के शीर्ष पर राष्ट्रपति होता है। चूँकि राष्ट्रपति संवैधानिक प्रधान है (नाममात्र की कार्यपालिका) फिर भी उनके पद को सत्ता और गरिमा से युक्त किया गया है। वह राज्य के शक्तिशाली शासक होने की अपेक्षा, भारत की एकता के प्रतीक हैं। उनकी स्थिति वैधानिक अध्यक्ष की है, फिर भी शासन में उनका पद एक धुरी के समान है जो संकट के समय संवैधानिक तंत्र को संतुलित कर सकता है।

5.4 राष्ट्रपति का निर्वाचन -

भारतीय संविधान के अनुसार भारत एक गणतन्त्र है। गणतन्त्र में राष्ट्र का अध्यक्ष वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित होता है। राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति से होता है।

योग्यता - राष्ट्रपति पद के निर्वाचन के लिए निम्नलिखित योग्यताएं आवश्यक हैं -

- 1- वह भारत का नागरिक हो
- 2- वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो ,
- 3- वह लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो ,
- 4- वह संघ सरकार और राज्य सरकारों या स्थानीय सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर न हो,
- 5- राष्ट्रपति , उपराष्ट्रपति , राज्यपाल और मंत्रियों के पद लाभ के पद नहीं माने जाते , इसलिए उन्हें त्याग पत्र देने की आवश्यकता नहीं होती।

अनु. 54 के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल के सदस्य करते हैं जिसमें --

1. संसद के दोनो सदस्य (लोकसभा, राज्यसभा) के निर्वाचित सदस्य।
2. राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल होंगे

राष्ट्रपति के निर्वाचन में संघीय संसद के साथ-साथ राज्यों के विधान सभाओं के सदस्यों को शामिल कर इस बात का प्रयत्न किया गया है, कि राष्ट्रपति का निर्वाचन दलीय आधार पर न हों तथा संघ के इस सर्वोच्च पद को वास्तव में राष्ट्रीय पद का रूप प्राप्त हो सके।

भारतीय संविधान के 71वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि पाण्डिचेरी और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधानसभाओं के सदस्य, राष्ट्रपति के निर्वाचक मंडल में शामिल किये जायेंगे।

1957 के राष्ट्रपति चुनाव में कुछ स्थान रिक्त होने पर राष्ट्रपति के चुनाव की वैधता को चुनौती दी गई। न्यायालय ने अपने निर्णय में ऐसी स्थिति में भी चुनाव संभव बताया। इस समस्या के निराकरण हेतु 1961 में 11वें संवैधानिक संशोधन द्वारा अनुच्छेद 71 में उपबन्ध किया गया है कि निर्वाचक मंडल का स्थान रिक्त होने पर भी चुनाव वैध है।

राष्ट्रपति का निर्वाचन ऊपर वर्णित निर्वाचन मण्डल द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है अनु 55(3)। मतदान गुप्त होता है। इस पद्धति में चुनाव में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रत्यासी को न्यूनतम कोटा प्राप्त करना होता है। न्यूनतम काटा निर्धारण का सूत्र इस प्रकार है-

दिये गये मतों की संख्या

$$\text{न्यूनतम कोटा} = \frac{\text{निर्वाचित होने वाले प्रत्याशियों की संख्या}}{\text{कुल प्रत्याशियों की संख्या}} + 1$$

राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचन मण्डल के सदस्यों के मतों का मूल्य समान नहीं होता है। कुछ राज्यों की विधानसभाओं के सदस्य अधिक जनसंख्या का और कुछ कम जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस लिए विधान सभा सदस्य के मत का मूल्य उनकी जनसंख्या के अनुपात में होता है। साथ ही राष्ट्रपति के चुनाव में केन्द्र और राज्य को बराबर की हिस्सेदारी देने के लिए सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों की विधानसभाओं के समस्त सदस्यों के मत मूल्य और संसद के सभी निर्वाचित सदस्यों के मतों के मूल्य बराबर रखने पर जोर दिया जाता है। जिससे राष्ट्रपति का चुनाव दलगत राजनीति का शिकार न हो और वह राष्ट्र का सच्चा प्रतिनिधि हो सके।

मत मूल्य निकालने का तरीका -

$$\text{विधान सभा के एक सदस्य के मत का मूल्य} = \frac{\text{राज्य की जनसंख्या}}{\text{कुल विधायकों की संख्या}} \times 100$$

$$\text{संसद सदस्य के एक मत का मूल्य} = \frac{\text{सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों विधानसभा सदस्यों के मतों का मूल्य}}{\text{संसद के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या}}$$

राष्ट्रपति के निर्वाचन में उस प्रत्याशी को निर्वाचित घोषित किया जाता है जो न्यूनतम कोटा अर्थात् आधे से अधिक मत प्राप्त करे। राष्ट्रपति के निर्वाचन में जितने प्रत्याशी होते हैं, मतदाता को उतने मत देने का अधिकार होता है। मतदाता अपना मत वरीयता क्रम के आधार पर देता है। जैसे

		प्रत्याशी	A	B	C	D
मतदाता	P	1	3	2	4	
	G	2	1	3	4	
	R	4	1	2	3	
	S	3	1	2	4	
	T	2	3	1	4	

इस आरेख में चार प्रत्याशी A, B, C, D, है मतदाता P, G, R, S, T हैं जिन्होंने अपने मत वरीयता के आधार पर राष्ट्रपति प्रत्याशी को दिये हैं। सर्वप्रथम प्रथम वरीयता के मत की गणना की जाती है। यदि उसे न्यूनतम कोटा प्राप्त हो जाय तो वह विजयी घोषित होता है। यदि कोटा न प्राप्त हो सके तो द्वितीय वरीयता के मत की गणना होती है। इस द्वितीय दौर में जिस उम्मीदवार को प्रथम वरीयता का सबसे कम मत मिला हो उसे गणना से बाहर कर, उसके द्वितीय वरीयता के मतमूल्य को स्थानान्तरित कर दिया जाता है। यदि द्वितीय दौर की गणना में किसी प्रत्याशी को न्यूनतम कोटा न प्राप्त हो तीसरे दौर की मतगणना होती है, जिसमें दूसरे दौर की मतगणना में सबसे कम मतमूल्य पाने वाले प्रत्याशी के तीसरे वरीयता के मतमूल्य को शेष उम्मीदवारों को स्थानान्तरित कर दिया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक अपनायी जाती है जब तक किसी प्रत्याशी को न्यूनतम कोटा न प्राप्त हो जाय।

- अभ्यास प्रश्न राष्ट्रपति के चुनाव में कौन कौन भाग लेता है-1-?
- 2 राष्ट्रपति का कार्यकाल कितने वर्ष का होता है?
 - 3 राष्ट्रपति पर महाभियोग किस अनुच्छेद के तहत लगाया जाता है?

राष्ट्रपति द्वारा शपथ - राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने से पूर्व अनुच्छेद 60 के तहत भारत के मुख्य न्यायाधीश या उनकी अनुपस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश के समक्ष अपने पद की शपथ लेता है।

राष्ट्रपति की पदावधि -संविधान के अनुच्छेद 56 के अनुसार राष्ट्रपति अपने पद ग्रहण की तिथि से ,पाँच वर्ष की अवधि तक अपने पद पर बना रहता है। इस पाँच वर्ष की अवधि के पूर्व भी वह उपराष्ट्रपति को वह अपना त्यागपत्र दे सकता है या उसे पाँच वर्ष की अवधि से पूर्व संविधान के उल्लंघन क लिए संसद द्वारा महाभियोग से हटाया जा सकता है। राष्ट्रपति अपने पाँच वर्ष के कार्यकाल पूर्ण होने के बाद तक अपने पद पर बना रहता है जब तक कि इसके उत्तराधिकारी द्वारा पद ग्रहण न कर लिया जाए।

उन्मुक्तियों – राष्ट्रपति अपने कार्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होता है। अपने पद के कर्तव्यों एवं शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उनके संबन्ध में उसके विरुद्ध न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है।

वेतन - राष्ट्रपति को इस समय 150000 रु/ माह वेतन है। अनुच्छेद 59(3) अनुसार कार्यकाल के दौरान उनके वेतन और उपलब्धियों में किसी प्रकार की कमी नहीं की जा सकती है।

महाभियोग प्रक्रिया - राष्ट्रपति को अनुच्छेद 61के अनुसार महाभियोग प्रक्रिया द्वारा, संविधान के अतिक्रमण के आधार पर हटाया जा सकता है। संसद के जिस सदन में महाभियोग का संकल्प प्रस्तुत किया गया हो, उसके एक चौथाई सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर सहित आरोप पत्र राष्ट्रपति को 14 दिन पूर्व दिया जाना आवश्यक है। इस सदन में संकल्प को दो तिहाई बहुमत से पारित करके दूसरे सदन को भेजा जाएगा जो राष्ट्रपति पर लगे इन आरोपों की जाँच करेगा। इस दौरान राष्ट्रपति स्वयं या अपने प्रतिनिधि के द्वारा अपना पक्ष रख सकता है। यदि दूसरा सदन आरोपों को सही पाता है और उसे अपनी संख्या के बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई सदस्यों द्वारा पारित कर दिया जाता है तो राष्ट्रपति पद त्याग के लिए बाध्य होता है।

भारत के राष्ट्रपति का क्रमवार विवरण इस प्रकार है ---

क्रम संख्या	राष्ट्रपति का नाम	कब से	कब तक
1	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	26 जनवरी 1950	12 मई 1962
2	सर्वपल्ली राधा कृष्णन	13 मई 1962	13 मई 1967
3	जाकिर हुसैन	13 मई 1967	3 मई 1969
4	वराहगिरी वेंकट गिरी	3 मई 1969	20 जुलाई 1969
5	मुहम्मद हिदायतुल्लाह	20 जुलाई 1969	24 अगस्त 1969
6	वराहगिरी वेंकट गिरी	24 अगस्त 1969	24 अगस्त 1974
7	फकरुद्दीन अली अहमद	24 अगस्त 1974	11 फरवरी 1977
8	बी.डी. जत्ती	11 फरवरी 1977	25 जुलाई 1977
9	नीलम संजीव रेड्डी	25 जुलाई 1977	25 जुलाई 1982
10	ज्ञानीजैल सिंह	25 जुलाई 1982	25 जुलाई 1987
11	रामास्वामी वेंकटरमन	25 जुलाई 1987	25 जुलाई 1992
12	शंकरदयाल शर्मा	25 जुलाई 1992	25 जुलाई 1997
13	कोचेरिल रमण नारायणन	25 जुलाई 1997	25 जुलाई 2002
14	ए.पी.जे. अबुलकलाम	25 जुलाई 2002	25 जुलाई 2007
15	प्रतिभा पाटिल	25 जुलाई 2007	25 जुलाई 2012

16	प्रणव मुखर्जी	25 जुलाई 2007	25 जुलाई 2017
17	राम नाथ कोविंद	25 जुलाई 2017	आगे जारी

5.5 राष्ट्रपति की शक्तियाँ -

हमारे संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक शक्तिया प्रदान की गयी हैं ,जो निम्नलिखित है -

5.5.1 -कार्यपालिका शक्तियाँ -

संविधान के अनुच्छेद 53(1) के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इस शक्ति का प्रयोग इस संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करेगा ।

अनुच्छेद 74 के अनुसार राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा । राष्ट्रपति अपने शक्तियों का प्रयोग करने में मंत्रिमंडल की सलाह के अनुसार कार्य करेगा । इसके आगे संविधान के 44वें संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा यह जोड़ा गया कि यदि मंत्रिपरिषद की सलाह पर राष्ट्रपति पुनर्विचार करने को कह सकेगा, परन्तु राष्ट्रपति, ऐसे पुनर्विचार के पश्चात दी गयी सलाह के अनुसार कार्य करेगा । राष्ट्रपति की कार्यपालिका संबन्धी शक्तियों में मंत्रिपरिषद का गठन महत्वपूर्ण है । संसदीय परम्परा के अनुरूप निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल के नेता को राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करता है तथा प्रधानमंत्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है । अब तक नियुक्त अधिकांश प्रधानमंत्री लोकसभा के सदस्य रहे हैं । श्रीमती इन्दिरा गाँधी पहली ऐसी प्रधानमन्त्री थी जो राज्यसभा से मनोनीत सदस्य थी । वर्तमान प्रधानमन्त्री डा मनमोहन सिंह भी राज्यसभा सदस्य हैं । संविधान के 91वें संशोधन 2003 द्वारा अनुच्छेद 75(1-क) के अनुसार मन्त्री राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करते हैं । अनुच्छेद 75(3) के अनुसार, मंत्रिपरिषद के सदस्य , सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं । अनुच्छेद 75(5) के अनुसार, कोई भी मन्त्री, निरन्तर छः मास तक संसद के किसी सदन का सदस्य हुए बिना भी मन्त्री रह सकता है ।

यहाँ एक महत्वपूर्ण तथ्य को स्पष्ट करना आवश्यक है कि ,जब लोकसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत न मिले अथवा लोकसभा में अविश्वास मत के कारण ,मन्त्रिपरिषद को त्यागपत्र देना पड़े ,ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति किस व्यक्ति को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करे, इस सम्बन्ध में संविधान मौन है । इस सबन्ध में राष्ट्रपति को स्वविवेकाधिकार प्राप्त है । इस संबंध में संसदीय परम्परा के अनुरूप सर्वप्रथम सबसे बड़े दल के नेता तथा जो बहुमत सिद्ध कर सकता है उसे प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करते हैं ।

इसके साथ-2 राष्ट्रपति को संघ के महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति की शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति, नियन्त्रक-महालेखक की नियुक्ति, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति, राज्यपाल की नियुक्ति, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्य की नियुक्ति, मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयोग के अन्य सदस्य की नियुक्ति, अनुसूचित जातियों जनजातियों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति, भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति।

ये सभी नियुक्तियाँ राष्ट्रपति द्वारा मन्त्रिपरिषद की सलाह पर या संविधान द्वारा निश्चित व्यक्तियों से परामर्श के पश्चात् की जाती है। राष्ट्रपति को उपर्युक्त अधिकारियों को हटाने की भी शक्ति प्राप्त है।

5.5.2. विधायी शक्तियाँ -

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है। संसद का गठन राष्ट्रपति, लोकसभा और राज्यसभा से मिलकर होता है। इस प्रकार संसद का महत्वपूर्ण अंग होने के नाते राष्ट्रपति को महत्वपूर्ण विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं। कोई भी विधेयक संसद के दोनों सदनों (लोकसभा.राज्यसभा) द्वारा पारित होने के बाद राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही अधिनियम का रूप लेता है।

संसद का अंग होने के नाते राष्ट्रपति को लोकसभा और राज्यसभा का सत्र आहूत करने और उसका सत्रावसान करने की शक्ति है। अनुच्छेद 85 के अनुसार वह लोकसभा का विघटन कर सकता है। अनुच्छेद 108 के अनुसार वह साधारण विधेयक पर दोनों सदनों में विवाद होने पर संयुक्त अधिवेशन बुला सकता है। अनुच्छेद 87 के अनुसार राष्ट्रपति प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात् प्रथम सत्र के प्रारम्भ पर और प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र के प्रारम्भ पर, एक साथ संसद के दोनों सदनों में अभिभाषण करता है। इसके अतिरिक्त किसी एक सदन या दोनों सदनों में एक साथ अभिभाषण करने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्य सभा में 12 सदस्यों को मनोनीत कर सकता है जो साहित्य, कला, विज्ञान, या समाजसेवा के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त हों और अनुच्छेद 331 के अनुसार लोकसभा में दो सदस्यों को आंग्लभारतीय समुदाय से मनोनीत कर सकता है।

संविधान के उपबन्धों और कुछ अधिनियमों का अनुपालन करने के लिए, राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि कुछ प्रतिवेदनों को संसद के समक्ष रखवायेगा। इसका उद्देश्य यह है कि संसद को उन प्रतिवेदनों और उस पर की गयी कार्यवाही पर विचार करने का अवसर प्राप्त हो जाएगा। राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि निम्नलिखित प्रतिवेदनों और दस्तावेजों को संसद के समक्ष रखवाए --

- 1- अनुच्छेद 112 के अनुसार -वार्षिक वित्तीय विवरण (बजट)
- 2-अनुच्छेद 151 के अनुसार -नियन्त्रक महालेखक का प्रतिवेदन
- 3-अनुच्छेद 281 के अनुसार - वित्त आयोग की सिफारिशें

4-अनुच्छेद 323 के अनुसार -संघ लाकसेवा आयोग का प्रतिवेदन

5-अनुच्छेद 340 के अनुसार - पिछड़ा वर्ग आयोग का प्रतिवेदन

6-अनुच्छेद 348 के अनुसार -राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग का प्रतिवेदन

7-अनुच्छेद 394 क के अनुसार -राष्ट्रपति अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए .भारतीय संविधान के अंग्रेजी भाषा में किए गये प्रत्येक संशोधन का हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रकाशित करायेगा। इसके अतिरिक्त कुछ विषयों पर कानून बनाने के लिए .उस पर राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है। जैसे-

अनुच्छेद 3- के अनुसार -नये राज्यों के निर्माण या विद्यमान राज्य की सीमा में परिवर्तन से संबंधित विधेयकों पर। अनुच्छेद 117(1)-धन विधेयकों के संबंध में। अनुच्छेद 117(3) ऐसे व्यय से संबंधित विधेयक. जो भारत की संचित निधि से किया जाना हो। अनुच्छेद 304 के अनुसार-राज्य सरकारों के ऐसे विधेयक जो व्यापार और वाणिज्य की स्वतन्त्रता पर प्रभाव डालते हों।

इस बात का हम उल्लेख कर चुके हैं कि संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कोई भी विधेयक कानून तब तक नहीं बन सकता जब तक कि उस पर राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति न प्रदान करें। राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति दे सकता है. विधेयक को रोक सकता है या दोनों सदनों द्वारा पुनर्विचार के लिए वापस कर सकता है। यदि संसद पुनर्विचार के पश्चात विधेयक को राष्ट्रपति को वापस करती है, तो वह अपनी स्वीकृति देने के लिए बाध्य है। यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि राष्ट्रपति धन विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस नहीं कर सकता है क्यों कि धन विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही लोकसभा में रखा जाता है।

2006 में लाभ के पद से संबंधित संसद अयोग्यता निवारण संशोधन विधेयक लोक सभा और राज्यसभा द्वारा पारित होने के पश्चात राष्ट्रपति के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया गया जिसे राष्ट्रपति ए.पी.जे.कलाम ने पुनर्विचार के लिए .यह कहते हुए वापस कर दिया कि संसदों और विधायकों को लाभ के पद के दायरे से बाहर रखने के व्यापक आधार बताए जाँय। संसद के दोनों सदनों ने इसे पुनः मूल रूप में ही पारित कर दिया। यह पहला अवसर था कि राष्ट्रपति की आपत्तियों पर विचार किए बिना ही विधेयक को उसी रूप में पारित कर दिया गया। राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित विधि के संबंध में भी राष्ट्रपति को विभिन्न शक्तियाँ प्राप्त हैं -

1-राज्य विधानमंडल द्वारा पारित ऐसा विधेयक जो उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को प्रभावित करता है तो राज्यपाल उस विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित कर लेगा।

2-वित्तीय आपात काल लागू होने की स्थिति में .राष्ट्रपति यह निर्देश दे सकता है कि राज्य विधानसभा में प्रस्तुत किये जाने से पूर्व सभी धन विधेयकों पर उसकी अनुमति ली जाय।

3-सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयकों पर .राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है।

4-राज्य के अन्दर या अन्य राज्यों के साथ व्यापार पर प्रतिबंध लगाने वाले विधेयकों को विधानसभा में प्रस्तुत करने से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक है।

अध्यादेश जारी करने की शक्ति -

जब संसद सत्र में न हो और राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाय कि वर्तमान परिस्थिति में यथाशीघ्र कार्यवाही की आवश्यकता है तो वे अनुच्छेद 123 के अनुसार अध्यादेश जारी करते हैं। इस अध्यादेश का प्रभाव संसद द्वारा पारित और राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत अधिनियम के समान ही होता है। किन्तु अधिनियम स्थायी होता है और अध्यादेश का प्रभाव केवल छः माह तक ही रहता है। छः माह के अन्दर यदि अध्यादेश को संसद की स्वीकृति न प्राप्त हो तो वह स्वतः ही समाप्त हो जाएगा।

वीटो (निषेधाधिकार) की शक्ति - यह कार्यपालिका की शक्ति है जिसके द्वारा वह किसी विधेयक को अनुमति देने से रोकता है। अनुमति देने इन्कार करता है या अनुमति देने में विलम्ब करता है। वीटो के कई प्रकार हैं -

1-आत्यंतिक वीटो या पूर्ण वीटो -यह वह वीटो है जिसमें राष्ट्रपति संसद द्वारा पारित किसी विधेयक को अनुमति देने से इन्कार कर देता है। पूर्ण वीटो का प्रयोग धन विधेयक के संबंध में नहीं किया जा सकता क्योंकि धन विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति से ही लोकसभा में प्रस्तुत किया जाता है।

2-निलम्बनकारी वीटो -

जिस वीटो को सामान्य बहुमत से समाप्त किया जा सकता है उसे निलम्बनकारी वीटो कहा जाता है। इस प्रकार के वीटो का प्रयोग हमारे राष्ट्रपति उस समय करते हैं जब अनुच्छेद 111 के अनुसार वे किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस करते हैं।

3-पाकेट वीटो या जेबी वीटो -संसद द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति न तो अनुमति देता है और न ही पुनर्विचार के लिए वापस करता है, तब वह जेबी वीटो का प्रयोग करता है। हमारे संविधान में यह स्पष्ट उपबन्ध नहीं है कि राष्ट्रपति कितने समय के भीतर विधेयक को अपनी अनुमति देगा। फलतः वह विधेयक को अपनी मेज पर अनिश्चित काल तक रख सकता है। जेबी वीटो का प्रयोग 1986 में संसद द्वारा पारित भारतीय डाक अधिनियम के संदर्भ में राष्ट्रपति ज्ञानीजैल सिंह ने किया था।

5.4.3 राजनयिक शक्तियाँ -

यहाँ हम स्पष्ट करना चाहते हैं कि इक्कीसवीं शदी में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया चल रही है। इस प्रक्रिया ने एक राष्ट्र के हित को विश्व के अन्य राष्ट्रों के साथ जोड़ दिया है। राष्ट्रों के मध्य आपसी संबंधों का संचालन राजनय के द्वारा होता है। हमारे देश में राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान है। इस लिए अन्य राष्ट्रों के साथ संबंधों के संचालन की शक्ति भी राष्ट्रपति को प्रदान की गयी है। इस लिए

अन्य राष्ट्रों के साथ संबंधों का संचालन राष्ट्रपति के नाम से किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय मामले में वे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत की ओर से भेजे जाने वाले राजदूत की नियुक्ति भी राष्ट्रपति ही करते हैं। दूसरे देशों से भारत में नियुक्त होने वाले राजदूत और उच्चायुक्त अपना परिचयपत्र राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। परन्तु इन सभी विषयों में राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार कार्य करता है।

5.4.4 सैनिक शक्तियाँ -

जैसा कि हम इस इकाई में पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि संध की समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित है। इसी कारण से वह तीनों सेनाओं का प्रधान सेनापति है। किन्तु हमारे राष्ट्रपति की सैन्य शक्तिया अमेरिका के राष्ट्रपति के समान नहीं है क्योंकि ये अपनी शक्तियों के प्रयोग संसद द्वारा निर्मित कानूनों के अनुसार करते हैं। जब कि अमेरिका के राष्ट्रपति पर इस प्रकार के कोई प्रतिबंध नहीं है।

5.4.5 न्यायिक शक्तियाँ-

हमारे संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक रूप से न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हैं जो निम्नलिखित हैं -

1- न्यायाधीशों की नियुक्ति--अनुच्छेद 217 के अनुसार राष्ट्रपति उच्च न्यायालय और 124 के तहत उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते हैं। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति करते समय वह उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश से परामर्श कर सकते हैं। अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करते हैं।

2- क्षमादान की शक्ति—राष्ट्रपति को कार्यपालिका और विधायी शक्तियों के साथ-साथ न्यायिक शक्तियाँ- भी प्राप्त हैं, जिनमें क्षमादान की शक्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो अनुच्छेद 72 के अनुसार प्राप्त है। वे इस क्षमादान की शक्ति के तहत किसी दोषी ठहराये गये व्यक्ति के दण्ड को क्षमा तथा सिद्ध दोष के निलंबन, परिहार या लघुकरण की शक्ति प्राप्त है। राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग निम्नलिखित परिस्थितियों में करते हैं -सेना द्वारा दिये गये दण्ड के मामले में। जब दण्ड ऐसे विषयों के मामले में दिया गया हो जो संघ के कार्यपालिका क्षेत्र में आते हों। ऐसी परिस्थिति में जब किसी व्यक्ति को मृत्यु दण्ड दिया गया हो। क्षमादान की शक्ति का प्रयोग भी वह मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार करता है।

क्षमादान की इस शक्ति को देने के पीछे सोच यह है कि न्यायाधीश भी मनुष्य होते हैं। इस लिए उनके द्वारा की गयी किसी भूल को सुधारने की गुंजाइस बनी रहे।

3--उच्चतम न्यायालय से परामर्श लेने का अधिकार- हमारे संविधान के अनुच्छेद 143 के अनुसार यदि राष्ट्रपति को ऐसा कभी प्रतीत होता है कि विधि या तथ्य का कोई सारवान प्रश्न उत्पन्न हुआ है या उत्पन्न होने की संभावना है जो ऐसी प्रकृति और व्यापक महत्व का है तो उस पर

उच्चतम न्यायालय से राय मांग सकता है। इस प्रकार की राय राष्ट्रपति पर बाध्यकारी नहीं होती है। इसके साथ-साथ उच्चतम न्यायालय को, यदि वह आवश्यक समझे तो, अपनी राय देने से इन्कार कर सकता है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति को अन्य अधिकार प्राप्त हैं - जैसे- संविधान के अनुच्छेद 130 के अनुसार, यदि सर्वोच्च न्यायालय अपना स्थान दिल्ली के बजाय किसी अन्य स्थान पर स्थानान्तरित करना चाहे तो इसके लिए राष्ट्रपति से अनुमति लेना आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न -

- 4 उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति किस अनुच्छेद के तहत की जाती है?
- 5 उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति किस अनुच्छेद के तहत की जाती है?

5.5.6 आपात कालीन शक्तियाँ-

हमारे संविधान निर्माता गुलामी की दुखद दास्तान और आजादी की लम्बी लड़ाई के पश्चात आजाद हो रहे देश के दुःखद विभाजन से परिचित थे। इसलिए देश में भविष्य में उत्पन्न होने वाली संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए, संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को विस्तृत रूप आपातकालीन शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। हमारे संविधान के भाग 18 के अनुच्छेद 352 से अनुच्छेद 360 तक राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों का उपबन्ध किया गया है। ये शक्तियाँ निम्नलिखित तीन प्रकार की हैं --

1-राष्ट्रीय आपात - संविधान के अनुच्छेद 352 में यह उपबन्ध किया गया है कि, यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाय कि, युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में है या संकट में होने की आशंका है, तो उनके द्वारा आपात की उद्घोषणा की जा सकती है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में सशस्त्र विद्रोह की जगह आन्तरिक अशान्ति शब्द था। 1975 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के लोकसभा चुनाव को इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा रद्द किये जाने के पश्चात आन्तरिक अशान्ति के नाम पर प्रधानमंत्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने राष्ट्रीय आपात की घोषणा की।

1977 के लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस को पराजय का मुंह देखना पड़ा। जनता पार्टी की सरकार बनी। इस सरकार ने 1979 के 44वें संविधानिक संशोधन के द्वारा आन्तरिक अशान्ति के स्थान पर सशस्त्र विद्रोह शब्द रखा गया। साथ ही यह भी उपबन्ध किया गया कि आपात काल की घोषणा अब संघ के मंत्रिमंडल (प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल स्तर के अन्य मंत्री) की सिफारिश से राष्ट्रपति द्वारा ही की जाएगी।

राष्ट्रपति द्वारा आपात की घोषणा के एक माह के अन्दर संसद के द्वारा विशेष बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। दूसरे शब्दों में इस घोषणा को लोकसभा और राज्यसभा द्वारा पृथक-पृथक कुल सदस्य संख्या के बहुमत और उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से स्वीकृति

आवश्यक है। आपात की घोषणा के समय यदि लोकसभा का का विघटन हुआ है तो एक माह के अन्दर राज्यसभा की विशेष स्वीकृति आवश्यक है। नवगठित लोकसभा के द्वारा उसकी प्रथम बैठक के तीस दिन के अन्दर विशेष बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। आपातकाल को यदि आगे भी लागू रखना है तो उसे प्रत्येक छः माह पश्चात संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यदि आपात काल की घोषणा एक सदन द्वारा की जाय और दूसरा सदन अस्वीकार कर दे तो यह घोषणा एक माह के पश्चात समाप्त हो जाएगी। इस आपात काल को संसद साधारण बहुमत से समाप्त कर सकती है। संविधान के 38वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह उपबंध किया गया कि आपात काल की उद्घोषणा को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस प्रावधान को समाप्त कर दिया गया। संविधान के प्रारम्भ में यह उपबंध था कि अनुच्छेद 352 के अनुसार आपात काल को पूरे देश में ही लागू किया जा सकता है किसी एक भाग में नहीं। परन्तु 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि आपात काल की उद्घोषणा देश के किसी एक भाग या कई भागों में की जा सकती है।

अभी तक कुल तीन बार राष्ट्रीय आपात की घोषणा की गयी है -

26 अक्टूबर 1962 से 10 जनवरी 1968 तक चीनी आक्रमण के कारण। दूसरी बार -पाकिस्तान के द्वारा आक्रमण के कारण 3 दिसंबर 1971 को घोषणा की गयी तथा 25 जून 1975 को आन्तरिक अशान्ति के आधार पर आपात की घोषणा की गयी, इनकी समाप्ति 21 मार्च 1977 को की गयी।

राष्ट्रीय आपात काल को लागू करने का प्रभाव -

1-अनुच्छेद 83(2) के अनुसार जब आपात की उद्घोषणा की गयी हो तब लोकसभा अपने कार्यकाल को एक साल के लिए बढ़ा सकती है। किन्तु आपात की उद्घोषणा के समाप्त होने पर यह कार्यकाल वृद्धि अधिकतम छः मास तक ही चल सकती है।

2-अनुच्छेद 250 के अनुसार आपातकाल की उद्घोषणा के दौरान संबंधित राज्य में संसद को राज्य सूची के किसी भी विषय पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। यद्यपि राज्य की विधायी शक्तियाँ राज्य के पास बनी रहती है किन्तु उन पर निर्णायक शक्ति संसद के पास रहती है।

3-हम उपर इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि अनुच्छेद 73 के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति उन विषयों तक सीमित है, जिन पर संसद को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है किन्तु आपातकाल की उद्घोषणा के दौरान केन्द्र सरकार जहाँ आपातकाल लागू है उस राज्य के साथ ही साथ देश के किसी भी राज्य को यह निदेश दे सकता है कि वह अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग किस प्रकार करे।

4-संविधान के अनुच्छेद 354 में यह स्पष्ट उल्लेख है कि राष्ट्रपति के आदेश से केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबन्ध को उस सीमा तक परिवर्तित किया जा सकता है जिस सीमा तक की स्थिति का

सामना करने के लिए आवश्यक हो। राष्ट्रपति के इस प्रकार के आदेश को यथाशीघ्र संसद के समक्ष रखना आवश्यक होता है।

5-मौलिक अधिकारों पर प्रभाव-वाह्य आक्रमण के कारण यदि राष्ट्रीय आपात की घोषणा की गयी है तो अनुच्छेद 358 के अनुसार, अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त स्वतन्त्रता का अधिकार निलंबित हो जाता है। जबकि अनुच्छेद 359 के तहत उन्हीं अधिकारों का निलंबन होता है, जो राष्ट्रपति के आदेश में स्पष्ट किया गया हो। इसके बावजूद भी अनुच्छेद 20 और 21 के तहत प्रदत्त मूल अधिकारों का निलंबन किसी भी स्थिति में नहीं हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न -

6- राष्ट्रपति राष्ट्रीय आपात की घोषणा किस अनुच्छेद के अनुसार करता है?

7-1975 में राष्ट्रीय आपात की घोषणा किस आधार पर की गयी थी ?

2- राज्यों में सांविधानिक तन्त्र की विफलता-अनुच्छेद 355 में यह उपबन्ध है कि संघ सरकार का यह दायित्व है कि वह राज्यों की वाह्य आक्रमण और आन्तरिक अशान्ति से रक्षा करे। साथ ही यह भी देखे कि प्रत्येक राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार चल रहा हो। अनुच्छेद 356(1) के अनुसार यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाए कि राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार न चलने के कारण संवैधानिक तन्त्र विफल हो गया है तो वह राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर सकता है। राष्ट्रपति का यह समाधान राज्यपाल के प्रतिवेदन पर भी आधारित हो सकता है। अनुच्छेद 365 के अनुसार राष्ट्रपति किसी राज्य की सरकार के विरुद्ध अनुच्छेद 356 का प्रयोग उस समय भी कर सकता है जब संबंधित राज्य की सरकार संघ सरकार के निर्देशों का पालन करने में असफल हो जाती है।

राज्यों में राष्ट्रपति शासन की घोषणा दो माह के लिए होता है किन्तु यदि घोषणा के पश्चात लोकसभा का विघटन हो जाता है तो नवीन लोकसभा के गठन के बाद प्रथम बैठक के तीस दिन के बाद घोषणा तभी लागू रह सकती है जब कि नवीन लोकसभा उसका अनुमोदन कर दे। इस प्रकार की घोषणा एक बार में छः माह के लिए और अधिकतम तीन वर्ष (पंजाब में पांच वर्ष तक लागू थी) के लिए लागू की जा सकती है। 44वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह उपबन्ध किया गया कि एक वर्ष से अधिक समय तक राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए दो आवश्यक शर्तें हैं --

1-जब संपूर्ण देश में या उसके किसी एक भाग में अनुच्छेद 352 के तहत राष्ट्रीय आपात काल की घोषणा लागू हो।

2-निर्वाचन आयोग इस बात को प्रमाणित करे कि संबंधित राज्य में वर्तमान परिस्थितियों में चुनाव कराना संभव नहीं है।

राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने का प्रभाव--

1- राष्ट्रपति इस बात की घोषणा कर सकता है कि राज्य के कानून निर्माण की शक्ति का प्रयोग संसद करेगी। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि अनुच्छेद 356 की घोषणा के पश्चात यह आवश्यक नहीं कि विधानसभा का विघटन कर दिया जाय। विधानसभा को केवल निलंबित भी किया जा सकता है।

2- यदि संसद का सत्र न चल रहा हो तो राष्ट्रपति राज्य की संचित निधि में से आवश्यक खर्च की अनुमति दे सकता है।

3- राष्ट्रपति कार्यपालिका संबंधी सभी या आंशिक कृत्यों को अपने हथ में ले सकता है। उच्च न्यायालय के कार्यों को छोड़कर।

अनुच्छेद 352 और अनुच्छेद 356 की तुलना –

जैसा कि ऊपर आप देख चुके हैं अनुच्छेद 352 और 356 का प्रयोग राष्ट्रपति करते हैं किन्तु दोनों के प्रभावों में अन्तर हैं। जब किसी राज्य में राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा की जाती है तो संसद को समवर्ती सूची के साथ साथ राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है किन्तु राज्य विधान सभा और कार्यपालिका का अस्तित्व बना रहता है और वे अपना कार्य भी करती रहती हैं। परन्तु अनुच्छेद 356 के तहत जब राष्ट्रपति किसी राज्य में संवैधानिक तन्त्र के विफलता की घोषणा करते हैं तो संबंधित राज्य की विधान सभा निलंबित कर दी जाती है और कार्यपालिका संबंधी शक्तिया पूर्णतः या आंशिक रूप से राष्ट्रपति द्वारा ग्रहण कर ली जाती हैं।

अनुच्छेद 356 के तहत संवैधानिक तन्त्र के विफलता की घोषणा की अधिकतम अवधि तीन वर्ष हो सकती है जब कि अनुच्छेद 352 के तहत लागू किया जाने वाला राष्ट्रीय आपात काल को प्रत्येक छः माह के पश्चात संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यह प्रक्रिया तब तक चल सकती है जब तक कि संसद स्वयं के संकल्प से समाप्त न कर दे।

3-- वित्तीय आपात काल --

अनुच्छेद 360 में यह उपबंध किया गया है कि यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि भारत में या उसके किसी राज्य क्षेत्र में वित्तीय साख को खतरा उत्पन्न हो गया है तो वह वित्तीय संकट की घोषणा कर सकते हैं।

वित्तीय आपात की उद्घोषणा को भी राष्ट्रीय आपात के समान ही दो माह के अन्दर संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यदि दो माह के पूर्व संसद के दोनों सदन अपनी स्वीकृति प्रदान कर दे तो इसे अनिश्चित काल तक लागू किया जा सकता है। अन्यथा यह उद्घोषणा दो माह की समाप्ति पर स्वतः ही समाप्त हो जाएगी। यदि इसी दौरान लोकसभा का विघटन हुआ है तो राज्यसभा की स्वीकृति आवश्यक है। परन्तु नवीन लोक सभा के प्रथम बैठक के तीस दिन के अन्दर लोक सभा की स्वीकृति आवश्यक है अन्यथा घोषणा स्वतः ही निरस्त हो जाएगी।

वित्तीय आपात की घोषणा का प्रभाव --

संघ और राज्यों के किसी भी वर्ग के अधिकारियों के वेतन में कमी की जा सकती है।
 इस समय राष्ट्रपति न्यायाधीशों के वेतन में भी कटौती के आदेश दे सकता है।
 राज्य के समस्त वित्त विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए पेश किये जाने के निर्देश दिये जा सकते हैं।
 संघीय सरकार, राज्य की सरकार को शासन संबन्धी आवश्यक निर्देश दे सकती है।
 राष्ट्रपति द्वारा संघ और राज्यों के मध्य वित्तीय वितरण के संबंध में आवश्यक निर्देश दे सकता है।

5.6 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति -

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को प्रदान की गयी व्यापक शक्तियों के आधार पर यह धारणा बनी कि राष्ट्रपति कुछ शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद के परामर्श के विना भी कर सकते हैं। जो संसदात्मक व्यवस्था के परम्पराओं के विपरीत है। इस लिए इसके निवारण के लिए 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 74 के स्थान पर इस प्रकार के उपबन्ध किया गया

राष्ट्रपति को सहायता और परामर्श देने के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक मन्त्रिपरिषद होगी और राष्ट्रपति अपने कार्यों के संपादन में मन्त्रिपरिषद के परामर्श के आधार पर कार्य करेगा। इस उपबन्ध से राष्ट्रपति के पद की गरिमा को आघात पहुँचा। इस लिए 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा निम्न उपबन्ध किये गये -

राष्ट्रपति को मन्त्रिपरिषद से जो परामर्श पगाप्त होगा उसके संबन्ध में राष्ट्रपति को यह अधिकार होगा कि वह मन्त्रिपरिषद को इस परामर्श पर पुनर्विचार करने के लिए कहे, लेकिन पुनर्विचार के बाद मन्त्रिपरिषद जो परामर्श देगी, राष्ट्रपति उसी परामर्श के अनुसार कार्य करेगा।

इस प्रकार राष्ट्रपति के संबन्ध में संवैधानिक स्थिति यह नियत करती है कि संसदीय शासन की भावना के अनुरूप राष्ट्रपति, राष्ट्र का संवैधानिक प्रधान है। किन्तु भारतीय राजनीति में उभरती हुई अनिश्चितता के दौर में राष्ट्रपति की भूमिका सक्रिय और अतिमहत्वपूर्ण होती जा रही है। राष्ट्रपति की इस सक्रियता और महत्ता का कारण, गठबन्धन की राजनीति और प्रधानमंत्री पद की गरिमा में तेज गिरावट प्रमुख कारण है।

अभ्यास प्रश्न ---

8. राष्ट्रपति का निर्वाचन प्रत्यक्ष चुनाव के द्वारा होता है - सत्य/असत्य
9. राष्ट्रपति के निर्वाचन में केवल लोक सभा और राज्य सभा के सदस्य भाग लेते हैं - सत्य/असत्य
10. राष्ट्रपति पर महाभियोग अनुच्छेद 63 के तहत लगाया जाता है - सत्य/असत्य
11. राष्ट्रपति को शपथ राज्यपाल दिलाते हैं - सत्य/असत्य
12. राष्ट्रपति राज्यपाल की सिफारिश से अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रीय आपात की घोषणा करते हैं - सत्य/असत्य

5.7 सारांश -

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया है कि राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होने के साथ ही साथ व्यवस्थापिका का अंग भी है, क्योंकि संसद के द्वारा पारित कोई भी विधेयक तभी कानून बनता है जब राष्ट्रपति उसे अपनी स्वीकृति देते हैं। इस प्रकार संसदीय शासन की जो प्रमुख विशेषता है -व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप, वह राष्ट्रपति के पद में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। भारत में संसदीय प्रणाली में राष्ट्रपति कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान है किन्तु ब्रिटेन के सम्राट के समान वह रबर मुहर नहीं है। राष्ट्रपति को कुछ विवेकी शक्तियां प्राप्त हैं और कुछ स्थितियों में भारत के राष्ट्रपति ने बड़ी ही समझदारी से कार्य किया है। जब किसी दल को लोकसभा में बहुमत नहीं मिलता है तो राष्ट्रपति स्वविवेक से उसे सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करता है, जिसे वह समझे कि वह सदन में अपना बहुमत सिद्ध कर सकता है। इसके साथ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि 1984 में इन्दिरागांधी की हत्या के उपरान्त प्रधानमंत्री का पद रिक्त न हो, राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने राजीवगांधी को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया है। किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए राष्ट्रपति के द्वारा लौटाया जाना भी अपने आप में गम्भीर विषय माना जाता है। इस प्रकार जैसा उपर उल्लेख किया गया है राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होने के नाते व्यापक रूप से नियुक्तियाँ करने और पदच्युत करने का भी अधिकार है। साथ ही क्षमादान की महत्वपूर्ण शक्ति भी प्राप्त है। विधायन के क्षेत्र में जब संसद का सत्र न चल रहा हो तो राष्ट्रपति की अध्यादेश निकालने की शक्ति भी महत्वपूर्ण है। इस प्रकार से यह पद भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

5.7 शब्दावली -

संसद = राष्ट्रपति + राज्य सभा + लोकसभा

औपचारिक प्रधान:- जिसके नाम से समस्त कार्य किये जाते हैं परन्तु वह स्वयं उन शक्तियों का प्रयोग न करता हो।

गणतन्त्र:- राज्य का प्रधान निर्वाचित हों, वंशानुगत राजा नहीं

कोटा:- जीत के लिए आवश्यक न्यूनतम मत (समस्त का 51 प्रतिशत)

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

- 1- लोकसभा, राज्यसभा और सभी राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य
- 2- 5 वर्ष, 3-अनुच्छेद 61, 4-अनुच्छेद 124, 5-अनुच्छेद 217, 6-अनुच्छेद 352,
- 7-आन्तरिक अशान्ति, 8- असत्य, 9- असत्य, 10- असत्य, 11- असत्य,

 12- असत्य

5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची -

डॉ रूपा मंगलानी - भारतीय शासन एवं राजनीति (2009), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

त्रिवेदी एवं राय - भारतीय सरकार एवं राजनीति

महेन्द्र प्रताप सिंह - भारतीय शासन एवं राजनीति (2011), ओरियन्टल ब्लैक स्वान नई दिल्ली

भारतीय प्रशासन - अवस्थी एवं अवस्थी (2011), लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा

5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री -

भारत का संविधान - ब्रज किशोर शर्मा (2008), प्रेन्टिस हॉल ऑफ इंडिया नई दिल्ली

भारत में लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया (2010) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

The Constitution of India – J.C. Johari¼ 2004½ Sterling Publishers Private Limited New Delhi

5.11 निबंधात्मक प्रश्न-

- 1-. राष्ट्रपति कार्यपालिका के औपचारिक प्रधान से अधिक है। स्पष्ट कीजिए।
- 2-. राष्ट्रपति के चुनाव प्रक्रिया की विवेचना कीजिए ?
- 3-. राष्ट्रपति के आपातकालीन शक्तियों की समीक्षा कीजिए

इकाई छः प्रधानमंत्री, मन्त्रिपरिषद

इकाई की संरचना

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 उद्देश्य
- 6.3 प्रधानमंत्री एक परिचय
 - 6.3.1 प्रधानमंत्री की नियुक्ति
 - 6.3.2 प्रधानमंत्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध
 - 6.3.3 प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध
 - 6.3.4 प्रधानमंत्री और संसद के बीच सम्बन्ध
- 6.4 सारांश
- 6.5 शब्दावली
- 6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 6.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 6.9 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना:-

पिछली इकाई में भारतीय प्रशासन में राष्ट्रपति की स्थिति के बारे में अध्ययन किया है और पाया कि भारत का राष्ट्रपति ब्रिटेन के सम्राट से अधिक शक्तिशाली और महत्वपूर्ण स्थिति में है क्योंकि एक तरफ वह पर राष्ट्र की एकता और गरिमा का प्रतीक है तो उसे कुछ स्वविवेकि शक्तियाँ प्रदान कर राजव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थिति प्रदान की गई है।

इस इकाई में हम देखेंगे कि राष्ट्रपति के नाम से जिन शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद करती है। उसका प्रधान प्रधानमन्त्री होता है। प्रधानमन्त्री का पद हमारे देश में संसदीय शासन प्रणाली होने के नाते बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होने के नाते इस कारण से सदन का नेता होने के कारण और अन्ततः दलीय अनुशासन के कारण से शासन व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। किन्तु यही शक्तिशाली प्रधानमन्त्री की स्थिति, गठबंधन सरकार होने पर अत्यन्त कमजोर हो जाती है फिर भी वह केन्द्रीय सत्ता की धुरी होता है।

6.2 उद्देश्य:-

1. इस इकाई के अध्ययन से हम जान सकेंगे कि संसदीय शासन में प्रधानमंत्री कितना महत्वपूर्ण है।
2. सरकार के गठन में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
3. वह निम्न सदन (लोक सभा) का नेता भी होता है।
4. वह अपने दल का अत्यधिक प्रभावशाली होता है।
5. मन्त्रिपरिषद के विघटन की भी महत्वपूर्ण शक्ति होती है।

6.3 प्रधानमन्त्री एक परिचय

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। इस शासन में प्रधानमन्त्री का पद, शासन व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु होता है। इसमें नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद पाया जाता है। नाममात्र की कार्यपालिका राष्ट्रपति होता है। वास्तविक कार्यपालिका मन्त्रिपरिषद होती है, जिसका नेतृत्व प्रधानमन्त्री करता है। राष्ट्रपति के नाम से समस्त कार्यपालिका शक्तियों प्रयोग, प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में मन्त्रिपरिषद करती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 74(1) के अनुसार राष्ट्रपति को अपने कार्यों में सहायता तथा मन्त्रणा के लिए एक मन्त्रिमण्डल होगा, जिसका प्रधान प्रणानमन्त्री होगा। इसके आगे अनुच्छेद 75(1) में कहा गया है कि, प्रधानमन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री के परामर्श पर करेगा। संसदीय लोकतन्त्र की परम्परा के अनुसार राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करते हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हमारे संविधान में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है कि राष्ट्रपति बहुमत दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करने को बाध्य हो।

अनुच्छेद 75(5) के अनुसार के कोई भी व्यक्ति संसद का सदस्य हुए बिना छः माह तक मन्त्री पद पर रह सकता है। साथ ही यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रधानमन्त्री का नियुक्ति निम्न सदन (लोक सभा) से ही हो। उदाहरण स्वरूप-इन्दिरागान्धी को जब पहली बार 1966 प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया तो उस समय वे उच्च सदन (राज्य सभा) की सदस्य थी। ब्रिटेन की संसदीय परम्पराओं के अनुसार प्रधानमन्त्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति ने कभी अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया बल्कि बहुमत प्राप्त दल के नेता, किसी दल को बहुमत न मिलने की स्थिति में सबसे बड़े दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया।

संविधान के उपबन्धों और गत 64 वर्ष के व्यावहारिक अनुभवों से प्रधानमन्त्री के पद और स्थिति की जानकारी के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर विस्तृत विचार करना आवश्यक है -

- 1-प्रधानमन्त्री की नियुक्ति
- 2-प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध
- 3- प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध
- 4- प्रधानमन्त्री और संसद के बीच सम्बन्ध

6.3.1 प्रधानमन्त्री की नियुक्ति

इस बात का उल्लेख ऊपर कर चुके हैं कि संसदीय परम्परा के अनुरूप राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को, प्रधानमन्त्री नियुक्त करता है। 1946 की अन्तरिम सरकार में जवाहरला नेहरू को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया। 1952, 1957 और 1962 के लोकसभा के आम चुनाव में कांग्रेस को सफलता मिली और नेहरू जी को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया जाता रहा। 1964 में इनकी मृत्यु के उपरान्त कांग्रेस के वरिष्ठतम सदस्य गुलजारीलाल नन्दा को, अस्थायी रूप से प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया। इसके पश्चात कांग्रेस अध्यक्ष कामराज की कुशलता से, लालबहादुर शास्त्री को स्थायी प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया।

1966 में शास्त्रीजी की आकस्मिक मृत्यु के उपरान्त एक बार पुनः नेता के चुनाव के प्रश्न पर मतभेद उभरा, क्योंकि कांग्रेस अध्यक्ष कामराज इन्दिरा गाँधी को चाहते थे जबकि कांग्रेस के वरिष्ठतम सदस्य मोरारजी देसाई भी दावेदारी कर रहे थे। फलस्वरूप दल के चुनाव में श्रीमती गाँधी 169 के मुकाबले 355 मतों से विजयी रहीं। दल में इस विभाजन के कारण 1967 के चुनाव में कुछ राज्यों में भारी पराजय का सामना करना पड़ा। कांग्रेस, लोकसभा के 1962 के चुनाव में 361 स्थानों पर विजयी हुई थी जबकि 1967 में यह संख्या घटकर 283 हो गई। 1967 के चुनाव के उपरान्त इन्दिरा गाँधी सर्वसम्मति से प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त की गयी। दूसरे गुट के सदस्य मोरारजी देसाई को उपप्रधानमन्त्री और गृहमन्त्री के पद पर नियुक्त किया गया। फिर भी मोरारजी देसाई को असन्तोष था और उन्होंने इन्दिरा गाँधी के प्रगतिशील आर्थिक नीतियों का, जैसे बैंकों के राष्ट्रीयकरण का विरोध किया। 1969 के राष्ट्रपति के चुनाव में तो यह विरोध और भी मुखर होकर सामने आ गया। कांग्रेस के अधिकृत उम्मीदवार नीलम संजीव रेड्डी के खिलाफ, श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने निर्दल प्रत्याशी वी0वी0 गिरी को राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित करवाया। फलस्वरूप कांग्रेस का विभाजन हो गया। इन्दिरा गुट अल्पमत में आ गयी। प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने लोकसभा का विघटन कर दिया। 1971 के पूर्वार्द्ध में लोकसभा का प्रथम मध्यावधि चुनाव हुए। इन्दिरा गुट को भारी सफलता प्राप्त हुई और राष्ट्रपति ने इन्दिरा गाँधी को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। इस सफलता ने श्रीमती गांधी को एक शक्तिशाली नेता के रूप में, राजनीतिक मंच पर स्थापित कर दिया।

इन्दिरा गाँधी की चुनावी सफलता और समाजवाद के चमत्कारिक नारे ने उनके प्रभाव में ऐसी वृद्धि की कि कांग्रेस के सर्वमान्य नेता के रूप में स्थापित हुई। 1977 के लोक सभा चुनाव में कांग्रेस की पराजय हुई और जनता पार्टी को सफलता मिली। मोरारजी देसाई को, राष्ट्रपति ने, प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया।

जनता पार्टी के सरकार बनाने के समय से ही उसके विभिन्न घटक दलों में मतभेद थे, जो 1977 तक बहुत बढ़ गया। इस स्थिति को देखते हुए जुलाई 1977 में विपक्ष अविश्वास प्रस्ताव ले आया और मोरारजी देसाई ने विना सामना किये ही प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। इसके पश्चात सरकार बनाने की विभिन्न संभावनाओं पर विचार करते हुए, चौधरी चरण सिंह को, तीन महीने में बहुमत सिद्ध करने की शर्त के साथ, सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया। परन्तु कांग्रेस पार्टी ने चरण सिंह से अपना समर्थन वापस ले लिया। यह समर्थन चरण सिंह लोकसभा में बहुमत सिद्ध करने की तिथि के पहले ही ले लिया। परिणामस्वरूप चौधरी चरण सिंह ने लोकसभा का सामना किये विना ही त्यागपत्र देते हुए राष्ट्रपति से लोकसभा विघटित करने की सिफारिश की। तत्कालीन राष्ट्रपति ने लोकसभा का विघटन करते हुए, चौधरी चरण सिंह को कार्यवाहक प्रधानमंत्री के रूप में रहने दिया।

1980 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस पार्टी को एक बार पुनः आश्चर्यजनक सफलता मिली और श्रीमती गाँधी एक बार पुनः प्रभावशाली प्रधानमंत्री के रूप में स्थापित हुईं। किन्तु श्रीमती गाँधी की दुर्भाग्यपूर्ण हत्या (31 अक्टूबर 1984) हो गयी। तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने कांग्रेस संसदीय बोर्ड की सिफारिश पर राजीव गांधी को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया। चूँकि श्रीमती गाँधी की हत्या के कारण राजीव गाँधी के साथ जनता की बहुत सहानुभूति थी। इस लिए 1984 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को अब तक सर्वाधिक सीटें प्राप्त हुईं। इस सफलता के केन्द्र में राजीव गाँधी थे। इस लिए राजीवगाँधीका प्रधानमंत्री बनना तय था। भारतीय राजव्यवस्था और प्रधानमंत्री पद के लिए 1989 का लोकसभा चुनाव, एक विभाजक चुनाव था। इस चुनाव ने एकदलीय प्रभुत्व का अन्त किया क्यों कि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। जनता दल के वी0पी0 सिंह भाजपा सहित अन्य दलों के समर्थन से प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किये गये किन्तु नवम्बर 1990 में भाजपा के समर्थन वापस लेने की वजह से वी0पी0 सिंह सरकार का पतन हो गया। वी0पी0 सिंह सरकार के पतन के साथ ही जनता दल का विभाजन हो गया। चन्द्रशेखर सिंह (जनता दल -समाजवादी-61 लोकसभा सदस्य) ने कांग्रेस के समर्थन से प्रधानमंत्री पद प्राप्त किया। कांग्रेस के समर्थन वापस लेने कारण चन्द्रशेखर सरकार का भी अल्पायु में ही, जून 1991 में पतन हो गया। 1991 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस सबसे बड़े दल के रूप में उभरी। मई 1991 राजीव गांधी की हत्या हो गयी। इस राजनीतिक वातावरण में पी0वी0 नरसिंहराव को, राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया।

1996 के लोकसभा चुनाव में भी किसी दल को बहुमत नहीं मिला। तेरह दलों के सहयोग प्राप्त भाजपा के अटलबिहारी वाजपेयी को राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया। किन्तु इस सरकार का कार्यकाल मात्र तेरह दिन ही रहा। इसके पश्चात एच0डी0 देवगौड़ा और इन्दकुमार गुजराल की कांग्रेस समर्थित सरकारें बनीं जों अल्पकालिक ही रहीं। 1998 के लोकसभा चुनाव में

के पश्चात भाजपा और उसके सहयोगी दलों के नेता अटलविहारी वाजपेयी पुनः प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त हुए। किन्तु यह सरकार भी स्थायी नहीं रही और पुनः 1999 में लोकसभा के चुनाव में किसी भी दल को बहुमत नहीं प्राप्त हुआ। अटल विहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा सहित पन्द्रह दलों की गठबंधन सरकार का गठन किया गया। इस गठबंधन सरकार में मंत्रिमंडल के सदस्यों का चयन प्रधानमंत्री की इच्छा पर निर्भर न होकर घटक दलों की इच्छा और उनकी सौदेवाजी की स्थिति पर आधारित था।

इसी प्रकार 2004 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस के नेतृत्व में ग्यारह दलों के औपचारिक समर्थन और आठ दलों के बाहर से समर्थन से सरकार गठबंधन सरकार का गठन हुआ। इस सरकार ने अपना कार्यकाल पूरा किया। 2009 के 15वीं लोक सभा चुनाव में पुनः कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार का गठन हुआ। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि गठबंधन सरकार में मंत्रिपरिषद के गठन में प्रधानमंत्री पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं होते हैं क्योंकि क्षेत्रीय दल सरकार को समर्थन अपने हितों की सिद्धि के लिए करते हैं। ऐसे सौदेबाजी के वातावरण में प्रधानमंत्री की स्थिति बहुत मजबूत एवं निर्णायक नहीं हो सकती।

भारत के प्रधानमंत्री का क्रमवार विवरण इस प्रकार है ---

क्रम सं.	प्रधानमंत्री का नाम	संसदीय क्षेत्र से	कब से	कब तक	राजनीतिक दल
1	जवाहर लाल नेहरू	फूलपुर	15 अगस्त 1947	27 मई 1964	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
2	गुलजारीलाल नंदा	साबरकंठा	27 मई 1964	9 जून 1964	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
3	लाल बहादुर शास्त्री	इलाहाबाद	9 जून 1964	11 जनवरी 1966	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
4	गुलजारीलाल नंदा	साबरकंठा	11 जनवरी 1966	24 जनवरी 1966	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
5	इंदिरा गाँधी	रायबरेली	24 जनवरी 1966	24 मार्च 1977	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
6	मोरारजी देसाई	सूरत	24 मार्च 1977	28 जुलाई 1979	जनता पार्टी
7	चौधरी चरण सिंह	बागपत	28 जुलाई	14 जनवरी	जनता

			1979	1980	पार्टी(सेकुलर, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके साथ)
8	इंदिरा गाँधी	मेडक	14 जनवरी 1980	31 अक्टूबर 1984	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस(आई)
9	राजीव गाँधी	अमेठी	31 अक्टूबर 1984	2 दिसंबर 1989	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस(आई)
10	विश्वनाथ प्रताप सिंह	फतेपुर	2 दिसंबर 1989	10 नवंबर 1990	जनता दल(नेशनल फ्रंट)
11	चंद्र शेखर सिंह	बलिया	10 नवंबर 1990	21 जून 1991	समाजवादी जनतापार्टी (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ)
12	पी.वी. नरसिम्हाराव	नंदयाल	21 जून 1991	16 मई 1996	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस(आई)
13	अटल विहारी वाजपेयी	लखनऊ	16 मई 1996	1 जून 1996	भारतीय जनता पार्टी
14	एच. डी. देवगौडा	कर्नाटक(राज्यसभा)	1 जून 1996	21 अप्रैल 1997	जनता दल (यूनाइटेड फ्रंट)
15	आई.के. गुजराल	बिहार (राज्यसभा)	21 अप्रैल 1997	19 मार्च 1998	जनता दल (यूनाइटेड फ्रंट)
16	अटल विहारी वाजपेयी	लखनऊ	19 मार्च 1998	22 मई 2004	भारतीय जनता पार्टी (एन .डी.ए .)
17	मनमोहन सिंह	असम (राज्यसभा)	22 मई 2004	26 मई 2014	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस(यू.पी.ए.)
18	नरेन्द्र दामोदरदास मोदी	वाराणसी	26 मई 2014	जारी	भारतीय जनता पार्टी (एन.डी.ए.)

6.3.2 प्रधानमंत्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75(1) के अनुसार राष्ट्रपति मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की मंत्रणा से करता है। भारत में भी इंग्लैण्ड के समान संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संसदीय

परम्परा का अनुसरण करते हुए भारत में भी मंत्री पद के लिए चयन प्रधानमंत्री करते हैं, राष्ट्रपति की स्वीकृति एक औपचारिकता हाती है। प्रधानमंत्री मंत्रियों के चयन में उस समय शक्तिशाली होता था और उसके निर्णय निर्णायक भी होते थे, जब एक दल बहुमत के आधार पर सरकार का गठन करता था। किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में स्थिति काफी हद तक बदल गयी है क्योंकि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिल पा रहा है। सरकार के गठन और उसकी स्थिरता के लिए, विभिन्न क्षेत्रीय दलों के सहयोग की आवश्यकता होती है। ये क्षेत्रीय दल सहयोग के बदले में मंत्री पद प्राप्त करने की सौदेबाजी करते हैं। मंत्रियों को विभागों का बंटवारा भी प्रधानमंत्री का विवेकाधिकार होता है परन्तु मंत्रिपरिषद का गठन करते समय उन्हें जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र तथा सहयोगी क्षेत्रीय दलों की निम्न सदन (लोकसभा) में सफल सदस्यों की संख्या के महत्व देना पड़ता है।

6.3.3 प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध

भारतीय प्रशासन में प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच का संबंध अतिमहत्वपूर्ण है क्योंकि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संसदीय शासन प्रणाली में राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका हाते हैं, जिनके नाम से सभी कार्य किये जाते हैं। जबकि मंत्रिपरिषद वास्तविक कार्यपालिका होती है। प्रधानमंत्री, मंत्रिपरिषद को नेतृत्व प्रदान करते हैं। मूल संविधान में यह उपबन्ध था कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं थे किन्तु 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह उपबन्ध किया गया कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद की सिफारिस मानने के लिए बाध्य है। 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा पुनः पूर्व स्थिति को बहाल कर दिया गया।

राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच संबंध मुख्यतः दो बातों पर निर्भर करता है-1- राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच का दलीय संबंध - यदि दोनों एक ही दल के हैं तो दलीय अनुशासन के कारण, संबंध सामान्य बने रहेंगे। जैसा कि 1977 तक स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। 2- राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री का व्यक्तित्व और उनके राजनीतिक प्रभाव भी, दोनों के बीच के संबंध को प्रभावित करते हैं। यदि राष्ट्रपति के चुनाव में प्रधानमंत्री की भूमिका है तो दोनों के बीच के संबंध काफी हद तक सामान्य रहे हैं, जैसा कि जाकिर हुसैन, वी0वी0 गिरि, फखरुद्दीन अली अहमद और ज्ञानी जैल सिंह के मामले में हुआ है। किन्तु 31 अक्टूबर 1984 को श्रीमती इन्दिरा गान्धी की हत्या हो गयी। इसके पश्चात राजीव गांधी को राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। 1986 तक तो संबंध अच्छे रहे किन्तु 1987 के प्रारम्भ से दोनों के बीच के संबंधों में कड़वाहट शुरू हुई और ऐसा लगने लगा कि राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह, प्रधानमंत्री राजीव गांधी को पद से हटाकर लोकसभा का विघटन कर देंगे। संविधान लागू होने के पश्चात ऐसा सर्वप्रथम हुआ कि एक ही दल का होने के बावजूद राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री में गम्भीर मतभेद उभर कर सामने आये।

6.3.4 प्रधानमंत्री और संसद के बीच सम्बन्ध

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। भारत में प्रधानमंत्री की नियुक्ति निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल की जाती है। यद्यपि उच्च सदन से प्रधानमंत्री की नियुक्ति को लेकर कोई कानूनी बंधन नहीं हैं। हमारे देश में सर्वप्रथम 1966 में श्रीमती इन्दिरा गांधी को राज्य सभा के सदस्य के रूप में प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया। इसके पश्चात वर्तमान प्रधानमंत्री डॉ मनमोहन सिंह भी राज्यसभा सदस्य हैं।

प्रधानमंत्री लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है, इस लिए सदन का भी नेता होता है। सदन का नेता होने के नाते विपक्ष के अधिकारों के रक्षा की और सदन की कार्यवाही में उनकी भागीदारी हेतु अवसर प्रदान करेंगे। इस हेतु वे विपक्ष से परामर्श करते हैं और उनकी शिकायतों का निराकरण करने का प्रयत्न भी करते हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75(3) के अनुसार मंत्रिमण्डल सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है। इसका तात्पर्य यह है कि मंत्रिमण्डल का अस्तित्व तभी तक है जब तक कि उसे लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त है। किन्तु व्यावहारिक स्थिति कुछ और ही है, क्योंकि दलीय अनुशासन के कारण, लोकसभा में बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल, मंत्रिमण्डल के विरुद्ध नहीं जा पाता है। संसदीय परम्परा के अनुसार प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति से सिफारिश करके लोकसभा का विघटन करवा सकता है। इस अधिकार के कारण प्रधानमंत्री लोकसभा को नियंत्रित करने में काफी हद तक सफल रहता है। प्रथम लोकसभा के गठन से आज तक 59 वर्षों में कई बार लोकसभा का विघटन समय से पूर्व करते हुए मध्यावधि चुनाव कराये गये।

समय से पूर्व लोकसभा का विघटन

क्रम	किस प्रधानमंत्री की सिफारिश पर	राष्ट्रपति ने विघटन किया	सन्
1	श्रीमती इन्दिरा गाँधी		1970
2	श्रीमती इन्दिरा गाँधी		1977
3	चौधरी चरण सिंह		1979
4	राजीव गाँधी		1984
5	चन्द्रशेखर सिंह		1991

6	अटल विहारी वाजपेयी	1998
7	अटल विहारी वाजपेयी	1999

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जब किसी एक दल को निरपेक्ष बहुमत रहा है तो लोकसभा पर प्रधानमंत्री का नियंत्रण बहुत ही प्रभावशाली रहा है परन्तु जब गठबंधन सरकारें रहीं हैं (जैसे 1977,1989,1991,1996,1998,1999,2004 और 2009 में) तब लोकसभा पर नियंत्रण की बात तो दूर की रही ,वे स्वयं ही अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देते रहे हैं ।

अभ्यास प्रश्न

1. प्रधानमंत्री की नियुक्ति की जाती है, या निर्वाचित होता है
2. निम्न सदन का नेता कौन होता है ?
3. प्रधानमंत्री की नियुक्ति कौन करता है ?
4. भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री कौन है ?
5. भारत की प्रथम प्रधानमंत्री जो राज्य सभा सदस्य थी
6. कोई मंत्री बिना संसद सदस्य रहे कितने माह मंत्री रह सकता है ?

6.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हम संसदीय शासन में प्रधानमंत्री की नियुक्ति हेतु अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हुई | साथ ही यह भी देखा की किस प्रकार से प्रधानमंत्री इस शासन व्यवस्था में बहुत ही शक्तिशाली होकर उभरता है | यहाँ यह भी देखने को मिला कि प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य करता है |और समय समय पर मंत्रिपरिषद द्वारा लिए गए निर्णयों की जानकारी भी राष्ट्रपति को देता है |

उपरोक्त अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो गया कि किस प्रकार से इस शासन व्यवस्था में सम्पूर्ण शासन व्यवस्था के केंद्र में प्रधानमंत्री होता है |

6.5 शब्दावली

1. मंत्रिपरिषद = मंत्रिमण्डल , राज्यमंत्री ,उपमंत्री
2. निम्न सदन = लोक सभा को कहते है।

3. उच्चसदन = राज्य सभा को कहते हैं

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. नियुक्ति 2. प्रधानमंत्री 3. राष्ट्रपति 4. डॉ मनमोहन सिंह 5. श्रीमती इन्दिरा गांधी 6 छः माह

6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति	-	डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति	-	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति	-	महेन्द्रप्रतापसिंह

6.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया

6.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत के प्रधानमंत्री की पद एवं स्थिति की विवेचना कीजिए ?
2. प्रधानमंत्री की सदन के नेता और सरकार के मुखिया के रूप में महत्व की व्याख्या कीजिए।
- 3 गठबन्धन सरकारों के युग में प्रधानमंत्री कमजोर हुआ है या मजबूत समीक्षा कीजिए।

इकाई 7 : संसद: लोकसभा - राज्यसभा

इकाई की संरचना

- 7.1. प्रस्तावना
- 7.2. उद्देश्य
- 7.3. भारतीय संसद
- 7.4. संसद का संगठन
- 7.5. राज्यसभा
- 7.6. लोकसभा
- 7.7. संसद की शक्तियाँ
- 7.8. सारांश
- 7.9. शब्दावली
- 7.10. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 7.11. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 7.12. सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 7.13. निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इकाई ६ में हमने यह अध्ययन किया है कि कि राष्ट्रपति के नाम से जिन शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद करती है। उस मन्त्रिपरिषद का प्रधान प्रधानमन्त्री होता है। प्रधानमन्त्री का पद हमारे देश में संसदीय शासन प्रणाली होने के नाते बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होने के नाते इस कारण से सदन का नेता होने के कारण और अन्ततः दलीय अनुशासन के कारण से शासन व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। किन्तु यही शक्तिशाली प्रधानमन्त्री की स्थिति, गठबंधन सरकार होने पर अत्यन्त कमजोर हो जाती है फिर भी वह केन्द्रीय सत्ता की धुरी होता है।

इस इकाई ७ में हम संसद के संगठन, कार्यों और शक्तियों का अध्ययन करेंगे। जिसमें हम यह अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार से राष्ट्रपति संसद का अंग है और उसके पद में संसदीय शासन की प्रमुख विशेषता का समावेश किया गया है। क्योंकि संसदीय शासन की मुख्य विशेषता, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप है क्योंकि कार्यपालिका के सभी सदस्यों के लिए व्यवस्थापिका का सदस्य होना अनिवार्य होता है। और राष्ट्रपति के पद में ये दोनों विशेषताएँ पाई जाती हैं क्योंकि एक तरफ वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है तो दूसरी तरफ वह संसद का अंग होता है क्योंकि कोई भी विधेयक तबतक कानून का रूप नहीं लेता है जब तक कि उसे राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान कर देता है।

इसके साथ ही साथ हम यह भी अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार कानून निर्माण में राज्य सभा को, लोक सभा के सामान शक्तियां न होते हुए भी वह महत्वपूर्ण है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के उपरान्त हम

1. संसद के संगठन के सम्बन्ध में जान सकेंगे
2. राज्य सभा की शक्तियों को जान सकेंगे
3. लोक सभा की शक्तियों को जान सकेंगे
4. अंततः कानून निर्माण में लोक सभा के सापेक्ष राज्य सभा की शक्तियों को जान सकेंगे

7.3 भारतीय संसद

जैसा कि हम पहले की इकाइयों में स्पष्ट कर चुके हैं कि ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए हमारे देश में भी संविधान के द्वारा संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है! यह संसदीय प्रणाली संघ और राज्य दोनों ही स्तरों पर अपनाई गई है! संघीय स्तर के विधान निर्मात्री संस्था को संसद कहते हैं। राज्य स्तर पर विधान निर्मात्री संस्था को हम विधानमंडल कहते हैं। प्रस्तुत इकाई में संघीय विधायिनी संस्था संसद का ही अध्ययन करेंगे।

संसद का गठन द्विसदनीय सिद्धान्त के आधार पर किया गया है।

(1) उच्च सदन-राज्यसभा और (2) निम्न सदन-लोकसभा (जनप्रतिनिधि सदन)। यहाँ पर यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यहीं दोनों सदन मिलकर ही संसद का गठन नहीं करते हैं वरन् - लोकसभा, राज्यसभा और राष्ट्रपति से मिलकर संसद बनती है। चूंकि संसद का मुख्य कार्य कानून निर्माण है। और कोई भी विधेयक तब तक कानून का रूप नहीं ग्रहण करता है, जब तक कि उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति नहीं मिल जाती है। इसलिए राष्ट्रपति संसद का महत्वपूर्ण अंग है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 79 में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि संघ के लिए एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दोनों सदनों से मिलकर बनेगी जिनके नाम क्रमशः राज्यसभा और लोकसभा होंगे।

भारतीय संसद के संगठन और उसके कार्यों आदि के सम्बन्ध में भारतीय संविधान के भाग-5 के अध्याय 2 में अनुच्छेद 79 से 122 तक प्रावधान किया गया है।

यद्यपि हमने ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली अपनाई है, परन्तु भारतीय संसद ब्रिटेन की संसद के समान सर्वशक्तिमान नहीं है। क्योंकि उसके सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित है कि वह स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाने के सिवाय सब कुछ कर सकती है।

7.4 संसद का संगठन

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार संघ के लिए संसद होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी। संसद के अंग - राष्ट्रपति और दो सदन - 1. राज्यसभा 2. लोकसभा

राष्ट्रपति - संसद का अंग है, जिसकी स्वीकृति के बिना कोई भी विधेयक कानून का रूप नहीं ले सकता है। राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल द्वारा 5 वर्ष के लिए किया जाता है निर्वाचक मंडल में संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य, सभी राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य हैं। राष्ट्रपति का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति से एकल संक्रमणीय मत

पद्धति के द्वारा किया जाता है। समय से पूर्व वह उपराष्ट्रपति को त्यागपत्र दे सकता है या साबित कदाचार या संविधान के उल्लंघन के आरोप में महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा पद से हटाया जा सकता है। जिसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 61 में किया गया है।

7.5 राज्यसभा

राज्यसभा की संरचना: भारतीय संविधान के अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्यसभा संसद का उच्च सदन है, जिसकी सदस्य संख्या अधिकतम 250 हो सकती है। (यद्यपि वर्तमान समय में इसमें सदस्य संख्या 245 है।)

250 में से 238 सदस्य राज्यों और संघ-राज्य क्षेत्र से होगा जबकि 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होंगे। जो साहित्य, कला, विज्ञान, समाज सेवा के क्षेत्र में ख्यातिलब्ध व्यक्तित्व होंगे। इस उपबन्ध को रखने के पीछे संविधान निर्माताओं की मंशा यह थी कि सदन को समाज के योग्य और अनुभवी लोगों के अनुभव का लाभ प्राप्त हो सके।

भारतीय संविधान की चौथी अनुसूची में राज्य ओर संघशासित क्षेत्रों से प्रतिनिधियों की 233 की संख्या का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार से $233+12 =$ (राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत) कुल 245 सदस्य राज्यसभा में है। राज्य और संघ-राज्य क्षेत्र में राज्य सभा का प्रतिनिधित्व इस प्रकार है-

राज्य/ संघ राज्य क्षेत्र स्थानों की संख्या राज्य/ संघ राज्य क्षेत्र स्थानों की संख्या

आन्ध्र प्रदेश	- 10	उत्तर-प्रदेश	- 31
असम	-7	उत्तराखंड	-3
बिहार	- 16	पश्चिम बंगाल	-16
झारखंड	-6	जम्मू - कश्मीर	- 4
गोवा	-1	नागालैण्ड	-1
गुजरात	- 11	हिमांचल प्रदेश	-3
हरियाणा	-5	मणिपुर	-1
केरल	-9	त्रिपुरा	1

मध्यप्रदेश	-11	मेघालय	-1
छत्तीसगढ़	-5	सिक्किम	-1
तमिलनाडू	-18	मिजोरम	-1
महाराष्ट्र	-19	अरुणाचल प्रदेश	-1
कर्नाटक	-12	दिल्ली	-3
उड़ीसा	-10	पाण्डिचेरी	-1
पंजाब	-7		
राजस्थान	-10		

राज्यसभा स्थायी सदन है। इसके सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से एक निर्वाचक मंडल के द्वारा किया जाता है। राज्यों के प्रतिनिधियों का चुनाव राज्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार। यहाँ हम यह बताते चलें कि संघ शासित क्षेत्रों में केवल दिल्ली और पाण्डिचेरी को ही राज्यसभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

यद्यपि हमारे देश में संघात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है, जिसमें उच्च सदन में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है, चाहे वे राज्य छोटे हो या बड़े हो। अमेरिका में 50 राज्य हैं सभी राज्यों से उच्च सदन (सीनेट) में दो प्रतिनिधि भेजे जाते हैं। इस प्रकार कुल 100 सदस्य होते हैं, जबकि हमारे यहाँ उच्च सदन (राज्य सभा) में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व न प्रदान कर जनसंख्या के आधार पर प्रदान किया गया है।

अवधि - राज्यसभा एक स्थायी सदन है जिसका कभी विघटन नहीं होता है। किन्तु इसके एक तिहाई सदस्य दो वर्ष की समाप्ति पर सेवानिवृत्त हो जाते हैं। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सदन तो स्थायी है इसके सदस्यों का कार्यक्रम 6 वर्ष का होता है।

योग्यताएँ- राज्यसभा की सदस्यता के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ अपेक्षित हैं-

1. वह भारत का नागरिक है।
2. उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो

3. वह किसी लाभ के पद पर न हो,
4. वह पागल या दिवालिया न हो,
5. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 102 में स्पष्ट उल्लेख है कि संघ अथवा राज्य के मंत्री पद लाभ के पद नहीं समझे जाएंगे।

राज्यसभा के सन्दर्भ में दो पक्ष बहुत ही महत्वपूर्ण है-

- 1- राज्यसभा के लिए वह देश के किसी भी प्रदेश का हो, किसी भी प्रदेश में लड सकता है।
- 2- राज्यसभा के लिए मतदान खुला और पारदर्शी होगा।

पदाधिकारी:- राज्य के पदाधिकारी

सभापति

उपसभापति

उपराष्ट्रपति निर्वाचन

राज्यसभा से ही निर्वाचित

संसद के सभी सदस्यों द्वारा (लोकसभा ,राज्यसभा)

राज्यसभा में एक सभापति और एक उपसभापति होते है। उपराष्ट्रपति ही राज्यसभा के सभापति होते है। अनुच्छेद - 89 और राज्यसभा अपने सदस्यों में से ही उपसभापति का चुनाव करती है। उपसभापति सभापति की अनुपस्थिति में सभापति के रूप में कार्य करते है।

(अनुच्छेद 91 के अनुसार) सभापति और उपसभापति को वेतन भारत के संचित निधि से प्रदान किया जाता है। राज्य सभा की गणपूर्ति सदन के सम्पूर्ण सदस्यों की संख्या का 10 प्रतिशत । चूंकि वर्तमान में 245 सदस्य है। इसलिए इसकी गणपूर्ति संख्या 25 है।

राज्य सभा के सभापति को सदन को सुचारु संचालन हेतु व्यापक अधिकार प्राप्त होते है।

जब सभापति और उपसभापति दोनों अनुपस्थित हो तो , राज्यसभा के सभापति के कार्यों का निर्वहन राज्यसभा का वह सदस्य करेगा जिसे राष्ट्रपति नामित करेगा।

राज्य सभा के कार्य एवं शक्तियों-

1. विधायी शक्तियों - राज्य सभा, लोकसभा के साथ मिलकर कानून निर्माण का कार्य करती है। साधारण विधेयको (अवित्तीय विधेयकों) के सम्बन्ध में राज्यसभा को लोकसभा के समान शक्तियों

प्राप्त है। साधारण विधेयक दोनों सदनों में से किसी में भी पहले पेश किया जा सकता है। दोनों सदनों द्वारा पारित होने के पश्चात् राष्ट्रपति के पास उनकी स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। यद्यपि अधिकांश विधेयकों को लोकसभा में ही पहले प्रस्तुत किया जाता है।

यदि विधेयक एक सदन द्वारा स्वीकार कर लिया जाए और दूसरा सदन छ माह तक अपनी स्वीकृति नहीं देता है तो, राष्ट्रपति दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन आहूत करता है। इस संयुक्त अधिवेशन की अध्यक्षता लोकसभा के अध्यक्ष करते हैं। इसमें निर्णय बहुमत से होता है। सैद्धान्तिक रूप से तो दोनों सदनों को समान शक्तियाँ हैं परन्तु व्यवहारतः लोकसभा के सदस्यों की संख्या अधिक होती है, इसलिए लोकसभा का निर्णय ही निर्णायक होता है।

2- संविधान संशोधन की शक्ति - संविधान हेतु दोनों सदनों को समान शक्तियाँ प्राप्त हैं क्योंकि, यह विधेयक भी संसद के दोनों सदनों में से किसी में भी पेश किये जा सकते हैं। वे तभी पारित माने जाएंगे जब दोनों सदनों ने अलग-अलग संविधान में उल्लिखित रीति से पारित किया हो, अन्यथा नहीं। क्योंकि संविधान संशोधन विधेयक के सन्दर्भ में दोनों सदनों में विवाद की स्थिति में किसी प्रकार से संयुक्त अधिवेशन की व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार यदि राज्य सभा संशोधन से असहमत है तो वह, संशोधन विधेयक गिर जाएगा।

3- वित्तीय शक्तियाँ- वित्तीय शक्तियों के सन्दर्भ में राज्यसभा की स्थिति, लोकसभा के समक्ष अत्यन्त निर्बल है क्योंकि कोई भी वित्तीय विधेयक केवल लोकसभा में ही पेश किये जा सकते हैं। जब कोई वित्त विधेयक लोकसभा द्वारा पारित होने के पश्चात् राज्यसभा में पेश किया जाता है तो राज्यसभा अधिकतम 14 दिन तक उस विधेयक पर विचार करते हुए अपने पास रोक सकती है। उसके विचार को लोकसभा माने या न माने यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। यदि राज्य सभा के विचार को लोकसभा न माने तो 14 दिन की समाप्ति पर विधेयक उसी रूप में पारित समझा जाएगा, जिस रूप में उसे लोकसभा ने पारित किया था।

4- कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ - जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली प्रचलित है। इसमें कार्यपालिका निम्न सदन (लोकसभा) के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है। न कि राज्यसभा के प्रति। इसलिए राज्यसभा के सदस्य विभागीय मंत्रियों से प्रश्न पूरक प्रश्न, तारांकित, अतारांकित प्रश्न पूछ सकते हैं, परन्तु मंत्रिपरिषद के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव नहीं ला सकते हैं। इस प्रकार की शक्ति केवल लोकसभा के पास है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कार्यपालिका शक्तियों के सन्दर्भ में राज्यसभा, लोकसभा से बहुत ही निर्बल है।

5- अन्य शक्तियाँ - ऊपर हमने राज्यसभा की शक्तियों का अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य शक्तियाँ भी राज्य सभा की हैं, जो निम्नलिखित हैं -

1. राष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यसभा के निर्वाचित सदस्य भाग लेते हैं।
2. उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यसभा के सभी सदस्य (निर्वाचित+मनोनीत) 233+12 भाग लेते हैं।
3. यह लोकसभा के साथ मिलकर बहुमत से उपराष्ट्रपति को पदच्युत करती है।
4. जब देश में आपात काल लागू हो, तो उसे एक माह से अधिक और संवैधानिक तन्त्र की विफलता की घोषणा हो तो उसे 2 माह से अधिक लागू करने हेतु, लोकसभा के साथ राज्यसभा के द्वारा भी स्वीकृति आवश्यक होती है।
5. लोकसभा के साथ मिलकर राज्यसभा राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को भी पदमुक्त करती है।

राज्यसभा के विशेषाधिकार- उपरोक्त शक्तियों के अतिरिक्त राज्यसभा की कुछ ऐसी शक्तियाँ हैं, जिनका प्रयोग वह अकेले करती है। वे निम्नलिखित हैं-

1. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 112 में उल्लिखित है कि - यदि राज्यसभा अपने दो तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दे कि नई अखिल भारतीय सेवा के सृजन का अधिकार मिल जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि राज्य सभा इस तरह के प्रस्ताव न पारित करे तो केन्द्र सरकार नई अखिल भारतीय सेवा का सृजन नहीं कर सकती है।
2. इसी प्रकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 249 - यदि राज्यसभा के, सदन में उपस्थित तथा मतदान में भाग लेने वाले दो तिहाई सदस्य राज्य सूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दे तो उस पर संसद को कानून निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार का प्रस्ताव प्रारम्भ में केवल एक वर्ष के लिए ही होता है, परन्तु राज्यसभा की इच्छा से इसे बार-बार 1 वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राज्यसभा द्वितीय सदन है तो, साथ ही दूसरे स्तर के महत्व का भी सदन है।

7.6 लोकसभा

जैसा कि हम पहले भी पढ़ चुके हैं कि लोकसभा संघीय संसद का निम्न सदन है, जिसे लोकप्रिय सदन या जनप्रतिनिधि सदन भी कह सकते हैं क्योंकि इनका निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से वयस्क मताधिकार (18 वर्ष की आयु के भारतीय) के द्वारा किया जाता है। भारतीय संविधान में इस बात का प्रावधान है कि लोकसभा में राज्यों से अधिकतम 530 सदस्य हो सकते हैं। 20 सदस्य संघ शासित क्षेत्रों से तथा 2 सदस्य आंग्ल भारतीय समुदाय के राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जा सकते हैं। इस प्रकार लोकसभा में अधिकतम सदस्यों की संख्या 552 हो सकती है।

योग्यता- 1. वह भारत का नागरिक हो।

2. वह भारतीय नागरिक 25 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।

3. संघ सरकार या राज्य सरकार के अधीन, वह किसी लाभ के पद पर न हो।

4. वह, पागल या दिवालिया न हो।

इसके अतिरिक्त अन्य योग्यताएँ जिसका निर्धारण समय-समय पर संसद करे।

कार्यकाल- मूल संविधान के अनुसार लोकसभा का कार्यकाल 5 वर्ष था। परन्तु 42 वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा इसका कार्यकाल 6 वर्ष कर दिया गया। परन्तु पुनः 44 वें संवैधानिक संशोधन 1978 के द्वारा कार्यकाल को घटाकर 5 वर्ष के पूर्व भी लोकसभा का विघटन किया जा सकता है। इस प्रकार 1970, 1977, 1979, 1990, 1997, 1999 और 2004 में समय पूर्व विघटन किया गया।

राष्ट्रपति लोकसभा का अधिवेशन बुलाते हैं। यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि लोकसभा की दो बैठकों के बीच अन्तराल अर्थात् बैठक की अन्तिम तिथि और दूसरी बैठक की प्रथम तिथि के बीच अन्तराल 6 मास से अधिक नहीं होना चाहिए। राज्यसभा के समान इसकी गणपूर्ति भी समस्त सदस्यों का दसवाँ भाग है।

लोकसभा की संरचना - प्रथम आम चुनाव के समय (1952) लोकसभा के सदस्यों की निर्धारित संख्या 500 थी। 31 वें संवैधानिक संशोधन 1974 के द्वारा यह निर्धारित किया गया कि इनकी अधिकतम संख्या 500 हो सकती है। जिनमें 530 सदस्य जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होंगे। राज्यों से। जबकि 20 सदस्य संघ-राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि होंगे। इसके साथ ही साथ 2 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जा सकते हैं। यदि राष्ट्रपति को ऐसा प्रतीत हो कि आंग्लभारतीय

समुदाय को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त है। परन्तु व्यवहार में वर्तमान समय में 545 सदस्य हैं जिनमें 530 राज्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं, 13 संघ राज्य क्षेत्रों से और 2 राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों को लोकसभा में स्थानों का आवंटन

निर्वाचन - लोकसभा के सदस्यों का निर्वाचन भारतीय नागरिकों द्वारा सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। मूल संविधान के अनुसार मताधिकार हेतु न्यूनतम उम्र 21 वर्ष रखी गई थी जबकि 61 वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस आयु को घटाकर 18 वर्ष कर दी गई। अर्थात् 18 वर्ष की आयु का भारतीय नागरिक अपनी पसन्द के प्रत्याक्षी को मतदान कर सकता है।

कार्यकाल- लोकसभा की अवधि का निर्धारण उसकी बैठक की तिथि से किया जाता है। अपनी बैठक की प्रथम तिथि से 5 वर्ष की अवधि होती है। परन्तु भारतीय संविधान के अनुच्छेद 83 (2) के अनुसार राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सिफारिश पर 5 वर्ष के पूर्व भी विघटित कर सकता है। किन्तु यह विघटन अवधि 6 माह से अधिक नहीं हो सकती है। अर्थात् विघटन के 6 माह बीतने के पूर्व ही लोकसभा का निर्वाचन हो जाना चाहिए। इस प्रकार के उपबन्ध को रखने का कारण यह कि लोकसभा के दो सत्रों के बीच की अवधि 6 माह से अधिक का नहीं होनी चाहिए।

अधिवेशन - एक वर्ष में लोकसभा के कम से कम दो अधिवेशन होने चाहिए। साथ ही पिछले अधिवेशन की अन्तिम तिथि और आगामी अधिवेशन की प्रथम तिथि के बीच का अन्तराल 6 माह से अधिक का नहीं होना चाहिए। परन्तु यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह अवधि एक ही स्थिति में 6 माह से अधिक हो सकती है जब आगामी अधिवेशन के पूर्व लोकसभा विघटित हो जाए।

पदाधिकारी- लोकसभा में दो मुख्य पदाधिकारी होते हैं- 1. अध्यक्ष 2. उपाध्यक्ष।

अपने सभी सदस्यों में से ही लोकसभा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष, अध्यक्ष के रूप में कार्य करते हैं। परन्तु यदि दोनों अनुपस्थित हो तो सदन का वह व्यक्ति अध्यक्ष के दायित्वों का निर्वहन करेगा जिसे राष्ट्रपति इस हेतु नियुक्त करे।

अध्यक्ष के द्वारा शपथ, अध्यक्ष के रूप में नहीं वरन् लोकसभा के सदस्य के रूप में ग्रहण करता है। यह शपथ उसे लोकसभा का कार्यकारी अध्यक्ष (प्रोटेम स्पीकर) दिलाता है जो सदन का सबसे वरिष्ठ सदस्य होता है। इस परम्परा का अनुसरण फ्रान्स की परम्परा से लिया गया है।

अध्यक्ष को पद से हटाया जाना - लोकसभा के समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित प्रस्ताव के द्वारा, अध्यक्ष को हटाया जा सकता है। इस प्रकार के प्रस्ताव रखने के 14 दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक

है यहाँ यह पक्ष महत्वपूर्ण है कि जब अध्यक्ष को हटाने का प्रस्ताव विचाराधीन हो तो, अध्यक्ष, लोकसभा की अध्यक्षता नहीं करेगा।

लोकसभा की शक्तियाँ - हमारे देश में लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है। जिसका तात्पर्य है कि अन्तिम रूप से सत्ता जनता में निहित है। लोकसभा जनप्रतिनिधि सदन है क्योंकि इनके सदस्यों का निर्वाचन जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। इसलिए लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों और परम्पराओं के अनुरूप लोकसभा को राज्यसभा की अपेक्षा शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया है। इसलिए संसद में लोकसभा, राज्यसभा और राष्ट्रपति से मिलकर होता है। अब हम लोकसभा के कार्यों और शक्तियों का अध्ययन करेंगे।

1. विधायी शक्ति- जैसा कि हम पहले ऊपर देख चुके हैं कि साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में लोकसभा और राज्यसभा को समान शक्ति प्राप्त है। यह विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। और यह तभी पारित समझा जाएगा जब दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग पारित हो।

परन्तु वित्तीय विधेयक लोकसभा में ही पेश किए जा सकते हैं। साथ ही वित्त विधेयक उसी रूप में पारित हो जाता है, जिस रूप में लोकसभा चाहती है। क्योंकि लोकसभा द्वारा पारित वित्त विधेयक को राज्य सभा केवल 14 दिन रोक सकती है। इसके पश्चात् वह उसी रूप में पारित समझा जाएगा जिस रूप में उसे लोकसभा ने पारित किया था। राज्यसभा के किसी भी संशोधन को स्वीकार करना या अस्वीकार करना लोकसभा की इच्छा पर निर्भर है।

कार्यपालिका शक्ति-

भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से लिखा है भारत की संघीय कार्यपालिका सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। यहाँ यह भी जानना आवश्यक है कि उसी दल को सरकार बनाने का अधिकार होता, और उसी दल के नेता को राष्ट्रपति प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करते हैं। जिसे लोकसभा में समस्त सदस्यों का बहुमत प्राप्त हो। और सरकार तभी तक अस्तित्व में रहती है जब तक उसको लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। मन्त्रिपरिषद् पर प्रश्न पूछकर, पूरक पत्र, अविश्वास प्रस्ताव, कामरोको प्रस्ताव, कटौती प्रस्तावों के माध्यम से नियंत्रण रखते हैं।

संविधान संशोधन की शक्ति - संविधान संशोधन के महत्वपूर्ण कार्य में भी लोकसभा को शक्तियाँ प्राप्त हैं। संविधान संशोधन विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किए जा सकते हैं और यह तभी पारित समझा जाएगा जब दोनों सदन, अलग-अलग संविधान में वर्णित रीति से पारित करें।

महत्वपूर्ण तथ्य यह है इस सम्बन्ध में संयुक्त अधिवेशन का प्रावधान नहीं है। इसलिए दोनों की शक्तियाँ समान हैं।

निर्वाचन सम्बन्धी कार्य- लोकसभा , राज्यसभा के साथ मिलकर उपराष्ट्रपति का निर्वाचन तथा राज्यसभा और राज्य विधानसभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति का निर्वाचन करती है।

7.7 संसद की शक्तियाँ

भारतीय संसद यद्यपि ब्रिटिश संसद के समान सर्वशक्तिमान नहीं है। परन्तु देश की सर्वोच्च विधायी संस्था है जिसकी प्रमुख शक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

1- कानून निर्माण की शक्तियाँ- शासन के तीन अंग होते हैं। व्यवस्थापिका , कार्यपालिका और न्यायपालिका जो क्रमशः कानून निर्माण, कार्यकारी कार्य और न्यायिक कार्य करते हैं। संसद को संघ सूची, समवर्ती सूची और अवशिष्ट शक्तियों पर कानून निर्माण का अधिकार है। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्यसूची के विषयों पर भी कानून निर्माण का अधिकार है-

1. जब राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा चल रही हो।
2. जब राज्यसभा, अनुच्छेद 249 के अनुसार, दो तिहाई बहुमत से राज्यसूची के विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर संसद से विधि निर्माण हेतु आग्रह करें।
3. जब दो या दो से अधिक राज्य विधानमंडल द्वारा प्रस्ताव पारित कर राज्य सूची के विषय पर कानून निर्माण हेतु संसद से आग्रह करें।
2. कार्यकारी कार्य- संसद का अंग लोकसभा होती है। जिसके बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही राष्ट्रपति प्रधानमंत्री उन्हीं में से अपने मन्त्रिपरिषद् का गठन करते हैं।

अनु0 75 (3) के अनुसार मन्त्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है।

वित्तीय कार्य- संसद ही संघ के वित्त नियंत्रण रखती है। वित्त का नियमन करने में संसद की भूमिका निर्णायक होती है। जिसमें उसकी दो महत्वपूर्ण समितियाँ लोकलेखा समिति, प्राक्कलन समिति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भारत के संचित निधि से धन, संसद की स्वीकृति से ही प्राप्त हो सकता है। वार्षिक बजट और रेल बजट संसद के समक्ष पेश किया जाता है। उक्त के साथ-साथ संसद विनियोग विधेयक, अनुपूरक अनुदान, अतिरिक्त अनुदान, लेखानुदान आदि के सम्बन्ध में निर्णायक शक्ति है।

निर्वाचन सम्बन्धी कार्य-

राज्यों से सम्बन्धित कार्य- नए राज्य के गठन, उसकी सीमा और नाम में परिवर्तन का अधिकार संसद को है। इसके तहत वह एक राज्य को विभाजित कर सकती है, दो या दो से अधिक राज्यों को मिलाकर एक राज्य बना सकती है।

महाभियोग सम्बन्धी कार्य- संविधान के अनुच्छेद 61में स्पष्ट उल्लेख है कि संसद साबित कदाचार या संविधान के अतिक्रमण के आरोप में राष्ट्रपति पर विशेष प्रक्रिया से महाभियोग लगा सकती है। इसी प्रकार उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को भी पदच्युत कर सकते हैं।

संविधान संशोधन की शक्ति - उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संसद की शक्तियाँ व्यापक हैं। परन्तु वे अमर्यादित नहीं हैं क्योंकि भारतीय संसद अपनी सीमाओं में ही कार्य करती है।

अभ्यास प्रश्न

1. राष्ट्रपति संसद का अंग है। सत्य / असत्य
2. संसद, राज्य सभा और लोक सभा से मिलकर बनती है। सत्य / असत्य
3. राज्य सभा संसद का जनप्रतिनिधि सदन है। सत्य / असत्य
4. लोक सभा के सदस्यों का जनता के द्वारा निर्वाचन किया जाता है। सत्य / असत्य
5. राज्य सभा का कार्य कल ६ वर्ष है। सत्य / असत्य
6. राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव जनता करती है। सत्य / असत्य
7. राज्य सभा में वर्तमान समय में 543 सदस्य हैं। सत्य / असत्य

7.8 सारांश

इस इकाई में हमने संसद के संगठन और कार्यों का अध्ययन किया है जिसमें हमने यह देखा है कि किस प्रकार से राष्ट्रपति संसद का अंग है और उसके पद में संसदीय शासन की प्रमुख विशेषता का समावेश किया गया है। क्योंकि संसदीय शासन की मुख्य विशेषता, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप है क्योंकि कार्यपालिका के सभी सदस्यों के लिए व्यवस्थापिका का सदस्य होना अनिवार्य होता है। और राष्ट्रपति के पद में ये दोनों विशेषताएँ पाई जाती हैं क्योंकि एक तरफ वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है तो दूसरी तरफ वह संसद का अंग होता है क्योंकि कोई भी विधेयक तब तक कानून का रूप नहीं लेता है जब तक कि उसे राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान कर देता है।

साथ ही हमने इस इकाई में यह भी अध्ययन किया है कि राज्य सभा प्रथम दृष्टया तो कानून निर्माण में सामान दिखाई देती है परन्तु संवैधानिक संशोधन विधेयक के अतिरिक्त सामान्य विधेयक और

वित्तीय विधेयक के मामले में स्थिति गौण है क्योंकि राज्य सभा सामान्य विधेयक को अधिकतम ६ माह तक रोक सकती है और वित्त विधेयक को केवल १४ दिन तक रोक सकती है, इसके पश्चात वह उसी रूप में पारित होगा जिस रूप में लोक सभा चाहेगी। राज्य सभा की आपत्तियाँ का उस विधेयक पर कोई निर्णायक प्रभाव नहीं छोड़ सकती हैं। फिर भी जल्दबाजी में कोई विधेयक न पारित हो, उसके सभी पक्षों पर विचार हो सके इस दृष्टि से राज्य सभा अति महत्वपूर्ण सदन है। इस समय तो और भी जबकि लोक सभा में किसी दल या संगठन को बहुमत हो जबकि राज्य सभा में किसी दल या संगठन को।

7.9 शब्दावली

संसद -- राष्ट्रपति + राज्य सभा + लोक सभा

नाम मात्र की कार्यपालिका – संसदीय शासन प्रणाली में नाम मात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में अंतर पाया जाता है। नाम मात्र की कार्यपालिका वह होता है जिसमें संवैधानिक रूप से सभी शक्तियाँ निहित होती हैं परन्तु उन शक्तियों का वह स्वयं प्रयोग नहीं करता है, वरन मंत्रिपरिषद करती है। भारत में नाम मात्र की कार्यपालिका राष्ट्रपति और ब्रिटेन में सम्राट होते हैं।

वास्तविक कार्यपालिका – यह वह कार्यपालिका जो नाम मात्र की कार्यपालिका को प्रदान की गई शक्तियों का प्रयोग उसके नाम से करती है। जैसे भारत और ब्रिटेन में मंत्रिपरिषद।

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. असत्य 6. असत्य 7. असत्य

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया
भारतीय लोक प्रशासन	-	अवस्थी एवं अवस्थी

7.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	डी.डी. बसु
भारतीय लोक प्रशासन	-	एस.सी. सिंहल

7.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. संसद के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिये ?

इकाई 8 : केन्द्रीय सचिवालय, मन्त्रिमण्डल सचिवालय, प्रधानमन्त्री सचिवालय

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 केन्द्रीय सचिवालय

8.3.1 केन्द्रीय सचिवालय के कार्य

8.4 कैबिनेट(मन्त्रिमण्डल) सचिवालय

8.4.1 कैबिनेट (मन्त्रिमण्डल) सचिवालय के कार्य

8.5 प्रधानमन्त्री कार्यालय

8.5.1 प्रधानमन्त्री कार्यालय के कार्य

8.6 सारांश

8.7 शब्दावली

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

भारतीय प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने हेतु कई मंत्रालयों एवं विभागों में विभाजित किया गया है जिनसे मिलकर केन्द्रीय सचिवालय का निर्माण होता है। मंत्रियों द्वारा सचिवालय से विचार-विमर्श करके नितियों का निर्माण किया जाता है।

मंत्रिमण्डल सचिवालय की स्थापना एक ऐसे प्रशासनिक संस्थान के रूप में की गई है जो मंत्रिमण्डल के कार्यों में सहयोग देने के लिए है। मंत्रिमण्डल सचिवालय देश के एक नीति निर्माण अभिकरण के रूप में स्थापित किया गया है।

भारत में संसदीय प्रणाली होने के कारण व्यावहारिक शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री करता है। सरकार के अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री को शासन कार्यों में कार्यालयीन सहायता करने के लिए 15 अगस्त, 1947 को प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना की गई। इस कार्यालय का निर्माण उन कार्यों का सम्पादन करने के उद्देश्य से किया गया है जिन्हें 15 अगस्त 1947 से पूर्व गवर्नर जनरल के व्यक्तिगत सचिव द्वारा किया जाता था।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात

- 1 - हम केन्द्रीय सचिवालय के संगठन और कार्यों को जान सकेंगे।
- 2 - हम मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय के संगठन और कार्यों को जान सकेंगे।
- 3- हम प्रधानमन्त्री कार्यालय के संगठन और कार्यों को जान सकेंगे।

8.3 केन्द्रीय सचिवालय

भारतीय प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने हेतु कई मंत्रालयों एवं विभागों में विभाजित किया गया है जिनसे मिलकर केन्द्रीय सचिवालय का निर्माण होता है। मंत्रियों द्वारा सचिवालय से विचार-विमर्श करके नीतियों का निर्माण किया जाता है। नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए संलग्न, अधीनस्थ तथा क्षेत्रीय कार्यालय होते हैं। इस प्रकार सचिवालय एक अवधारणा है जिसका अभिप्राय केन्द्र सरकार के स्तर पर गठित मंत्रालयों एवं विभागों के समुच्चय से है जिनका राजनीतिक अध्यक्ष मंत्री होता है एवं प्रशासनिक अध्यक्ष सचिव होता है।

केन्द्रीय सचिवालय की अवधारणा दो विचारधाराओं पर आधारित है-

1 राजनीतिक-प्रशासन द्वैतभाव की विचारधारा:- जिसके अन्तर्गत नीति निर्माण को नीति क्रियान्वयन से पृथक किया गया है। इसके अन्तर्गत सचिवालय की भूमिका को नीति निर्धारण से जोड़ा गया है एवं क्रियान्वयन हेतु क्षेत्रीय संस्थान का निर्माण किया गया है।

2 अवधि प्रणाली की विचारधारा:- केन्द्रीय सचिवालय केन्द्र सरकार के मुख्यालय की हैसियत से नीति निर्माण के लिए उत्तरदायी है परन्तु नीति के क्रियान्वयन के लिए केन्द्रीय सचिवालय के अन्तर्गत क्षेत्रीय संस्थान का निर्माण किया गया है। केन्द्र सरकार के स्तर पर क्षेत्रीय संस्थान मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं-

1.संबंधित कार्यालय या संलग्न कार्यालय:- इसके दो मौलिक कार्य हैं। पहला, नीति निर्माण की प्रक्रिया में तकनीकी परामर्श प्रस्तुत करना एवं दूसरा नीति के क्रियान्वयन का परिवीक्षण करना।

2.अधीनस्थ कार्यालय:- यह केन्द्र सरकार की नीति के वास्तविक एवं क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी माना गया है।

इन दोनों के अतिरिक्त क्षेत्रीय संस्थान निम्नांकित प्रकार के भी हो सकते हैं, जैसे - विभागीय उपक्रम, लोक निगम सरकारी कंपनी आदि। ये तीनों मौलिक स्वरूप हैं। जिनके माध्यम से सरकार वाणिज्यिक एवं व्यावसायिक कार्यों का संचालन करती है।

केन्द्रीय सचिवालय का संगठन:- केन्द्रीय सचिवालय में अनेक मंत्रालय और विभाग हैं जिनकी संख्या घटती बढ़ती रहती है। इसके संगठन को निम्नांकित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

पदाधिकारी

स्तर

मंत्री

मंत्रालय का राजनीतिक अध्यक्ष

सचिव	मंत्रालय का प्रशासनिक अध्यक्ष
विशेष या अतिरिक्त सचिव	-----
अधिकारी वर्ग संयुक्त सचिव	उपविभाग का अध्यक्ष
उपसचिव/निदेशक	प्रभाग का अध्यक्ष
अवर सचिव	शाखा
अनुभाग अधिकारी	अनुभाग
सहायक	अनुभाग अधिकारी का सहायक
कार्यालय	ग्रुप- ब कर्मचारी
ग्रुप- क कर्मचारी	

इस प्रकार निदेशक तथा उपसचिव के पदों को समान स्तर का मानते हुए केन्द्रीय सचिवालय के ढांचे को सचिव से लेकर निम्न श्रेणी तक 9 ग्रेडों में रखा गया है। सचिवालय में अधिकारियों की ये श्रेणियाँ अधिदित सिद्धान्त पर आधारित हैं जिसके अन्तर्गत प्रत्येक श्रेणी के अधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह जितना अधिक कार्य कर सके, उतना करे और केवल महत्वपूर्ण मामले ही उच्च स्तर पर पहुँचे।

अधिकारी वर्ग प्रायः भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य होते हैं। इन अधिकारियों की भर्ती केन्द्रीय सरकार के द्वारा विभिन्न राज्यों की भारतीय प्रशासनिक सेवा श्रेणियों में से कार्यकाल पद्धति के अन्तर्गत की जाती है। यह पद्धति 1905 से लार्ड कर्जन के समय शुरू हुई। इस वर्ग में भर्ती के दूसरे स्रोत केन्द्रीय सचिवालय सेवा का गठन 1951 में किया गया। केन्द्रीय सचिवालय सेवा के अधिकारियों को मंत्रालयों एवं विभागों से इसलिए सम्बद्ध किया जाता है ताकि सचिवालयी कार्यों में निरन्तरता बनी रही। सन् 1957 से केन्द्रीय सचिवालय के उच्चस्थ अधिकारियों की नियुक्ति हेतु केन्द्रीय स्टाफिंग योजना प्रारंभ की गई है।

8.3.1 केन्द्रीय सचिवालय के कार्य

सरकारी हैण्डबुक के अनुसार सचिवालय के प्रमुख कार्य निम्नांकित हैं-

1. नीति का निर्धारण तथा समय-समय पर आवश्यकतानुसार नीति के संशोधन में मंत्री की सहायता करना।
2. नियम, विधान तथा विनियम बनाना।
3. क्षेत्रीय कार्यक्रम और योजना तैयार करना।
4. मंत्रालय या विभाग के कार्यों के सन्दर्भ में बजट तैयार करना और व्यय पर नियन्त्रण करना।
5. प्रारम्भ होने वाले कार्यक्रमों और योजनाओं की वित्तीय तथा प्रशासनिक अनुमति देना और उनमें आवश्यक संशोधन करना।
6. कार्यपालिका विभागों एवं अर्द्ध स्वायत्त क्षेत्रीय अभिकरणों द्वारा निर्मित नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का पर्यवेक्षण करना।
7. नीतियों की व्याख्या करना एवं उनमें समन्वय लाना।
8. मंत्रालय या विभाग में कार्यरत कर्मचारियों एवं संगठन की क्षमता बढ़ाने के लिए कदम उठाना।
9. मंत्री को उसके संसदीय उत्तरदायित्व को पूरा करने में सहायता देना।

इस प्रकार सचिवालय एक प्रशासनिक परामर्शदात्री निकाय है। वह एक ओर तो नीति निर्धारक, समन्वयकर्ता और नियंत्रक निकाय है तो दूसरी ओर सरकार का प्रमुख कार्यपालिका निकाय ही है।

सचिवालय कार्यप्रणाली की आलोचना:- भारत में सचिवालय प्रशासन की रीढ़ है फिर भी सचिवालय की कार्यप्रणाली की निम्नांकित आधारों पर आलोचना की जाती है -

- 1 अनावश्यक रूप से बढ़ता हुआ आकार।
- 2 सचिवालय के कर्मियों की संख्या में इतनी अधिक वृद्धि कि वह एक भीड़ भरा संगठन बन गया है।
- 3 अत्यन्त खर्चिला।
- 4 विलम्बकारी प्रक्रिया।
- 5 विलंब की समस्या से प्रजातंत्र के स्वरूप में भ्रष्टाचार का उदय।

6 सचिवालय यद्यपि नीति निर्माण करने वाली संस्था है तथापि आजकल यह कार्यकारी विभागों के कार्यों का संचालन अधिकाधिक मात्रा में करने लगा है, परिणामस्वरूप एक ओर तो सचिवालय अपना ध्यान नीति निर्माण के कार्य पर क्रेन्द्रित नहीं कर पाता और दूसरी ओर कार्यकारी इकाईयों की शक्ति में हास होता जा रहा है।

7 वर्तमान समय में सचिवालय अपना क्षेत्राधिकार बढ़ाने की मनोवृत्ति से पीड़ित।

8 सचिवालय के कार्यकारी अपने आपको इकाईयों के कार्मिकों से अधिक योग्य मानने की प्रवृत्ति से पीड़ित दिखाई देते हैं।

सचिवालय सुधार के लिये प्रयास एवं सुझाव:- भारत सरकार सचिवालय के दोषों को दूर करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रही है। प्रशासनीक सुधार आयोग के सुझावों पर आवश्यकतानुसार अमल किया गया है, जैसे -

1. निर्णय प्रक्रिया में पदसोपानों की संख्या में कमी करने की दिशा में कदम उठाए गये है।
2. निम्न स्तर पर प्रशासनिक कुशलता लाने के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाती है।
3. सचिवालय में अनावश्यक नियुक्तियों को तथा अनावश्यक व्ययों को हतोत्साहित किया जा रहा है।
4. कर्मचारियों की पदोन्नति के नये नियम लागू हो रहे हैं और यह समझा जाने लगा है कि वरिष्ठ पदों को भरने के लिए आयु को अनावश्यक महत्व न दीया जाए।
5. यह भी सुझाव दिया गया है कि एक मंत्रालय के साथ संलग्न सचिव को दोवर्ष के स्थान पर लगातार पांच वर्ष के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए।

इस के अतिरिक्त सचिवालय की कार्य पद्धति को सरल एवं गतिमान बनाया गया है और लालफीताशाही को समाप्त करने पर जोर दिया जा रहा है। सचिवालय सुधार के लिए कुछ सुझाव निम्नांकित है-

1. सचिवालय की कार्य प्रणली को अधिक गति देने के लिए यह आवश्यक है कि सचिवालय केवल नीति निर्माण का ही कार्य करें।
2. सचिवालय के कार्यों में कुशलता लाने के लिए विभागाध्यक्ष, सचिव तथा मंत्री तीनों के मध्य की दूरीयाँ कम की जाए।

3. प्रशासनिक विभागों की अध्यक्षता हेतु विशेषज्ञ अधिकारियों को प्राथमिकता दी जाए।

अवधि प्रणाली:- अवधि प्रणाली की शुरूवात लार्ड कर्जन के द्वारा 1905 में की गई। इसके अन्तर्गत क्षेत्रीय संस्थान के स्तर पर कार्य करने वाले अधिकारियों को एक निर्धारित अवधि के लिए मुख्यालय के स्तर पर पद स्थापित किया जाता था। आजादी के उपरान्त अवधि प्रणाली से राज्य सरकार के स्तर पर कार्य कर रहे अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों को एक निश्चित समय तक कन्द्रीय सचिवालय में पद स्थापित किया जाता है। अपने इस कार्यकाल को पूरा करने के उपरान्त उन्हें पुनः संबन्धित राज्य सरकार की सेवा में वापिस भेज दिया जाता है।

अवधि प्रणाली के पक्ष में तर्क (गुण)-

1. केन्द्र एवं राज्य के बीच अधिक प्रभावी प्रशासनिक समन्वय प्राप्त किया जा सकता है।
2. अवधि प्रणाली केन्द्र एवं राज्य सरकार दोनों के लिए फायदे मन्द है। केन्द्र सरकार अधिक वास्तविक तरीके से स्थानीय अनुभव के आधार पर नीति का निर्माण कर सकती है क्योंकि राज्य सरकार के स्तर कार्य करने वाले अधिकारियों के पास जिला प्रशासन का वास्तविक अनुभव होता है। राज्य सरकार इन अधिकारियों के माध्यम से अपनी प्रशासनिक गतिविधियों में व्यापक राष्ट्रीय दृष्टिकोण को प्राप्त कर सकती है।
3. भारतीय प्रशासन में समरूपता प्राप्त करने के दृष्टिकोण से अवधि प्रणाली का विशेष योगदान है।
4. अवधि प्रणाली देश की एकता एवं अखण्डता बनाये रखने में सहयोगी है।
5. अवधि प्रणाली की विचारधारा भारतीय संघवाद की विचारधारा से मेल रखती है।
6. अवधि प्रणाली अधिकारियों के बीच समानता के अवसर उपलब्ध कराती है।
7. राज्य सरकार के स्तर पर कार्य करने वाले अधिकारी अधिक राजनीतिक निष्पक्षता के साथ अपने कार्यों का संचालन कर सकते है अर्थात् लोक सेवा के स्वतंत्र एवं निष्पक्ष कार्यों के सन्दर्भ में अवधि प्रणाली की भूमिका महत्वपूर्ण है।
8. अवधि प्रणाली के माध्यम से केन्द्र सरकार अपनी नीतियों पर जनता की सामान्य प्रतिक्रिया को प्राप्त कर सकती है।

अवधि प्रणाली के विपक्ष में तर्क -

1. जब राज्य प्रशासन के अधिकारी केन्द्रीय सचिवालय के अन्तर्गत किसी पद को ग्रहण करते हैं तो ऐसी परिस्थिति में संबंधित मंत्रालय की कार्यपद्धति से परिचित न होने के कारण उस अधिकारी की निर्भरता कार्यालय पर बनी रहती है। अतः जिस अवधि प्रणाली के माध्यम से अधिकारियों की कार्यकुशलता को अधिक करने का प्रयास किया गया है उससे वैसा हो पाना संभव नहीं हो रहा है।
2. केन्द्र सरकार के स्तर पर कुछ एसी गतिविधियाँ संचालित की जाती हैं जिनमें जिला प्रशासन का स्थानीय अनुभव अनिर्वाय नहीं है। अतः ऐसे क्षेत्रों में अवधि प्रणाली की उपयोगिता काफी सीमित हो जाती है।
3. कई परिस्थितियों में ऐसा भी देखने को मिलता है कि राज्य प्रशासन के अधिकारी जब अवधि प्रणाली के अन्तर्गत केन्द्र सरकार के स्तर पर सेवा प्रदान करने जाते हैं तो इसके उपरांत पुनः राज्य प्रशासन की सेवा में वापिस जाने में दिलचस्पी नहीं रखते। अतः अवधि प्रणाली के माध्यम से जो लाभ राज्य प्रशासन को होना चाहिए वह संभव नहीं हो पाता।
4. केन्द्रीय सचिवालय सेवा को स्थापित करने के उपरांत अनुभाग अधिकारी पदोन्नति के माध्यम से उच्चतर अधिकारी वर्ग में शामिल किये जाते हैं। ऐसा होने के कारण अवधि प्रणाली के अन्तर्गत राज्य प्रशासन के अधिकारियों को सीमित अवसर प्राप्त होते हैं।
5. अवधि प्रणाली के अन्तर्गत केन्द्रीय सचिवालय के स्तर पर आने वाले अधिकारियों की संख्या में अनिश्चितता बनी रहती है।
6. सचिवालय सेवा के अधिकारियों के पदोन्नति के अवसर कम, मनोबल प्रभावित, समन्वय की समस्या

8.4 मंत्रिमण्डल सचिवालय

मंत्रिमण्डल सचिवालय की स्थापना एक ऐसे प्रशासनिक संस्थान के रूप में की गई है जो मंत्रिमण्डल के कार्यों में सहयोग देने के लिए है। मंत्रिमण्डल सचिवालय देश के एक नीति निर्माण अभिकरण के रूप में स्थापित किया गया है। भारतीय शासन प्रणाली के अन्तर्गत मंत्रिमण्डल प्रमुख नीति निर्माणकर्ता अभिकरण है। अतः मंत्रिमण्डल सचिवालय के द्वारा सरकार की नीतियों का अंतिम निर्धारण किया जाता है।

मंत्रिमण्डल प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में अपने कार्यों को सम्पन्न करता है। प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल के अध्यक्ष के रूप में मंत्रिमण्डल सचिवालय से परामर्श एवं सहयोग प्राप्त करता है जिसकी अध्यक्षता मंत्रिमण्डल सचिव के द्वारा की जाती है। मंत्रिमण्डल सचिव पूरे देश का सर्वोच्च प्रशासनिक

अधिकारी है। विभिन्न मंत्रालयों के बीच समन्वय को प्राप्त करने के लिए मंत्रिमण्डल सचिवालय को उत्तरदायी माना गया है।

जब प्रधान मंत्री सरकार के अध्यक्ष के रूप में अपने कार्यों का निष्पादन करते हैं तो दैनिक प्रशासनिक सहयोग प्रधानमंत्री कार्यालय के द्वारा प्रदान किया जाता है। ऐसी स्थिति में मंत्रिमण्डल सचिवालय एवं प्रधानमंत्री कार्यालय के बीच आजादी के उपरान्त ही समय समय पर विवादस्पद मुद्दे उठते रहे हैं। संसदीय प्रणालीकी विचारधारा के अनुसार भारतीय शासन में मंत्रिमण्डलीय सचिवालय की भूमिका निर्णायक होनी चाहिए, परन्तु प्रधानमंत्री के बदलते हुए व्यक्तित्व के संदर्भ में मंत्रिमण्डल सचिवालय की निर्णायक भूमिका प्रधानमंत्री कार्यालय में देखने को मिलती है।

संगठन:- मंत्रिमण्डल सचिवालय सीधे प्रधानमंत्री के अधीन कार्य करता है। इसका सचिव कैबिनेट, सचिव होता है जो कि प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ अधिकारी होता है। उसकी सहायता के लिए अन्य अधिकारी एवं कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं। इसका संगठन निम्न प्रकार है-

8.4.1 कैबिनेट सचिवालय के कार्य

कैबिनेट सचिवालय केन्द्रीय प्रशासन का केन्द्र-बिन्दु है। भारत में कैबिनेट की कार्यकुशलता तथा प्रशासन की सुव्यवस्था बहुत हद तक मंत्रिमण्डल सचिवालय की क्षमता पर निर्भर करती है। मंत्रिमण्डल सचिवालय के कार्यों का विवरण निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत दिया जा सकता है-

1. कैबिनेट सचिवालय के रूप में

केन्द्रीय मंत्रिमण्डल तथा उसकी समितियों को दैनिक कार्य से संबंधित सचिवालय सहायता प्रदान कराना।

कैबिनेट की बैठकों की कार्यसूची तैयार करना, वाद-विवाद तथा निर्णयों का अभिलेख रखना।

केन्द्रीय मंत्रिमण्डल, उसकी समितियों, राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति को विभिन्न सरकारी संस्थाओं से संबंधित आवश्यक सूचनायें उपलब्ध कराना।

मंत्रिमण्डल की बैठकों के निर्णयों की सूचना संबंधित विभागों को पहुँचाना।

2. प्रारम्भकर्ता के रूप में:- इस रूप में कैबिनेट सचिवालय तीन प्रकार के प्रारम्भिक कार्य करता है-

मंत्रिपरिषद के मंत्रियों की नियुक्तियाँ, उनके बीच विभागों के वितरण, शपथ ग्रहण, त्यागपत्र आदि से संबंधित समस्त कार्य।

ऐसे कानूनों का निर्माण करना जो सरकार के कार्यों को सुविधापूर्वक सम्पन्न करने में सहायता करते हों।

सरकार की नितियों को लागू करने तथा उनमें समन्वय लाने से सम्बन्धित विभागों की देखरेख रखना।

3. समन्वयकर्ता विभाग के रूप में:- केन्द्रीय प्रशासनिक स्तर पर कैबिनेट सचिवालय एक प्रमुख समन्वय संस्था है। इस रूप में यह निम्नांकित कार्य करता है-

भारत सरकार में कार्यरत विभिन्न मंत्रालयों, विभागों, समितियों आदि के बीच समन्वय स्थापित करना।

सरकार की प्रमुख नीतियों और गतिविधियों में समन्वय।

बण् केन्द्र सरकार एवं विभिन्न राज्य सरकारों के बीच समन्वय।

कैबिनेट सचिव विभिन्न समितियों का अध्यक्ष होने के नाते विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

4. मंत्रिमण्डल के निर्णयों को क्रियान्वित करने के रूप में-

प्रधानमंत्री तथा मंत्रियों को समय-समय पर महत्वपूर्ण विषयों से सम्बन्धित नीतियों के निरूपण एवं निष्पादन के विषय में परामर्श देना।

मंत्रिमण्डल के समक्ष प्रस्तुत सभी विषयों के सम्बन्ध में मंत्रिमण्डल की सहायता और कार्यवाही करना जैसे -संसद में व्यवस्थापन के लिए प्रस्तुत किये जाने वाले प्रस्ताव तैयार करना, सार्वजनिक जांच समितियों की नियुक्ति, संसद के अधिवेशन प्रारम्भ करने, समाप्त करने आदि पर विचार, विदेशों के साथ सन्धियां एवं समझौते इत्यादि।

कैबिनेट सचिवालय का एक महत्वपूर्ण कार्य यह देखना भी है कि मंत्रिमण्डल या उसकी समितियों द्वारा लिये गये निर्णय लागू हो रहे हैं या नहीं। इस कार्य हेतु यह सचिवालय मासिक प्रतिवेदन तैयार करता है।

इस प्रकार प्रशासनिक व्यवस्था में मंत्रिमण्डल सचिवालय का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना के बाद इसके महत्व में धीरे-धीरे कुछ कमी अवश्य देखी जा सकती है। फिर

भी मंत्रिमण्डल सचिवालय, मंत्रिमण्डल के सचिवालय सम्बन्धी कार्यों के लिए स्टाफ भुजा के समान है। अतः उसे सरकारी कार्यों का सम्पादन करने हेतु एक सरकारी विभाग मात्र नहीं मान लेना चाहिए।

मंत्रिमण्डल सचिव –

कैबिनेट सचिवालय का प्रमुख कैबिनेट सचिव होता है जो प्रधानमंत्री के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में रहता है। कैबिनेट सचिव द्वारा मंत्रिमण्डल सचिवालय की एवं सचिवों के सम्मलेन की अध्यक्षता की जाती है। कैबिनेट सचिव भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठतम सदस्य होता है। इसे भारतीय प्रशासन का सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न एवं प्रतिष्ठित पद माना जाता है।

प्रशासनिक सुधार आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार-

1. योग्यतम एवं वरिष्ठतम अधिकारियों को ही कैबिनेट सचिव बनाया जाता है।
2. इस पद को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है कि इसकी अवधि 3 या 4 वर्ष की हो।
3. कैबिनेट सचिव को अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा के वेतन का अधिकतम वेतनमान का अधिकतम वेतन दिया जाये।
4. आयोग के अनुसार महत्वपूर्ण नीति निर्धारक विषयों में उसे अधिक महत्व दिया जाना चाहिए, क्योंकि वह प्रधानमंत्री, मंत्रिमण्डल तथा मंत्रिमण्डलीय समितियों का प्रमुख सलाहकार होता है।

देशमुख टीम के अनुसार इस पद को अन्य सचिवों की तुलना में अधिक वेतनमान दिया जाए। यह टीम इस पद के क्रियान्वयन के तरीके से संतुष्ट नहीं थी और उसने इस पद की गरिमा एवं भूमिका में सुधार के लिए अनेक सिफारिशों की, जैसे -

1. दो या अधिक मंत्रालयों के बीच मतभेद की स्थिति में उन मामलों को कैबिनेट सचिव के पास भेजा जाना चाहिए।
2. कौन सा मामला किस मंत्रालय से सम्बंधित है इसका निराकरण कैबिनेट सचिव पर छोड़ देना चाहिए। साथ ही कैबिनेट सचिव को समय-समय पर अन्य सचिवों से सम्पर्क स्थापित करते रहना चाहिए।

मंत्रिमण्डल सचिवालय एवं मंत्रिमण्डल सचिव की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कारण -

1. मंत्रीमण्डलीय सचिव को प्रधानमंत्री का अपेक्षित संरक्षण न मिलना।

2. मंत्रियों और सचिवालय के उच्चस्थ अधिकारियों में पारस्परिक हितों के लिए गठजोड़, जिसका प्रभाव मंत्रिमण्डलीय सचिव के समन्वय सम्बन्धि कार्यों पर।

3. कार्मिक प्रशासन मंत्रालय का प्रधानमंत्री के नियंत्रण में रखा जाना और कई महत्वपूर्ण विषयों के सन्दर्भ में इस मंत्रालय का हस्तक्षेप तथा मंत्रिमण्डल सचिव की उपेक्षा।

4. प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना के पश्चात् कई बार प्रधानमंत्री की मंत्रिमण्डलीय सचिवालय के बजाय प्रधानमंत्री कार्यालय पर अधिक निर्भरता।

5. कई अवसरों पर मंत्रिमण्डलीय सचिवों की नियुक्ति, सेवा विस्तार कार्य आदि के सम्बन्ध में राजनीतिक हस्तक्षेप।

मंत्रिमण्डल सचिव की कार्यात्मकता को सुदृढ़ करने हेतु कुछ सुझाव:- मंत्रिमण्डल सचिवालय एक प्रभावकारी समन्वयकर्ता निकाय है किन्तु यह प्रभावशाली समन्वय में उतना सक्षम नहीं हो पाता है। इसके पुनर्गठन और क्षमता के विकास के लिए निम्नांकित सुझाव दिये जा सकते हैं-

1. प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार सांख्यिकी विभाग को वित्तीय विभाग में मिला देना चाहिए तथा सैन्य शाखा को रक्षा मंत्रालय को सौंप देना चाहिए। ऐसा करने से इस सचिवालय के पास अधिकांशतः मंत्रिमण्डल मामलों से सम्बन्धित विभाग ही बचे रहेंगे।

2. कैबिनेट सचिव के पद का कार्यकाल तीन या चार साल किया जाना चाहिए।

3. मंत्रिमण्डल सचिव की नियुक्ति के पहले विभिन्न पदों पर प्राप्त प्रशासनिक अनुभव जैसे किसी राज्य में मुख्य सचिव की भूमिका, आदि पर ध्यान देना चाहिए।

4. मंत्रिमण्डल सचिव की नियुक्ति के लिए वरिष्ठता के साथ-साथ योग्यता, प्रभावशीलता, कर्तव्य-निष्ठा इत्यादि को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

5. मंत्रिमण्डल सचिव की नियुक्ति, सेवा-विस्तार आदि के सन्दर्भ में राजनैतिक कारकों को कम से कम किया जाना चाहिए।

6. प्रधानमंत्री कार्यालय और मंत्रिमण्डल सचिवालय के कार्य क्षेत्र को और अधिक स्पष्ट किया जाना चाहिए।

7. मंत्रिमण्डलीय सचिवालय एवं सचिव को प्रधानमंत्री का उपयुक्त संरक्षण प्राप्त होना चाहिए।

8.5 प्रधानमंत्री कार्यालय

भारत में संसदीय प्रणाली होने के कारण व्यावहारिक शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री करता है। सरकार के अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री को शासन कार्यों में कार्यालयीन सहायता करने के लिए 15 अगस्त, 1947 को प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना की गई। इस कार्यालय का निर्माण उन कार्यों का सम्पादन करने के उद्देश्य से किया गया है जिन्हें 15 अगस्त 1947 से पूर्व गवर्नर जनरल के व्यक्तिगत सचिव द्वारा किया जाता था। ज्ञातव्य है कि प्रधानमंत्री ने इसी तिथि से वह सभी कार्य अपने हाथों में लिए, जो इसके पहले गवर्नर जनरल सरकार की कार्यपालिका के प्रमुख के रूप में किया करता था।

स्वतंत्रता के पश्चात् विकास:- आजादी के उपरान्त पंडित नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने। नेहरू संसदीय प्रजातान्त्रिक विचारधारा का आदर करते थे एवं मंत्रीमण्डल के सामूहिक निर्णय पर विश्वास करते थे। अतः प्रधानमंत्री कार्यालय का सम्बन्ध सीमित दैनिक प्रशासनिक कार्यों से था जो कि प्रधानमंत्री को सरकार के अध्यक्ष के रूप में चाहिए था। अतः इस समय महत्व की दृष्टि से प्रधानमंत्री कार्यालय, कैबिनेट सचिवालय के बाद आता था और प्रधानमंत्री कार्यालय को निर्णयकारी भूमिका प्राप्त नहीं थी।

जब लालबहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बने, तब उनके पास प्रशासनिक दक्षता नहीं थी। अतः शास्त्री ने कार्यालय की भूमिका को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस समय प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका देश के उच्चतर नीति निर्णयक अभिकरण के रूप में स्थापित हुई और शास्त्री के कार्यालय में एल. के. झा. जैसे प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले प्रशासनिक अधिकारी को प्रधानमंत्री कार्यालय का सचिव नियुक्त किया गया। झा काफी प्रभावशाली हो गये और उन्हें 'सुपर सचिव' की संज्ञा दी जाने लगी। शास्त्री के समय यह अत्यन्त शक्तिशाली होकर उभरा और प्रधानमंत्री कार्यालय का नामकरण प्रधानमंत्री सचिवालय कर दिया गया।

इन्दिरा गांधी द्वारा प्रधानमंत्री का पद ग्रहण करते समय उनके पास भी प्रशासनिक अनुभव तथा ज्ञान नहीं था अतः स्वाभाविक रूप से उनकी निर्भरता प्रधानमंत्री सचिवालय पर अधिक थी। देश की आर्थिक नीति एवं विदेश नीति जैसी जटिल विषय वस्तु पर इन्दिरा गांधी काफी हद तक प्रधानमंत्री सचिवालय पर निर्भर करती थी। ऐसी दशा में इन्दिरा गांधी के प्रधानमंत्रित्व काल में शास्त्री द्वारा शुरू की गई परम्परा को और अधिक प्रोत्साहन मिला और इस समय प्रधानमंत्री सचिवालय के आकार एवं भूमिका दोनों में वृद्धि हुई, विशेष कर राष्ट्रीय आपातकाल के समय प्रधानमंत्री सचिवालय एक वास्तविक प्रशासनिक सत्ता के एक अतिरिक्त संवैधानिक केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। प्रधानमंत्री

सचिवालय एक निर्णायक अभिकरण के रूप में स्थापित हुआ एवं मंत्रिमण्डल सचिवालय एक ऐसा अभिकरण बन गया, जिसका कार्य प्रधानमंत्री सचिवालय के निर्णयों को लागू करना था।

जनता सरकार के समय प्रधानमंत्री सचिवालय का नामकरण पुनः प्रधानमंत्री कार्यालय के रूप में किया गया। इसकी भूमिका सत्ता एवं आकार दोनों की दृष्टि से सीमित करते हुए मंत्रिमण्डल सचिवालय को एक उचित नीति निर्णायक अभिकरण माना गया तथा प्रधानमंत्री कार्यालय की राष्ट्रीय मामलों में नीति निर्धारण की कोई भूमिका नहीं रही। यहां तक रॉ संगठन को भी इससे हटा दिया गया। कैबिनेट सचिवालय का कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग जो लोक सेवाओं पर नियंत्रण रखता है, पहले के समान गृह मंत्रालय को और राजस्व जांच विभाग वित्त मंत्रालय को लौटा दिया गया।

1980 में इन्दिरा गांधी पुनः प्रधानमंत्री बनी और उनके द्वारा जनता सरकार के समय किये गये अनेक कार्यों में परिवर्तन किये गये। साथ ही प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका में बढ़ोत्तरी भी हुई, लेकिन प्रधानमंत्री कार्यालय वह स्थान प्राप्त न कर सका जो उसे पहले प्राप्त था।

1984 में राजीव गांधी के प्रधानमंत्री बनने के उपरान्त प्रधानमंत्री कार्यालय के प्रमुख प्रशासनिक विषयवस्तुओं पर परामर्शदाताओं की नियुक्ति की गई, जिससे भारतीय प्रशासनिक तंत्र में प्रधानमंत्री कार्यालय का प्रभाव अधिक हुआ। राजीव गांधी के पास भी प्रशासनिक दक्षता की कमी होने के कारण प्रधानमंत्री कार्यालय पर उनकी निर्भरता बनी रही। अतः इस समय मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों दृष्टियों से विस्तार हुआ और वह अपनी खोई शक्ति एवं प्रतिष्ठा को प्राप्त करने में सफल हुआ।

नरसिंहाराव के प्रधानमंत्रित्व काल में विशेषकर अंतिम वर्षों में प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका पुनः अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई। नरसिंहाराव के द्वारा एक अल्पमत सरकार का नेतृत्व किया गया। अतः प्रधानमंत्री कार्यालय पर उनकी निर्भरता का अत्यधिक होना स्वाभाविक था।

इण्डिया टुडे के अनुसार वाजपेयी के नेतृत्व में प्रधानमंत्री कार्यालय केवल सजावटी चीज बन कर रह गया है। वैसे सर्वशक्तिमान प्रधानमंत्री कार्यालय को निष्प्रभाव करने का फैसला खुद वाजपेयी ने किया था। वाजपेयी के मित्रों का मानना है कि प्रधानमंत्री ने निगरानी और सुधार तंत्र को प्रभावी तरीके से विकसित किए बगैर अपने मंत्रियों को आजादी देकर गलती की। इससे जहां नियमों की चकाचौंध और उनका असर खत्म हो गया, वही वाजपेयी की निजी छवि को चोट पहुंची। वर्तमान समय में सेवानिवृत्त आई0 एफ0 एस0 अधिकारी ब्रजेश मिश्र प्रधानमंत्री के प्रधान सचिव पद पर आसीन है। प्रधानमंत्री और उनके प्रमुख सचिव की रूचि अधिकतर रक्षा और विदेशी मामलों में होने से मौजूदा प्रधानमंत्री कार्यालय पहले के मुकाबले अन्य मामलों में बहुत कम हस्तक्षेप करता है।

इसकी वजह आर्थिक मामले है जहां वाजपेयी कमजोर पड़ जाते हैं लेकिन धीरे-धीरे प्रधानमंत्री की सरकार पर पकड़ मजबूत होने के साथ ही प्रधानमंत्री कार्यालय की एवं प्रधानमंत्री के प्रधान सचिव ब्रजेश मिश्र की भूमिका क्रमशः बढ़ती जा रही है। वर्तमान समय में रक्षा, विदेश के अतिरिक्त अन्य कई मामलों में प्रधानमंत्री का हस्तक्षेप देखा जा सकता है एवं प्रधानमंत्री कार्यालय तथा प्रधान सचिव गतिविधियों में प्रत्यक्ष रूप से भूमिका निभाते नजर आ रहे हैं। अतः हम यह कह सकते हैं कि वाजपेयी का प्रधानमंत्री कार्यालय विकास की प्रक्रिया से गुजर रहा है।

वर्तमान समय में संयुक्त सरकार की विचारधारा के अन्तर्गत प्रधानमंत्री एक राजनैतिक असुरक्षा की भवना में कार्य करते हैं ऐसी स्थिति में प्रधानमंत्री कार्यालय पर उनकी निर्भरता हाकना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त संयुक्त सरकार में कई अन्य राजनैतिक दलों के सदस्यों को मिलाकर मंत्रिपरिषद का निर्माण किया जाता है। अतः प्रधानमंत्री विश्वसनीय परामर्शों के लिए प्रधानमंत्री कार्यालय पर ज्यादा निर्भर होते हैं लेकिन संयुक्त सरकार में प्रधानमंत्री संतुलन एवं अवरोध के नियम के अन्तर्गत अपने कार्यों का संचालन करते हैं। ऐसी अवस्था में प्रधानमंत्री की तुलना में मंत्रिमण्डल का विशेष महत्व होता है। अतः मंत्रिमण्डल सचिवालय की भूमिका का विशेष महत्व होना स्वभाविक है।

संयुक्त सरकार के सन्दर्भ में प्रधानमंत्री कार्यालय गोपनीय विचार हेतु प्रधानमंत्री के लिए एक आरक्षित एवं सुरक्षित स्थान नहीं माना जाता है। अतः सत्ता का हस्तांतरण प्रधानमंत्री कार्यालय के निवास ; चडख की ओर देखने को मिल रहा है।

आज भारतीय प्रशासन में प्रधानमंत्री कार्यालय का न केवल महत्व बढ़ा है बल्कि उसकी अहम भूमिका है। आज यह असाधारण रूप से शक्तिशाली संगठन है जिससे अनेक विशेषज्ञ सम्बद्ध हैं। प्रधानमंत्री कार्यालय जो केन्द्रीय सचिवालय संगठनों में सबसे छोटा है मंत्रिमण्डल सचिवालय से भी बड़ा हो गया है। वस्तुतः प्रधानमंत्री कार्यालय के सचिव की भूमिका मित्र, मार्गदर्शक और परामर्शदाता जैसी हो, तो वह अधिक उपयोगी होगा। लेकिन यदि प्रधानमंत्री कार्यालय समान्तर सरकार का प्रतिरूप ग्रहण करने का प्रयास करता है तो उसके प्रशासनिक दृष्टि से लाभकारी परिणाम नहीं होंगे।

संगठन:- प्रधानमंत्री कार्यालय का शीर्षस्थ अधिकारी प्रधान सचिव कहलाता है जिसे 30,000 रु. प्रतिमाह फिक्सड वेतन पर अनुबंध के आधार पर नियुक्त किया जाता है। प्रधानमंत्री अपनी पसन्द के किसी भी व्यक्ति को इस पद पर नियुक्त कर सकते हैं और यह पद कार्याकाल पद्धति से मुक्त है। उपसचिव और उसे उपर के पदों पर नियुक्ति मंत्रिमण्डल की नियुक्ति समिति की स्वीकृति से होती है। अवर सचिव और नीचे के पद गृह मंत्रालय द्वारा भरे जाते हैं। पांचवे वेतन आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार प्रधानमंत्री कार्यालय में वर्तमान समय कुल मिलाकर 483 स्वीकृत पद हैं। साधारणतः

प्रधानमंत्री के पदाधिकारियों का वही स्तर होता है जो शासन के मंत्रालयों में तदनु रूप श्रेणी के पदाधिकारियों का होता है।

8.5.1 प्रधानमंत्री कार्यालय के कार्य:-

साधारणतः प्रधानमंत्री कार्यालय के क्षेत्राधिकार में वह सभी विषय आते हैं जो कि व्यक्तिगत विभाग या मंत्रालय को नहीं सौंपे गये हैं। प्रधानमंत्री कार्यालय की निम्नांकित भूमिकाएँ हैं-

1. प्रधानमंत्री को सरकार के अध्यक्ष के रूप में या मुख्य कार्यापालिका के रूप में कार्य करते समय प्रधानमंत्री कार्यालय, प्रधानमंत्री को सहयोग देता है।
2. यदि कोई प्रशासनिक विषयवस्तु किसी मंत्री को न सौंपी गई हो, तो उस विषयवस्तु का कार्यभार प्रधानमंत्री पर होता है एवं उन विषयवस्तुओं पर प्रधानमंत्री कार्यालय, प्रधानमंत्री को सहयोग देता है।
3. प्रधानमंत्री को योजना आयोग के अध्यक्ष के रूप में उत्तरदायित्व निभाने में सहायता करना।
4. इस कार्यालय के माध्यम से प्रधानमंत्री अन्य केन्द्रीय मंत्रियों, राष्ट्रपति, राज्यपालों, मुख्यमंत्रियों, राजदूतों आदि से सम्पर्क सूत्र स्थापित करता है।
5. यदि जनता की कोई शिकायत प्रधानमंत्री के पास भेजी जाए, तो प्रधानमंत्री कार्यालय उन शिकायतों का निराकरण सुनिश्चित करता है।
6. प्रधानमंत्री कार्यालय में ससंद में सामान्य विषयों पर पूछे गये प्रश्नों का उत्तर किया जाता है जिन्हें किसी मंत्रालय को नहीं सौंपा गया है।
7. प्रधानमंत्री के आवश्यक रिकार्ड रखना, उनके अतिथियों के स्वागत सत्कार की व्यवस्था करना तथा प्रधानमंत्री द्वारा मांगी गई सूचना प्रदान करना प्रधानमंत्री कार्यालय के उत्तरदायित्व है।
8. प्रधानमंत्री के आदेश एवं संदेश को मंत्रिमण्डलीय सचिवालय को सूचित करना भी प्रधानमंत्री कार्यालय का कार्य है। आजकल यह प्रधानमंत्री के महत्वपूर्ण भाषण तैयार करने, राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था की देखरेख करने तथा प्रधानमंत्री के विदेश यात्रा के कार्यक्रम बनाने का भी कार्य करने लगा है।

इसके अतिरिक्त भूकंप, बाढ़, सूखा आदि संकटों के समय या अन्य अवसरों पर प्रधानमंत्री कोष से राज्यों या व्यक्तियों को जो आर्थिक सहायता पहुंचाई जाती है उसका लेखा-जोखा भी प्रधानमंत्री कार्यालय रखता है।

अभ्यास प्रश्न

1. केन्द्रीय सचिवालय सेवा का गठन 1951 में किया गया। सत्य/असत्य
2. भारतीय प्रशासनिक सेवा श्रेणियों में कार्यकाल पद्धति, 1905 से लार्ड कर्जन के समय शुरू हुई। सत्य/असत्य
3. राजीव गांधी किस सन में प्रधानमंत्री नियुक्त किये गए थे। सत्य/असत्य

8.6 सारांश

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि, सचिवालय एक प्रशासनिक परामर्शदात्री निकाय है। वह एक ओर तो नीति निर्धारक, समन्वयकर्ता और नियंत्रक निकाय है तो दूसरी ओर सरकार का प्रमुख कार्यपालिका निकाय ही है।

इसके साथ ही प्रशासनिक व्यवस्था में मंत्रिमण्डल सचिवालय का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना के बाद इसके महत्व में धीरे-धीरे कुछ कमी अवश्य देखी जा सकती है। फिर भी मंत्रिमण्डल सचिवालय, मंत्रिमण्डल के सचिवालय सम्बन्धी कार्यों के लिए स्टाफ भुजा के समान है। अतः उसे सरकारी कार्यों का सम्पादन करने हेतु एक सरकारी विभाग मात्र नहीं मान लेना चाहिए।

आज भारतीय प्रशासन में प्रधानमंत्री कार्यालय का न केवल महत्व बढ़ा है बल्कि उसकी अहम भूमिका है। आज यह असाधारण रूप से शक्तिशाली संगठन है जिससे अनेक विशेषज्ञ सम्बद्ध है। प्रधानमंत्री कार्यालय जो केन्द्रीय सचिवालय संगठनों में सबसे छोटा है मंत्रिमण्डल सचिवालय से भी बड़ा हो गया है। वस्तुतः प्रधानमंत्री कार्यालय के सचिव की भूमिका मित्र, मार्गदर्शक और परामर्शदाता जैसी हो, तो वह अधिक उपयोगी होगा। लेकिन यदि प्रधानमंत्री कार्यालय समान्तर सरकार का प्रतिरूप ग्रहण करने का प्रयास करता है तो उसके प्रशासनिक दृष्टि से लाभकारी परिणाम नहीं होंगे।

8.7 शब्दावली

सचिवालय:- सरकार को नीति निर्माण में सहयोग करने वाला निकाय है। नीति निर्माण के उपरान्त, उसके क्रियान्वयन के संबंध में प्रमुख कार्यपालिका निकाय है।

प्रधानमंत्री कार्यालय:- प्रधानमंत्री को उनके कार्यों के सम्पादन में (कार्यपालिका प्रमुख के रूप में) सहयोग करने वाला निकाय है।

मंत्रिमंडलीय सचिवालय:- भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों, विभागों, समितियों के बीच समन्वय स्थापित करने वाला निकाय है।

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य

8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची -

भारतीय शासन एवं राजनीति	-	डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति	-	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति	-	महेन्द्रप्रतापसिंह

8.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

- 1- केन्द्रीय सचिवालय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिए।
- 2- मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिए।
- 3- प्रधानमन्त्री कार्यालय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिए।

इकाई 9 - राजनीति और प्रशासन में सम्बन्ध

इकाई की संरचना

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 उद्देश्य
- 9.3 राजनीति का अर्थ एवं महत्व
- 9.4 राजनीति की चिर सम्मत धारणा
- 9.5 राजनीतिक स्थिति की विशेषताएँ
- 9.6 प्रशासन
- 9.7 राजनीति एवं प्रशासन में सम्बन्ध
- 9.8 सारांश
- 9.9 शब्दावली
- 9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 9.11 संदर्भ ग्रन्थ
- 9.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

राजनीतिक चिंतक आज के युग में राजनीति को मनुष्य की एक विशेष गतिविधि मानता है। मनुष्यों की यह गतिविधि समाज के विभिन्न समूहों के माध्यम से व्यक्त होती है। इसके क्षेत्र में वही सत्ता आती है जिसका प्रयोग या तो शासन स्वयं करता है अथवा जिसका प्रयोग शासन को प्रभावित करने के लिए होता है।

वर्तमान में शासन को प्रभावित करने के लिए जन लोकपाल एवं भ्रष्टाचार पर राजनीति विशेष रूप से हो रही है। प्रशासन का अर्थ कार्यों को प्रबन्ध करने से है। यद्यपि राजनीति एवं प्रशासन के सम्बन्ध को इस अध्याय में विस्तृत चर्चा की गई है।

प्रशासन एवं राजनीति एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों में ही सत्ता एवं शक्ति का प्रयोग होता है। पूर्व में दोनों में काफी अन्तर एवं भेद की चर्चा होती थी परन्तु वर्तमान में यह भेद लगभग समाप्त हो चुका है और दोनों ही एक दूसरे के अंगीकार बन गये हैं।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हम

1. राजनीति का अर्थ एवं महत्व को जान सकेंगे |
2. राजनीति की चिर सम्मत धारणा को जान सकेंगे |
3. राजनीतिक स्थिति की विशेषताओं के सम्बन्ध में जान सकेंगे |
4. राजनीति एवं प्रशासन में सम्बन्ध में जान सकेंगे |

9.3 राजनीति का अर्थ एवं महत्व

राजनीति शब्द का व्यवहार सामाजिक समूह के लिए किया जाता है जो क्लबों और परिवार जैसे छोटे मानव समूहों से लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ तक व्याप्त है। मानव समाज में यूनानी दार्शनिक प्लेटो से लेकर अब तक के जितने चिंतक आदर्श लोक की कल्पना करते रहे हैं वे सभी अंत में समाज के राजनीतिक पुनर्गठन की बात किसी न किसी रूप में करते हैं। सामाजिक सहयोग, संघर्ष और प्रतिस्पर्धा नामक गतिविधियों को राजनीति कहते हैं।

अरस्तू ने कहा है कि मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है। इसका अर्थ है कि मनुष्य किसी न किसी राज्य ;पोलिस के अन्तर्गत रहता है, अर्थात् एक सामूहिक सत्ता के माध्यम से अपने जीवन को व्यवस्थित करता है ताकि एक नैतिक प्राणी के नाते वह सदजीवन और आत्म सिद्धि प्राप्त कर सके। अतः अरस्तू की दृष्टि में राजनीति मनुष्य के सम्पूर्ण अस्तित्व को समेट लेती है। मनुष्यों की गतिविधियों समाज के विभिन्न समूहों के माध्यम से व्यक्त होती है, जैसे राजनीतिक दलों के द्वारा। राष्ट्रों में यह गतिविधि शांति के समय राजनय के रूप में व्यक्त होती है और अशांति के समय युद्ध के रूप में। परन्तु युद्ध राजनीति का उपयुक्त तरीका नहीं है। युद्ध का सहारा तब लिया जाता है जब राजनीति विफल हो जाती है। युद्ध के नियमों का पालन राजनीति का विषय अवश्य है। निष्कर्ष में राजनीतिक गतिविधि शक्ति के संघर्ष के रूप में व्यक्त होती है, यह संघर्ष अनेक राष्ट्रों के बीच हो सकता है, एवं एक ही राष्ट्र के भीतर विभिन्न समूहों के बीच भी चल सकता है। दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा की स्थिति में, समाज के दुर्लभ संसाधनों पर अपना प्रभुत्व और नियंत्रण स्थापित करने के प्रयास को राजनीति की संज्ञा दी जाती है। राजनीति के क्षेत्र में सत्ता वह कहलाती है जिसका प्रयोग या तो शासन स्वयं करता है, या जिसका प्रयोग शासन को प्रभावित करने के लिए होता है अरस्तू द्वारा रचित प्रसिद्ध कृत पालिटिक्स में इस तर्क का खंडन भी किया है कि सत्ता का स्वरूप एक ही होता है परन्तु सभी तरह की सत्ता एक जैसी नहीं होती है। मैक्स वेबर जो जर्मन समाज वैज्ञानिक थे उन्होंने भी सत्ता को वैधानिक एवं तार्किक बताया है। अरस्तू ने सत्ता, शक्ति को राजनीतिक सम्बन्ध का आवश्यक लक्षण माना है, वहीं मैक्स वेबर ने भी सत्ता के प्रयोग क्षेत्र की ओर संकेत किया है।

राजनीति शब्द दैनिक जीवन में बहुत प्रचलित है। राजनीतिक गतिविधियों को लेकर समाज मानता है कि इसका सरोकार केवल सार्वजनिक क्षेत्र से है। अर्थात् संसदों विधायकों, चुनावों और मंत्रिमंडलों से है। आम आदमी राजनीति को संकुचित दायरे में रखकर सोचता है। वह तो इसे या तो केवल मंत्रियों और विधायकों की गतिविधि समझ लेता है अथवा राजनितिज्ञों का चातुर्यपन और चुनाव के पैतरो के साथ जोड़ता है। परन्तु यदि हम राजनीति से घृणा करते हुए उससे दूर भागेंगे तो

यह डर है कि राजनीति सचमुच गलत लोगों के हाथों में चली जायेगी और सार्वजनिक समस्याओं का समाधान नहीं हो सकेगा। वर्तमान में राजनीति ऐसे ही लोगों के द्वारा की जा रही है।

9.4 राजनीति की चिर सम्मत धारणा

प्लेटों, अरस्तू एवं उनके समकालिक विचारकों का मत है कि राज्य मनुष्य के जीवन के लिए अस्तित्व में आता है और सदजीवन के लिए बना रहता है। राज्य के बगैर किसी मनुष्य को मनुष्य रूप में नहीं पहचाना जा सकता। राज्य में सदजीवन की प्राप्ति के लिए मनुष्य जो कुछ भी करता है, जिन जिन गतिविधियों में भाग लेता है एवं जो नियम संस्थाएं और संगठन को निर्मित करता है, उन सबको अरस्तू ने राजनीति का विषय माना है। इसे ही राजनीति को चिर सम्मत धारणा कहते हैं। मनुष्य के समस्त सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं का अध्ययन राजनीति के अन्तर्गत होता था। अरस्तू ने राजनीति को सर्वोच्च विज्ञान का रूतवा दिया। मानव समाज के अन्तर्गत विभिन्न सम्बन्धों को व्यवस्थित करने में राजनीति निर्णायक भूमिका निभाता है। परन्तु आज के युग में राजनीति जनसाधारण के समर्थन पर आश्रित हो गई है, इसलिए यह जन साधारण के जीवन के साथ निकट से जुड़ गई है।

राजनीति की आधुनिक धारणा

राजनीति की चिरसम्मत धारणा के विपरीत, आज के युग में राजनीति का प्रयोग क्षेत्र तो सीमित हो गया है, परन्तु इसमें भाग लेने वालों की संख्या बहुत बढ़ गई है। राजनीति के अध्ययन में मनुष्य के सामाजिक जीवन की समस्त गतिविधियों पर विचार नहीं किया जाता, बल्कि केवल उन गतिविधियों पर विचार किया जाता है जो सार्वजनिक नीति और सार्वजनिक निर्णयों को प्रभावित करती हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सर्वाजनिक नीतियाँ और निर्णय इन गिने शासकों, विधायकों या सत्ता धारियों की इच्छा को व्यक्त नहीं करते बल्कि समाज के भिन्न भिन्न समूहों की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप उभरकर सामने आते हैं। इस तरह राजनीति जन साधारण की उन गतिविधियों का संकेत देती है जिनके द्वारा भिन्न-भिन्न समूह अपने-अपने परस्पर विरोधी हितों में तालमेल स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं।

परम्परागत राजनीति शास्त्र का मुख्य सरोकार 'राज्य' से था, इसीलिए इसको राज्य के विज्ञान से भी परिभाषित करते हैं। उस काल के राजनीति शास्त्र के विद्वानों एवं लेखकों के लेख में भी इन्हीं बातों का अभिलेख मिलता है। इन लेखों में लेखकों ने अपना ध्यान निम्नलिखित समस्याओं पर ही केन्द्रित किया, जैसे राज्य के लक्षण, मूलतत्त्व एवं संस्थाएं, सर्वगुण सम्पन्न राज्य परन्तु आधुनिक काल में उपरोक्त विचारों के अतिरिक्त और भी पक्षों का समावेश किया है। उदाहरणार्थ 'राजनीति' मनुष्य की व्यपापक क्रिया है, यह केवल राज्य की परिधि में हो नहीं निहित है वरन् सम्पूर्ण सामाजिक

संगठन के साथ जुड़ी रहती हैं। इसीलिए राजनीति को आज के संदर्भ में एक सामाजिक प्रक्रिया माना जाता है।

9.5 राजनीतिक स्थिति की विशेषताएँ

उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो गया कि राजनीति एक विशेष मानवीय क्रिया है। इन क्रियाओं के कार्यान्वयन में मनुष्य का ही योगदान है तथा क्रियान्वित कार्य राजनीतिक स्थिति कहलाती है। इसके समर्थन में भिन्न विद्वानों ने अपने मत भी प्रकट किये हैं। जैसे एलेन बाल द्वारा रचित पुस्तक 'मार्डन पालिटिक्स एण्ड गवर्नमेंट' के अन्तर्गत लिखा है: राजनीतिक क्रिया में मतभेद और उन मतभेदों का समाधान निहित होता है। जे. डी. बी. मिलर ने अपनी पुस्तक 'द नेचर और पालिटिक्स' में लिखा है कि राजनीतिक स्थिति में संघर्ष के समाधान के लिए शासन या सरकार का प्रयोग किया जाता है। इसका तात्पर्य है कि राजनीतिक गतिविधि मतभेद की स्थिति से पैदा होती है और इसका सरोकार परिवर्तन की दिशा में या परिवर्तन की रोकथाम के लिए संघर्ष के समाधान में प्रयोग से है। इस तरह राजनीतिक प्रक्रिया में दो बातों का होना आवश्यक है, पक्षों में मतभेद या संघर्ष की मौजूदगी एवं सरकार की सत्ता माध्यम से उस संघर्ष के समाधान का प्रयास।

राजनीति का संबंध समाज में 'मूल्यों' के आधिकारिक आवंटन से है। इस परिभाषा में तीन महत्वपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया गया है ये शब्द हैं मूल्य, आधिकारिक एवम आवंटन मूल्य का अभिप्राय समाज में मिलने वाली वे वस्तुएं जो दुर्लभ हैं जैसे रोजगार, स्वास्थ्य सेवा, परिवहन सेवा, शिक्षा, मनोरंजन, मान प्रतिष्ठा इत्यादि से है। इसको ऐसे भी समझा जा सकता है कि वे अभीष्ट वस्तुएं, लाभ अथवा सेवायें जिन्हें हर कोई पाना चाहता है, परन्तु वे इतनी कम हैं कि उन्हें सभी नहीं पा सकते हैं।

'आवंटन' शब्द का अर्थ विभिन्न व्यक्तियों या समूहों में इन वस्तुओं का वितरण या बंटवारे से है। इस बंटवारे के लिए निर्णयन प्रक्रिया को अपनाया पड़ता है। निर्णय तो नीति के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। निर्णय का अर्थ है, अनेक में से एक का चयन। नीति में निर्णय तक पहुँचना और उसे कार्यान्वित करना भी शामिल है।

उपरोक्त दो शब्दों की व्याख्या के बाद 'आधिकारिक' शब्द की विवेचना करना भी आवश्यक है। नीति जिन लोगों के लिए बनाई जाती है, और वही जोग जब नीति का पालन करना आवश्यक समझते तब वह नीति आधिकारिक होती है। इस प्रकार से सम्पूर्ण प्रक्रिया में सरकार का ही योगदान है। शासन सत्ता पक्ष के द्वारा ही किया जाता है, सत्ता वैधानिक होती है एवं सत्ता में शक्ति भी निहित होती है। किसी विशेष निर्णय या कार्यवाही को लागू करने के लिए लोगों से सत्ता सहर्ष आज्ञापालन सुनिश्चित कराने की क्षमता रखता है। जब हम राजनीति की परिभाषा मूल्यों के आधिकारिक आवंटन

के रूप में देखते हैं तब हम उसे सार्वजनिक सामाजिक घटना के रूप में पहचानते हैं, अथवा राजनीति एक विश्वव्यापी गतिविधि है। समाज में अभीष्ट वस्तुएं, लाभ और सेवाएं, इत्यादि थोड़ी होती है और उनकी मांग करने वाले लोग ज्यादा होते हैं। अतः वहाँ ऐसी आधिकारिक सत्ता की आवश्यकता पड़ती है जो परस्पर विरोधी मांगों को सामने रखकर कोई एक रास्ता निकाल सके और जिसे सब लोक स्वीकार कर लें। इसका अर्थ यह नहीं है कि सबके मांगे पूरी कर दी जाती है या कोई समाधान हमेशा के लिए स्वीकार कर लिया जाता है। वास्तव में एक समाधान स्वीकार करने के पश्चात् नई मांगे नये-नये रूपों में प्रस्तुत की जाती है, और फिर नए समाधान की तलाश की जाती है। अतः राजनीति एक निरंतर प्रक्रिया है। राजनीति के इस दृष्टिकोण को हम साधारणतयः उदारवादी दृष्टिकोण के रूप में पहचानते या पुकारते हैं। राजनीति का यह आधुनिक दृष्टिकोण है।

राजनीति के प्राचीन दृष्टिकोण के अन्तर्गत सामाजिक जीवन का लक्ष्य या ध्येय पूर्व में ही निर्धारित रहता था और समाज के सदस्यों को पूर्व निर्धारित व्यवस्था के ही अन्तर्गत अपने कर्तव्यों का पालन करना पड़ता था। परन्तु आधुनिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत संघर्ष को सामाजिक जीवन का स्वाभाविक लक्षण माना जाता है। इसे बल पूर्वक दबाने की चेष्टा नहीं की जाती है वरन् इसका समाधान ढूढने पर बल दिया जाता है।

किसी भी मतदभेद या संघर्ष के समाधान के लिए आधिकारिक सत्ता का प्रयोग आवश्यक होता है। इस सत्ता के प्रयोग के कारण ही आधिकारिक नीतियाँ, नियम एवं निर्णय समाज में स्वीकार किये जाते हैं और प्रभावशाली ढंग से लागू भी किये जाते हैं। सत्ता के दो मुख्य घटक होते हैं, शक्ति और वैधता। पहले भी इन दोनों शब्दों का प्रयोग किया जा चुका है परन्तु अब विस्तार से इनकी व्याख्या यहां पर की जा रही है। वैधता से तात्पर्य है कि सरकार द्वारा लिए गये निर्णय और उनके अनुरूप बनाये गये नियम सारे समाज में लिए उपयुक्त और कल्याणकारी है इसलिए समाज के सभी वर्ग उसे मन से स्वीकार करते हुए और उन नियमों का अनुपालन सुनिश्चित करने की तत्पर रहते हैं। शक्ति का अर्थ है समाज की इच्छा के विरुद्ध किसी नियम या निर्णय को बल पूर्वक आदेशानुसार पालन करवाना। समाज में व्यवस्था स्थापित रखने के लिए वैधता और शक्ति एक दूसरे के पूरक हैं। चूंकि राजनीति में सत्ता का प्रयोग आवश्यक है, और शक्ति के बिना सत्ता अधूरी है इसलिए राजनीति में शक्ति का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजनीति में शक्ति के तीन प्रकार हैं राजनीतिक शक्ति, आर्थिक शक्ति और विचारात्मक शक्ति। राजनीतिक शक्ति का अर्थ है नीतियाँ एवं कानून का निर्माण करना, कानून को लागू करना, कर लगाना, और वसूल करना, कानून का पालन न करने वालों को दंडित करना तथा शत्रुओं एवं आक्रमण कारियों को नष्ट करने से है। साधारणतः राजनीतिक शक्ति का उपयोग सरकार के तीन विभिन्न अंगों द्वारा किया जाता है, विधान मण्डल, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका इन्हें शक्ति के औपचारिक अंग कहते हैं। परन्तु इनके अलावा कुछ अनौपचारिक अंग भी

है जैसे विभिन्न दबाव समूह, राजनीतिक दल आदि। ये अपने ढंग से राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करते हैं।

आर्थिक शक्ति का अर्थ है, धन सम्पदा, उत्पादन के साधनों या अन्य दुर्लभ साधनों के स्वामित्व के बल पर निर्धन लोगों या निर्धन राष्ट्रों के जीवन की परस्थितियों पर नियन्त्रण स्थापित करने से है। आर्थिक शक्ति राजनीति पर व्यापक प्रभाव डालती है। उदार लोकतंत्र के अन्तर्गत बड़े-बड़े जमीदार, उद्योगपति और व्यापारिक घराने सार्वजनिक नीतियों और निर्णयों को व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं और विकास की प्राथमिकताएं निर्धारित करने में अपने हित को सर्वोपरि रखते हैं। बड़े बड़े पूंजीपति उक्सर अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक दलों और चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को भारी वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं। ऐसी सहायता पाने वाले राजनीतिज्ञ ऊपरी तौर पर जनसाधारण के हितों की दुहाई देते हैं परन्तु भीतर से वे अपने वित्तदाताओं के हितों के लिए प्रतिबद्ध होते हैं।

विचारात्मक शक्ति राजनीतिक शक्ति का एक गूढ़ आधार प्रस्तुत करती है। विचारात्मक शक्ति शासन की व्यवस्था को समाज की दृष्टि में उचित ठहराती है और इसीलिए उसे बैद्यता प्रदान करती है। समाज में शासक वर्ग सर्वोत्तम शासन प्रणाली के बारे में विचारों को बढ़ावा देते हैं जिन्हें राजनीतिक विचारधारा कहते हैं। आज के युग में भिन्न भिन्न देशों में विभिन्न प्रकार की सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक व्यवस्थाएं प्रचलित हैं और उन्हें उचित ढहराने के लिए पूंजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, लोकतंत्रीय समाजवाद आदि सर्वोत्तम शासन प्रणाली सिद्ध करने को तत्पर रहती हैं ये सारे वाद विभिन्न विचारधाराओं के ही उदाहरण हैं।

9.6 प्रशासन

अंग्रेजी शब्द एडमिनिस्ट्रेशन की रचना लैटिन के दो शब्दों से मिलकर हुई है। वे शब्द हैं एड एवं मिनिस्टर, जिसका अर्थ है प्रबन्ध करना। अंग्रेजी शब्दकोष के अनुसार प्रशासन शब्द का अर्थ है कार्यों का प्रबन्ध। शासन करने से तात्पर्य है प्रबन्ध करना, निर्देशन करना इत्यादि। प्रशासन शब्द को विभिन्न विद्वानों ने निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया है।

पाल. एच. एप्पलेबाई - यदि प्रशासन न हो तो सरकार तो केवल वाद विवाद का क्लब मात्र बन कर रह जायेगी बर्शते इस स्थिति में वह जीवित रह सके।

ई. एन. ग्लेडन के अनुसार प्रशासन का अर्थ है प्लोगों की परवाह करना या देखभाल करना, कार्यों का प्रबन्ध करना, किसी जाने बूझे कार्य की पूर्ति के लिए उठाया जाने वाल सुनिश्चित पगाष्

नीग्रो -किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए मनुष्य तथा सामग्रियों का जो संगठन तथा उपयोग किया जाता है उसे प्रशासन कहा जाता है।

एल. डी. व्हाइट ने प्रशासन को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है किसी उद्देश्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति के लिए बहुत से व्यक्तियों के निर्देशन, समन्वय तथा नियंत्रण को ही प्रशासन की कला कहते हैं।

फिफनर ने प्रशासन की परिभाषा इस प्रकार की है वांछित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मानवीय तथा भौतिक साधनों का संगठन तथा निर्देशन ही प्रशासन है।

हरबर्ट साइमन के शब्दों में प्रशासन सबसे अधिक व्यापक अर्थ में, समान लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वर्गों द्वारा मिलकर की जाने वाली क्रियाओं को प्रशासन कहा जा सकता है।

लूथर गलिक के अनुसार प्रशासन का सम्बन्ध कार्यों के करवाने से, निश्चित उद्देश्य की पूर्ति कराने से है।

उपरोक्त परिभाषाओं से विदित है कि प्रशासन सर्वमान्य लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सहयोग करने वाले वर्गों की क्रियाओं से तात्पर्य है। दूसरे शब्दों में प्रशासन में वे सभी क्रियाएं आती है जो किसी उद्देश्य या ध्येय की प्राप्ति के लिए की जाती है। प्रशासन शब्द का प्रयोग संकीर्ण अर्थ में भी किया जाता है जिसका अभिप्राय व्यवहार के उन सभी प्रतिरूपों से है जो विभिन्न प्रकार सहयोगी समूहों में एक जैसे होते हैं और जो उन निश्चित उद्देश्यों पर आधारित नहीं होते जिनके लिए वे परस्पर सहयोग करते हैं और न ही वे उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयोग की जा रही निश्चित पद्धतियों पर आधारित होते हैं।

9.7 राजनीति एवं प्रशासन में सम्बन्ध

प्रशासन को राजनीति से भिन्न रखने में आरम्भिक दौर के चिंतकों ने काफी भेद किया। उनकी दृष्टि में राजनीति नीतियों का निर्माण करती है, और प्रशासन का कार्य है कि वह यथासंभव कुशलता एवं मितव्ययिता से उन नीतियों को लागू करे। अतः क्रियाओं की दृष्टि से राजनीति और प्रशासन के क्षेत्र पृथक एवं भिन्न हैं। लोक प्रशासन के पितामह 'वुडरो विल्सन' ने अपने लेख 'स्टडी आफ एडमिनिस्ट्रेशन' में लिखा है कि प्रशासन का उचित क्षेत्र राजनीति से बाहर है। प्रशासनिक प्रश्न राजनीतिक प्रश्न नहीं होते। यद्यपि प्रशासन के ध्येय राजनीति निश्चित करती है, किन्तु यह अनुमति नहीं दी जानी चाहिए कि वह प्रशासन के कार्यों में हस्तक्षेप करें। बलशाली को समर्थन देते हुए उन्होंने बलशाली के शब्दों को दोहराया, राजनीति महान और सर्वव्यापी विषयों में राज्य की क्रिया है। अतः राजनीति राजमर्मज्ञ का विशेष क्षेत्र है और प्रशासन तकनीकी अधिकारी का विशेष क्षेत्र है।

कालान्तर में राजनीति एवं प्रशासन के भेद की काफी आलोचना हुई। प्रशासन के अराजनीतिक दृष्टिकोण पर इतना बल दिया गया कि इसने प्रशासन को अपरिवर्तनीय परिभाषा बना दिया जो अपने स्वतंत्र सिद्धान्तों का अनुसरण करता है, चाहे सरकार का स्वरूप कुछ भी क्यों न हो, और जिन राजनीतिक मूल्यों के अधीन इसे काम करना है वे कैसे ही क्यों न हों। यह दृष्टिकोण पूर्णतया गलत है, क्यों कि किसी देश की राजनीतिक व्यवस्था उसकी प्रशासन व्यवस्था से न तो बाहर है और न असम्बन्धित, अपितु यही तो इसका ताना बाना है। राजनीति और प्रशासन के बीच सम्बन्धों का विकास कालान्तर में हुआ। जान लाक तथा मांटेसक्यू के समय से लेकर आजतक विद्वान, प्रशासक राजनीतिज्ञ इस विषय पर वाद विवाद करते रहे हैं। अपने गणतंत्र के प्रारम्भिक समय से ही अमेरिका के राजनेता नीति-निर्माण तथा प्रशासनिक विषयों में भेद करते आये हैं। इससे राजनीति और प्रशासन में द्विभाजन का विकास हुआ। यद्यपि इस धारणा का द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात अन्तिम तौर पर परित्याग कर दिया गया।

प्रशासन व राजनीति में भेद को लेकर काफी आलोचना हुई और लोक प्रशासन के विद्वानों ने इस भेद को अस्वीकृत कर दिया एवं एक सिरे से नकार दिया। तथ्य इस बात को सिद्ध करते हैं कि प्रशासन का नीति निर्माण या निर्धारण के कार्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है और वह इसमें सक्रिय भाग लेता है। यह एक पूर्णतया अतार्किक तर्क है कि नीति निर्धारण कार्य प्रशासनिक अधिकारी वर्ग की सहायता या परामर्श के बिना भी सम्पन्न किया जा सकता है। मन्त्री गण अधिकांश विधेयक अपने उच्च प्रशासनिक अधिकारी के प्रेरणा पर ही पारित करते हैं। हस्तांतरित विधान की सम्पूर्ण धारणा राजनीति व प्रशासन के विभाजन को अर्थहीन एवं तथ्यहीन सिद्ध करती है। तथ्यों व आंकड़ों के अभाव में किसी भी सफल नीति का निर्धारण असम्भव है। ये तथ्य तथा आंकड़े प्रशासनिक अधिकारी ही प्रदत्त करते हैं। कानूनों व नीतियों की व्यावहारिकता तथा अव्यावहारिकता प्रशासनिक अधिकारियों के परामर्श के आधार पर ही तय की जाती है। कहने का तात्पर्य है कि पग-पग पर राजनीति एवम प्रशासन परस्पर मिश्रित प्रतीत होते हैं, हर पल प्रशासन राजनीति को प्रभावित करता है। एपिल बी का कहना था कि नीति का निर्माण ही लोक प्रशासन है। उपरोक्त विचारों से यह सिद्ध हो गया कि राजनीति एवं प्रशासन अविभाज्य है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित तथ्य उसके साक्षी है।

राजनीतिक नेता को जटिल और तकनीकी विषयों पर नीति सम्बन्धी निर्णय करने के लिए ज्ञानपूर्ण परामर्श हेतु सर्वथा स्थायी कर्मचारियों पर आश्रित होना पड़ता है।

पेचीदा स्थितियों में नीति निर्माण तथा नीति परिपालन एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

प्रायः नीतियों की विभिन्न प्रकार से व्याख्या हो सकती है। ऐसी स्थिति में जो प्रशासक एक नीति का परिपालन करने के लिए उत्तरदायी होते हैं, उस नीति की व्याख्या करते हुए स्वेच्छा-निर्णय का प्रयोग भी करते हैं।

अभ्यास प्रश्न

१. राज्य के चार तत्व होते हैं | सत्य/असत्य
२. राजनीति का सम्बन्ध नीति निर्माण से होता है | सत्य/असत्य
३. प्रशासन का सम्बन्ध नीतियों के क्रियान्वयन से होता है | सत्य/असत्य

9.8 सारांश

उपरोक्त लेख अध्ययन करने के बाद राजनीति एवं प्रशासन शब्द से भली भाँति परिचित हो चुके होंगे। कानूनों व नीतियों की व्यावहारिकता तथा अव्यावहारिकता, प्रशासनिक अधिकारियों के परामर्श के आधार पर ही तय की जाती है। कहने का तात्पर्य है कि राजनीति एवं प्रशासन मिश्रित प्रतीत होते हैं।

इससे स्पष्ट है कि नीति निर्माण और नीति क्रियान्वयन एक दूसरे से पूरी तरह से पृथक नहीं किये जा सकते हैं। क्यों मंत्री विभागाध्यक्ष होते जो अपनी अनुभवहीनता और विशेषज्ञता के अभाव में काफी हद तक प्रशासनिक अधिकारियों के परामर्श पर निर्भर करते हैं।

9.9 शब्दावली

राज्य – एक निश्चित भूभाग में रहने वाली जनसंख्या, जिसकी अपनी सरकार हो, जो अपने आंतरिक और बाह्य मामलों में पूरी तरह से स्वतन्त्र हो (संप्रभुता)।

आवंटन - व्यक्तियों या समूहों में वस्तुओं का विवरण

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१. सत्य
२. सत्य
३. सत्य

9.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. गावा, ओ. पी. - राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा

2. जैन पुखराज - राजनीति विज्ञान

9.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

१. शर्मा एवं सडाना- लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार

२. एन. सी. ई. आर. टी.

9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजनीति को परिभाषित करते हुए विभिन्न धारणाओं की व्याख्या कीजिए।

2. राजनीतिक स्थिति की विशेषताओं पर एक निबन्ध लिखिए।

3. राजनीति एवं प्रशासन से आप क्या समझते हैं, दोनों के मध्य सम्बन्धों पर अपनी समीक्षा कीजिए

इकाई 10 : केन्द्र राज्य सम्बन्ध

इकाई की संरचना

- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 उद्देश्य
- 10.3 केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध
 - 10.3.1 राज्य सूची के विषय पर संसद की व्यवस्थापन की शक्ति
 - 10.3.1.1 राज्य सूची का विषय राष्ट्रीय महत्व का होने पर
 - 10.3.1.2 संकट कालीन घोषणा होने पर
 - 10.3.1.3 राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा इच्छा प्रकट करने पर
 - 10.3.1.4 विदेशी राज्यों से हुई संधियों के पालन हेतु
 - 10.3.1.5 राज्यों में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर
 - 10.3.1.5 राज्यों में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर
 - 10.3.1. 6 कुछ विषयों के प्रस्तावित करने और कुछ को अन्तिम स्वीकृत के लिए केन्द्र का अनुमोदन आवश्यक
- 10.4 केन्द्र राज्य प्रशासनिक सम्बन्ध
 - 10.4.1 राज्य सरकारों को निर्देश देने की संघ सरकार की शक्ति
 - 10.4.2 संघ सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने में असफल रहने का प्रभाव
 - 10.4.3 संघ द्वारा राज्यों की शक्ति देने का अधिकार
 - 10.4.4 राज्य सरकारों द्वारा संघ सरकार को कार्य सौंपने की शक्ति
 - 10.4.5 राज्यपालों की नियुक्ति और बरखास्तगी
 - 10.4.6 राज्य सरकारों को बरखास्त करना
 - 10.4.7 मुख्यमन्त्रियों के विरुद्ध जॉच आयोग
 - 10.4.8 अखिल भारतीय सेवाओं पर नियन्त्रण
- 10.5 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध
 - 10.5.1 संघ और राज्यों की बीच राजस्व वितरण

-
- 10.5.2 संघ द्वारा आरोपित किन्तु राज्यों द्वारा संग्रहित तथा विनियोजित षुल्क
 - 10.5.3 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत परन्तु राज्यों को सौंपे जाने वाले कर
 - 10.5.4 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत किन्तु संघ और राज्यों के बीच वितरित कर
 - 10.5.5 संघ के प्रयोजन के लिए कर
 - 10.5.6 राज्यों के प्रायोजन के लिए कर
 - 10.5.7 राजस्व में सहायक अनुदान
 - 10.5.8 ऋण लेने सम्बन्धी उपबन्ध
 - 10.6 भारत के नियंत्रक एवं महालेखा द्वारा नियन्त्रण
 - 10.7 वित्तीय संकटकाल
 - 10.8 सारांश
 - 10.9 शब्दावली
 - 10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
 - 10.11 संदर्भ ग्रन्थ
 - 10.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री
 - 10.13 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

भारत एक परिसंघ है और उसका संविधान परिसंघीय है। परिसंघ में शासन के दो स्तर होते हैं। सभी शक्तियाँ इन स्तरों में विभाजित की जाती हैं। संघ, अठ्ठाइस राज्य और सात संघ राज्य क्षेत्र सभी संविधान से शक्तियाँ प्राप्त करते हैं। राज्यों को शक्ति संघ नहीं प्रदान करता है। सबकी शक्ति का एक ही स्रोत है और वह है संविधान। संविधान में सभी शक्तियों का विभाजन संघ और राज्यों के मध्य किया गया है।

प्रत्येक परिसंघीय राज्य व्यवस्था का यह चिन्ह और आवश्यक लक्षण है कि शक्तियों का विभाजन और वितरण राष्ट्रीय सरकार और राज्य सरकारों के बीच किया जाता है जिन शक्तियों को इस प्रकार विभाजित किया जाता है वे साधारणतया चार प्रकार की होती है ;क- विधायी , ख- कार्य पालिका , ग- वित्तीय , घ- न्यायिक। अतः संविधान के आधार पर संघ तथा राज्यों के सम्बन्धों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। 1. केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध 2. केन्द्र तथा राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्ध 3. केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

1. केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विधायी सम्बन्धों की विवेचना कर सकेंगे।
2. केन्द्र एवं राज्यों के बीच प्रशासनिक शक्तियों के विभाजन की विवेचना कर सकेंगे।
3. केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों का वर्णन कर सकेंगे।
4. केन्द्र राज्य सहयोग प्राप्त करने के विभिन्न उपयों की व्याख्या कर सकेंगे।

10.3 केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध

हमारे संविधान के अनुच्छेद 245.255 में केन्द्र राज्य के मध्य विधायी सम्बन्धों के बारे में बताया गया है। संघ व राज्यों के मध्य विधायी सम्बन्धों का संचालन उन तीन सूचियों के आधार पर होता है। जिन्हें संघ सूची, राज्य सूची व समवर्ती सूची का नाम दिया गया है। इन सूचियों को सातवीं अनुसूची में रखा गया है।

१. संघ सूची: इस सूची में राष्ट्रीय महत्व के ऐसे विषयों को रखा गया है। जिसके सम्बन्ध में सम्पूर्ण देश में एक ही प्रकार की नीति का अनुकरण आवश्यक कहा जा सकता है। इस सूची के सभी विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार संघीय संसद को प्राप्त है। इस सूची में कुल 97 विषय हैं। जिनमें से कुछ प्रमुख हैं- रक्षा, वैदेशिक मामले, देशीकरण व नागरिकता, रेल, बन्दरगाह, हवाई मार्ग, डाक, तार, टेलीफोन व बेतार, मुद्रा निर्माण, बैंक, बीमा, खाने व खनिज आदि।

२. राज्य सूची: इस सूची में साधारणतया वो विषय रखे गये हैं जो क्षेत्रीय महत्व के हैं। इस सूची के विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार सामान्यतया राज्यों की व्यवस्थापिकाओं को ही प्राप्त है। इस सूची में 66 विषय हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख हैं- पुलिस, न्याय, जेल, स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक व्यवस्था, कृषि, सिंचाई आदि।

३. समवर्ती सूची: इस सूची में सामान्यतया वो विषय रखे गये हैं जिनका महत्व क्षेत्रीय व संघीय दोनों ही दृष्टियों से है। इस सूची के विषयों पर संघ तथा राज्य दोनों को ही विधियां बनाने का अधिकार प्राप्त है। यदि समवर्ती सूची के विषय पर संघीय संसद तथा राज्य व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानून परस्पर विरोधी हो तो सामान्यतया: संघ का कानून मान्य होगा। इस सूची में कुल 47 विषय हैं। जिनमें से कुछ प्रमुख ये हैं- फौजदारी, निवारक बिरोध, विवाह तथा विवाह विच्छेद दत्तक और उत्तराधिकार, कारखाने, श्रमिक संघ औद्योगिक विवाद, आर्थिक और समाजिक योजना और सामाजिक बीमा, पुर्नवास और पुरातत्व आदि।

अवशेष विषय: आट्रेलिया, स्विटजरलैण्ड और संयुक्त राज्य अमेरिका में अवशेष विषयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण का अधिकार इकाईयों को प्रदान किया गया है, लेकिन भारतीय संघ में कनाडा के संघ की भांति अवशेष विषयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण की शक्ति संघीय संसद को प्रदान की गयी है।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि शक्तियों के बटवारे में केन्द्र सरकार की तरफ झुकाव अधिक है।

10.3.1 राज्य सूची के विषय पर संसद की व्यवस्थापन की शक्ति

सामान्यतया संविधान द्वारा किये गये शक्ति विभाजन का उल्लंघन किसी भी सत्ता द्वारा, नहीं किया जा सकता। संसद द्वारा राज्य सूची के किसी विषय पर और किसी राज्य की व्यवस्थापिका द्वारा संघ सूची के किसी विषय पर निर्मित कानून अवैध होगा। लेकिन संसद के द्वारा कुछ विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत राष्ट्रीय हित तथा राष्ट्रीय एकता हेतु राज्य सूची के विषयों पर भी कानून का निर्माण किया जा सकता है। संसद को इस प्रकार की शक्ति प्रदान करने वाले संविधान के कुछ प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं।

10.3.1.1 राज्य सूची का विषय राष्ट्रीय महत्व का होने पर

संविधान के अनुच्छेद 249 के अनुसार यदि राज्य सभा अपने दो तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है कि राज्य सूची में उल्लिखित कोई विषय राष्ट्रीय महत्व का हो गया है तो संसद को उस विषय पर विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इसकी मान्यता केवल एक वर्ष तक रहती है। राज्य सभा द्वारा पुनः प्रस्ताव स्वीकृत करने पर इसकी अवधि में एक वर्ष की वृद्धि और हो जाएगी।

10.3.1.2 संकट कालीन घोषणा होने पर

अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्य की समस्त विधायिनी शक्ति पर भारतीय संसद का अधिकार हो जाता है ; अनुच्छेद 250 इस घोषणा की समाप्ति के छः माह बाद तक संसद द्वारा निर्मित कानून पूर्ववत् चलते रहेंगे।

10.3.1.3 राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा इच्छा प्रकट करने पर

अनुच्छेद 252 के अनुसार यदि दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमण्डल प्रस्ताव पास कर यह इच्छा व्यक्त करते हैं कि राज्य सूची के किन्हीं विषयों पर संसद द्वारा कानून निर्माण किया जाय, तो उन राज्यों के लिए उन विषयों पर अधिनियम बनाने का अधिकार संसद को प्राप्त हो जाएगा। राज्यों के विधानमण्डल न तो इन्हें संशोधित कर सकते हैं और न ही इन्हें पूर्ण रूप से समाप्त कर सकते हैं।

10.3.1.4 विदेशी राज्यों से हुई संधियों के पालन हेतु

; अनुच्छेद 253, यदि संघ सरकार ने विदेशी राज्यों से किसी प्रकार की संधि की है अथवा उनके सहयोग के आधार पर किसी नवीन योजना का निर्माण किया है तो इस सन्धि के पालन हेतु संघ सरकार को सम्पूर्ण भारत के सीमा क्षेत्र के अन्तर्गत पूर्णतया हस्तक्षेप और व्यवस्था करने का अधिकार होगा। इस प्रकार इस स्थिति में भी संसद को राज्य सूची के विषय पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

10.3.1.5 राज्यों में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर

यदि किसी राज्य में संवैधानिक संकट उत्पन्न हो जाए या संवैधानिक तंत्र विफल हो जाए तो संविधान के अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्य में राष्ट्रपति शासन लगा दिया जाता है इस स्थिति में राज्य की समस्त विधायी शक्तियां संसद द्वारा अथवा संसद के प्राधिकार के अधीन इस्तेमाल की जाती हैं इस अधिकार के तहत संसद किसी भी सूची के किसी भी विषय पर विधायन बना सकता है।

10.3.1.6 कुछ विषयों के प्रस्तावित करने और कुछ को अन्तिम स्वीकृत के लिए केन्द्र का अनुमोदन आवश्यक

उपर्युक्त परिस्थितियों में तो संसद द्वारा राज्य सूची के विषयों पर कानूनों का निर्माण किया जा सकता है, इसके अतिरिक्त भी राज्य व्यवस्थापिकाओं की राज्य सूची के विषयों पर कानून निर्माण की शक्ति सीमित है। अनुच्छेद 304 ;ख के अनुसार कुछ विधेयक ऐसे होते हैं जिनके राज्य विधान मण्डल में प्रस्तावित किए जाने के पूर्व राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृत की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए वे विधेयक जिनके द्वारा सार्वजनिक हित की दृष्टि से उस राज्य के अन्दर या उससे बाहर, वाणिज्य या मेल जोल पर कोई प्रतिबन्ध लगाए जाने हों।

10.4 केन्द्र राज्य प्रशासनिक सम्बन्ध

किसी भी परिसंघीय संविधान के अन्तर्गत केन्द्र व राज्यों की कार्यपालिकाएँ अलग-अलग होती हैं। जहाँ तक विधान बनाने का प्रश्न है दोनों के क्षेत्र को तय करना कठिन नहीं है क्योंकि सप्तम अनुसूची में शक्तियों का स्पष्ट विभाजन है। प्रशासनिक मामलों में बहुत सी कठिनाइयां सामने आती हैं कुछ मामले ऐसे होते हैं जिन्हें स्थानीय स्तर पर अच्छी तरह निपटाया जा सकता है और कुछ मामले ऐसे होते हैं जिनके लिए बड़े संगठन की आवश्यकता होती है जिससे क्षमता और मितव्ययता संभव हो सके। इसके अतिरिक्त परिसंघ की विभिन्न इकाइयों के बीच समन्वय स्थापित करना तथा उनके झगड़े तय करना भी आवश्यक हो जाता है। इन सभी समस्याओं को ध्यान में रखकर संविधान निर्माताओं ने अनुच्छेद 256 से 263 तक कुछ उपबन्ध किए हैं।

10.4.1 राज्य सरकारों को निर्देश देने की संघ सरकार की शक्ति

संविधान के अनुच्छेद 256 के अनुसार राज्य सरकार का यह कर्तव्य है कि संसद द्वारा पारित विधि को मान्यता है। इस प्रावधान का यह परिणाम निकलता है कि प्रत्येक राज्य की प्रशासनिक शक्ति को इस प्रकार प्रयोग में लाना होता है। कि वह संघ सरकार की प्रशासनिक शक्ति को प्रतिबन्धित न करें। संघ सरकार आवश्यकतानुसार इस प्रकार के निर्देश भी राज्य सरकार को दे सकती है। इसके अतिरिक्त संघ सरकार राज्यों को निम्नलिखित विषयों पर निर्देश दे सकती है-

1.राष्ट्रीय तथा सैनिक महत्व के यातायात तथा सूचना के साधनों का निर्माण और उनकी देखभाल करना।

2.राज्य में विद्यमान रेलमार्ग की सुरक्षा करना। तो भी जब कभी किसी यातायात के साधन के निर्माण अथवा देखभाल करने में अथवा रेलमार्ग की सुरक्षा करने में राज्य सरकार को अतिरिक्त व्यय करना पड़ जाता है तो भारत सरकार उसका भुगतान राज्य को कर देती है। और यदि अतिरिक्त व्यय की राशि के लिए कोई मतभेद हो जाता है तो भारत को मुख्य न्यायाधीश के द्वारा नियुक्त मध्यस्थ इसका निर्णय करता है ;अनुच्छेद 257।

3.परिगणित जनजातियों के हित के लिए बनाई योजनाओं को लागू करना ;अनु. 339।

10.4.2 संघ सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने में असफल रहने का प्रभाव संघ सरकार को संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के अन्तर्गत समान्य तथा असामान्य अवस्थाओं में जो निर्देश देने की शक्ति दी गई है उसके परिणामस्वरूप यह भी बात सामने आती है कि यदि संविधान के किसी भी प्रावधान के अन्तर्गत भारत सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन राज्य सरकार नहीं करती तो राष्ट्रपति यह मान सकता है कि राज्य सरकार संविधान के अनु. 365 के अन्तर्गत प्रावधान के अनुसार कार्य करने के समर्थ नहीं है। जैसे ही यह घोषणा की जायेगी, राज्य सरकार अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत बरखास्त कर दी जायेगी। इस आधार पर राज्य की विधानसभा या तो निलम्बित की जा सकती है या भंग की जा सकती है।

10.4.3 संघ द्वारा राज्यों की शक्ति देने का अधिकार

भारतीय संविधान की मूलभूत विशेषता यह है कि यह सहकारी संघ प्रणाली पर आधारित है। भारत सरकार के 1935 के विधान के समान यह संघ को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह प्रतिबन्ध सहित अथवा प्रतिबन्ध रहित कुछ कार्य राज्य सरकारों को सौंप दे अथवा राज्य सरकारों को स्वीकृति से इसके अधिकारियों को सौंप दे ;अनु. 258।

इसके अतिरिक्त, कुछ मामलों में तो राज्य सरकारों की अनुमति के बिना भी लोकसभा कानूनन अधिकार दे सकती है और राज्य के अधिकारियों को कार्य सौंप सकती है। जो भी ऐसे मामलों में यदि राज्य सरकार को कुछ अतिरिक्त व्यय करना पड़ता है तो उसको भारत सरकार अदा करती है। यदि होने वाले अतिरिक्त व्यय के विषय में भारत सरकार और राज्य सरकारों में मतभेद हो जाता है तो उसका निर्णय भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नियुक्त मध्यस्थ के द्वारा किया जाता है। इस अनुच्छेद के अनुसार जनगणना करवाना, चुनाव के लिए मत-सूची तैयार करवाना और चुनाव करवाना ये तीनों काम राज्य सरकारों को सौंपे हुए हैं।

10.4.4 राज्य सरकारों द्वारा संघ सरकार को कार्य सौंपने की शक्ति

मूलतः संविधान में कोई ऐसा प्रावधान नहीं है जिसके अनुसार एक राज्य सरकार कुछ कार्य भारत सरकार के किसी अंग को सौंप सके। सम्भवतः संविधान निर्माताओं ने यह कभी नहीं सोचा था कि कभी ऐसी भी घटना हो सकती है। केन्द्र सरकार ने जब उड़ीसा सरकार की ओर से हीराकुण्ड बाँध का निर्माण कार्य प्रारम्भ किया और यह निर्णय किया कि इसकी लागत राज्य सरकार के खर्च से खर्च होगी तो लेखा नियन्त्रक ;कन्ट्रोलररद्ध तथा महालेखा परीक्षक ;ऑडिटर जनरलरद्ध ने आपत्ति की। उसके पश्चात् 1956-का सातवां संविधान संशोधन पारित किया गया और संविधान में अनुच्छेद 258 ए जोड़ दिया गया। इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य के राज्यपाल को यह अधिकार दिया गया कि वह सप्रतिबन्ध अथवा अप्रतिबन्ध रूप से कुछ कार्य सौंप दे जिससे राज्य की प्रशासनिक शक्ति संघीय सरकार के अधिकारियों के पास पहुँच जाये। परन्तु यह सब भी भारत सरकार की अनुमति से ही हो सकता है।

10.4.5 राज्यपालों की नियुक्ति और बर्खास्तगी

राज्यपाल किसी भी राज्य के संवैधानिक प्रमुख होते हैं। राष्ट्रपति इनकी नियुक्ति बरखास्तगी अथवा स्थानान्तरण करता है। वस्तुतः वे शुद्ध रूप से संघीय सरकार की दयाभाव पर निर्भर हैं। इसलिए अनेक बार उन्हें केन्द्रीय सरकार के दबाव के कारण मन्त्रिमण्डल को नियुक्त करने तथा पदच्युत करने और विधानसभा की बैठक बुलाने, स्थगित करने तथा भंग करने का कर्तव्य निबाहना पड़ता है। राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयकों को निश्चित करने और राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए सिफारिश करने के अधिकारों का प्रयोग केन्द्र में सत्ता दल के हितों को ध्यान में रखते हुए करना पड़ता है। इस प्रकार बहुत हद तक केन्द्र राज्यों की स्वायत्ता को राज्यपालों के द्वारा नष्ट कर देता है।

10.4.6 राज्य सरकारों को बरखास्त करना

संघीय सरकार को अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू करने की अत्यन्त महत्वपूर्ण शक्ति दी गई है। यद्यपि इसमें यह अवश्य है कि यदि राष्ट्रपति सन्तुष्ट हो जाता है कि परिस्थिति ऐसी बन गई है जिसमें राज्य की सरकार संविधान में यि गये प्रावधान के अनुसार कार्य नहीं कर रही है। इस अनुच्छेद का केन्द्र में शासन करने वाली पार्टी ने पुनः-पुनः प्रयोग पक्षपातपूर्ण उद्देश्यों के लिए किया और दूसरी और राज्यों की स्वायत्ता को नष्ट करने के लिए किया। जो भी राज्य सरकार अपने अनूकूल न दिखाई दी उसे ही पदच्युत कर दिया गया तथा विधानसभाओं को या तो निलम्बित कर दिया गया अथवा केन्द्र में शासन करने वाली पार्टी के हितों को ध्यान में रखते हुए उसे भंग कर दिया गया। उस अनुच्छेद ने वस्तुतः राज्य सरकारों को प्रशासन की दृष्टि से सर्वथा केन्द्र के अधीन बना दिया।

10.4.7 मुख्यमंत्रियों के विरुद्ध जाँच आयोग

एक दूसरा उपाय जिसके द्वारा संघ सरकार राज्य सरकारों पर पूर्ण प्रशासनिक नियन्त्रण रखती है, वह है केन्द्र सरकार द्वारा मुख्यमंत्रियों के भूल-चूक या अच्छे-बुरे कार्यों के लिए उनके विरुद्ध जाँच-आयोग बैठाना। इस प्रकार का जाँच आयोग सबसे पहले पंजाब के मुख्यमंत्री प्रताप सिंह कैरों के विरुद्ध संघ सरकार ने 1963 में दास आयोग के नाम से बैठाया था। इसके उपरान्त इस प्रकार के जाँच आयोग बैठाने गए जैसे 1972 में पंजाब में सरकार प्रकाश सिंह बादल के विरुद्ध, 1976 में तमिलनाडु में करुणानिधि के विरुद्ध सरकारिया आयोग, आन्ध्र में वेंगल राव के विरुद्ध विया दलाल आयोग, कर्नाटक में देवराज उर्स के और हरियाण में बंसी लाल के विरुद्ध 1978 में, और त्रिपुरा के मुख्यमंत्री एस. एस. सेन गुप्त के विरुद्ध 1979 में बर्मन आयोग। 1981 में संघ सरकार ने तमिलनाडु और केरल में स्पिरिट घोटाले के विषय में जांच करने लिए प्रे आयोग की नियुक्ति की थी।

10.4.8 अखिल भारतीय सेवाओं पर नियन्त्रण

संविधान में राज्यों की सेवाओं और केन्द्र सेवाओं का प्रावधान है। तो भी कुछ सेवाएँ ऐसी हैं जो अखिल भारतीय हैं, जैसे भारतीय प्रशासनिक सेवा ;इण्डियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस, और भारतीय पुलिस सेवा ;इण्डियन पुलिस सर्विस, केन्द्र सरकार इसके अतिरिक्त भी अखिल भारतीय सेवाओं का निर्माण कर सकती है यदि राज्य सभा उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करके इस प्रकार की अखिल सेवा के बनाने की सिफारिश करें। केन्द्र की अनुमति के बिना उन पर कोई भी अनुशासनिक कार्यवाही नहीं की जा सकती।

10.5 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध

कोई भी सरकार बगैर धन के सुचारू रूप से नहीं चल सकती है एक परिसंघीय संविधान के अन्तर्गत राज्यों की स्वतंत्रता आवश्यक होती है। यह स्वतंत्रता तभी रह सकती है जब राज्यों के लिए पर्याप्त वित्तीय व्यवस्था हो। प्रायः सभी मुख्य परिसंघों में वित्तीय व्यवस्था की राज्यों पर नियंत्रण रखने के लिए भी प्रयाग किया जाता है। इसलिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 263-293 तक वित्तीय सम्बन्धों पर विस्तृत चर्चा की गई है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 265 में यह व्यवस्था है कि विधि के प्राधिकार के बिना कोई कर न लगाया जाएगा और न वसूल किया जाएगा। अनुच्छेद 265 के उपबन्ध प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के करों पर लागू होते हैं। अनुच्छेद 266 के अनुसार भारत सरकार प्राप्त सभी राजस्व उधार लिया गया धन तथा उद्योग के प्रतिदान में प्राप्त सभी धनों की एक संचित निधि बनेगी जो भारत की संचित निधि ; के नाम से ज्ञात होगी और इसी प्रकार राज्य सरकार द्वारा प्राप्त सभी राजस्व उधार लिया धन तथा उधार के प्रतिदान में प्राप्त धनों की एक संचित निधि बनेगी जो राज्य की संचित निधि

; के नाम से ज्ञात होगी। भारत सरकार या राज्य सरकार द्वारा प्राप्त अन्य सभी सार्वजनिक धन लोक लेखे ; में जमा किया जाएगा। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 267 में भारत व राज्यों के लिये आकस्मिकता निधि की व्यवस्था है जो अपूर्व दृष्ट ; व्यय के लिए क्रमशः राष्ट्रपति व राज्यपालों के हाथ में रखी जाएगी।

10.5.1 संघ और राज्यों की बीच राजस्व वितरण

भारतीय संघ में संघ और राज्यों के बीच राजस्व वितरण की निम्नलिखित पद्धति अपनाई गई है।

10.5.2 संघ द्वारा आरोपित किन्तु राज्यों द्वारा संग्रहित तथा विनियोजित शुल्क

अनुच्छेद 268 में यह उपलब्ध है कि ऐसे मुद्रा शुल्क औषधीय और प्रसाधनीय पर ऐसे उत्पादन शुल्क जो संघ सूची में वर्णित है, भारत सरकार द्वारा आरोपित किये जायेंगे परन्तु संघ राज्य क्षेत्र के भीतर उदग्रहीत ; समअपमकद्ध किए जाने वाले शुल्क भारत सरकार द्वारा और राज्यों के बीच उदग्रहीत शुल्क राज्य सरकारों द्वारा संग्रहीत किये जाएंगे। जो शुल्क राज्यों के भीतर उदग्रहीत किए जाएंगे वे भारत की संचित निधि में जमा न होकर उस राज्य की संचित निधि में जमा किए जाएंगे।

10.5.3 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत परन्तु राज्यों को सौंपे जाने वाले कर

कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, रेल समुद्र तथा वायु द्वारा ले जाने वाले माल तथा यात्रियों पर सीमान्त कर रेल भाड़ों तथा वस्तु भाड़ों पर कर, शेयर बाजार तथा सट्टा बाजार के आदान प्रदान पर मुद्राक शुल्क के अतिरिक्त कर, समाचार पत्रों के क्रय विक्रय तथा उनमें प्रकाशित किए गए विज्ञापनों पर और समाचार पत्रों से अन्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य से माल के क्रय विक्रय पर कर।

10.5.4 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत किन्तु संघ और राज्यों के बीच वितरित कर

कुछ कर संघ द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत किए जाते हैं किन्तु उनका विभाजन संघ तथा राज्यों के बीच होता है। आयकर का विभाजन संघीय भू भागों के लिए निर्धारित निधि तथा संघीय खर्च को काटकर शेष राशि में से किया जाता है। आयकर के अतिरिक्त दवा तथा शौक श्रृंगार सम्बन्धी जीजों के अतिरिक्त अन्य चीजों पर लगाया गया उत्पादन शुल्क इसके अन्तर्गत आता है।

10.5.5 संघ के प्रयोजन के लिए कर

अनुच्छेद 271 में यह उपबन्ध है कि संसद 269 और 270 में निर्दिष्ट शुल्कों या करों की अधिभार द्वारा वृद्धि कर सकती है। अधिभार से हुई सारी आय भारत की संचित निधि का भाग होगी। संघ के प्रमुख राजस्व स्रोत इस प्रकार हैं निगम कर, सीमा शुल्क, निर्यात शुल्क कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, विदेशी ऋण, रिजर्व बैंक, शेयर बाजार आदि।

10.5.6 राज्यों के प्रायोजन के लिए कर

अनुच्छेद 276 के अन्तर्गत राज्यों को वृत्तियों व्यापारों अजीविकाओं नौकरियों पर कर लगाने का प्राधिकार दिया गया है। इससे प्राप्त आय राज्य या उसकी नगर पालिकाओं, जिला वार्डों या स्थानीय बोर्डों के हितों में प्रयोग की जाएगी। राज्यों के मुख्य राजस्व स्रोत हैं- प्रति व्यक्ति कर, कृषि भूमि पर कर सम्पदा शुल्क, भूमि और भवनों पर कर, पशुओं और नौकाओं पर कर, बिजली के उपयोग तथा विक्रय पर कर वाहनों पर चुंगी कर आदि।

10.5.7 राजस्व में सहायक अनुदान

अनुच्छेद 273 के तहत पटसन व उससे बनी वस्तुओं के निर्यात से जो शुल्क प्राप्त होता है उसमें से कुछ भाग अनुदान पैदा करने वाले राज्यों- बंगाल, उड़ीसा, बिहार व असम को दे दिया जाता है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 275 में उन राज्यों के लिए अनुदान की व्यवस्था है जिनके बारे में संसद यह निर्धारित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है।

10.5.8 ऋण लेने सम्बन्धी उपबन्ध-संविधान केन्द्र को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह अपनी संपत्ति निधि की साख पर देशवासियों व विदेशी सरकारों से ऋण ले सके। ऋण लेने का अधिकार राज्यों को भी प्राप्त है परन्तु वे विदेशी से उधान नहीं ले सकते। यदि राज्य सरकार पर केन्द्र सरकार का कोई कर्ज बाकी है तो राज्य सरकार अन्य कहीं से कर्ज केन्द्र सरकार की अनुमति से ही ले सकती है।

10.6 भारत के नियंत्रक एवं महालेखा द्वारा नियन्त्रण

भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के हिसाब का लेखा रखने का ढंग एवं उनकी निष्पक्ष रूप से जांच करता है। नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के माध्यम से ही भारतीय संसद राज्यों की आय पर अपना नियंत्रण रखती है।

10.7 वित्तीय संकटकाल

वित्तीय संकटकाल की स्थिति में राज्यों का आय सीमा राज्य सूची में चर्चित करों तक ही सीमित रहती है। वित्तीय संकट के प्रवर्तन काल में राष्ट्रपति को संविधान के उन सभी प्रावधानों को स्थगित करने का अधिकार है जो सहायता अनुदान अथवा संघ के करों की आय में भाग बंटाने से सम्बन्धित हो। केन्द्रीय सरकार वित्तीय मामलों में राज्यों को निर्देश भी दे सकती है।

अभ्यास प्रश्न

1. अनुच्छेद 276 के अन्तर्गत राज्यों को वृत्तियों व्यापारों अजीविकाओं नौकरियों पर कर लगाने का

प्राधिकार दिया गया है। सत्य/असत्य

2. अनुच्छेद 275 में उन राज्यों के लिए अनुदान की व्यवस्था है जिनके बारे में संसद यह निर्धारित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है। सत्य/असत्य

3. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 265 में यह व्यवस्था है कि विधि के प्राधिकार के बिना कोई कर न लगाया जाएगा और न वसूल किया जाएगा। सत्य/असत्य

4. संघीय सरकार को अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू करने की अत्यन्त महत्वपूर्ण शक्ति दी गई है। सत्य/असत्य

10.8 सारांश

जिस प्रकार से एक गाड़ी को चलाने के लिए उसके दोनों पहियों, के मध्य समन्वय का होना आवश्यक है उसी प्रकार से केन्द्र तथा राज्यों के मध्य परस्पर समन्वय ही देश को विकास के क्षेत्र में ऊर्चाइयों पर ले जा सकता है। स्वतन्त्रता के पश्चात आरम्भिक वर्षों में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य परस्पर सहयोग की भावना थी किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया दोनों के मध्य सम्बन्धों में दरारें दिखनी लगीं। इसका एक कारण तो यह था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सभी में अपने देश की सरकार के प्रति चरम सीमा पर उत्साह था तथा दूसरा कारण यह था कि ज्यादातर राज्यों में कांग्रेस की सरकार थी तथा केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के मध्य बड़े भाई तथा छोटे भाई जैसा रिश्ता था अतः तनाव न के बराबर था। तनाव उत्पन्न होने का मुख्य कारण राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारों का उदय होना था। धीरे-धीरे समय बीतने के साथ-साथ विभिन्न मुद्दों पर केन्द्र तथा राज्यों के मध्य तनाव बढ़ाने के मुख्य कारणों में राज्यपाल की भूमिका भी मुख्य रही है। क्योंकि राज्यपाल सरकारों में संविधानिक प्रमुख होने के स्थान पर केन्द्रीय एजेंट के रूप में ज्यादा कार्य करने लगे हैं। तनाव का एक और मुख्य कारण अखिल भारतीय सेवाएँ हैं जिसके कि सदस्यों को नियन्त्रित करने वाली केन्द्र सरकार होती है जबकि वो कार्य राज्य सरकारों में करते हैं और बगैर केन्द्र की अनुमति के उनके खिलाफ कड़ी कार्यवाही नहीं कर सकती है। तनाव का एक अन्य कारण वित्त भी है। कुछ सरकारें केन्द्र से मिले धन को राज्य के विकास में न लगाकर अपने राजनीतिक जनाधार को बढ़ाने में लगी रहती हैं। जिसे कि केन्द्र द्वारा अक्सर ही विरोध प्रकट किया जाता है। इसके अतिरिक्त केन्द्र राज्यों के मध्य सम्बन्ध केन्द्र में प्रधानमंत्री की स्थिति के ऊपर भी निर्भर करता है। 1990 के पश्चात केन्द्र में ज्यादातर सरकारें कमजोर रही हैं उसका सबसे बड़ा कारण साक्षात्कार का होना रहा है। केन्द्र में सरकार राज्यों के क्षेत्रीय दलों के सहयोग से बनायी जा रही है। जिसकी कि वहज से समर्थन देने वाली पार्टी के राज्यों में केन्द्र सरकार ब्लेक मेल होती रहती है। इसके उदाहरण हमको दिन प्रतिदिन देखने को मिलते रहते हैं। यदि हमको वास्तव में अपने देश को तरक्की की राह पर ले जाना है तो केन्द्र सरकारों का राज्यों सरकारों के मध्य विवाद रहित तथा स्वार्थ रहित सम्बन्ध होने चाहिये।

संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य सम्बन्धों को स्पष्ट रूप से प्रशासनिक, विधायी तथा वित्तीय क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से विभाजित किया गया है और यह विभाजन संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची के माध्यम से किया गया है। इसके अतिरिक्त विशेष परिस्थितियों में भी केन्द्र तथा राज्यों के मध्य सम्बन्धों को बताया गया है। स्पष्ट विभाजन के बावजूद भी विभिन्न क्षेत्रों में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य कठिनाइयाँ आती हैं। यह कठिनाइयाँ वहाँ अवष्य उत्पन्न होती हैं जहाँ केन्द्र तथा राज्यों में अलग-अलग पार्टी की सरकारें होती हैं। देश की तरक्की के लिए केन्द्र तथा राज्यों के मध्य मधुर सम्बन्ध का होना अत्यन्त आवश्यक है।

10.9 शब्दावली

अनुच्छेद 352	:	राष्ट्रीय आपात काल
अनुच्छेद 356	:	राज्यों में संवैधानिक तन्त्र की विफलता
अनुच्छेद 360	:	वित्तीय आपात काल
अखिल भारतीय सेवायें :		भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा एवं भारतीय वन सेवा।

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य

10.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. भारत का संविधान: ब्रज किशोर शर्मा , 2008ए प्रेंटिस हाल आफ इंडिया प्राइवेट लि. नई दिल्ली।
2. भारत में लोक प्रशासन : डा. बी. एल. फाडिया, 2002ए साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
3. भारतीय प्रशासन : प्रो. मधू सूदन त्रिपाठी 2008ए ओमेगा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।
4. इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन डा. बी. एल. फडिया, डा. कुलदीप फडिया 2007ए साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

10.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन: अवस्थी एवं अवस्थी 2009ए लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा।
2. इंडियन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन: रमेश अरोडा, रजनी गोयल 2001ए विश्व प्रकाशन नई दिल्ली।
2. भारत का संविधान: डा. जी. एस. पाण्डेय 2001ए यूनिवर्सिटी बुक हाउस जयपुर।

10.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विधायी सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

- 2.केन्द्र तथा राज्यों के मध्य प्रशासनिक सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए।
- 3.केन्द्र तथा राज्यों में मध्य वित्तीय सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।
- 4.केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विवाद के क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।

इकाई 11 राज्यपाल, मुख्यमंत्री, मंत्रिपरिषद

- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 उद्देश्य
- 11.3 राज्यपाल
 - 11.3.1 राज्यपाल की नियुक्ति
 - 11.3.2 नियुक्ति के लिए अर्हताएं
 - 11.3.4 कार्यकाल एवं पदमुक्ति
 - 11.3.5 वेतन एवं भत्ते
 - 11.3.6 शक्तियाँ और कार्य
 - 11.3.7 राज्यपाल की स्थिति
- 11.4 मुख्यमंत्री
 - 11.4.1 मुख्यमंत्री की नियुक्ति
 - 11.4.2 मुख्यमंत्री के कार्य एवं शक्तियाँ
 - 11.4.3 मुख्यमंत्री और मन्त्रिपरिषद
 - 11.4.4 मुख्यमंत्री और विधानमण्डल
 - 11.4.5 मुख्यमंत्री और राज्यपाल
 - 11.4.6 मुख्यमंत्री की वास्तविक स्थिति
- 11.5 मंत्रिपरिषद
 - 11.5.1 संगठन
 - 11.5.2 शक्तियाँ व कार्य, उत्तरदायित्व
- 11.6 सारांश
- 11.7 शब्दावली
- 11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
- 11.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

भारत के संविधान द्वारा अपनायी गयी संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत प्रशासन के तीन स्तर हैं केन्द्रीय प्रशासन, राज्य प्रशासन एवं संघीय प्रशासन। प्रशासन के इन तीनों स्तरों में राज्य वह महत्वपूर्ण कड़ी है जो स्थानीय शासन को केन्द्रीय प्रशासन से जोड़ने का कार्य करते हैं। भारत के राज्यों में भी संघ की व्यवस्था का ही एक लघु रूप देखने को मिलता है। जिस प्रकार केन्द्र में संसद होती है ठीक उसी प्रकार राज्य में विधानमंडल होता है।

विधानमंडल में दो सदन होते हैं उच्च सदन विधान परिषद कहलाता है जबकि निम्न सदन विधान सभा कहलाता है। अधिकतर भारतीय राज्यों में निम्न सदन विधान सभा है। विधानसभा का नेता मुख्यमंत्री कहलाता है वह राज्य का वास्तविक प्रधान होता है। मुख्यमंत्री मंत्रिपरिषद के सहयोग से राज्य का प्रशासन चलाते हैं। अर्थात् राज्य की कार्यकारी निकाय मंत्रिपरिषद होती है। मंत्रिपरिषद में विधान सभा तथा विधान परिषद के सदस्य ही हो सकते हैं। राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रधान राज्यपाल होता है राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में ही निहित होती है और राज्य के सभी कार्य राज्यपाल के नाम से किये गये जाते हैं इस प्रकार एक राज्य के मुख्य स्तम्भों में राज्यपाल मुख्यमंत्री एवं मन्त्रिपरिषद होते हैं।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के पढ़ने के बाद आप

1. राज्यपाल के कार्यों एवं उसकी स्थिति की विवेचना कर सकेंगे
2. मुख्यमंत्री की नियुक्ति एवं वास्तविक कार्यपालक के रूप में उसके कार्यों की व्याख्या कर सकेंगे।
3. मंत्रिपरिषद के गठन एवं कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।

11.3 राज्यपाल

हमारे संविधान में परिसंघीय शासन व्यवस्था है जिसमें कि केन्द्र और राज्यों के मध्य शक्तियों का बंटवारा किया गया है अर्थात् भारत के राज्यों का प्रशासन केन्द्रीय प्रशासन का प्रतिरूप है। जिस प्रकार से केन्द्र में समस्त कार्य राष्ट्रपति के नाम से किये जाते हैं उसी प्रकार से राज्यों में कार्यपालिका के समस्त कार्य राज्यपाल के नाम से किये जाते हैं। वस्तुतः राज्यपाल इन कार्यों को मंत्रिपरिषद के परामर्श से करता है तथा मंत्रिपरिषद का मुखिया राज्य का मुख्यमंत्री होता है। अतः राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका का वैधानिक प्रधान होता है जबकि मन्त्रिपरिषद राज्य की कार्यपालिका की वास्तविक प्रधान होती है।

भारत में राज्यपाल का चयन अमेरिका की भाँति जनता द्वारा निर्वाचन पद्धति से नहीं होता है बल्कि हमारे यहाँ राज्यपाल, राष्ट्रपति द्वारा नामजद व्यक्ति होता है। ब्रिटिश शासनकाल में प्रान्तीय सरकार चलाने का कार्य गवर्नर करता था, अतः राज्यपाल के लिए गवर्नर शब्द प्रयुक्त होता है। वर्तमान में राज्यपाल के पास ब्रिटिश शासनकाल की भाँति असीमित शक्तियाँ नहीं हैं बल्कि अब राज्यपाल का पद राष्ट्रपति की भाँति केवल नाम मात्र के संवैधानिक प्रमुख का है।

11.3.1 राज्यपाल की नियुक्ति

राज्यपाल पद के सम्बन्ध में संविधान सभा के समक्ष चार विकल्पों पर चर्चा हुई थी।

1. राज्यपाल का सर्वसाधारण जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव किया जाना चाहिये,
2. राज्य विधान मण्डल के निम्न सदन या दोनों सदनों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर राज्यपाल का निर्वाचन किया जाय
3. निम्न सदन ;राज्य की विधान सभाद्ध द्वारा चार नामों का सुझाव दिया जाय, जिनमें से किसी एक को राष्ट्रपति के द्वारा राज्यपाल के पद पर नियुक्त किया जाय
4. राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति की जाय।

इन चारों विकल्पों पर संविधान सभा में बहस के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला गया कि चौथा विकल्प, अर्थात् राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर व मुहर सहित आदेशानुसार राज्यपाल को पाँच वर्षों के लिए नियुक्त करता है।

11.3.2 नियुक्ति के लिए अर्हताएं

संविधान के अनुच्छेद 157 के अनुसार किसी भी व्यक्ति को राज्यपाल के रूप में नियुक्ति होने से पूर्व निम्न अर्हताएं रखनी चाहिये।

1. वह भारत का नागरिक हो
2. 35 वर्ष की आयु पूरी का चुका हो
3. संसद या राज्य विधान मण्डलों के किसी सदन का सदस्य न हो
4. वह किसी लाभ देने वाले सरकारी पद पर कार्यरत न हो।

यदि कोई व्यक्ति राज्यपाल पर पर नियुक्त किया जाता है तथा वह किसी विधानमण्डल का सदस्य है या लोक सेवा में अन्यत्र कार्यरत है तो उसकी राज्यपाल पद पर नियुक्ति होने से पूर्व पद या सदस्यता समाप्त मानी जाती है। संविधान में राज्यपाल हेतु किसी प्रकार की शैक्षणिक या व्यावसायिक योग्यताएं निर्धारित नहीं की गई हैं, किन्तु इस पद की नियुक्ति का निर्णय केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की इच्छा पर निर्भर करता है। सामान्यतः राजनीतिक दलों के नेताओं, मंत्रियों, सांसदों, विधायकों, विषिष्ट योग्यता प्राप्त गैर राजनीतिक व्यक्तियों तथा शिक्षाविद् इत्यादि को इस पद पर नियुक्त किया जाता रहा है। संविधान के लागू होने के पश्चात राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में एक परम्परा का पालन अवश्य किया जाता रहा है ;कुछ एक अपवादों को छोड़कर वह यह है कि भारत में किसी भी राज्य में ऐसे व्यक्ति को राज्यपाल नहीं बनाया जाता है जो उसी राज्य का रहने वाला हो।

11.3.4 कार्यकाल एवं पदमुक्ति

संविधान के अनुच्छेद 156 के अनुसार राज्यपाल, राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त अपना पद धारण करेगा। सामान्यतया यह कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है। वह अपने पद ग्रहण की तारीख से पाँच वर्ष बीत जाने के बाद भी तब तक पद धारण किए रह सकता है जब तक कि उसका उत्तराधिकारी पद ग्रहण न कर ले। राष्ट्रपति कभी भी राज्यपाल को पदमुक्त कर सकता है लेकिन राज्यपाल को हटाने के आधार तथा प्रक्रिया का संविधान में कहीं कोई उल्लेख नहीं है। व्यावहारिक स्थिति यह है कि केन्द्र एवं राज्य में विपरीत राजनीतिक दलों की सरकारें गठित होने पर राज्यपाल हटाये जाते रहे हैं।

11.3.5 वेतन एवं भत्ते

राज्यपाल को संसद द्वारा निर्मित विधि द्वारा निर्धारित उपलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकारों का अधिकार होता है। राज्य ;उपलब्धियां, भत्ते और विशेषाधिकार 1982 द्वारा राज्यपाल की उपलब्धियां 5500रू.. प्रतिमाह निर्धारित की गई थी। वर्तमान में यह रू. 110000रू.. प्रतिमाह

है। इसके अतिरिक्त वह किराया रहित आवास का भी हकदार होता है। राज्यपाल की उपलब्धियां और भत्ते उसके पद की अवधि में नहीं घटाये जा सकते हैं।

11.3.6 शक्तियाँ और कार्य

सुगमता से अध्ययन करने के लिए राज्यपाल की शक्तियों और कार्यों को निम्न शीर्षकों के अधीन रखा जा सकता है:

1. प्रशासन सम्बन्धी

सबसे पहले हम राज्यपाल की प्रशासकीय शक्तियों का अध्ययन करेंगे जो इस प्रकार हैं:

a. वह राज्य सरकार का प्रशासकीय अध्यक्ष है। राज्य की सारी कार्यपालिका सत्ता उसी के पास है जिसका प्रयोग वह स्वयं या अपने अधीन अधिकारियों द्वारा करता है। राज्य के समस्त प्रशासकीय कार्य उसी के नाम से किए जाते हैं। वह सरकार की कार्यवाही चलाने तथा अपने मंत्रियों के बीच काम बांटने के बारे में नियम बनाता है।

b. वह मुख्यमंत्री को नियुक्ति करता है तथा उसकी राय से अन्य मंत्रियों को नियुक्त करके मंत्रिपरिषद् बनाता है। वही उनको पद व गोपनीयता की शपथ दिलाता है तथा उनके त्यागपत्र स्वीकार करता है। वह अपनी मंत्रिपरिषद् भंग कर सकता है।

c. वह उच्च अधिकारियों को नियुक्त करता है जैसे राज्य का महाधिवक्ता, लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष व सदस्यगण आदि तथा अपने राज्य के उच्च न्यायालय के जजों की नियुक्ति में राष्ट्रपति को परामर्श देता है।

d. उसे सूचित रहने का अधिकार है, इसलिए मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य है कि राज्य के प्रशासन के बारे में उसे आवश्यक सूचना देता रहे। राज्यपाल इस बारे में मुख्यमंत्री से कोई भी आवश्यक सूचना मांग सकता है। वह मुख्यमंत्री से यह कह सकता है कि अमुक मंत्री का निर्णय मंत्री परिषद् के विचार के लिए रखा जाय यदि उस पर मंत्रिपरिषद् ने कोई फैसला नहीं दिया है।

e. वह राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेज सकता है कि राज्य में संवैधानिक संतुलन विफल हो चुका है। इसलिए वह संविधान के अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्य में पूर्ण या अर्द्ध संकट काल घोषित करने की सिफारिश कर सकता है। यदि राष्ट्रपति राज्य में संकटकाल की घोषणा कर दे, तब राज्यपाल राष्ट्रपति के दूत के रूप में कार्य करता है और वहां का प्रशासन चलाता है।

f. वह राज्य के विश्वविद्यालयों के कुलपति के रूप में कार्य करता है।

इस तरह संविधान के अनुच्छेद 154 के अनुसार राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल के हाथ में होती है। अनुच्छेद 166 -के अनुसार राज्य प्रशासन को सुविधाजनक ढंग से चलाने के लिए आवश्यक नियमावली राज्यपाल बनाता है। भारत के गवर्नर को उसके कार्य के अनुरूप विभिन्न मॉडलों में प्रस्तुत किया जा सकता है। एक तरफ जहां राज्यपाल राज्य प्रमुख के रूप में कार्य करता है वहीं दूसरी ओर राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में भी उसे देखा जा सकता है। राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में वह कुछ विषिष्ट सांविधानिक कर्तव्यों का निर्वाह करता है जिसमें राज्य विधायिका द्वारा पारित विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ स्वीकार करना और राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने से सम्बन्धित प्रतिवेदन राष्ट्रपति को सौंपना।

राज्य के प्रशासनिक प्रमुख के रूप में राज्यपाल को प्रमुख विविध रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है।

औपचारिक या नाममात्र का राज्य प्रमुख: भारतीय संसदात्मक शासन व्यवस्था में जनता के चुने गए प्रतिनिधियों को वास्तविक कार्यपालिका शक्तियां दी गयी हैं। सांविधानिक प्रावधानों के अनुसार राज्यपाल मुख्यमंत्री और उसके मंत्रिपरिषद् की सलाह से ही अपने कर्तव्यों का निर्वाह करता है और इस प्रकार उसे लगभग पूरी तरह मुख्यमंत्री और उसके दल पर निर्भर रहता है।

विषिष्ट दायित्वों का निर्वाह करने वाले राज्य प्रमुख के रूप में: असम का राज्यपाल खनन रायल्टी में साझेदारी से सम्बन्धित विवादों पर अपने विवेक का इस्तेमाल करता है तथा इसी प्रकार नागालैंड के राज्यपाल को राज्य में शांति व्यवस्था कायम करने की विशेषजिम्मेदारी का पालन करना होता है और इन सभी कर्तव्यों को निभाने के लिए मंत्रिपरिषद् की सलाह लेना उसके लिए अनिवार्य नहीं होता।

एक प्रशासक के रूप में राज्यपाल: राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू होने के बाद राज्यपाल को राष्ट्रपति की ओर से एक प्रशासक के तौर पर अपना कर्तव्य निभाता है। पूरा मंत्रिपरिषद् राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल में समाहित हो जाती है। सामान्य परिस्थितियों में भी जब किसी दल को सदन में स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता तब राज्यपाल को मुख्यमंत्री की सलाह स्वीकार करना अनिवार्य नहीं होता। सदन के पटल पर हारे हुए मंत्रिपरिषद् की बात पर अमल करने या न करने पर निर्णय लेना और राजनीतिक अनिश्चितता के दौर में अनैतिक दबावों से बचते हुए निष्पक्ष निर्णय लेना राज्यपाल का विशेषकर्तव्य होता है। इस तरह वह परिस्थितिवश विवेकाधिकार प्राप्त कर लेता है।

प्रशासक के रूप में अनेक राज्यपालों ने अपना उल्लेखनीय योगदान दिया है। गुजरात के राज्यपाल ने अनूसूचित जनजातियों के आर्थिक अधिकारों को सुनिश्चित करने का अथक प्रयास किया। राज्य

के डांग जिले में जनजातियों के अधिकारों को बहाल कराने और वन नीति में आवश्यक सुधार कराने का सफल प्रयास राज्यपाल ने किया। 1985 में आंध्रप्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल के रूप में डॉ. षंकर दयाल शर्मा ने राज्यपालों के राष्ट्रीय सम्मेलन में केन्द्र सरकार से राज्य के विभिन्न प्रोजेक्टों को स्वीकृत करने की विनती की जबकि केरल के तत्कालीन राज्यपाल के रूप में बी. बी. गिरी ने केरल के वाजिब अधिकारों के लिए योजना आयोग से जबरदस्त विरोध जताया। श्री गिरी ने जबरदस्त विरोध के कारण योजना आयोग को अपने पूर्व निर्धारित निर्णयों को बदलना पड़ा और केरल को अधिक सहायता राशि आवंटित किया गया। इस तरह अनेक ऐसे उदाहरण भारतीय राजनीति के 50 वर्षों के इतिहास में देखे जा सकते हैं, जिसके माध्यम से राज्यपाल की एक ऐसी तस्वीर उभरती है जिसे देखकर यह कहा जा सकता है कि राज्यपाल के लिए सांविधानिक प्रावधानों के अन्तर्गत सामान्य परिस्थिति में भी महत्वपूर्ण सकारात्मक भूमिका निभा सकता है। अनुच्छेद 167 के अन्तर्गत राज्यपाल प्राप्त अधिकारों का इस्तेमाल करके भी वह अपना प्रभाव प्रशासन पर डाल सकता है। परन्तु कभी-कभी राज्यपाल प्रशासनिक कार्यों में अपनी भूमिका प्रत्यक्षतः निभाने लगे, तब वह विवाद का विषय बन जाता है। उदाहरणस्वरूप जून, 1967 में धर्मवीर ने पश्चिम बंगाल के राज्यपाल के रूप में राजभवन में जिलाधीशों और पुलिस अधीक्षकों को बुलाकर निर्देश दिया कि इन अधिकारियों को आई. पी. सी. के प्रावधानों से मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए क्योंकि वे अखिल भारतीय सेवा के पदाधिकारी होते हैं और इन्हें देश के प्रति समर्पण दिखाना है न कि राज्य के प्रति। राज्यपाल का यह कदम खासा विवाद जन्म दे गया। 1973 में बिहार के तत्कालीन गवर्नर आर. डी. भंडारे द्वारा राज्यमंत्रियों की खुलेआम आलोचना विवाद का कारण बना। इसी तरह उड़ीसा के गवर्नर के रूप में बी. एन. पांडे की भूमिका और आंध्रप्रदेश के तत्कालीन गवर्नर के रूप में कुमूदबेन जोषी की भूमिका खासा विवाद का कारण बनी।

अन्ततः यह समझा जा सकता है कि गवर्नर प्रशासनिक प्रमुख के रूप में जहां जनदबाव मापने का बैरोमीटर हो सकता है वहीं दूसरी ओर अपने अतार्किक और असंतुलित व्यवहार से तनाव और दबाव का जन्मदाता भी हो सकता है।

2. विधायन सम्बन्धी:

राज्यपाल को विधायन सम्बन्धी शक्तियां भी प्राप्त हैं, यद्यपि वह राज्य विधान मंडल का सदस्य नहीं है। जिस प्रकार केन्द्र में राष्ट्रपति और संसद है, उसी तरह राज्यपाल में राज्यपाल और विधानमंडल है। यद्यपि राज्यपाल विधान मंडल का सदस्य नहीं हो सकता, फिर भी वह उसका अभिन्न अंग है।

a. वह विधानमंडल का अधिवेशन बुलाता है, उसे स्थगित करता है तथा विधान सभा को भंग कर सकता है।

b. वह विधान सभा में एंग्लो-भारतीय जाति के एक या दो सदस्य मनोनीत कर सकता है यदि वह यह समझे कि राज्य के लोकप्रिय सदन में इस जाति को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। वह विधान परिषद् में विधान सभा की सदस्य संख्या के लगभग 1/6 के बराबर सदस्यों को मनोनीत कर सकता है जिन्हें विज्ञान, साहित्य, कलाकौशल, समाज सेवा या सहकारी आंदोलन में विशेष अनुभव प्राप्त हो।

c. यदि किसी चुनावक्षेत्र के मतदाता उसके पास शिकायत भेजें कि विधान मंडल के अमुक सदस्य में अमुक अयोग्यता है तो वह चुनाव आयोग की रिपोर्ट उस मामले पर अपना निर्णय दे सकता है।

d. वह विधान मंडल के एक या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक को संबोधित कर सकता है या उनके विचार के लिए संदेश भेज सकता है। आम चुनाव के बाद विधान मंडल की पहली बैठक तथा हर वर्ष की पहली बैठक उसके उद्घाटन भाषण के बाद अपना काम शुरू करती है।

e. उसे वीटो शक्ति प्राप्त है। राज्य विधान मंडल द्वारा पास किए गए बिलों पर वह अपनी अनुमति दे भी सकता है या नहीं भी। यदि धन बिल नहीं है तो उसे पुनः विचार करने के लिए विधान मंडल को वापस भेज सकता है। स्पष्ट है कि राज्यपाल धन विधेयक को नहीं रोक सकता। यदि उसके द्वारा वापस किए गए गैर-धन सम्बन्धी बिल को दूसरी बार विधान मंडल ने पास कर दिया, चाहे उसकी सिफारिश मानी गई या नहीं, तो राज्यपाल उन्हें राष्ट्रपति के विचार के लिए सुरक्षित रखेगा।

f. यदि विधानमंडल की बैठक न हो रही हो, तो परिस्थिति की आवश्यकता समझते हुए वह आध्यादेश जारी कर सकता है। आध्यादेश कानून की शक्ति रखेगा। यह राज्य विधान मंडल की बैठक शुरू होने से अधिक 6 सप्ताह तक चल सकेगा, या उसे कानून के रूप में बदला जा सकता है। राज्यपाल अपने आध्यादेश को किसी भी समय वापस ले सकता है।

g. राज्यपाल विभिन्न संस्थाओं ;जैसे लोक सेवा आयोग, नियंत्रक व लेखा-जोखा परीक्षक आदि के वार्षिक रिपोर्ट पर विचार करने के लिए उसे विधान मंडल में पेश करवाता है।

3. वित्त सम्बन्धी:

इस दिशा में राज्यपाल की शक्तियां इस प्रकार हैं -

a. राज्यपाल की पूर्व सिफारिश के बिना धन बिल विधान सभा में पेश नहीं किया जा सकता।

b. राज्य का आपातकालीन कोष उनके अधिकाराधीन है और वह आकस्मिक खर्चों को करने के लिए उसमें से अग्रिम भुगतान कर सकता है जिस पर विधान मंडल की स्वीकृति बाद में ली जाएगी।

c. प्रत्येक वित्तीय वर्ष होने से पूर्व वह विधान मंडल में सरकारी आय-व्यय का विस्तृत ब्यौरा ;बजट पेश करवाता है। किसी प्रकार के अनुदान या कर सम्बन्धी प्रस्ताव की मांग सिवाय मंत्रियों के और कोई सदस्य नहीं कर सकता जो गवर्नर के नाम से कार्य करते हैं।

4. न्याय सम्बन्धी:

इस दिशा में राज्यपाल की शक्तियां ये हैं:

a. वह जिला जजों व अन्य न्यायिक अधिकारियों की नियुक्तियों और पदोन्नति के बारे में मामलों को तय करता है।

b. वह अदालतों द्वारा दण्ड दिए गए अपराधियों को क्षमा कर सकता है, वह उनके दण्ड को घटा भी सकता है, किन्तु यह आवश्यक है कि उस व्यक्ति का अपराध उस कानून के अन्तर्गत आना चाहिए जो राज्य सरकार की प्रशासकीय क्षमता के भीतर हो।

c. अपने कार्यकाल में उसे अपने विरुद्ध समस्त दीवानी और फौजदारी कानून से सम्बन्धी कार्यवाहियों से वैयक्तिक मुक्ति प्राप्त है।

5. विवेक सम्बन्धी:

राज्यपाल को कुछ विशेष शक्तियां भी प्राप्त है जिनके प्रयोग के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह अपने मंत्रिपरिषद् के परामर्श से काम करे जैसे-

a. असम के राज्यपाल को आदिम जातियों वाले क्षेत्रों के प्रशासन के सम्बन्ध में विवेक की शक्तियां प्राप्त हैं।

b. यदि राष्ट्रपति किसी राज्यपाल को पड़ोसी केन्द्र द्वारा षासित केन्द्र का प्रशासक नियुक्त कर दे तो वहां वह अपनी सत्ता का प्रयोग स्वतंत्र रूप से करेगा।

c. नागालैंड के राज्यपाल को विरोधी नागाओं की हिंसात्मक क्रियाओं से निपटने के लिए विशेष उत्तरदायित्व सौंपे गए हैं। इसी प्रकार, राज्य में शांति व सभी क्षेत्रों के लोगों के सामाजिक व आर्थिक कल्याण के लिए सिक्किम के राज्यपाल को विशेष उत्तरदायित्व दिए गए हैं।

d. वह राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता के बारे में विचार कर सकता और अपने सुझाव के साथ राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेज सकता है चाहे उसका मत मुख्यमंत्री के दृष्टिकोण के अनुकूल हो या नहीं।

e. राज्य के विधान मंडल के पास होने के बाद वह किसी बिल को राष्ट्रपति के विचारार्थ इस आधार पर सुरक्षित सकता है कि यह केन्द्र के किसी कानून या नीति से टकराना सकता है।

f. यदि केन्द्र व राज्य की सरकारों के बीच अपनी-अपनी प्रशासकीय सत्ता के अधिकार क्षेत्र पर किसी प्रकार का संघर्ष हो तो राज्यपाल अपने विवेकानुसार काम कर सकता है।

g. किसी महत्वपूर्ण विषय पर अध्यादेश जारी करने से पूर्व वह राष्ट्रपति से निर्देश प्राप्त कर सकता है।

h. वह पराजित या अपराजित मुख्यमंत्री की राय पर विधान सभा भंग कर सकता है।

उत्तराखण्ड के राज्यपाल का क्रमवार विवरण ---

क्रम संख्या	राज्यपाल का नाम	कब से	कब तक
1	सुरजीत सिंह बरनाला	09/11/2000	07/01/2003
2	सुदर्शन अग्रवाल	08/01/2003	28/10/2007
3	बी.एल. जोशी	29/10/2007	05/08/2009
4	श्रीमती मारग्रेट अल्वा	06/08/2009	14/05/2012
5	डॉ. अजीज कुरैसी	15/05/2012	07/01/2015
6	डॉ. कृष्णकांत पॉल (Krishan kant Paul)	08/01/2015	आगे जारी

11.3.7 राज्यपाल की स्थिति

राज्यपाल की स्थिति या भूमिका के सम्बन्ध में सामान्य तौर पर परस्पर दो विरोधी दृष्टिकोण प्रचलित रहे हैं इनमें से प्रथम में राज्य को राज्य का केवल संवैधानिक अध्यक्ष माना गया है। द्वितीय में इस बात पर बल दिया गया है कि राज्य के सांविधानिक अध्यक्ष की अपेक्षा बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। राज्य की सही स्थिति जानने के लिए इन दोनों बिन्दुओं को जान लें।

1. राज्यपाल संविधानिक प्रधान के रूप में

संविधान द्वारा शासन की शक्तियां ऐसी मंत्रिपरिषद् में निहित होती हैं जो विधायिका के निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी हों। अतः मंत्रिपरिषद् ही राज्य की प्रधान है और राज्यपाल केवल संविधानिक प्रधान। संविधान निर्माताओं ने जिस प्रकार से राज्यपाल पद के सम्बन्ध में निर्वाचन के सिद्धान्त को अस्वीकार करके मनोयन के सिद्धान्त को अपनाया गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे राज्यपाल को एक संवैधानिक अध्यक्ष ही बनाना चाहते थे, वास्तविक नहीं।

2. संविधानिक अध्यक्ष से अधिक

प्रथम दृष्टिकोण में राज्यपाल को एक संविधान प्रधान बताया गया है। लेकिन यदि राज्यपाल की स्थिति का विस्तृत अध्ययन किया जाए तो यह धारणा खत्म हो जाती है। संविधान सभा के बाद-विवादों के अध्ययन के स्पष्ट होता है कि संविधान निर्माताओं की धारणाओं के अनुसार सामान्य परिस्थितियों में राज्यपाल एक संविधानिक अध्यक्ष के रूप में कार्य करेगा। लेकिन विशेष परिस्थितियों में उसकी भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हो सकती है। श्री एम. वी. पायली के अनुसार राज्यपाल मंत्रिमंडल का सूझबूझ वाला परामर्शदाता है जो राज्य की अर्थात् राजनीति में शांत वातावरण तैयार कर सकता है। श्री डी. डी. वसु और एम.सी. शीतल बार्ड ने अपनी रचनाओं में राज्यपाल की स्वविवेक शक्ति का वर्णन किया है।

3. मुख्यमंत्री की नियुक्ति: राज्यपाल राज्य की विधानसभा में किसी एक राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त होने वाले और उसके नेता को ही मुख्यमंत्री नियुक्त करता है। लेकिन यदि राज्य की विधान सभा में दलीय स्थिति स्पष्ट नहीं है या बहुमत वाले दल में नेता पद के लिए एक से अधिक दावेदार हैं तो इस सम्बन्ध में राज्यपाल स्वविवेक का प्रयोग कर सकता है। ऐसी स्थिति में स्वयं राज्यपाल के द्वारा ही निर्णय किया जायेगा कि किस व्यक्ति को राज्य की मुख्यमंत्री बनाया जाये। भारतीय राजनीति में ऐसे अनेक उदाहरण आये हैं। जबकि राज्यपाल स्वविवेक से राज्यों में मुख्यमंत्री नियुक्त किये हैं।

4. मंत्रिमंडल को भंग करना: राज्यपाल को यह भी शक्ति प्राप्त है कि वह मंत्रिपरिषद् को अपदस्थ कर राष्ट्रपति से यह सिफारिश करे कि संबंधित राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाये। इस प्रकार का उदाहरण भारतीय राजनीति में अनेकों बार आया है। जबकि राज्यपाल ने राष्ट्रपति शासन की अनुषंसा की। 1995 में बहुजन समाज पार्टी द्वारा मुलायम सिंह यादव सरकार से समर्थन ले लेने के बाद मुलायम सिंह समर्थक गुंडागर्दी पर उतर आये। इसके पश्चात् राज्य में अराजक स्थिति फैल गयी। राज्यपाल मोतीलाल वोहरा ने मुलायम सिंह यादव को बर्खास्त कर मायावती को मुख्यमंत्री बनाया।

5. विधानसभा का अधिवेशन बुलाना और भंग करना: सामान्य रूप से राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श पर विधान सभा का अधिवेशन बुलाता है। किन्तु असाधारण परिस्थितियों में राज्यपाल स्वविवेक से भी अधिवेशन बुला सकता है। राज्यपाल की शक्तियां व कार्यों का व्यापक निरूपण यह दिखाता है कि वह राष्ट्रपति की तरह नाममात्र का अध्यक्ष है। इसका कारण इस तथ्य में देखा जाना चाहिए कि दोनों अपने-अपने प्रशासनिक संरचनाओं में नामधारी अध्यक्ष हैं। अतः यह कहा जाता है कि केन्द्र पर संसदीय शासन व्यवस्था में राष्ट्रपति को जो स्थिति प्राप्त है वही राज्य के शासन में राज्यपाल की है, क्योंकि प्रांतीय स्तर पर भी संसदीय शासन प्रणाली स्थापित की गई है।

11.4 मुख्यमंत्री

संविधान के अनुसार भारत में राज्यों के शासन के लिए संसदीय ढांचे की व्यवस्था की गयी है यह ढांचा केन्द्रीय सरकार के समान ही है। जिस प्रकार से केन्द्र में राष्ट्रपति की औपचारिक प्रधान और प्रधानमंत्री को वास्तविक प्रधान बनाया गया है उसी प्रकार राज्य प्रशासन में राज्यपाल औपचारिक प्रधान एवं मुख्यमंत्री वास्तविक प्रधान होता है। राज्य में मुख्यमंत्री की स्थिति उस राज्य की राजनीतिक स्थिति पर निर्भर करती है। मुख्यमंत्री के व्यक्तित्व एवं उसकी सृष्ट राजनीतिक स्थिति पर ही राज्य विशेषकर आर्थिक विकास सामाजिक उन्नति और व्यवस्था निर्भर है। यह सिद्ध हो चुका है कि शक्तिशाली मुख्यमंत्री स्थायी नीतियों का निर्माण करके राज्य के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

11.4.1 मुख्यमंत्री की नियुक्ति

संवैधानिक दृष्टि से मुख्यमंत्री की नियुक्ति उस राज्य के राज्यपाल करते हैं। मुख्यमंत्री की नियुक्ति करते समय राज्यपाल यह सुनिश्चित करते हैं कि उसे राज्य विधान सभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त होगा अथवा नहीं। जहाँ पर मुख्यमंत्री को पूर्ण बहुमत मिलता है वहाँ पर राज्यपाल को किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं होती है परन्तु जब राज्य विधान सभा के चुनावों में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता है उस समय राज्यपाल स्वविवेक के द्वारा सबसे बड़े दल के मुखिया को सरकार बनाने के लिये आमंत्रित करता है। इस स्थिति में राज्यपाल का स्वविवेक ही मुख्य होता है क्योंकि चुनाव के पश्चात तमाम दल सत्ता के लालच में गठबन्धन बना लेते हैं। अतः यहां पर राज्यपाल, चुनाव पूर्व हुए गठबन्धन के नेता अथवा चुनाव के पश्चात हुए गठबन्धन के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करना है, यह निर्णय लेता है। यदि केन्द्र में और राज्य में एक ही दल होते हैं तो इस प्रकार की कोई समस्या नहीं होती है क्योंकि मुख्यमंत्री कौन बनेगा इसका निर्णय सामान्यतया केन्द्र सरकार के लोग ही करते हैं।

11.4.2 मुख्यमंत्री के कार्य एवं शक्तियाँ

मुख्यमंत्री राज्य मंत्रिपरिषद का गठन करता है। वह अपने मंत्रिमंडल के सदस्यों के बीच विभागों का वितरण करता है। मंत्रिमंडल की बैठकों की अध्यक्षता करता है। वह मंत्रियों के आपसी विवादों तथा मतभेदों को सुलझाता है। वह विधानसभा का नेता होता है। वह विधानसभा के अध्यक्ष से परामर्श करके विधायी कार्यक्रम तैयार करता है। उसे यह भी अधिकार है कि राज्यपाल को परामर्श देकर विधानसभा को विघटित करा दे। वह सरकार का प्रमुख प्रवक्ता होता है और राज्य की नीतियों के निर्धारण में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राज्य प्रशासन के महत्वपूर्ण पदों पर जिन व्यक्तियों की

नियुक्ति राज्यपाल द्वारा होती है, वस्तुतः उसका चयन मुख्यमंत्री ही करता है। संक्षेप में, मुख्यमंत्री पांच प्रकार के प्रमुख कार्य करता है --

- 1 मन्त्रिमण्डल के अध्यक्ष होने के कारण वह मन्त्रिमण्डल का गठन करता है।
- 2 मन्त्रिमण्डल के अध्यक्ष होने के नाते वह मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करता है।
- 3 राज्यपाल को राज्य शासन या व्यवस्थापन सम्बन्धी मन्त्रिमण्डल के निर्णयों से अवगत कराता है।
4. कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान होने के कारण उसे समस्त प्रशासन के निरीक्षण का अधिकार प्राप्त है।
5. विधानसभा में शासकीय नीतियों तथा कार्यों की घोषणा और स्पष्टीकरण करने का उत्तरदायित्व मुख्यमंत्री पर ही है। राज्य का पूरा शासनतंत्र उसी के संकेतों पर संचालित होता है। वह राज्य शासन का कप्तान है और राज्य मन्त्रिमण्डल में उसकी विषिष्ट स्थिति होती है। उसके कार्यों एवं दायित्वों की दृष्टि से उसे प्रधानमंत्री का लघुरूप कहा जा सकता है।

11.4.3 मुख्यमंत्री और मन्त्रिपरिषद

मुख्यमंत्री के परामर्श से ही राज्यपाल द्वारा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति की जाती है। मन्त्रिपरिषद में विभागों का वितरण करना, मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करना, किसी भी मन्त्री से उसके विभाग की सूचना प्रेषित करने को कहना, मन्त्रियों के आपसी मतभेदों तथा विवादों को सुलझाना, इत्यादि सभी कार्य मुख्यमंत्री के ही हैं। मुख्यमंत्री मन्त्रिपरिषद् का नेता होता है। यदि किसी मन्त्री से उसका मतभेद हो जाता है तो उस मन्त्री को त्यागपत्र देना पड़ता है। मुख्यमंत्री के त्यागपत्र देने पर पूरी मन्त्रिपरिषद ही भंग हो जाती है।

भारत में राजनीतिक आचरण में यह सिद्ध हो चुका है कि मन्त्रिपरिषद् के निर्माण में मुख्यमंत्री को अनेक तरह के दबावों में निर्णय करना होता है व संविद मन्त्रिमण्डल के काल में मुख्यमंत्री को संविद के निर्माणकारी दलों के दबाव में सन्तुलित कार्य करते हुए मन्त्रिमण्डल का निर्माण करना पड़ता था। कांग्रेस दल के मुख्यमंत्री को प्रधानमंत्री और हाईकमान के मार्ग-निर्देशन में ही कार्य करना पड़ता है। सन् 1971 के पश्चात् अधिकांश मुख्यमंत्रियों ने हाईकमान की मन्त्रणा से ही राज्य मन्त्रिमण्डल का गठन किया है। राज्य मन्त्रिमण्डल लघु बनाये जायें या बड़े, उसका कब विस्तार किया जाये, आदि निर्णय भी हाईकमान के हाथों में ही केन्द्रित हो गये हैं।

उत्तराखण्ड के मुख्यमंत्री का क्रमवार विवरण-

क्रम संख्या	मुख्यमंत्री का नाम	कब से	कब तक	राजनीतिक दल
1	नित्यानंद स्वामी	9 नवंबर 2000	29 अक्टूबर	भारतीय जनता पार्टी

			2001	
2	भगत सिंह कोश्यारी	30 अक्टूबर 2001	1 मार्च 2002	भारतीय जनता पार्टी
3	एन.डी. तिवारी	2 मार्च 2002	7 मार्च 2007	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
4	मेजर जनरल बी.सी. खंडूरी	7 मार्च 2007	26 जून 2009	भारतीय जनता पार्टी
5	रमेश पोखरियाल निशंक	27 जून 2009	10 सितंबर 2011	भारतीय जनता पार्टी
6	मेजर जनरल बी.सी. खंडूरी	11 सितंबर 2011	13 मार्च 2012	भारतीय जनता पार्टी
7	विजय बहुगुणा	13 मार्च 2012	31 जनवरी 2014	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
8	हरीश रावत	1 फरवरी 2014	27 मार्च 2016	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
		21 अप्रैल 2016	22 अप्रैल 2016	
		11 मई 2016	18 मार्च 2017	
9	त्रिवेंद्र सिंह रावत	18 मार्च 2017	आगे जारी	भारतीय जनता पार्टी

11.4.4 मुख्यमंत्री और विधानमण्डल

मुख्यमंत्री बहुमत दल के नेता के रूप में राज्य विधानसभा का भी नेतृत्व करता है। वह विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है और विधानसभा अविश्वास के प्रस्ताव के द्वारा उसे अपदस्थ कर सकती है। विधानसभा में सरकार की नीति से सम्बन्धित अधिकृत भाषण मुख्यमंत्री का ही होता है। राज्य विधानसभा में विधि निर्माण की कार्यवाही के संचालन में भी मुख्यमंत्री की प्रभावशाली भूमिका रहती है। उसे यह भी अधिकार है कि राज्यपाल को सलाह देकर विधानसभा को भंग करा दे। मार्च 1971 में तमिलनाडु के मुख्यमंत्री ने राज्यपाल से अनुरोध कर विधानसभा को भंग करवाया। 21 जनवरी, 1972 को हरियाणा के मुख्यमंत्री बंशीलाल ने राज्यपाल से निवेदन कर विधानसभा भंग करवायी। सन् 1972 में श्रीमती नन्दिनी सत्पथी के परामर्श से ही राज्यपाल ने उड़ीसा विधानसभा को भंग किया। सन् 1984 में मुख्यमंत्री रामकृष्ण हेगड़े ने परामर्श से ही राज्यपाल ने कर्नाटक विधानसभा को भंग किया था। मार्च 1992 में मुख्यमंत्री वामूजो ने परामर्श से ही राज्यपाल एम. एम. थामस ने नागालैण्ड विधानसभा को भंग किया। अनेक मुख्यमन्त्रियों ने अपने इस अधिकार का प्रयोग समय-समय पर किया है।

11.4.5 मुख्यमंत्री और राज्यपाल

मुख्यमंत्री मन्त्रिपरिषद् और राज्यपाल के बीच की कड़ी है। संविधान के अनुच्छेद 167 के अनुसार राज्य के मुख्यमंत्री का कर्तव्य है कि राज्य के प्रशासन से सम्बन्धित मन्त्रिपरिषद् के सभी निर्णयों और व्यवस्थापन के प्रस्तावों की सूचना राज्यपाल को दे। मन्त्रिपरिषद् द्वारा एक बार निर्णय लेने पर सामान्यतया राज्यपाल उसे स्वीकार करने के लिए बाध्य होता है, किन्तु कतिपय परिस्थितियों में राज्यपाल मन्त्रिपरिषद् के बिना ही कार्य कर सकता है। उदाहरण के लिए, राज्य में संवैधानिक व्यवस्था की विफलता की स्थिति में राज्यपाल संकटकाल की घोषणा किये जाने पर विवेक का आधार पर कार्य कर सकता है।

यह भी परम्परा स्थापित हो गयी है कि राज्यपालों की नियुक्ति करते समय सम्बन्धित राज्य के मुख्यमंत्री से परामर्श किया जाये। चतुर्थ जन निर्वाचन से पूर्व इस परम्परा का पालन हुआ था, किन्तु संविद सरकारों के मुख्यमंत्रियों ने यह आरोप लगाया था कि उनके राज्य में राज्यपाल की नियुक्ति करते समय उनसे परामर्श नहीं किया गया। बिहार में श्री नित्यानन्द कानूनगो की नियुक्ति के समय मुख्यमंत्री श्री महामाया प्रसाद से एवं उत्तर प्रदेश में डॉ. बी. गोपाल रेड्डी की राज्यपाल पर पद नियुक्ति के समय मुख्यमंत्री श्री चरणसिंह से परामर्श नहीं लिया गया। ऐसा कहा जाता है कि सन् 1947 में बिहार के मुख्यमंत्री श्रीकृष्ण सिन्हा के फलस्वरूप राज्यपाल श्री जयरामदास दौलत को अपना पद छोड़ना पड़ा।

अक्टूबर 1983 में पं. बंगाल के राज्यपाल बी. डी. पाण्डे का पंजाब में स्थानान्तरण कर दिया गया। पं. बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु श्रीनगर में थे और केन्द्रीय गृहमंत्री प्रकाश चन्द्र सेठी ने टेलीफोन से बसु को इस निर्णय की सूचना दी। मुख्यमंत्री बसु ने उनके राज्य के राज्यपाल को स्थानान्तरित एवं नये राज्यपाल की नियुक्ति के पूर्व उनसे परामर्श न किये जाने के सामान्य शिष्टाचार के अपालन की शिकायत की थी।

11.4.6 मुख्यमंत्री की वास्तविक स्थिति

यदि स्वाधीन भारत के मुख्यमंत्रियों की भूमिका का वर्गीकरण किया जाये तो उनकी पाँच श्रेणियाँ बनायी जा सकती हैं:

1 शक्तिशाली मुख्यमंत्री - प्रथम श्रेणी में उन मुख्यमंत्रियों को रखा जा सकता है जो शक्तिशाली एवं प्रभावशाली राज्य नेता थे। ऐसे मुख्यमंत्रियों का केन्द्रीय सरकार व हाईकमान पर पर्याप्त प्रभाव था। वे विधानमण्डल के नेता और राज्य की जनता में लोकप्रिय रहे हैं। उन्हें 'किंग मेकर्स' कहा जा सकता है। श्री नेहरू और श्री शास्त्री के देहान्त के उपरान्त उनके उत्तराधिकारी के चयन के मामले पर जो तोड़-मोड़ हुई उनमें शक्तिशाली मुख्यमंत्रियों की उपक्रमिक भूमिका रही। इस श्रेणी में डॉ. बी. सी. राय, श्री गोविन्द बल्लभ पन्द, श्री रविषंकर षुक्ल, श्री कृष्ण सिन्हा, श्री मोरार जी देसाई, श्री

कामराज, श्री चन्द्रभानु गुप्त, श्री मोहनलाल सुखाड़िया तथा श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र सुश्री मायावती आदि जैसे मुख्यमंत्री को रखा जा सकता है।

2 विवादास्पद मुख्यमंत्री - द्वितीय श्रेणी में वे सभी मुख्यमंत्री आते हैं जिनका व्यक्तित्व विवादास्पद कहा जा सकता है, जिस पर भ्रष्टाचार के अनेक आरोप लगाये गये। श्री प्रतापसिंह कैरो, श्री बीजू पटनायक, श्री करूणानिधि, श्री कृष्ण वल्लभ पन्त सहाय, श्री बंसीलाल, श्री मुलायमसिंह यादव, श्री लालू प्रसाद यादव, सुश्री जयललिता, आदि ऐसे ही मुख्यमंत्री कहे जा सकते हैं। श्री अब्दुल रहमान अन्तुले, श्री जगन्नाथ मिश्र, श्री भजनलाल, आदि को भी विवादास्पद मुख्यमंत्री कहा जाता है। इनमें से अधिकांश के विरुद्ध जाँच आयोग भी विठाये गये ताकि उनके आरोपों की जांच की जा सके।

3 घटकों की शक्ति पर टिके मुख्यमंत्री - जनता पार्टी की शक्ति का आधार उनके घटक दलों की संख्या बल था। भैरोसिंह षेखावत और वीरेन्द्र कुमार सकलेवा टिके रहे क्योंकि इनके राज्यों में जनसंघ घटक का स्पष्ट बहुमत था। रामनरेश यादव, कर्पूरी ठाकुर और देवीलाल को हटना पड़ा क्योंकि इनके घटकों को राज्य विधानसभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं था।

4 केन्द्रीय सरकार के दूत की भूमिका वाले मुख्यमंत्री - कतिपय ऐसे व्यक्ति भी मुख्यमंत्री रहे हैं, जिनकी जड़े राज्य की राजनीति में न होकर हाईकमान के विश्वास और सहानुभूति पर टिकी रहती है। इस श्रेणी में श्री प्रकाश चन्द्र सेठी, श्री अब्दुल गफूर, श्री घनष्याम ओझा, श्री जगन्नाथ पहाड़िया, श्री अर्जुन सिंह आदि को लिया जा सकता है।

5 दुर्बल मुख्यमंत्री - संविद सरकारों के युग में कार्य करने वाले मुख्यमंत्री को अत्यन्त निर्बल मुख्यमंत्री कहा जा सकता है। उत्तर प्रदेश में श्री चरण सिंह, मध्य प्रदेश में श्री गोविन्दनारायण सिंह, बंगाल के श्री अजय मुखर्जी, आदि ऐसे ही कठपुतली मुख्यमंत्री कहे जा सकते हैं। ऐसे मुख्यमंत्री की परवाह न तो मन्त्रीगण करते हैं, न विधानसभा और न राज्यपाल ही। ऐसे मुख्यमंत्री का कार्य एक 'पोस्टमेन' से अधिक नहीं हो सकता। यह बात सर्वविदित है कि संविद मुख्यमंत्री के काल में नौकरशाही के प्रभाव तथा दबाव में भी अप्रतिम रूप में वृद्धि हुई।

सत्ता की राजनीति में मुख्यमंत्री की स्थिति राजनीतिक उतार-चढ़ाव के साथ बदलती रही है। एक समय था जबकि मुख्यमंत्री शक्ति के पुंज थे, किन्तु कुछ समय से मुख्यमंत्री के पद का लगातार अवमूल्यन हो रहा है। संविद सरकारों के काल में तो मुख्यमंत्री एकदम अशक्त ही बन गये। संविद सरकारें अधिक टिकाऊ नहीं थीं। और मुख्यमंत्री का अधिकांश समय अपने अस्तित्व की सुरक्षा में ही व्यतीत हो जाता था। इससे राज्यों में प्रशासनिक शून्यता का वतावरण फैला। सन् 1971 के

पञ्चात अधिकांश मुख्यमंत्री हाईकमान के संरक्षण में ही पल्लवित एवं पोषित हुए हैं, अतः इस पद की 'संस्थागत स्वायत्तता: समाप्त हो गयी है।

मुख्यमंत्री की स्थिति तीन बातों पर निर्भर करती है- प्रथम, उसे किस सीमा तक केन्द्रीय नेताओं का संरक्षण एवं सहयोग प्राप्त है? द्वितीय, राज्य की गुटीय राजनीति में उसका गुट कितना सशक्त है? तृतीय, राज्य विधानसभा में उसकी क्या स्थिति है और राज्य के विकासात्मक कार्यों को क्रियान्वित करने में उसकी कितनी अभिरूचि है?

मुख्यमंत्री का पद बहुत कुछ उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। यदि राज्यपाल दुर्बल व्यक्तित्व वाला है और विधानसभा में उसके दल को पर्याप्त बहुमत प्राप्त है एवं दल में उसकी स्थिति सुदृढ़ है तो मुख्यमंत्री की शक्तियों में स्वतः वृद्धि हो जाती है। वर्तमान में राज्यों में एकदलीय प्रभुत्व के बावजूद भी गुटीय राजनीति की जो प्रवृत्तियां उभरी हैं उसमें कोई भी मुख्यमंत्री अपनी स्थिति के प्रति आस्वस्त नहीं रह सकता।

11.5 मंत्रिपरिषद्

हमारे संविधान के अनुसार, मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक मंत्रिपरिषद् होगी जो राज्यपाल को सहायता व परामर्श देगी। राज्यपाल द्वारा स्वविवेक से किये गये कार्यों के अतिरिक्त अन्य शासन सम्बन्धी कार्यों में मंत्रिपरिषद् उसे मन्त्रणा देती है।

11.5.1 संगठन

राज्य मंत्रिपरिषद् का मुखिया मुख्यमंत्री होता है, मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करता है जबकि मंत्रिमण्डल के अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राज्यपाल मुख्यमंत्री के सलाह के पश्चात करता है। वास्तव में मुख्यमंत्री अपने सहयोगियों की सूची तैयार करता है और उसको राज्यपाल को देता है इसके पश्चात राज्यपाल सारे मंत्रियों को पद व गोपनीयता की शपथ दिलाता है। संवैधानिक षड्दों में मुख्यमंत्री और मंत्रिपरिषद् के सदस्य राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त ही अपने पद पर पदासीन रहते हैं। मन्त्रिपरिषद् में मुख्यतः तीन प्रकार के मंत्री होते हैं। कैबिनेट मंत्री, राज्य मंत्री, उपमंत्री यह मुख्यमंत्री का विवेक होता है कि किस व्यक्ति को किस प्रकार के मंत्री पद का दायित्व सौंपना है। सामान्यतः यह राजनीतिक परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है यदि सरकार साझा सरकार होती है तो सहयोगी दलों का हस्तक्षेप मंत्रिपरिषद् बनाने में रहता है और यदि मुख्यमंत्री पूर्ण बहुमत से सरकार में होता है तो वह अपनी मर्जी से मंत्रिपरिषद् के सदस्यों का चुनाव करता है। मंत्रिपरिषद् में किसी ऐसे व्यक्ति को भी मंत्री बनाया जा सकता है जो राज्य विधान मण्डल के किसी भी सदन का सदस्य न हो।

विधानानुसार मन्त्रियों को 6 मास की अवधि के भीतर ही उसे विधामण्डल के किसी भी सदन का सदस्य बन जाना आवश्यक है अन्यथा उन्हें अपना पद छोड़ना पड़ेगा।

11.5.2 शक्तियां व कार्य, उत्तरदायित्व

मुख्यमंत्री या उसकी मंत्रिपरिषद ही राज्य की प्रशासन में वास्तविक कार्यपालिका है। मंत्रिपरिषद के कार्यों की गणना इस प्रकार की जा सकती है:

1. यह राज्य के प्रशासन की नीति का निर्माण करती है जिसके अनुसार राज्य के कानून तथा राष्ट्रपति द्वारा प्रेषित निर्देश लागू किये जाते हैं।

2. यह लोक सेवकों की भर्ती सम्बन्धी नीति के बारे में प्रस्तावों पर विचार करती है और उसकी सलाह के अनुसार उनकी नियुक्ति के लिए नियम जारी करती है। यह राज्यपाल को महत्वपूर्ण नियुक्तियों ;जैसे राज्य के लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यगण, राज्य का महान्यायवादी आदि के बारे में परामर्श देती है।

3. यह विधायन के प्रस्तावों पर विचार करती है तथा उन्हें बिल का रूप देकर विधान मंडल में पेश करती है, अन्यथा यह सरकार की पराजय समझी जाएगी। यदि असाधारण परिस्थिति उत्पन्न हो जाए तथा विधान मंडल का अधिवेशन न हो रहा हो तो यह राज्यपाल को परामर्श देकर अध्यादेश जारी करा सकता है जिसमें कानून का बल होता है।

4. यह राज्य सरकार की वार्षिक आय-व्यय का ब्यौरा अर्थात् बजट तैयार करता है और फिर राज्यपाल की सिफारिश के साथ उसे विधान सभा में पेश करती है। बजट को विधान मंडल का समर्थन प्राप्त होना चाहिए अन्यथा इसे सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव माना जाएगा।

5. यह तय करती है कि विधान मंडल का अधिवेशन बुलाना व स्थगित करने या विधान सभा को भंग करने के बारे में राज्यपाल को क्या परामर्श दिया जाए। यह राज्यपाल द्वारा विधान मंडल में दिय जाने वाले उद्घाटन भाषण का मसविदा तैयार करती है।

6. यह अनेकों मामलों पर विचार करती व निर्णय लेती है जैसे लोक-सेवकों की सेवा सम्बन्ध नियम, अनुसूचित जातियों व वर्गों के लिए स्थानों का आरक्षण, लोक-सेवा आयोग की रिपोर्ट, राज्य के आकार बदलने से सम्बन्धी केन्द्र का प्रस्ताव पर विचार, कुछ व्यक्तियों के खिलाफ चलते हुए मुकदमे वापस लेना, जांच, किसी आयोग की नियुक्ति व उसकी रिपोर्ट पर कार्यवाही करना, इत्यादि।

चूंकि राज्यों के स्तर पर भी संसदीय शासन-प्रणाली अपनाई गई है, मुख्यमंत्री के अधीन मंत्रिपरिषद् को विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से और व्यक्तिगत तौर पर राज्यपाल के प्रति उत्तरदायी है,

क्योंकि मंत्रिगण राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष की प्रसन्नताकाल में ही पदासीन रह सकते हैं। विधान सभा के सदस्य मंत्री-परिषद से प्रश्न पूछ सके हैं जिनका संतोषजनक उत्तर मिलना चाहिए। यदि सरकारी बिल गिर जाए, या बजट में कटौती कर दी जाए, या सरकारी नीति को सदन का समर्थन प्राप्त न हो सके, या विधान सभा अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे, तो मंत्रिपरिषद को त्यागपत्र देना पड़ेगा। राज्यपाल नई सरकार बनाने का प्रयास करेगा या भारत सरकार को सुझाव देगा कि संविधान के अनुच्छेद 356 के अनुसार आपातकाल की घोषणा लागू कर दे जिससे राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सके।

इस स्थल पर जो बात हमारा ध्यान विशेषरूप से आकृष्ट करती है वह यह है कि राज्य की सरकार केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तरदायी है। हम यह पहले ही कह चुके हैं कि राज्य की सरकारें केन्द्र की कानून तथा राष्ट्रपति द्वारा प्रेषित निर्देशों को निष्ठा के साथ लागू करने पर बाध्य हैं। यदि केन्द्र सरकार किसी राज्य के आचरण से संतुष्ट न हो, तो वह अपनी ओर से या राज्य के राज्यपाल की रिपोर्ट पर अनुच्छेद 356 का प्रयोग करके वहां की सरकार को अपदस्थ कर सकता है। इसके अलावा, यह केन्द्र की इच्छा पर निर्भर है कि वह पूरी तरह राज्य की सरकार को भंग करदे या उसे स्थगित संप्रणता की स्थिति में रखे। क्योंकि अनुच्छेद 356 का प्रयोग दलगत राजनीति के दाव-पेंच को देखते हुए किया जाता है इसीलिए एक उचित ढंग से निर्मित राज्य को केन्द्रीय सरकार अपने शत्रुतापूर्ण भाव से किसी भी समय समाप्त कर सकती है या अपने मित्रतापूर्ण व्यवहार को देखते हुए किसी विफल राज्य सरकार को क्षमा दान भी कर सकती है। इससे विदित होता है कि राज्य का मन्त्रिपरिषद अन्तिम रूप से केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तरदायी है।

अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद का दुरुपयोग बहुत हुआ है ?
2. मन्त्रियों को 6 मास की अवधि के भीतर ही उसे विधामण्डल के किसी भी सदन का सदस्य बन जाना आवश्यक है अन्यथा उन्हें अपना पद छोड़ना पड़ेगा | सत्य असत्य/
3. संवैधानिक दृष्टि से मुख्यमंत्री की नियुक्ति उस राज्य के राज्यपाल करते हैं | सत्य असत्य/
4. राज्यपाल राज्य का संवैधानिक प्रधान होता है असत्य/ सत्य |

11.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमें यह जानने को मिला कि, जिस प्रकार से एक पहिये पर गाड़ी नहीं चल सकता उसी प्रकार से राज्य प्रशासन बगैर राज्यपाल एवं मंत्रिपरिषद के नहीं चल सकता है। भले ही राज्यपाल नाममात्र का प्रधान हो किन्तु राज्य प्रशासन में मुख्यमंत्री एवं मंत्रिपरिषद की

गतिविधियों को नियंत्रित करना भी अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि मुख्यमंत्री एवं मंत्रिपरिषद किसी पार्टी विशेष के एजेंडे के तहत राज्य प्रशासन को अपने हित में चला सकते हैं। एवं राज्यपाल का यह कर्तव्य है कि वह राज्य प्रशासन संविधान की आशा के अनुरूप चलायें। अतः राज्य के प्रशासन के लिए दोनों ही आवश्यक अंग हैं।

11.7 शब्दावली

मंत्रीमण्डल: कैबिनेट स्तर के मंत्रियों का समूह

मंत्रिपरिषद: समस्त प्रकार के मंत्रि का समूह

कैबिनेट मंत्री: शासन में सर्वोच्च स्तर के मंत्री

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अनुच्छेद 356, 2. सत्य, 3. सत्य, 4. सत्य

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारत का संविधान: ब्रज किशोर शर्मा, 2008ए प्रेंटिस हाल आफ इंडिया प्राइवेट लि. नई दिल्ली।
2. भारत में लोक प्रशासन: डा. बी. एल. फाडिया, 2002ए साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
3. भारतीय प्रशासन: प्रो. मधू सूदन त्रिपाठी 2008ए ओमेगा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।
4. इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन: डा. बी. एल. फालिया, डा. कुलदीप फाडिया 2007ए साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

11.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन: अवस्थी एवं अवस्थी 2009ए लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा।
2. इंडियन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन: रमेश अरोडा, रजनी गोयल 2001ए विश्व प्रकाशन नई दिल्ली।
3. भारत का संविधान: डा. जी. एस. पाण्डेय 2001, यूनिवर्सिटी बुक हाउस जयपुर।

11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राज्यपाल की शक्तियों का वर्णन कीजिए।
2. राज्य प्रशासन में मुख्यमंत्री की भूमिका का परीक्षण कीजिये।
3. मंत्रिपरिषद के गठन एवं कार्यों का वर्णन कीजिये।

इकाई .12 राज्य सचिवालय, मुख्य सचिव

इकाई की संरचना

- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 उद्देश्य
- 12.3 राज्य सचिवालय
 - 12.3.1 सचिवालय की उपयोगिता
 - 12.3.2 संगठन
 - 12.3.3 सचिवालय का संगठनात्मक ढांचा
 - 12.3.4 राज्य सचिवालय के कार्य
 - 12.3.5 राज्य सचिवालय की कार्य प्रणाली
 - 12.3.6 राज्य सचिवालय की समस्याएँ
- 12.4 मुख्य सचिव
 - 12.4.1 मुख्य सचिव: पद का उदय
 - 12.4.2 मुख्य सचिव का चयन
 - 12.4.3 राज्य प्रशासन में मुख्य सचिव के कार्य
 - 12.4.4 मुख्य सचिव की भूमिका
- 12.5 सारांश
- 12.6 शब्दावली
- 12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
- 12.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

भारत में राज्यों के शासन के लिए संसदीय ढांचे को अपनाया गया है राज्यों का प्रशासन संघीय शासन का प्रतिरूप है। राज्य प्रशासनमें षीर्ष पर राज्यपाल और मंत्रिपरिषद है राज्यपाल औपचारिक कार्यकारी और मंत्रिपरिषद वास्तविक कार्यकारी है मंत्रिपरिषद को प्रशासनमें सहायता प्रदान करने के लिये राज्यों में संघीय प्रशासनके समान मंत्रिमण्डल समितियां और सचिवालय है। राज्य सचिवालय विभिन्न विभागों में विभक्त होता है जिसका राजनीतिक प्रमुख मंत्री और प्रशासनिक प्रमुख सचिव होते हैं।

शासन द्वारा निर्मित कानूनों को क्रियान्वित करने नीतियों तथा योजनाओं को यथार्थ धरातल पर लागू करने एवं विकास और कल्याण कार्यों को जन जन तक पहुँचाने के लिए लोक सेवकों की विषाल संख्या कार्यरत रहती है। यह सभी लोक सेवक प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सचिवालय के अधीन कार्य करते हैं। सचिवालय ही पूरे प्रदेश में नीति निर्माण की भूमिका का निर्वहन करता है।

राज्य सचिवालय का प्रमुख मुख्य सचिव कहलाता है। सामान्यतः यह प्रदेश के आई. ए. एस. संवर्ग का सबसे वरिष्ठ अधिकारी होता है मुख्य सचिव का मुख्य कार्य नीति निर्माण एवं उसके क्रियान्वयन को सुनिश्चित करता है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हम -

1. राज्य सचिवालय के गठन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
2. राज्य सचिवालय की संरचना की विवेचना कर सकेंगे
3. राज्य सचिवालय के कार्यों का वर्णन कर सकेंगे
4. मुख्य सचिव के कार्यों का वर्णन कर सकेंगे
5. प्रशासनमें मुख्य सचिव की भूमिका का परीक्षण कर सकेंगे।

12.3 राज्य सचिवालय

हमारे देश में सचिवालय की व्यवस्था ब्रिटिश शासन तन्त्र की विरासत है। जिस प्रकार से केन्द्र सरकार के समस्त मंत्रालयों एवं विभागों का सामूहिक रूप केन्द्रीय सचिवालय कहलाता है उसी प्रकार राज्य सरकार के समस्त विभाग सम्मिलित रूप से राज्य सचिवालय के नाम से जाने जाते हैं। एक विभाग का राजनीतिक मुखिया, मंत्री तथा प्रशासनिक मुखिया सचिव कहलाता है। सामान्यतः राजनीतिक मंत्रियों के पास प्रशासनिक अनुभव की कमी होती है उनके इस अनुभव की कमी को प्रशासनतंत्र में कार्यरत कार्मिक पूरी करते हैं इसके साथ ही सचिवालय प्रशासनमें निरन्तरता प्रदान करते हैं। मंत्री तथा सचिव तो आते जाते रहते हैं किन्तु सचिवालय सदैव रहता है और प्रशासनकी निरन्तरता की बनाए रखता है।

12.3.1 सचिवालय की उपयोगिता

सचिवालय की आवश्यकता को निम्न प्रकार से वर्णन किया जा सकता है।

1. मंत्रियों को सामान्यतः प्रशासनका अनुभव नहीं होता है। शासन संचालन में सचिवालय के अधिकारी उनकी सहायता करते हैं।
2. मंत्रीगण समयाभाव के कारण प्रशासनिक कार्यों का संचालन समय से नहीं कर पाते हैं यह कार्य सचिवालय के अधिकारी निष्पादित करते हैं।
3. सचिवालय एक स्थायी व्यवस्था होती है जो कि सरकारों के पतन के पश्चात भी प्रशासनको निर्बाध गति से चलाता है।
4. नीति निर्माण, नियोजन, अनुश्रवण एवं मूल्यांकन में सचिवालय मुख्य कार्यकारी की भूमिका का निर्वहन करता है।

12.3.2 संगठन

संविधान के अनुच्छेद 154 ; पद्ध द्वारा द्वारा राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित की गई है। जिसका प्रयोग वह अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से करता है। वस्तुतः राज्य का मुख्यमंत्री उसकी मन्त्रिपरिषद तथा सचिवालय एवं अन्य कार्यालयों के अधिकारी राज्यपाल की शक्तियोंका व्यावहारिक प्रयोग करते हैं। इस प्रकार राज्य प्रशासनका वास्तविक मुखिया मुख्यमंत्री होता है जो सचिवालय का भी नियंत्रण कर्ता होता है। यह राज्य सरकार की समस्त शक्तियोंका केन्द्र बिन्दु होता है।

शासन सचिवालय किसी एक विभाग या कार्यालय का नाम नहीं है अपितु यह राज्य सरकार के समस्त विभा का शीर्ष स्तर पर सामूहिक नाम है। प्रत्येक राज्य के सचिवालय में विभागों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। विभागों की संख्या का निर्धारण राज्य का मन्त्रिमण्डल करता है। वर्तमान में बड़े राज्यों में सामान्यतः 50 से ऊपर विभाग होते हैं। अधिकांश राज्यों में सामान्यतः निम्न विभाग होते हैं।

सामान्य प्रशासन , गृह, राजस्व, खाद्य और कृषि योजना, पंचायती राज, ग्राम्य विकास, वित्त, विधि, सार्वजनिक निर्माण, शिक्षा , उद्योग ऊर्जा, सिंचाई, सहकारिता, यातायात, स्थानीय शासन , कारागार, श्रम और रोजगार आबकारी और कर आदि। इसके अतिरिक्त कुछ विभाग किसी राज्य विशेष को आवश्यकता के अनुसार बनाये और समाप्त किये जा सकते है। सचिवालय के किसी प्रशासनिक विभाग के अधीन अधीनस्थ कार्यालयों की संख्या उस विभाग के कार्यों एवं प्रकृति पर निर्भर करती है। उदाहरणार्थ ग्राम्य विकास विभाग उ. प्र. के अधीन चार निदेशालय कार्यरत है यथा कमिष्नर ग्राम्य विकास, निदेशक राज्य ग्राम्य विकास संस्थान, कमिश्नर ग्रामीण आवास एवं निदेशक प्रोजेक्ट मैनेजमेन्ट यूनिट। कुछ विभाग ऐसे भी होते हैं जिनके अधीन एक भी अधीनस्थ कार्यालय नहीं होते हैं।

12.3.3 सचिवालय का संगठनात्मक ढांचा

राजनीति स्तर: मुख्यमंत्री कैबिनेट मंत्री राज्य मंत्री ;स्वतंत्र प्रभार / राज्य मंत्री उप मन्त्री	प्रशासनिक स्तर पर मुख्य सचिव अपर मुख्य सचिव/ ए. पी. सी प्रमुख सचिव/ सचिव विशेष सचिव संयुक्त सचिव उप सचिव अनुभाग अधिकारी यू. डी. ए. एल. डी. ए.
--------------------------------------------------------------------------------------------------------------	--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------

संगठनात्मक दृष्टि से राज्य सचिवालय का मुखिया मुख्यमंत्री होता है। क्योंकि वह मंत्रिपरिषद का अध्यक्ष भी होता है। सचिवालय के समस्त विभाग किसी कैबिनेट मंत्री अथवा राज्यमंत्री ;स्वतंत्र प्रभार के अधीन होते हैं। बड़े विभागों में कैबिनेट मंत्री के अधीन राज्य मंत्री भी होते हैं। कई बार एक मंत्री को एक से ज्यादा विभागों का मंत्री भी बनाया जाता है।

प्रशासनिक स्तर पर सचिवालय का मुख्य अधिकारी मुख्य सचिव होता है। प्रत्येक विभाग का मुख्य अधिकारी शासन सचिव या प्रमुख शासन सचिव होता है। इस पद पर भारतीय प्रशासनिक सेवाओं का सुपर टाइम स्केल का अधिकारी आसीन होता है। सचिव के अधीन विशेष सचिव अथवा अतिरिक्त सचिव होता है विशेष सचिव के अधीन संयुक्त सचिव होता है जो कि सामान्यतः राज्य प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारी होते हैं। संयुक्त सचिव के अधीन उप सचिव, अनुभाग

अधिकारी तथा यू. डी. ए. एवं एल. डी. ए. तैनात होते हैं। यह सभी अधिकारी सामान्यतः राज्य सचिवालय सेवा के होते हैं।

12.3.4 राज्य सचिवालय के कार्य

राज्य प्रशासन की सर्वोच्च प्रशासनिक संस्था होने के कारण नीति एवं कानून निर्माण तथा अधीनस्थ संस्थाओं पर नियंत्रण का कार्य सचिवालय ही करता है। यहाँ सचिवालय के कार्यों से तात्पर्य सम्पूर्ण सचिवालयी व्यवस्था या राज्य सरकार के किसी एक विभाग के कार्यों से है क्योंकि सामान्य कार्य सभी विभागों में एक समान हैं जबकि विषिष्ट कार्य विभागानुसार पृथक् प्रकृति के हो सकते हैं। उदाहरणस्वरूप गृह विभाग के कार्यों में शांति एवं व्यवस्था बनाये रखना प्रमुख है, अतः पुलिस अधिकारियों तथा नियामकीय प्रवृत्तियों का बोलबाला रहता है, जबकि समाज कल्याण विभाग का कार्य निराश्रित एवं निर्योग्य व्यक्तियों को कल्याणकारी सेवाएँ उपलब्ध करवाना है अतः यहाँ मानवीय संवेदनाएँ महत्वपूर्ण हो जाती हैं। लेकिन भारतीय प्रशासनिक तंत्र की कार्यशैली में विभागीय आधार पर व्यापक स्तर पर अंतरों को समझ पाना किंचित कठिन है।

राज्य सचिवालय के सभी विभागों के या किसी एक विभाग के कार्य निम्न होते हैं -

1. विकास हेतु नीतियों का निर्माण

सचिवालय का प्रमुख कार्य जनकल्याण तथा विकास कार्यों को गति प्रदान करने निमित्त सार्थक नीतियाँ एवं योजनाएँ तैयार करना है। अधिकांश नीतियाँ किसी एक विभाग के कार्यों तथा लक्ष्यों से सम्बन्धित होती हैं ये नीतियाँ सत्तारूढ़, राजनीतिक दल की मान्यताओं, कार्यशैली तथा उसके दृष्टिकोण से प्रभावित होती हैं, तथापि राज्य के संसाधन, जनसमस्याएँ तथा उपलब्ध प्रशासनिक तंत्र इनके निर्माण में निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। जब किसी विभाग की एक स्पष्ट एवं दूरगामी नीति तैयार एवं स्वीकृत हो जाती है तब उस विभाग के उद्देश्य और कार्यक्रम मुख्यतः उस विभाग की नीति के इर्द-गिर्द घूमते हैं।

पंचवर्षीय एवं वार्षिक योजनाओं के माध्यम से राज्य का सर्वांगीण सामाजिक-आर्थिक विकास सुनिश्चित किया जाता है। राष्ट्रीय स्तर पर पंचवर्षीय योजनाएँ, योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद के माध्यम से निरूपित होती हैं लेकिन राज्य के विकास के लिए योजनाओं का स्वरूप, आकार तथा आवश्यक धनराशि स्वीकृत करवाने के लिए राज्य प्रशासनको खासी मेहनत करनी पड़ती है। राज्य के विकास के लिए कतिपय योजनाएँ केन्द्र प्रवर्तित होती हैं जबकि कुछ कार्यक्रम स्वयं राज्य सरकार द्वारा संचालित एवं वित्त पोषित होते हैं। इन सभी नीतियों, कार्यक्रमों तथा योजनाओं का आकलन, निर्माण तथा स्वीकृति के क्रम में सचिवालय में कार्यरत मंत्रियों, सचिवों तथा अन्य विशेषज्ञों की भूमिका निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण रहती है।

2. सुशासन हेतु नियमों एवं कानूनों का निर्माण

आधुनिक राज्यों, शासन व्यवस्थाओं तथा प्रशासनिक कृत्यों का मुख्य आधार कानून है। आज कानूनों के द्वारा ही न केवल व्यक्ति एवं समाज को नियंत्रित किया जाता है बल्कि प्रवर्तित व्यवस्था को यथावत् रखते हुए विकास की राह पर अग्रसर हुआ जाता है। भारत के संविधान में वर्णित राज्य सूची के विषयों के संदर्भ में कानून एवं नियमों का निर्माण करने हेतु राज्य सचिवालय अपनी अहम भूमिका निर्वाहित करता है। तात्कालिक समस्याओं या परिस्थितियों के अनुसार नये विधेयक तैयार करना अथवा प्रचलित अधिनियमों में संशोधन करके उन्हें विधायिका में प्रस्तुत करने लायक बनाने से पूर्व तथ्यों, सूचनाओं तथा शासन की नीतियों का विप्लेषण करने का कार्य सचिवालय का है। सचिवालय में उपलब्ध सूचनाएँ एवं दस्तावेज कानूनों तथा नियमों के निरूपण में सहायता प्रदान करते हैं।

3. प्रशासनिक कार्यों का संचालन एवं नेतृत्व

राज्य प्रशासनका शीर्ष प्रशासनिक संस्थान होने के कारण सचिवालय का यह दायित्व है कि वह सभी अधीनस्थ कार्यालयों तथा कार्मिकों के माध्यम से सरकार के कार्यक्रमों तथा कानूनों का कार्यान्वयन सुनिश्चित करें। इस सम्बन्ध में आने वाली बाधाओं तथा शकाओं का समाधान करना, अधीनस्थ संस्थाओं को पर्यवेक्षण एवं मार्गदर्शन प्रदान करना, चाही गई सूचनाएँ एवं संसाधन उपलब्ध करवाना, आपत्तियों का निराकरण करना एवं आवश्यक दिशा निर्देश प्रदान करने हेतु राज्य की सभी प्रशासनिक संस्थाओं का नेतृत्व करना सचिवालय का कार्य है। चूंकि राज्य सरकार का प्रत्येक प्रशासनिक अभिकरण सचिवालय के किसी न किसी विभाग के अधीन कार्य करता है अतः प्रशासनिक नियंत्रण का कार्य सचिवालय का जिम्मा है।

4. मानव संसाधन का विकास करना

किसी भी संगठन के लिए मानव संसाधन सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय है क्योंकि शेष सभी संसाधनों का उपयोग मानव संसाधन अर्थात् कार्मिकों की कुशलता एवं प्रतिबद्धता पर निर्भर करता है। राज्य प्रशासन में कार्यरत लोक सेवकों ;सरकारी कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, स्थानान्तरण, वेतन एवं भत्ते तथा अन्य आवश्यक सेवा नियमों और शर्तों का निर्धारण सचिवालय द्वारा किया जाता है। राज्य में नई कार्मिक सेवाओं का गठन, पदों का सृजन, कमी या बढ़ोत्तरी, वेतनमानों में संशोधन, कार्मिक आन्दोलनों पर कर्मचारी नेताओं से वार्ता तथा हड़ताल की स्थिति में प्रशासनिक तंत्र पर नियंत्रण इत्यादि सचिवालयी विभागों का कार्य है।

5. संस्थाओं के मध्य समन्वय सुनिश्चित करना

सकारात्मक प्रयासों के रूप में विभिन्न व्यक्तियों या संगठनों के मध्य आपसी सहयोग ही समन्वय है। वर्तमान में प्रशासनिक कार्यों की प्रकृति बहुविभागीय तथा विशिष्टीकरण युक्त है। उदाहरण के लिए जनसंख्या नियंत्रण में चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग, श्रम एवं उद्योग विभाग तथा शिक्षा विभाग का आपसी तालमेल एवं सामंजस्य अत्यावश्यक है। प्रशासनिक कार्यों या निर्णयों के दौरान एक विभाग का दूसरे विभाग से कई बार संघर्ष एवं विवाद भी हो जाता है। इस प्रकार की अप्रिय स्थितियों से बचने अथवा उन्हें सुलझाने के क्रम में सचिवालय सतत प्रयास करता रहता है। सामान्यतः राज्य सचिवालय निम्न स्तरों पर समन्वय करता है-

1. विभिन्न अभिकरणों एवं राज्य प्रशासन के मध्य।
2. केन्द्र सरकार के मंत्रालयों/संस्थाओं एवं राज्य सरकार के विभागों के मध्य।
3. स्वयंसेवी संगठनों तथा राज्य प्रशासनके मध्य।
4. निजी संस्थाओं एवं राज्य सरकार के मध्य।
5. दबाव समूहों/संगठनों तथा राज्य सरकार के मध्य।
6. राजनीतिज्ञों तथा सरकारी कार्मिकों के मध्य।
7. एक ही विभाग के शीर्ष तथा अधीनस्थ कार्यालयों के मध्य।
8. आम जनता तथा प्रेस और राज्य प्रशासनके मध्य।
9. विभिन्न लोक उपक्रमों, आयोगों, कमेटियों तथा स्वायत्तषासी संस्थाओं के मध्य समन्वय सुनिश्चित करना।

वस्तुतः सचिवालय का कार्य, शासन की नीतियों, विधियों तथा कार्यक्रमों को जनकल्याण हेतु निष्पादित करवाना है अतः इस सम्बन्ध में जिस स्तर पर कोई भी बाधा उत्पन्न हो उसका निवारण सचिवालय के द्वारा होता है।

6. बजट निर्माण तथा निष्पादन

वित्त, आधुनिक प्रशासनतंत्र का रक्त है। प्रत्येक छोटा या बड़ा कार्य मुख्यतः वित्तीय संसाधनों पर निर्भर करता है अतः वार्षिक आय-व्यय का लेखा बजट के रूप में तैयार किया जाता है। प्रत्येक विभाग की स्थानीय शाखाएँ अपना बजट तैयार करके राजधानी स्थित सचिवालय में अपनी विभाग के पास भेजती हैं। प्रत्येक विभाग का बजट मद ;आइटम के अनुसार तैयार होता है। सचिवालय के

विभागों द्वारा तैयार इस बजट को वित्त विभाग एकीकृत स्वरूप प्रदान करता है तथा अन्तिम रूप से कैबिनेट द्वारा स्वीकृत होने पर विधायिका में प्रस्तुत किया जाता है। विधायिका द्वारा स्वीकृति के पश्चात ही राज्य सरकार के विभाग विभिन्न प्रकार के व्यय कर सकते हैं तथा सेवाओं के बदले लगाए गए कर एवं शुल्क एकत्र कर सकते हैं। यदि किसी विभाग को आवंटित किया गया बजट किन्हीं कारणों से कम पड़ता है तो उसकी परिस्थितिजन्य स्वीकृति सचिवालय ही प्रदान करता है।

7. जनसम्पर्क एवं जनशिकायत निवारण

लोक कल्याणकारी शासन व्यवस्थाओं में संचालित योजनाएँ चूँकि जनसाधारण हेतु होती हैं अतः उन योजनाओं एवं कार्यक्रमों का प्रसार-प्रचार भी आम जनता के मध्य प्रशासन द्वारा ही किया जाता है। आजकल रेडियो, टी. वी. समाचार पत्रों, पोस्टर्स, होर्डिंग्स तथा प्रदर्शनियों के माध्यम से सरकार अपनी योजनाएँ जनसाधारण को सूचित करती है। आज का युग सूचना का युग है। अतः आम जनता तक प्रशासनिक कार्यकलापों की जानकारी पहुँचाना आवश्यक है।

प्रशासनिक कार्यों तथा प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में जनसाधारण को हुई असुविधा तथा राजकीय सम्पत्ति के दुरुपयोग इत्यादि के क्रम में असंख्य शिकायतें प्रतिदिन सचिवालय में प्राप्त होती हैं। इन शिकायतों का निवारण तथा दोषी कार्मिक के विरुद्ध कार्यवाही करने का कार्य सचिवालय द्वारा सम्पादित ही होता है।

8. नियंत्रण एवं मूल्यांकन करना

किसी भी कार्य की पूर्ण सफलता हेतु परमावश्यक है कि उस कार्य का सतत अनुश्रवण तथा एक निश्चित अवधि या पूर्ण समाप्ति पर मूल्यांकन ;इवेल्युएशन किया जाए। राज्य सरकार द्वारा कार्यान्वित योजनाओं तथा कार्यक्रमों का सचिवालय द्वारा मूल्यांकन किया जाता है। क्षेत्रीय कार्यालयों तथा कार्मिकों द्वारा प्रेषित प्रगति प्रतिवेदन, आम जनता की परिवेदनाएँ, राजनेताओं का आकलन तथा आकस्मिक दौरों के माध्यम से योजनाओं के कार्य-संचालन एवं प्रगति पर नियंत्रण रखा जाता है। शीर्षस्थ नियंत्रणकर्ता के रूप में सचिवालय अपने अधीनस्थ कार्यालयों पर नियंत्रण स्थापित करने हेतु अनेक प्रकार के नियम-विनियम, दिशा-निर्देश तथा परिपत्र जारी करता है क्योंकि कार्यक्रम या योजना की सफलता उस पर रखे गए नियंत्रण पर अत्यधिक निर्भर करती है। राजकीय सामग्री के भंडार का सत्यापन तथा लेखा परीक्षण ; ऑडिट के द्वारा भी नियंत्रण स्थापित किया जाता है।

9. तथ्य एकत्रण एवं प्रतिवेदन तैयार करना

लोक प्रशासनकी प्रत्येक कार्यकारी संस्था अपने वार्षिक तथ्य, सूचना तथा समंक तैयार करती है। सचिवालय के विभाग भी अपने अधीनस्थ निदेशालयों तथा अन्य सम्बद्ध प्रशासनिक अभिकरणों के माध्यम से विभागीय आंकड़ों को एकत्र करते हैं। ये आंकड़े सूचना अथवा तथ्य नई योजनाएँ बनाने तथा प्रवर्तित योजनाओं के प्रभाव को समझने में सहायक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार के वार्षिक प्रगति विवरण राजनेताओं, विधायकों, षोधार्थियों तथा प्रशासकों के लिए विभिन्न दृष्टियों से लाभकारी सिद्ध होते हैं। इन प्रगति विवरणिकाओं के अतिरिक्त प्रत्येक महत्वपूर्ण दस्तावेज तथा फाइलों को भी अभिलेखागार में सुरक्षित रखा जाता है।

12.3.5 राज्य सचिवालय की कार्य प्रणाली

राज्य सचिवालय के विभिन्न स्तरों के पदाधिकारी अपने पद की महत्ता के अनुसार कार्य सम्पन्न करते हैं। शासन सचिव सम्पूर्ण विभाग और अधीनस्थ स्टाफ पर सामान्य नियन्त्रण एवं अधीक्षण रखता है। उप-सचिव उसकी सहायता करते हैं तथा अपर सचिव द्वारा यह देखा जाता है कि किसी प्रस्तुत मामले से सम्बन्धित सभी तथ्य संलग्न किये गये हैं अथवा नहीं। अनुभाग का अधिकारी यह व्यवस्था करता है कि अनुभाग में आने वाले सभी कागज-पत्रों पर उचित कार्यवाही की जाये। अनुभाग अधिकारी की देखरेख में ही कार्यालय प्रक्रिया के अनुशीलन का प्रबन्ध किया जाता है। वह सभी अधिनियमों, उपनियमों, कार्यालय प्रक्रिया तथा फाइल बनाने, आदि कार्यों से परिचित रहता है, इसलिए अपने सहायकों को आवश्यक निर्देश प्रदान कर सकता है। यह निर्णय के 'क्या' पर प्रभाव नहीं डालता वरन 'कैसे' का सुझाव देता है। निर्णय लेना उच्च अधिकारियों का कार्य है।

सचिवालय की कार्य प्रक्रिया 'सेक्रेटेरिएट मैनुअल' में उल्लिखित होती है। किसी भी राज्य सचिवालय में अपनायी गयी फाइल व्यवस्था अत्यन्त सरल होती है। उदाहरण के लिए, सचिवालय में फाइल के दो भाग किये जाते हैं-टिप्पणियाँ एवं पत्र व्यवहार। टिप्पणी वाले भाग में सम्बन्धित विषय पर विभाग का अभिमत अंकित होता है। पत्र व्यवहार वाले भाग में किसी विषय पर प्राप्त किये गये ता भेजे गये सभी पत्र होते हैं।

सचिवालय मैनुअल में यह भी उल्लिखित है कि एक कागज को किस प्रकार व्यवस्थित किया जाये, संलग्न किये जाये, पृष्ठों पर नम्बर किस प्रकार डाला जाये, आदि। फाइल रखने का तरीका ऐसा होना चाहिए कि एक अधिकारी किसी फाइल को मंगाकर तत्सम्बन्धी सारी बातों की जानकारी कर सके।

12.3.6 राज्य सचिवालय की समस्यायें

डॉ. श्रीराम माहेश्वरी के अनुसार राज्य सचिवालय ने उन कार्यों को भी हथिया लिया है जो वास्तव में इसके अपने नहीं हैं, इससे विभागाध्यक्षों में उदासीनता की प्रवृत्ति उत्पन्न होती जा रही है। विभागाध्यक्ष प्रायः यह षिकायत करते हैं कि सचिवालय यन्त्र ने उनके कार्यों में सुविधा पहुंचाने

की अपेक्षा बाधा डाली है। उनके महत्वपूर्ण सुझावों को सचिवालय कई बार रद्दी की टोकरी में डाल देता है। सचिवालय के कर्मचारियों में इतनी अधिक वृद्धि हो रही है कि जो प्रशासनिक दृष्टि से आवश्यक नहीं है। सचिवालय के अधिकारी हमेषा अपनी सेवा की सुरक्षा, वेतन-भत्ते और पदोन्नति के मसलों में उलझे रहते हैं। कई बार आवश्यक स्वरूप के कागज सचिव से चलकर पुनः सचिव तक पहुँचने में 15.20 स्तरों पर रूकते हैं। जिससे आवश्यक विलम्ब होता है और समय व श्रम की बर्बादी। सचिवालय संगठन की एक अन्य समस्या यह है कि इसे बहुत सारा अनावश्यक कार्य भी सौंप दिया जाता है। पंजाब में प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल ने यह ज्ञात किया कि वहां सचिवालय में आने वाले कार्यों में से कम से कम एक-तिहाई कार्य तो ऐसे होते हैं जो उनके सामने आने की नहीं चाहिए।

भारत के राज्यों में सचिवालय और विभागाध्यक्षों के बीच समन्वय, सहयोग तथा मधुर सम्बन्धों की स्थापना आवश्यक पहलू है। वस्तुतः सचिवालय मूल रूप से एक अभिलेख रखने वाला और समन्वय, नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण करने वाला कार्यालय है जबकि विभागाध्यक्ष सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों की सफल क्रियान्वित के लिए उत्तरदायी है। अतः दोनों की भूमिका स्पष्टतः परिभाषित होनी चाहिए और उनके उच्च-अधीनस्थ का सम्बन्ध न होकर समांजस्यपूर्ण सम्बन्धों की रूपरेखा बननी चाहिए। सचिवालय की कार्य प्रणाली का भी आधुनिकीकरण किया जाना चाहिए ताकि अनावश्यक विलम्ब, आद को टाला जा सके। लालफीताषाही को रोकने के लिए सभी सचिवालयों में कर्मचारियों की संख्या कम की जानी चाहिए, शक्ति का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए, लाइन एवं स्टाफ में स्पष्ट अन्तर होना चाहिए तथा सभी विभागों में एक-एक पृथक् प्रभाग समन्वय कार्य के लिए स्थापित किया जाना चाहिए।

12.4 मुख्य सचिव

मुख्य सचिव राज्य प्रशासनका प्रशासनिक प्रमुख होता है राज्य स्तर पर मुख्य सचिव केन्द्रीय स्तर मंत्रिमण्डलीय सचिव के समकक्ष माना जा सकता है वह राज्य सचिवालय का मुख्य समन्वयकर्ता होता है। वह राज्य के समस्त एवं सामान्य प्रशासन का अध्यक्ष होता है। वह सचिवालय का ऐसा किंगपिन है जो सभी स्तरों पर सचिवालय के सभी विभागों को परस्पर संयुक्त करता है वह सचिवों का मुखिया तथा राजकीय लोक सेवाओं का अध्यक्ष है मुख्य सचिव का राजनीतिक प्रमुख मुख्यमंत्री होता है वह सचिवालय का सर्वोसवा होता है सचिवालय के सभी विभागों पर उसका नियन्त्रण होता है, वह राज्य को अत्यन्त आवश्यक प्रशासकीय नेतृत्व प्रदान करता है, राज्य के सम्पर्क अधिकारी का कार्य करता है तथा अपने प्रदेश की सरकार और केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के मध्य संचार सूत्र का कार्य करता है।

12.4.1 मुख्य सचिव: पद का उदय

मुख्य सचिव का पद ब्रिटिश विरासत है। सन् 1898 में लॉर्ड बेलजली जब भारत के गवर्नर जनरल बने तो उन्होंने केन्द्रीय सचिवालय का पुनर्गठन किया और उसी समय मुख्य सचिव का पद सृजित किया गया। ऐसे प्रमाण है कि जार्ज हिलेरो बालो पहले मुख्य सचिव नियुक्त हुए थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन की समाप्ति के बाद जब शासन सीधे ब्रिटिश संसद के अधीन आया तो धीरे-धीरे सभी प्रान्तों में मुख्य सचिव पद सृजित किए गए। उसे महत्वपूर्ण नियुक्तियां करने के अधिकार प्रदान किए गए जिनमें जिला स्तर के अधिकारियों की नियुक्तियां प्रमुख थीं।

12.4.2 मुख्य सचिव का चयन

मुख्य सचिव राज्य में आई. ए. एस. का वरिष्ठतम अधिकारी होता है। सामान्यतया उसकी नियुक्ति 'वरिष्ठता' के आधार पर होती है, किन्तु ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि मुख्य सचिव के चयन में योग्यता और अन्य बातें भी निर्णायक होती हैं। व्यवहार में मुख्य सचिव का चयन राज्य का मुख्यमंत्री करता है। परम्परा यह है कि ऐसा करते समय वह संघ सरकार से सलाह करता है किन्तु ऐसा करना आवश्यक नहीं है। वह अपने सहयोगी मन्त्रियों से भी सलाह कर सकता है पर अन्तिम निर्णय उसी का होता है। डॉ. मीना सोगानी के अनुसार मुख्य सचिव के चयन में जिन मुख्य तथ्यों को ध्यान में रखा जाता है वे निम्नलिखित हैं ;

1. वरीयता 2. सेवा अभिलेख, कार्य निष्पादन तथा योग्यता, और 3. मुख्यमंत्री का अधिकारी में विश्वास।

हाल ही में विभिन्न राज्यों में मुख्य सचिवों के चयन से स्पष्ट होता है कि सामान्यतया मुख्यमंत्री अपनी पसन्द के व्यक्ति को ही मुख्य सचिव के पद पर नियुक्त करता है। इस कारण यह कहा जा सकता है कि मुख्य सचिव के चयन में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका मुख्यमंत्री की ही होती है। डॉ. एस. आर. माहेश्वरी के अनुसार, राज्य प्रशासन को सुचारू रूप से और प्रभावी ढंग से चलाने के लिए यह आवश्यक भी है कि मुख्यमंत्री और मुख्य सचिव के आपसी सम्बन्ध परस्पर ठोस विश्वास पर आधारित हों। प्रशासनिक सुधार आयोग का मत था कि मुख्य सचिव का चयन बहुत ही सावधानी से किया जाना चाहिए। यह एक वरिष्ठतम, प्रभावी व्यक्ति होना चाहिए जिसे अपनी योग्यता, अनुभव, ईमानदारी और निष्पक्षता के कारण सभी अधिकारियों का विश्वास और आदर प्राप्त हो।

12.4.3 राज्य प्रशासन में मुख्य सचिव के कार्य

राज्य का सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी तथा मुख्यमंत्री के प्रमुख परामर्शदाता के रूप में पदासीन मुख्य सचिव के कार्य अत्यन्त विस्तृत तथा गम्भीर हैं। संक्षेप में मुख्य कार्य अग्रलिखित हैं -

- 1.राज्य के प्रशासनतंत्र को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए मुख्यमंत्री को परामर्श देना तथा स्वयं प्रशासनतंत्र को नेतृत्व प्रदान करना ।
- 2.मंत्रिमण्डल सचिवालय के सचिव के रूप में राज्य की शासकीय नीतियों के निरूपण में सहायता करना ।
- 3.मंत्रिमण्डल बैठकों की सूचना मंत्रिगण तक पहुँचाने, बैठक के निर्णयों को प्रशासनिक इकाइयों तक पहुँचाने तथा उनकी क्रियान्विति सुनिश्चित कराने के प्रयास करना ।
- 4.केन्द्र-राज्य सम्बन्धों, क्षेत्रीय परिषदों के कार्यों तथा अन्तरराज्यीय सम्पर्कों के क्रम में पत्र व्यवहार एवं समन्वय करना ।
- 5.राज्यपाल, मुख्यमंत्री तथा अन्य मंत्रियों से सम्बन्धित संस्थापना प्रकरणों पर कार्यवाही करना ।
- 6.राज्य क्षेत्र के बाहर के प्रकरणों में चिकित्सा सहायता उपलब्ध करवाना ।
- 7.उच्च स्तरीय ;मंत्रियों तथा प्रशासनिक अधिकारियोंद्ध सभा, संगोष्ठियों तथा कार्यषालाओं से सम्बन्धित मामलों पर कार्यवाही करना ।
- 8.राज्य के विकास हेतु कार्यक्रम एवं योजनाएँ बनवाने में सहायता करना ।
- 9.राज्य प्रशासनसे सम्बन्धित विधि/नियम निर्माण में परामर्श प्रदान करना ।
- 10.जनगणना के सम्बन्ध में केन्द्र सरकार को राज्य प्रशासनद्वारा सहायता उपलब्ध करवाना ।
- 11.संसद तथा राज्य विधानसभा में मुख्यमंत्री तथा मंत्रियों से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर हेतु तथ्य एवं सूचनोंएँ उलब्ध करवाना ।
- 12.राज्य कर्मचारियों के वेतनमानों, पदों, पदोन्नतियों, स्थानान्तरण, पुरस्कार तथा कार्मिक विकास से सम्बन्धित सेवाषर्तों का निर्माण करवाना ।
- 13.विभिन्न प्रशासकीय संगठनों, स्वयंवेसी संस्थाओं, उद्योग मंडलों, दबाव समूहों, प्रेस तथा कार्मिक संघों से वार्तालाप करना तथा सरकार का पक्ष स्पष्ट करना।
- 14.केन्द्र सरकार के मंत्रालयों, राज्य सरकार के विभागों तथा अन्य अभिकरणों के मध्य विवाद की स्थिति में समन्वय स्थापित करवाना।

15.राज्य प्रशासनके कार्यकरण में रत संस्थाओं तथा कार्मिकों पर नियंत्रण, पर्यवेक्षण तथा मार्गदर्शन प्रदान करना।

16.विभिन्न विभागों से प्राप्त बजटीय अनुमानों को एकीकृत करते हुए मंत्रिमंडल के सम्मुख उन्हें प्रस्तुत करवाना तथा विधायिका द्वारा स्वीकृत बजट को वास्तविक रूप से क्रियान्वित करवाना ।

17.महत्वपूर्ण व्यक्तियों के राज्य के दौरे के समय व्यवस्थाएँ करवाना ।

18.सांस्कृतिक आदान-प्रदान, कला एवं संस्कृति विकास, पुरस्कार एवं प्रोत्साहन, तथा करों एवं षुल्क के क्रम में आवश्यक कदम उठाना ।

19.राज्य के प्रशासनतंत्र में संशोधन, सुधार, नवाचार तथा 'रूल्स ऑफ विजनस' में परिवर्तन हेतु मंत्रिमंडल का परामर्श देना।

12.4.4 मुख्य सचिव की भूमिका

राज्य प्रशासनिक तंत्र में मुख्य सचिव की भूमिका कई आयामों से महत्वपूर्ण तथा प्रशासनिक दृष्टि से सर्वोच्च है। मुख्यमंत्री के परामर्शदाता, राज्य कार्मिकों के नेतृत्वकर्ता तथा प्रशासनतंत्र की धुरी के रूप में मुख्य सचिव की भूमिका को यहाँ निम्नांकित षीर्षकों के माध्यम से स्पष्ट किया जा रहा है-

1.मुख्यमंत्री के सहयोगी के रूप में

किसी राज्य में नये मुख्यमंत्री तथा मंत्रिपरिषद की स्थापना के साथ ही सामान्यतः मुख्य सचिव भी परिवर्तित हो जाता है यद्यपि लोक सेवक होने के नाते मुख्य सचिव राजनीतिक दृष्टि से निष्पक्ष होता है तथापि प्रत्येक मुख्यमंत्री अपनी इच्छा का मुख्य सचिव नियुक्त करना पसंद करता है ताकि ताकि मुख्य सचिव उसे सूचना, तथ्य तथा समुचित परामर्श उपलब्ध करा सके एवं मुख्यमंत्री के मंतव्यों को समझते हुए कार्यक्रम निर्मित एवं कार्यान्वित करवा सके।

मंत्रिमण्डल की बैठकों की व्यवस्था, वांछित सूचन या फाईल उपलब्ध कराना, महत्वपूर्ण मुद्दों पर अपना परामर्श देना तथा मंत्रिमण्डल के निर्णयों को लागू कराने में मुख्य सचिव की भूमिका निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि राज्य का मुख्यमंत्री अधिकांशतः मुख्य सचिव पर निर्भर रहता है। राज्य प्रशासनकी नीतियों, कानूनों कार्यक्रमों तथा नीवन योजनाओं के निर्माण, मुख्यमंत्री द्वारा किये गये वायदों की क्रियान्वित इत्यादि में मुख्य सचिव बहुत कुशलता से अपना कार्य सम्पादित करता है क्योंकि मंत्रिमंडलीय बैठकों तथा अन्य मंचों पर राजनीतिक मंत्रीगण कई प्रकार की बाध्यताओं तथा स्वार्थों के घिर कर अपना मत प्रकट करते हैं जबकि मुख्य सचिव को अपने दीर्घ प्रशासनिक अनुभव एवं प्रवर्तित कानूनों के अनुसार निर्णय करना होता है।

मुख्यमंत्री के दौरो, बैठकों तथा लोगों से मुलाकात के क्रम में मुख्यमंत्री के सचिव के साथ मुख्य सचिव भी तालमेल बैठाता है। राज्य सरकार के विभिन्न विभागों से महत्वपूर्ण तथा नीतिगत मुद्दों से जुड़े प्रकरणों की फाइलें मुख्य सचिव के पास आती हैं जिन्हें वह मुख्यमंत्री के पास अग्रेषित करता है तथा सम्बन्धित प्रकारण पर अपनी टिप्पणी एवं परामर्श देता है। योग्य, चतुर तथा धैर्यवान मुख्य सचिव, कुछ विवादित प्रकरणों में कानून की पतली गलियों के माध्यम से अपने मुख्यमंत्री को संकट से उबार भी सकता है। मुख्यमंत्री के पास आने वाली जन-षिकायतों की जाँच तथा सुनवाई का कार्य मुख्य सचिव के माध्यम से ही सम्बन्धित विभाग तक भेजा जाता है।

2. मुख्य प्रशासनिक अधिकारी के रूप में

राज्य सचिवालय के विभागों के सभी सचिवों, निदेशालयों के निदेशकों, संभागीय आयुक्तों, जिला कलेक्टरों तथा अन्य सभी राज्य कर्मचारियों का शीर्षस्थ अधिकारी मुख्य सचिव होता है। इस स्थिति में मुख्य सचिव का यह दायित्व हो जाता है कि सम्पूर्ण प्रशासनतंत्र को निर्देशित तथा समन्वित करे ताकि किसी प्रकार की शिथिलता तथा संघर्ष की स्थिति उत्पन्न न हो। राज्य प्रशासनकी किसी भी इकाई द्वारा किया गया विवादित कार्य या उच्च स्तरीय प्रणसनीय कार्य अथवा दिखाई गई लापरवाही के क्रम में अन्ततः मुख्य सचिव को जिम्मेदार बनना पड़ता है। इसलिए राज्य कार्मिकों के मनोबल को बढ़ाने हेतु उनके वेतनमानों, भत्तों तथा सुविधाओं में वृद्धि, पदोन्नति, पुरस्कार एवं प्रशिक्षण व्यवस्था में सुधार तथा सेवानियमों में समयानुकूल परिवर्तन तथा अनुशासन हीनता के मामलों में दण्ड की कार्यवाहियाँ इत्यादि में मुख्य सचिव महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

3. कुछ विभागों के प्रमुख के रूप में

यद्यपि मुख्य सचिव राज्य के सम्पूर्ण प्रशासनतंत्र का प्रशासनिक प्रमुख है तथापि कुछ विभाग ऐसे हैं जिनका सचिव पद, मुख्य सचिव द्वारा ही धारित किया जाता है। इन विभागों में प्रशासनिक सुधार विभाग, कार्मिक विभाग, सामान्य प्रशासनविभाग तथा नियोजन विभाग प्रमुख हैं। यह स्थिति प्रत्येक राज्य में भिन्न-भिन्न है फिर भी मुख्य सचिव की भूमिका संघीय सरकार के कैबिनेट सचिव से भिन्न है क्योंकि कैबिनेट सचिव के अधीन प्रत्यक्षतः कोई मंत्रालय नहीं होता है जबकि राज्यों के मुख्य सचिव के अधीन कुछ विभाग होते हैं।

सामान्यतः महत्वपूर्ण प्रकृति के उन विभागों को जो राज्य प्रशासनमें समन्वय स्थापित करने में अग्रणी हैं, को मुख्य सचिव के अधीन रखा जाता है। मुख्यमंत्री के साथ मिलकर राज्य की वार्षिक तथा पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण तथा श्रियोजन एवं विकास समन्वय समिति के अध्यक्ष के रूप में मुख्य सचिव महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कार्मिक विभाग में मुख्य कार्यों में अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों ;राज्य संवर्गद्ध के कार्यों का बंटवारा, पद-स्थापन, पदोन्नति,

सेवानिवृत्ति, प्रशिक्षण, वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट, सेवानियम, आधार संहिता तथा उच्च स्तरीय निकायों जैसे लोकायुक्त, लोक सेवा आयोग, लोक उपक्रम इत्यादि में अधिकारियों की नियुक्ति के क्रम में मुख्यमंत्री, मुख्य सचिव से परामर्श करता है। प्रशासनिक सुधार विभाग के मुखिया के रूप में राज्य प्रशासनतंत्र से सुधार, संशोधन, प्रक्रिया परिवर्तन तथा नवाचारों को प्रोत्साहन देने का जिम्मा मुख्य सचिव का है। सामान्य विभाग के सचिव के रूप में मुख्य सचिव की भूमिका, उच्च स्तरीय प्रतिनिधि मंडलों या महत्वपूर्ण व्यक्तियों के दौरों के समय व्यवस्थाएँ करवाने, पुरस्कार निर्धारण एवं वितरण, स्वयंसेवी संगठनों को सहायता देने, राजकीय भवनों तथा अतिथि गृहों की रक्षा, राज्य मोटर गैराज का प्रबन्ध तथा स्वतंत्रता सेनानियों के मामले, इत्यादि से सम्बन्धित होती है। सामान्यतः ये विभाग किसी मंत्री के अधीन नहीं होते बल्कि मुख्यमंत्री ही इनका प्रभारी होता है जिसे मुख्य सचिव प्रशासनिक सहायता प्रदान करता है।

4. विभिन्न स्तरों पर समन्वयक के रूप में

वर्तमान में जटिल होती प्रशासनिक संस्थाओं तथा विशेषज्ञता के कारण फैलते प्रशासनिक क्षेत्र में विविध अभिकरणों के मध्य सामंजस्य एवं समन्वय स्थापित करना परमावश्यक है। राज्य प्रशासनके प्रमुख अधिकारी के रूप में मुख्य सचिव को राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार एवं उनके विभिन्न मंत्रालयों या अभिकरणों से समन्वय स्थापित करना पड़ता है। विभिन्न प्रकार की पंचवर्षीय योजनाओं, विकास कार्यक्रमों, शांति एवं व्यवस्था, वित्तीय सहायता की प्राप्ति, अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों का कार्मिक प्रबन्ध तथा राज्य की विकास परियोजनाओं की मंजूरी इत्यादि के क्रम में मुख्य सचिव राज्य सरकार के विभागों और केन्द्र सरकार के कैबिनेट सचिव, मंत्रालयों एवं वित्तीय संस्थाओं के मध्य समन्वय स्थापित करता है। प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले मुख्य सचिव सम्मेलन में वह राज्य का प्रतिनिधित्व करता है। कैबिनेट सचिव की अध्यक्षता में होने वाले इस वार्षिक सम्मेलन में मुख्यतः केन्द्र-राज्य समन्वय की चर्चा होती है।

राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956 के अनुसरण में केन्द्रीय गृहमंत्री की अध्यक्षता में बनी क्षेत्रीय परिषद में सम्बन्धित राज्यों के मुख्यमंत्रियों, योजना आयोग के प्रतिनिधि, विकास आयुक्त तथा राज्यों के मुख्य सचिवों की अहम भूमिका होती है। दो या अधिक राज्यों के मध्य वाणिज्यिक, जलीय तथा करों से सम्बन्धित विवादों के मध्य अन्तर्विभागीय विवादों को निबटाने, विकास कार्यों में प्रत्येक विभाग का सहयोग सुनिश्चित करने, सचिवालय स्टॉफ को निर्देशित करने, विभागों की बैठकों को सम्बोधित करने, संभागीय आयुक्तों विभागाध्यक्षों तथा जिलाधीषों की संगोष्ठियों की अध्यक्षता करने में मुख्य सचिव की एकमात्र उपयुक्त अधिकारी सिद्ध होता है जो सहज रूप से सम्पूर्ण राज्य प्रशासनको एक सूत्र में पिरो सकता है। राज्य सरकार तथा प्रेस के मध्य, राज्य एवं दबाव समहों

उद्योगपति/कर्मचारी संगठनद्ध तथा राज्य सरकार एवं निजी संगठनों के बीच सौहार्द्रपूर्ण वातावरण स्थापित कराने में भी मुख्य सचिव की महती भूमिका है।

5. आपातकाल में महत्वपूर्ण भूमिका

युद्ध तथा अशांति या वित्तीय संकट के कारण घोषित होने वाले राष्ट्रीय आपातकाल ;इमर्जेन्सी तथा राज्य में संवैधानिक तंत्र की असफलता पर राष्ट्रपति शासन की घोषणा के समय राज्य सरकार का मंत्रिमंडल चूंकि निष्क्रिय हो जाता है अतः राज्यपाल वास्तविक सत्ता बन जाता है। इस स्थिति में मुख्य सचिव की राज्यपाल के प्रति आस्था वैसी ही हो जाती है जैसी कि पूर्व में मुख्यमंत्री के साथ थी। राज्य के शासन -प्रशासनकार्यों को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए मुख्य सचिव को राज्यपाल महोदय के परामर्शदाता एवं कार्यकारी या निष्पादक अधिकारी की भूमिका निभानी पड़ती है। आपातकालीन परिस्थितियों में गठित की जाने वाली कमेटियों में भी मुख्य सचिव अहम् भूमिका निभाता है।

मुख्य सचिव राज्य के पुलिस महानिदेशक तथा महानिरीक्षक एवं गुप्तचर अभिकरणों के अधिकारियों के माध्यम से राज्य की कानून एवं व्यवस्था की अद्यतन सूचनाएँ निरन्तर प्राप्त करता है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के अन्तरराष्ट्रीय संगठनों, राष्ट्रीय आयोगों, स्वयंसेवी संस्थाओं, कल्याणकारी न्यासों, साहसिक तथा सांस्कृतिक कार्यों में संलग्न निकायों एवं आम जनता से मुख्य सचिव दैनन्दिन सम्पर्क करता है। सारांशतः राज्य प्रशासनमें मुख्य सचिव की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण एवं गंभीर दायित्वों से युक्त है।

अभ्यास प्रश्न

1. राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956 में पारित किया गया असत्य/सत्य |
2. राज्य सचिवालय राज्य स्तर पर विद्यमान समस्त विभागों का सामूहिक रूप होता है। सत्य/असत्य/
3. मुख्य सचिव का मुख्य कार्य राज्य के प्रशासनतंत्र को सफलतापूर्वक संचालित करने का है। सत्य/असत्य/

12.5 सारांश

राज्य सचिवालय राज्य स्तर पर विद्यमान समस्त विभागों का सामूहिक रूप होता है। इसका मुख्य कार्य सुशासन हेतु नीतियों का निर्माण करना है इसके साथ ही नीतियों के सफल क्रियान्वयन हेतु अनुश्रवण एवं मूल्यांकन की व्यवस्था भी सचिवालय के ही जिम्मे हैं। प्रत्येक राज्य के सचिवालय में विभागों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। विभागों की संख्या का निर्धारण राज्य का मंत्रिमण्डल करता है। संगठनात्मक दृष्टि से राज्य सचिवालय का मुखिया मुख्यमंत्री होता है। क्योंकि वह

मंत्रिपरिषद का अध्यक्ष भी होता है। प्रशासनिक स्तर पर सचिवालय का मुख्य अधिकारी मुख्य सचिव होता है। राज्य स्तर पर मुख्य सचिव केन्द्रीय स्तर के कैबिनेट सचिव के समकक्ष माना जा सकता है। वह सचिवों का मुखिया तथा राजकीय लोक सेवाओं का अध्यक्ष है इसके साथ ही सचिवालय के सभी विभागों पर उसका नियंत्रण होता है। मुख्य सचिव का चयन राज्य का मुख्यमंत्री करता है। मुख्य सचिव का मुख्य कार्य राज्य के प्रशासनतंत्र को सफलतापूर्वक संचालित करने का है।

12.6 शब्दावली

निदेशालय	:	सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी संस्था
ए. पी. सी	:	कृषि उत्पादन आयुक्त
आई. ए. एस.	:	भारतीय प्रशासनिक सेवा
रूल्स आफ विजनेस :		कार्य के सम्पादन हेतु नियमावली।

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य , 2. सत्य , 3. सत्य ,

12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारत में लोक प्रशासन : डा. बी. एल. फाडिया, 2002 साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. इण्डियन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन: रमेश अरोड़ा, रजनी गोयल 2001ए विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. भारतीय प्रशासन : प्रो. मधू सूदन त्रिपाठी 2008ए ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
4. इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन: डा. बी. एल. फाडिया, डा. कुलदीप फाडिया 2001ए साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा।

12.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन : अवस्थी एवं अवस्थी 2009ए लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. राज्य प्रशासन : डा. सुरेन्द्र कटारिया 1999 मलिक एण्ड कम्पनी, चौड़ा रास्ता जयपुर।

12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राज्य सचिवालय के संगठन एवं उपयोगिता का उल्लेख कीजिये।
2. राज्य सचिवालय के कार्यों का वर्णन कीजिये।
3. मुख्य सचिव के कार्यों का वर्णन कीजिये।
4. राज्य प्रशासनमें मुख्य सचिव की भूमिका का परीक्षण कीजिये।

इकाई. 13: लोक सेवाएं, - अर्थ, कार्य, आधुनिक प्रवृत्तियों, विशेषताएं

इकाई की संरचना

- 13.1 प्रस्तावना
- 13.2 उद्देश्य
- 13.3 लोक सेवाएं- अर्थ
 - 13.3.1 लोक सेवा का उद्भव
 - 13.3.2 लोक सेवा के कार्य
 - 13.3.3 लोक सेवाओं की आधुनिक प्रवृत्तियों
 - 13.3.4 लोक सेवा की विशेषताएं
- 13.4 सारांश
- 13.5 शब्दावली
- 13.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 13.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 13.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 13.9 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

लोक प्रशासन विषय के रूप में अध्ययन हेतु लोक सेवाओं के बारे में जानना नितान्त आवश्यक है वरना विषय अधूरा रह जायेगा।

राज्य के बढ़ते हुये कार्यों के साथ कार्मिक वर्ग का योग एवं महत्व भी बढ़ता जा रहा है। पहले सरकारें प्रबन्धनीति में विश्वास करती थीं एवं अपने कार्यों को केवल समाज में कानून व्यवस्था बनाये रखने तक ही सीमित रखती थीं, उस समय तो कर्मचारी वर्ग में कार्य भी कुछ उद्देश्यों तक ही सीमित थे। परन्तु विज्ञान तथा शिल्पकला की प्रगति से विकासशील देशों में राज्य की क्रियाओं में असाधारण रूप में वृद्धि हुई है। वैश्वीकरण के दौर में सुशासन हेतु राज्य जन्म से मृत्यु-पर्यन्त मानवीय कल्याण में वृद्धि करता है। राज्य की क्रियायें अत्यन्त विस्तृत तथा विविध प्रकार की हो गयी हैं। राज्य समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए कल्याणकारी योजनाओं का निर्माण करता है। इन योजनाओं के सफलतम् क्रियान्वयन एवं अनुपालन को सुनिश्चित करने हेतु राज्य लोक सेवकों के माध्यम से नागरिकों तक पहुँचाता है।

मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास का इतिहास मनुष्य के अदम्य साहस, साहस, संघर्ष और जिजीविषा का दर्पण है। दर्पण वर्तमान काल होता है। इसके माध्यम से सही एवं ताजी आकृति दिखाई देती है। वर्तमान कल्याणकारी राज्य के प्रवर्तन में सभ्यता का विकास एवम विनाश पूर्णतः लोक सेवाओं तथा इसमें कार्यरत कार्मिकों पर निर्भर करता है। प्रो. डब्लू बी. डोन हैम ने कहा है यदि हमारी वर्तमान सभ्यता का पतन हुआ तो ऐसा मुख्यतः प्रशासन की विफलता का कारण होता है। राज्य, प्रशासनिक अधिकारियों एवं लोक सेवकों के माध्यम से ही अपने बढ़े हुए उत्तरदायित्वों का निर्वाह करता है। देश का संविधान, नीति निमार्ता मंत्रीगण कितने भी अच्छे क्यों न हों, परन्तु बिना दक्ष सेविवर्ग के उस देश का शासन सफल नहीं हो सकता है। राज्य की नीतियों कितनी ही अच्छी क्यों न हों, उसके अच्छे परिणाम तभी निकल सकते हैं, जब उन्हें कुशलतापूर्वक एवं सत्यनिष्ठा के साथ क्रियान्वित किया जाये।

लोक सेवा के महत्व का प्रतिपादन प्रो. ऑग ने कुछ इस प्रकार कहा है षसरकार का कार्य केवल राज्य सचिव तथा विभागों के अन्य प्रधानों, मण्डलों के सभापति, संसदीय अवर सचिवों, कनिष्ठ अधिपति तथा विशिष्ट अधिपति-दूसरे शब्दों में मन्त्रीगण द्वारा पूर्ण नहीं किया जा सकता है। इन लोगों से यह आशा नहीं की जाती है कि वे कर एकत्र करें एवं लेखा परीक्षण, कारखानों का निरीक्षण, जनगणना आदि कार्य करें, हिसाब रखने, डाक के वितरण और समाचार ले जाने की तो बात ही दूर है। ऐसे बहुमुखी कार्य तो उन अधिकारियों द्वारा किये जाते हैं जिन्हें स्थायी लोक सेवक कहा जाता है। स्त्री पुरुषों का यह विशाल समूह ही राष्ट्र के एक छोर से दूसरे छोर तक विधि का

पालन करता है और इन्हीं के द्वारा जनसाधारण नित्यप्रति राष्ट्रीय सरकार के निकट सम्पर्क में आता है। जनता की दृष्टि में इस निकाय का महत्व भले ही कम हों, किन्तु मन्त्रालयों के लिए काम करने वालों की यह सेना सरकार के उन उद्देश्यों को, जिनके लिए सरकार विद्यमान है, पूर्ण करने के लिए आवश्यक नहीं है। हरमन फाइनर के शब्दों में, लोक प्रशासन में सेविवर्ग को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है। पिफनर के अनुसार सेविवर्ग को प्रशासन की आधारशिला कहा जाता है।

उपरोक्त विचारकों के मत से सेविवर्ग के कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि सुगठित तथा सुविचारित सेविवर्ग प्रशासन ही किसी प्रशासनिक संगठन की सफलता का मुख्य आधार है। फेलिम्स निग्रो का मानना है कि कार्मिकों की कुशलता तथा योग्यता ही संगठन की सफलता को निर्धारित करती है। योग्य तथा प्रतिबद्ध कर्मचारी कमजोर प्रशासनिक व्यवस्था की कमियों को दूर कर उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल रहते हैं जबकि अयोग्य तथा निकृष्ट कर्मचारी सर्वोत्कृष्ट प्रशासनिक व्यवस्था को भी असफल सिद्ध कर देते हैं।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप स्वतः निम्नलिखित तथ्यों से अवगत एवं लाभान्वित होंगे।

1. लोक सेवाएं किसे कहते हैं ?
2. लोक प्रशासन के सन्दर्भ में लोक सेवा के अर्थ से भली-भाँति परिचित होंगे।
3. इकाई में सबसे महत्वपूर्ण कार्य लोक सेवा के उद्भव एवं विकास दिया गया है।
4. लोक सेवाओं के कार्यों की भी भली भाँति चर्चा की गयी है।
5. प्रचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक लोक सेवाओं के प्रकृति एवं कार्य क्षेत्र में परिवर्तित प्रारूप से भी ज्ञानार्जित होंगे।
6. अंत में लोक सेवाओं की विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

13.3 लोक सेवाएं- अर्थ

लोक सेवा शब्द का प्रचलित अर्थ राज्य की प्रशासनिक सेवा को असैनिक शाखाएं हैं। ये वे कार्मिक वर्ग हैं जो शासन की नीतियों, कार्यक्रमों तथा विधियों में क्रियन्वयन में संलग्न हैं ताकि राज्य की रक्षा, जनकल्याण तथा विकास के लक्ष्य प्राप्त हो सकें।

सैनिक सेवा देश के सैनिक प्रशासन से सम्बन्धित होती है तथा असैनिक सेवा असैनिक प्रशासन से। फाइनेर के शब्दों में लोक सेवा अधिकारियों का एक व्यावसायिक निकाय है जो स्थाई है, वैतनिक है तथा कार्यकुशल है।

ई. एन. ग्लैडन ने लोकसेवा की व्याख्या निम्नलिखित शब्दों में की है, प्रशासन के क्षेत्र में तटस्थ विशेषज्ञों का व्यावसायिक निकाय, जो निःस्वार्थ रूप से बिना राजनीतिक दलीय विचारों अथवा वर्ग हितों से प्रभावित हुए राष्ट्र की सेवा में प्राणपण से जुटा है। ब्रिटेन में 'लोक सेवा' शब्द का तात्पर्य उन कर्मचारियों से है जो प्राजनीतिक या न्यायिक पदाधिकारियों के अतिरिक्त ताज ;महारानी के वे सेवक जो असैनिक रूप से सेवायोजित हों और जिनका पारिश्रमिक पूर्णतः तथा प्रत्यक्षतः उस धनराशि में दिया जाता है जो संसद द्वारा इस हेतु स्वीकृत की गई हो। एल. डी. व्हाईट के अनुसार प्लोक सेवाएं, प्रशासनिक संगठन का ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा सरकार अपने लक्ष्यों को प्राप्त करती है। ए. न्यू वेबस्टर विश्वकोश के अनुसार प्लोक सेवाओं से आशय निम्नलिखित सेवाओं से है।

1. रक्षा तथा न्यायिक कार्यों के अतिरिक्त वे सभी कार्मिक जो सरकारी प्रशासन में नियुक्त हैं।
2. ऐसी सरकारी सेवा जिसमें कार्मिक का कार्यकाल सुरक्षित है तथा प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से प्रवेश पाता है और
3. सरकारी विनियमों के अधीन गठित सेवा लोक सेवा है।

अमेरिकन विश्वकोश में लोक सेवा को इस प्रकार पारिभाषित किया गया है लोक सेवाएं उन संगठित वेतनभोगी कार्मिकों के निकाय को कहते हैं जो सरकार के अधिकार क्षेत्र में कार्यरत हैं। ये सेवाएं तथा इनका नामकरण विभिन्न देशों की परम्पराओं के अनुसार होता है। यद्यपि आधुनिक राज्य में अधिकांश सेवाएं लोक सेवाएं ही हैं तथापि चुने हुए जनप्रतिनिधि तथा रक्षा कार्मिक 'लोक सेवा' से बाहर माने जाते रहे हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में इस शब्द का प्रयोग अधिक व्यापक रूप में होता है, वहाँ संघीय सरकार में जो सरकारी कर्मचारी प्रतियोगिता परीक्षाओं के द्वारा योग्यता के आधार पर नियुक्त किये जाते हैं, उन्हें 'सिविल सर्विस प्रतियोगिता सेवा' अथवा 'वर्गीकृत सेवा' का नाम दिया

जाता है। इसी प्रकार विभिन्न राज्यों तथा नगरों की सेवा के लिए प्रतियोगिता परीक्षाओं के आधार पर जो व्यक्ति चुने जाते हैं, उन्हें भी सिविल सर्विस में सम्मिलित किया जाता है।

भारत में 1947 तक प्रतियोगिता के आधार पर चुने गये व्यक्ति इण्डियन सिविल सर्विस के अंग होते थे। ये सैनिक सेवा के व्यक्तियों से पृथक होते थे, किन्तु इंग्लैण्ड की भाँति उस समय तक यहाँ न्यायाधीशों एवं सरकारी, प्रशासकों के पृथक वर्ग नहीं थे। स्वतन्त्रता के बाद इन दोनों को पृथक कर दिया गया है तथा इसे 'भारतीय प्रशासनिक सेवा' का नया नाम दे दिया गया है।

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 21 में लोक सेवक को इस प्रकार परिभाषित किया गया है 'सरकारी सेवारत या वेतन पाने वाला अथवा सरकारी कार्य के लिए शुल्क या कमीशन पाने वाला व्यक्ति 'लोक सेवक' की श्रेणी में आता है।

उपरोक्त कथनों के अनुसार लोक सेवकों की कोई निश्चित परिभाषा अभी तक नहीं विकसित हो पाई है। विभिन्न देशों की कार्मिक सेवायें तथा पदों का वर्गीकरण स्थानीय संस्कारों एवं पर्यावरण से प्रभावित होती है। सारांशतः लोक सेवा से तात्पर्य उन सरकारी सेवाओं से है जिसके पदाधिकारियों को वेतन सरकारी खजाने से प्राप्त होता है एवं जिन पर सरकार अपना नियंत्रण रखती है।

13.3.1 लोक सेवा का उद्भव

भारत में 'लोक सेवा' शब्द का प्रारम्भ ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन के साथ हुआ है। कम्पनी में कार्यरत व्यापारिक तथा प्रशासनिक कार्मिकों के कार्यों के सम्बोधन हेतु यह शब्द प्रचलन में आया। जबकि लोक सेवाओं का जन्म ईस्वी सन 6 में चीन में हुआ। वर्तमान में लोक सेवा अनवरत विकास क्रम का परिणाम है। मानव सभ्यता के विकास के साथ ही शासक तथा शासित की प्रवृत्तियों विकसित होने लगी थीं। राज्य की शासकीय सत्ता का संचालन नियुक्त कर्मचारी द्वारा ही निष्पादित किया जाता था। इन्हीं को कालान्तर में लोक सेवक कहा जाने लगा एवं इनके द्वारा सम्पन्न कार्यों को लोक सेवाओं की संज्ञा दी गई। आदि काल से वर्तमान तक की लोक सेवाओं की यात्रा का विभिन्न चरणों में निम्न लिखित रूप स्पष्ट किया जा सकता है।

प्राचीन काल

अनुमानतः पृथ्वी की उत्पत्ति साढ़े चार अरब वर्ष पूर्व हुई परन्तु मानव की उत्पत्ति प्रागैतिहासिक काल में आज से तीस लाख वर्ष पूर्व हुई। वर्तमान मानव तीस-चालीस हजार वर्ष पूर्व में विकसित हुए ज्ञानी मानव की संतान है। ऐसा माना जाता है कि ईसा से चार से पाँच हजार वर्ष पूर्व सम्य मानव, समाज, परिवार कबीले तथा शासन करने जैसी अवधारणाओं से परिचित हो चुका था। सिन्धु घाटी सभ्यता लगभग साढ़े तीन हजार से पन्द्रह सौ वर्ष ईशा पूर्व में अस्तित्व में आ गई थी। मोहन जोदड़ों,

हड़प्पा एवं सिन्धु घाटी सभ्यता ;तेईस सौ से सत्रह सौ पचार ईसा पूर्व में मिले अवशेषों के अभिलेख से स्पष्ट होता है कि मानव सभ्यता के विकास के आरम्भिक चरणों में सुसंगठित शासन एवं प्रशासन था। सिन्धु घाटी सभ्यता को नगरीय संस्कृति का प्रतिरूप माना जाता है जिसमें नगरीय प्रशासन से सम्बन्धित सारे क्रिया कलापों का समावेश है। निःसंदेह प्रशासन के उत्तरदायित्वों की पूर्ति कुशल तथा प्रतिबद्ध लोक सेवकों ;कार्मिकों द्वारा ही होती थी।

वैदिक काल में भारतीय प्रशासन का स्वरूप राजतंत्रात्मक था। राजा को उसके शासन कार्यों में सहयोग एवं सहायता प्रदान करने हेतु एक सभा होती थी। सभा के पदसोपन सिद्धान्त के अन्तर्गत पुरोहित का पद सर्वोच्च एवं प्रमुख होता था। ग्रामीण हितों की रक्षा हेतु ग्रामीण का पद होता था जो ग्राम वासियों के हित एवं सुख सुविधा के लिए राजा को समयानुसार यथावश्यक परामर्श भी करता था। अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति आवश्यकतानुसार राजा के द्वारा सभा के सदस्यों के परामर्श पर की जाती थी। उत्तर वैदिक काल में राजा की सहायता हेतु मुख्यामात्य की नियुक्ति होने लगी थी। महाकाव्य काल में राजतंत्र तथा गणतंत्र दोनों प्रकार के राज्य थे। केन्द्रीय प्रशासन लगभग अठारह से इक्कीस विभागों के द्वारा संचालित होता था। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण को बढ़ावा देने के लिए गाँवों के समूह बना दिए जाते थे जो वर्तमान में तहसीलों एवं जनपदों की तरह कार्य करते हैं। ग्राम सबसे छोटी इकाई कहलाती थी। दस ग्रामों का 'ग्रामिक', बीस ग्रामों का 'विशंतये, एवं सौ ग्रामों का अधिकारी 'अधिपति' कहलाता था। प्रशासनिक कार्यों के स्वस्थ संचालन हेतु ये अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण रखते थे। कार्मिक प्रशासन का प्रमुख आधार योग्यता थी।

मौर्य तथा गुप्त काल

कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र प्रशासन के संदर्भ में एक प्रमाणिक ग्रन्थ माना जाता है। मौर्यवंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानमंत्री आचार्य चाणक्य ;कौटिल्य थे। ग्रन्थ के विभिन्न अध्यायों में लोक प्रशासन के बारे में विस्तृत वर्णन किया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से प्राचीन भारत में लोक सेवाओं के महत्व तथा कार्मिक प्रशासन की समसामायिक संरचना का आभास होता है। मेगस्थनीज ने भी 'इण्डिका' नामक पुस्तक में उस समय के प्रशासन के बारे में लिखा है कि सारे प्रशासनिक कार्य छः विभिन्न समितियों द्वारा निष्पादित किये जाते थे। प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य होते थे। प्रथम समिति हस्तशिल्प कार्य के प्रति उत्तरदायी थी। द्वितीय समिति राज्य में अतिथियों के स्वागत हेतु निर्मित थी अर्थात् जब कोई अतिथि राज्य में आता था तो इस समिति के कर्मचारी उनका स्वागत करते थे। जन्म एवं मृत्यु प्रमाण-पत्र प्रदत्त करने का कार्य एवं दायित्व तृतीय समिति का था। वाणिज्य एवं व्यापार सम्बन्धित कार्यों के लिए चतुर्थ समिति ही जिम्मेदार थी इनका काम सही माप तौल भी राज्य में सुनिश्चित करना था। वस्तुओं के उत्पादन एवं गुणवत्ता बनाये रखने का दायित्व

पंचम समिति करती थी। कर निर्धारण एवं वसूलन का कार्य छठी समिति के पास था। कौटिल्य के अनुसार राज्य के सफल संचालन हेतु सप्तांग सिद्धान्त को अनुसरण करना चाहिए। सप्तांग के अन्तर्गत स्वामी ;राजा, अमात्य ;मंत्री, जनपद ;राज्य क्षेत्र, दुर्ग ;किला, कोष ;वित्त, दण्ड ;सेना एवं मित्र ;सहयोगी राजा सम्मिलित हैं। मौर्य काल में प्रशासन तंत्र के संचालन हेतु सत्रह वरिष्ठ अधिकारियों की नियुक्त की जाती थी। ये सत्रह अधिकारी गण विभिन्न विभागों के कार्यों के सुनिश्चित अनुपालन हेतु राजा को सहायता प्रदान करते थे। परामर्शदाता, धर्माधिकारी, सेना प्रमुख, राजा का पुत्र, महलों का रक्षक, राजा का सुरक्षाधिकारी, दण्डनायक, राजस्व एकत्रकर्ता एवं बजट निर्माता, आयुक्त, नगर रक्षक, नगर प्रमुख, खानों का प्रमुख अथवा लोक उपक्रम प्रभारी, समन्वयकर्ता, रक्षा विभाग, किले का रक्षक, सीमाओं का अधिकारी एवं वन अधिकारी क्रमशः होते थे। लोक सेवकों का वर्गीकरण का उल्लेख भी मौर्य काल में मिलता है। इन लोक सेवकों को क्रमानुसार तीन वर्गों में विभक्त किया गया था। उपयुक्त, युक्त एवं तत्पुरुष।

मुगल काल

मुगल साम्राज्य की नींव सन् पन्द्रह सौ छब्बीस में बाबर ने रखी थी। मुगलों की शासन प्रणाली फारसी एवं अरबी शासन व्यवस्थाओं का मिश्रण थी। मुगल शहशाह को राजकार्यों में सहायता प्रदान करने हेतु अनेक वरिष्ठ अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। मुगल शासन ने प्रशासन के दृष्टिकोण से सम्पूर्ण राज्य को विभिन्न चरणों में विभक्त कर दिया था। सर्वोच्च स्तर केन्द्रीय प्रशासन का था इसके अन्तर्गत शहशाह होते थे इनकी प्रशासनिक सेवायें विभिन्न कार्मिकों द्वारा प्रदत्त की जाती थी। वजीर को प्रधान मंत्री के समान उच्च स्थल प्राप्त था। फिर दीदान का पद सृजित था जिसको उप मंत्री का अधिकार प्राप्त था मुशारिफ ;मुख्य लेखा अधिकारी, उलेमा ;धार्मिक कार्यों के लिए इत्यादि पद हुआ करते थे।

प्रान्तीय स्तर पर जिसको सूबा कहते थे, नियंत्रण करने वाले को सूबेदार या नाजिम कहते थे। सूबेदार की सहायता हेतु प्रांतीय दीवान एवं बख्शी भी हुआ करते थे। सूबा को सरकार अर्थात् जिलों में बांटा हुआ था। सरकार का अधिकारी फौजदार के नाम से प्रचलित था। फौजदार के अन्तर्गत अमीर ;राजस्व अधिकारी, वित्तिकची ;राजस्व कागजात तथा खजानदार लोग कार्य करते थे। प्रशासनिक दृष्टिकोण से सरकार परगना में विभक्त था। परगना का सर्वोच्च अधिकारी परगनाधिकारी कहलाता था। परगनाधिकारी को अन्य नामों से भी पुकारा जाता था। जैसे शिकदोर या शिगदार, परगना के अधीन गाँव होते थे। गाँव को 'भावडाह', 'डिह' या 'नगलाह' भी कहा जाता था। गाँवों की देखभाल हेतु मुकदम, लगान वसूली हेतु पटवारी तथा झगड़ों को निपटाने हेतु चौधरी होते थे। पटवारी शब्द आज भी लोक सेवक के रूप में विख्यात एवं प्रचलन में हैं। अकबर के शासन काल में मनसबदारी प्रथा शुरू हुई। मनसब के मायने रखना या निश्चित करने से है। मनसबदारी शाही सेवा

में कार्यरत अधिकारियों की पद, प्रतिष्ठा, सत्ता एवं अधिकार को दर्शाने वाली प्रथा थी। शूआर्मी आफ द इण्डियन मुगल्सश पुस्तक के अनुसार मनसबदारी प्रथा को तीन श्रेणियों में बाँटा गया था। श्रेणी के अनुसार मनसबदारियों का वेतन भी निर्धारित था। वेतन का विभाग दीवना-ए-तन कहलाता था। तनख्वाह शब्द भी मुगलशासन की देन है। आज के संदर्भ में लोक सेवकों को वेतन मान दिया जाता है यह शब्द तनख्वाह शब्द का पर्यायवाची है। अकबर के नौ रत्नों में एक रत्न अबुल फजल भी थे। इनके द्वारा रचित आइने अकबरी में लोक सेवकों का कार्य एक अधिकार वर्णित है। कोतवाल नाम से नियुक्त अधिकारी का वर्णन आइने अकबरी में किया गया है।

ब्रिटिश शासन काल

आधुनिक लोक सेवाओं का इतिहास ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन के साथ ही लिखने की परम्परा प्रारम्भ हुई कम्पनी द्वारा नियुक्त होने वाला लोक सेवक को राइटर कहते थे। इसका कार्य लिपिकीय गतिविधियाँ एवं रिकार्ड सम्बन्धी कार्यों के निष्पादन से सम्बद्ध रखता था। कम्पनी में दो प्रकार की प्रसंविद एवं अप्रसंविद लोक सेवाएं हुआ करती थीं। प्रसंविद सेवा का अर्थ है कि इस प्रकार की सेवाओं में सेवाकर्मी संविदा के रूप में रखे जाते थे। इनमें प्रायः उच्च पद जैसे लेखाधिकारी सुरक्षा अधिकारी आदि सम्मिलित थे। ये पद सिर्फ 'अंगेजो' द्वारा ही सुशोभित होत थे। अन्य लोगों अर्थात् भारतीयों पर निष्ठा एवं विश्वास पर प्रश्न चिन्ह लगा था। अप्रसंविद सेवा में भारतीय, अंग्रेज, पेरिस के लोग एवं पुतर्गाली भी सम्मिलित थे। प्रारम्भिक दिनों में ये दोनों उपरोक्त प्रकार के लोक सेवक कम्पनी के व्यापारिक कार्यों में हाथ बटाते रहे। सन् 1765 में मुगल बादशाह शाह आलम ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा का दीवान बना दिया। क्योंकि इससे पहले भारतीय प्लासी एवं वक्सर की लड़ाई हार चुके थे। परिणाम स्वरूप उपरोक्त राज्यों से राजस्व एकत्र तथा दीवानी न्याय प्रशासन का दायित्व कम्पनी को मिल गया। यही वह समय था जब कम्पनी व्यापारिक संस्था शासक बन गई। सन् 1765 से कम्पनी के अभिलेख में सिविल सर्वेन्ट शब्द प्रयुक्त होने लगा था। वारेन हेस्टिंग्स गर्वनर जनरल भारत में प्रथम रेगुलेटिंग एक्ट 1773 के द्वारा पारित नियमों के क्रियान्वयन एवं अनुपालन सुनिश्चित करने हेतु आये। इसी समय से कम्पनी के लोक सेवाओं का रूप नौकरशाही नुमा होने लगा था। इनका कार्य क्षेत्र भी बढ़ गया था जैसे राजस्व एकत्र करना, शांति तथा सुरक्षा की स्थापना एवं भारतीयों पर करने का हो गया था। राल्फ शेल्डन 1772 में प्रथम जिला कलक्टर के पद पर आसीन हुए थे। यद्यपि यह पद अगले ही वर्ष समाप्त भी कर दिया गया। 1786 में जिला राजस्व इकाई का जन्म हुआ तथा सन् 1787 में राजस्व एवं दण्ड नायक कार्य संयुक्त करके जिला कलक्टर नियुक्त होने लगे। भारत में लोक सेवाओं में जनक लार्ड कार्नवालिस माने जाते हैं। इन्होंने लोक सेवाओं की संहिता भी तैयार की। इसके अन्तर्गत लोक सेवकों को पर्याप्त वेतनमान एवं उत्तरदायी भी बनाया गया। लार्ड वेलेजली के शासन काल में ही फोर्ट विलियम

कालेज, नाम की एक संस्था थी कलकत्ता में, लोक सेवकों के प्रशिक्षण हेतु स्थापना हुई थी। इसमें तीन वर्ष का प्रशिक्षण कम्पनी के अधिकारियों को देने की परम्परा थी। इस प्रशिक्षण संस्थान में अधिकारियों को भारतीय भाषाओं के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाता था। सन् 1813 में लार्ड ग्रेनविले ने योग्यता आधारित भर्ती का प्रस्ताव भी रखा।

आधुनिक योग्यता प्रणाली सन् 1853 में आरम्भ हुई। सन् 1855 में सिविल सर्विस कमीशन के माध्यम से जो कि लन्दन में स्थित था प्रवेश परीक्षा आयोजित करने लगी। प्रवेश परीक्षा में आयु सीमा 19 से 22 वर्ष की रखी गई। इसका सारा श्रेय लार्ड मैकाले को जाता। सन् 1864 में पहली बार भारतीय मूल के निवासी सत्येन्द्र नाथ टैगोर ने सिविल सेवा परीक्षा उत्तीर्ण की थी। सन् 1855 से 1921 तक आई. सी. एस. परीक्षा लन्दन में होती थी। सन् 1922 में लन्दन एवं इलाहाबाद में परीक्षा एक साथ सम्पन्न हुई। लार्ड कैनिंग ने सन् 1859 में विभागीय व्यवस्था शुरू की। इसके अन्तर्गत प्रशासन के कार्यों को विभिन्न शाखाओं के बॉटने की शुरूआत हुई। एचीसन आयोग ने पूर्व में प्रचलित दोनों प्रकार की लोक सेवाओं की व्यवस्था को सामाप्त कर अन्य तीन प्रकार की लोक सेवायें प्रारम्भ की। ये सेवायें इम्पीरियल सिविल सर्विस, प्रोविन्सियल सिविल सर्विस एवं सब आर्डिनेट सिविल सर्विस नाम से जानी जाती थीं। इम्पीरियल सिविल सर्विस के अन्तर्गत भर्ती की प्रक्रिया लन्दन में होती थी। बाकी दोनों सेवाओं की भर्ती भारत में होनी शुरू हो गई थी। प्रांतों में सांविधिक लोक सेवा को समाप्त करके नई प्रोविन्सियल सिविल सर्विस के अधिकारियों को इम्पीरियल सिविल सर्विस में पदोन्नति दी जाने लगी।

भारतीयों द्वारा इंग्लैण्ड तथा भारत में एक साथ सिविल सर्विस आयोजित करने की मांग पर सन् 1912 में इस्लिगंटन आयोग हुआ। आयोग ने 25 प्रतिशत पद भारतीयों के लिए इम्पीरियल सिविल सर्विस में सुरक्षित करने की सिफारिश की। 1919 में गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया एक्ट के तहत दोहरे शासन की शुरूआत हुई। जो सेवाएं प्रत्यक्षतः सुप्रीम गवर्नमेण्ट के अधीन थी उनको केन्द्रीय सेवाएं मानी गई जैसे रेलवे, कस्टम आदि। अन्य इम्पीरियल सेवाओं को अखिल भारतीय सेवाओं का नाम दिया गया जिसके अन्तर्गत, इण्डियन सिविल सर्विस, इण्डिया पुलिस, इण्डिया सर्विस आफ इन्जीनियर्स तथा इण्डिया एजुकेशन सर्विस सम्मिलित की गई। प्रांतीय सेवाओं को प्रांत के नाम से जाना जाने लगा। सन् 1923 में ली आफ फर्नहाम की अध्यक्षता में बने आयोग की अनुशंसा पर भारत में केन्द्रीय लोक सेवा आयोग की स्थापना 1926 में की गई। इस आयोग के गठन का उद्देश्य लोक सेवाओं में सुधार का था।

भारत सरकार अधिनियम, 1935 के माध्यम से शासन तथा प्रशासन को उत्तरदायित्व पूर्ण बनाया गया। 15 अगस्त 1947 को भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र घोषित हुआ। फलस्वरूप ब्रिटिश काल में बना इम्पीरियल सेक्रेटेरिएट सन् 1950 में केन्द्रीय सचिवालय कहलाने लगा।

स्वतंत्रता के पश्चात 26 जनवरी, 1950 से संघीय लोक सेवा आयोग का नाम बदल कर संघ लोक सेवा आयोग पड़ा तथा इण्डियन सिविल सर्विस ;आई. सी. एस. को इण्डियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस नाम दिया गया। ब्रिटिश कालीन लोक सेवाओं का विकास दो शताब्दियों के संक्रमणकाल से गुजरा था। ब्रिटिश शासन में सिविल सेवाओं में महिलाओं का स्थान नहीं था। दिनांक 18 जुलाई 1948 से भारत में महिलाओं को सिविल सर्विस के अनुमति दी गई तथा 1949 में कर्नाटक की चोनिरा वेलिप्पा मुथम्मा भारतीय विदेश सेवा की प्रथम महिला अधिकारी बनी। सन् 1950 में एना राजम जार्ज प्रथम महिला आई. ए. एस. अधिकारी बनी तथा सन् 1972 में किरण वेदी प्रथम महिला आई. पी. एस. अधिकारी बनी।

अभ्यास प्रश्न 2

1. स्वतंत्रता पश्चात लोक सेवा आयोग का क्या नाम है?
2. आई. सी. एस. के नाम को बदल कर अब क्या कहा जाता है?

13.3.2 लोक सेवा के कार्य

वर्तमान में विश्व की किसी भी शासन व्यवस्था में लोक सेवाओं के बिना, शासन की नीतियों एवं कार्यक्रमों के संचालन की कल्पना तक नहीं की जा सकती है। आधुनिक समय में लोक सेवा को अनेक प्रकार के कार्य करने होते हैं। मुख्य रूप से इनके कार्यों का विभाजन तीन प्रकार से किया जा सकता है। प्रशासनिक, विधार्थ एवं न्यायिक प्रकार। अरस्तू के अनुसार प्राज्य जीवन के लिए अस्तित्व में आया और अच्छे जीवन के लिए उसका अस्तित्व बना हुआ है। स्पष्ट है कि वर्तमान शासन व्यवस्थाओं में राज्य के कंधों पर जन कल्याण तथा सुरक्षा के गुरुत्तर दायित्व हैं जिनके क्रियान्वयन का

माध्यम लोक सेवाएं ही हैं। लोक सेवाओं में विपुल, योग्य तथा निपुण कार्मिकों की सहायता से ही शासन की नीतियों, योजनाओं तथा कार्यक्रमों की व्यावहारिक स्तर पर क्रियान्वित सम्भव हो पाती है। लोक सेवा के समस्त कार्यों का वर्णन करना यहाँ सम्भव नहीं है परन्तु इनके द्वारा निष्पादित मुख्य कार्यों का विवेचन निम्नलिखित है।

1. नीति निर्माण: नीति निर्माण करना मंत्रियों व संसद का कार्य है। क्योंकि वे जन प्रतिनिधि होते हैं और जनता द्वारा सीधे चुनाव से जीत कर आते हैं जो कि लोक तंत्र का परिचायक भी है। किन्तु व्यावहारिक रूप से नीति निर्माण में परोक्ष रूप से लोक सेवकों का बहुत बड़ा हाथ होता है। अपने कुशाग्र बुद्धि एवं निपुण होने से ये लोक सेवक, नीति निर्माण में काफी सहायक होते हैं।

2. नीति क्रियान्वयन में: नीति निर्धारण के पश्चात उनका क्रियान्वयन अत्यन्त आवश्यक है। इसका सम्पूर्ण दायित्व लोक सेवकों पर ही होता है। कार्यक्रम तभी सफल होते हैं जब उनको सही रूप से क्रियान्वित किया जाये वरना अच्छी से अच्छी नीतियाँ कागज के पन्नों में सिर्फ शब्द बन कर रह जाती है।

3. परामर्शकर्ता के रूप में: लोक सेवा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य राजनीतिक कार्यपालिका के सदस्यों अर्थात् मंत्रीगण को सलाह देना भी है। यद्यपि शासन मंत्रियों द्वारा ही संचालित होता है। परन्तु उनके सफल संचालन का उत्तरदायित्व लोक सेवकों पर ही होता है। मन्त्रियों को शासन प्रणाली तंत्र का बहुत ज्ञान नहीं होता है। प्रशासन के सफल संचालन में अपने विश्वसनीय अधिकारियों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। रैमजेम्योर कहते हैं कि 'सबसे अधिक निर्यातवे मामलों में मन्त्रीगण लोक सेवाओं की राय मान लेते हैं और नियत स्थान पर हस्ताक्षर भी कर देते हैं'। जोसेफ चैम्बर लेन, ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने यहाँ तक कहा है कि मुझे सन्देह है कि आप लोग; लोक सेवक हमारे बिना काम चला सकते हैं, परन्तु मेरा पक्का विश्वास है कि हम लोग; मन्त्रीगण आपके बिना काम नहीं चला सकते।

4. प्रत्यायोजित विधि निर्माण: वर्तमान में लोक सेवकों को प्रत्यायोजित विधि निर्माण का कार्य भी करना पड़ता है। अधिक कार्य एवं समयाभाव के कारण संसद अनेक जटिल विषयों पर विधि का मूर्तिरूप प्रदत्त कर पाती है जब कि वास्तविक रूप से लोक सेवक ही सूक्ष्म एवं व्यापक रूप रेखा प्रदान करते हैं।

5. अर्ध-न्यायिक कार्य: लोक सेवकों को अर्ध-न्यायिक प्रकृति के कार्य भी करने पड़ते हैं। प्रशासनिक कानून तथा प्रशासनिक अधिनिर्णय के फलस्वरूप प्रशासक न केवल प्रशासन करते हैं अपितु न्याय भी करते हैं। राज्य के कार्य क्षेत्र के विस्तार के साथ-साथ प्रशासनिक अधिनिर्णय की मात्रा भी बढ़ती जा रही है।

6. विकास एवं परिवर्तन में सहायक: कृषि एवं आर्थिक व्यवस्था को सृष्टि बनाने वाले समस्त उद्योगों का विकास, मशीनीकरण, संसाधनों का समुचित दोहन, आयात-निर्यात में संतुलन, उत्पादन तथा आय में वृद्धि एवं जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक कारकों को प्रगतिशील बनाये रखने हेतु लोक सेवाओं की भूमिका अहम और सर्वविदित है। आर्थिक एवं सामाजिक विकास प्रत्यक्षतः

सम्बद्ध हैं। जे. जे. स्पेंगलर के मतानुसार सामान्यतः विकास तब माना जाता है जबकि वांछनीय तथा प्राथमिक माने जाने वाली वस्तुओं का सूचकांक बढ़ जाए।

7.राष्ट्रीय एकता में सहायक: भारत सामाजिक, भौगोलिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विविधताओं से ओत प्रोत हैं। जिसमें भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद तथा साम्प्रदायिकता की सामाजिक समस्याएं भी विद्यमान हैं। इन समस्याओं को सुलझाने में लोक सेवकों का बहुत बड़ा योगदान रहता है। लोक सेवकों का कार्य क्षेत्र राष्ट्रीय स्तर के होते हैं एवं तटस्थता तथा समानता के आधार पर कार्य करते हैं जो कि समस्याओं के समाधान में बहुत कारगर होती है।

8.लोक सेवक के रूप में: विकासशील एवम लोकतांत्रिक देश में लोक सेवक शब्द अप्रत्यक्ष सेवा करने का नाम है। यहाँ उनसे अपेक्षा की जाती है कि लोक सेवाएं अपनी भूमिका निभाने के लिए जन साधारण के साथ तादात्म्य स्थापित करें।

सारांशतः कहा जा सकता है कि आधुनिक कल्याणकारी शासन व्यवस्थाओं में लोक सेवाएं एक महत्वपूर्ण निकाय है जो सम्पूर्ण विकास तंत्र का मुख्य आधार भी है।

13.3.3 लोक सेवाओं की आधुनिक प्रवृत्तियाँ

लोक सेवाओं की प्रवृत्तियाँ समयानुकूल होती हैं। कहने का तात्पर्य है कि राजनीतिक परिवर्तनों, वैज्ञानिक एवं तकनीकी अविष्कारों, मानव मूल्य के नये आयामों एवं परिवर्तित समस्याओं की चुनौती द्वारा इसके लक्ष्य, संगठन, प्रक्रिया, औचित्य इत्यादि को उन्ही के अनुरूप परिवर्तित किया जाता है। उपरोक्त परिवर्तित परिवेश से उत्पन्न हुई नई समस्याओं, को हल करने के लिए लोक सेवाओं की प्रवृत्तियों के बदलाव आज भी परमावश्यक है। वर्तमान में लोक सेवाओं की प्रवृत्तियाँ निम्नवत् हैं।

1.संख्यात्मक विकास: लोक सेवा की संख्या में निरन्तर तेजी से वृद्धि हो रही है। पार्किन्स के नियमानुसार 1955 ई. लोक कर्मचारियों की संख्या में अनवरत वृद्धि से भलीभाँति परिचित हैं। विकसित राष्ट्र जैसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के संघीय कर्मचारियों की संख्या सन् अटठारह सौ सत्रह में छः हजार पाँच सौ के लगभग थी वहीं उन्नीस सौ सत्तावन में इनकी वृद्धि तेईस लाख हो गयी थी। पार्किन्स नियम के अनुसार प्रतिवर्ष 5.75 प्रतिशत औसत की दर से नौकरशाही वृद्धि करती है। इसे राइजिंग पिरामिड आफ ब्यूरोक्रेसी के नाम से भी जाना जाता है।

2.वैज्ञानिक एवं तकनीकी विशेषज्ञ: लोक सेवा में सरकारी कार्यों की प्रकृति के परिवर्तन के साथ-साथ वैज्ञानिकों एवं तकनीकी विशेषज्ञों की नियुक्ति होने लगी है। सरकार अब अधिकाधिक

वैज्ञानिकों, डाक्टरों, अभियन्ताओं, अर्थशास्त्रियों, कृषिशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों को भी नियुक्त करती है।

3.लोक सेवक की बढ़ती शक्तियाँ: लोक प्रशासन के उद्भव काल से लेकर अब तक कई पड़ाव आये साथ ही साथ इसकी व्याख्या भी बदलती गई जो पहले संकुचित विचारधारा तक ही सीमित थी अब वो काफी व्यापक हो गयी और नवीन लोक प्रबंधन की संज्ञा से परिभाषित किया जाता है। परिणामतः लोक प्रशासन के विस्तार में वृद्धि हुई और उसका कार्य अधिकाधिक प्राविधिक स्वरूप धारण करता गया है। अब लोक कर्मचारी पहले की भाँति केवल पुलिस या राजस्व अधिकारी मात्र नहीं है वरन् विकास कार्यक्रम के अनेक पहलुओं से जुड़े हैं। स्वतन्त्र भारत की आर्थिक तथा सामाजिक कठिनाइयों ने एक कल्याणकारी राज्य तथा समाजवादी समाज की धारणा एवं उसकी स्थापना के विचार को बल दिया है।

4.तटस्थता: लोक सेवा की परम्परागत गुण तटस्थता रहा है। तटस्थता का अर्थ है लोक सेवकों को राजनीतिक कार्यों व गतिविधियों से अलग बनाये रखना एवं अपने को निर्लिप्त रखना। आज के परिप्रेक्ष्य में निष्पक्षता का स्थान प्रतिवद्धता ले चुकी है। फलस्वरूप नीति निर्माण में भी लोक सेवकों की अहम भूमिका रहती है। इनके उपलब्धियों का मूल्यांकन राजनीतिक कार्यपालिका करती है।

5.सकारात्मक प्रकृति: लोक सेवकों के चरित्र में काफी परिवर्तन आ गया है। प्रारम्भ में ये नकारात्मक सोच रखते थे। एवं नागरिक के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करते थे। वर्तमान में बिल्कुल विपरीत हो रहा है जो सोच नागरिक के विश्वास एवं विकास में बाधा बनती थी वही अब उनके कठिनाइयों के समाधान खोजने एवम मार्ग प्रशस्त करने को तत्पर रहती है।

6.व्यावसायिक मानदण्ड: लोक सेवकों में उच्च मनोबल तथा ईमानदारी बनाये रखने हेतु व्यावसायिक मानदण्डों पर काफी बल दिया जाता है। अन्य व्यवसायों जैसे चिकित्सा, पत्रकारिता, विधि आदि की भाँति यदि लोक सेवा भी एक व्यवसाय बन जाता है तो व्यावसायिक मानदण्ड तथा आचरण की संहिताएं शीघ्र ही स्थापित हो जायेंगी।

7.प्रबन्धक के रूप में: विकास शील देशों में विकास का लक्ष्य मुख्य है। समाज के प्रत्येक वर्ग को विकास कार्यक्रमों की जानकारी देना, एवं उनतक पहुँचाने के लिए विकास कार्यक्रमों का अनुपालन सुनिश्चित करना लोक सेवकों का दायित्व बन गया है।

अभ्यास प्रश्न .3

1. लोक सेवी के विकास एवं परिवर्तन में सहायक की भूमिका में कौन-कौन सी बातें आवश्यक हैं?
2. तटस्थता के क्या तात्पर्य है?

13.3.4 लोक सेवा की विशेषताएं

डा. एल. डी. व्हाइट के शब्दों में- लोक सेवाएं प्रशासनिक संगठन का ऐसा माध्यम हैं जिसके द्वारा सरकार अपने लक्ष्यों को प्राप्त करती है | आधुनिक लोक सेवा की विशेषताएं निम्नलिखित विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं--

1. निपुण लोक सेवक - लोक सेवा ऐसे कार्यकर्ताओं ; अधिकारियों का एक व्यवसायिक वर्ग है जो कि प्रशिक्षित, कुशल, स्थायी तथा वेतन भोगी हैं। लोक सेवकों का कार्य कुशल रूप से प्रशासन का संचालन करना होता है। प्रशासन का कार्य करना ही लोक सेवकों का पूर्णकालिक प्रशासनिक व्यवसाय है। प्रशासनिक कार्यों के निष्पादन हेतु उन्हें वेतन मिलता है।
2. पदानुक्रम का सिद्धान्त - लोक सेवकों का संगठन लोक प्रशासन के पद-सोपान के सिद्धान्त पर आधारित है। इसके अन्तर्गत वरिष्ठ अधिकारी अपने द्वारा दिये गये आदेशों को अनुपालन अपने अधीनस्थ अधिकारी द्वारा सुनिश्चित कराता है।
3. तटस्थता का दृष्टिकोण - लोक सेवकों की यह महत्वपूर्ण विशेषता है। वे राज्य के सेवक होते हैं। इन्हें सत्तारूढ़ दलों की सेवा करनी पड़ती है।
4. अनामता का सिद्धान्त - लोक सेवक प्रत्येक कार्य के निष्पादन पश्चात अनाम ही बने रहते हैं। इनके द्वारा निष्पादित कार्यों का सेहरा जन प्रतिनिधियों के सर मढ़ता है।
5. निष्पक्षता - निष्पक्ष रूप से लोक सेवकों का कार्य करना ही निष्पक्षता है। ये समाज के प्रत्येक वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति के लिए बिना पक्षपात के राज्य के आदेशों एवं नियमों को लागू करने से लेकर अनुपालन तक सुनिश्चित करते हैं।
6. वचनबद्धता- सत्तारूढ़ दल के कार्यक्रमों के साथ लोक सेवक वचनबद्ध होते हैं। सार्वजनिक अधिकारियों को राजनीतिक दलों का सदस्य बनने एवं उनकी बैठकों में भाग लेने की अनुमति नहीं होती है।

7. देश के कानून द्वारा सेवकों के कर्तव्यों की व्याख्या की जाती है। अतः उन्हें संविधियों में उल्लिखित न्यूनतम तथा अधिकतम अनुज्ञाओं की सीमाओं के अन्तर्गत कार्य करना होता है।

8. उत्तरदायी - जनता के द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। क्योंकि प्रजातंत्र में जनता ही सम्प्रभु होती है।

एस. आई. फाइनर के शब्दों में जो उनके द्वारा स्वरचित पुस्तक “ए प्रीमियर आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन” से उद्धरित है, कि लोक सेवा का अस्तित्व लाभोपार्जन के लिए नहीं होता है। अतः इसके सदस्यों की प्रेरणा अन्तिम आश्रय के रूप में, वेतन प्राप्त करने की ही होती है, जोखिम उठाकर अधिक धन कमाने की नहीं। दूसरी बात यह कही है कि लोक सेवा सार्वजनिक होती है अतः इनके कार्यों की दृढ़ एवं सूक्ष्म जाँच की जाती है और वे अस्वीकृत भी किये जा सकते हैं। इस प्रकार से उनकी लोचशीलता तथा तत्परता सीमित हो जाती है और अन्त में तीसरी बात लिखते हैं कि लोक सेवकों तथा उनके मन्त्रियों को निरन्तर संसद की आलोचनाओं का सामना करना पड़ता है। इससे उन्हें अवसरों के प्रति सतर्क एवं सन्नद्ध रहने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। अन्ततः इनकी सेवाएं व्यापक होती हैं। अतः ये अपने स्टाफ सम्बन्धों की ओर विशेष ध्यान दे और इनमें पारम्परिक प्रेम के अभाव अथवा विवाद को दूर करने के लिए सेवा की कोटि के सम्भावित व्यय पर व्यवहार की समानता उत्पन्न करें।

अभ्यास प्रश्न

1. लोक सेवाओं का जन्म चीन में हुआ। सत्य / असत्य
2. कौटिल्य द्वारा रचित ग्रन्थ अर्थशास्त्र है। सत्य / असत्य
3. मौर्यवंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य था। सत्य / असत्य
4. मेगस्थनीज की पुस्तक ‘इण्डिका’ है। सत्य / असत्य
5. कौटिल्य के अनुसार राज्य के सफल संचालन हेतु सप्तांग सिद्धान्त को अनुसरण करना चाहिए। सत्य / असत्य

13.4 सारांश

संगठन को निर्मित करते समय उद्देश्य होता है। उस उद्देश्य के पूर्ति के लिए मानव संसाधन की भी आवश्यकता पड़ती है। लोक प्रशासन की भाषा में संगठन में कार्यरत लोगों को कार्मिक को निकाल दे तो वह एक अमूर्त वस्तु बन जाता है, अर्थात् वह पारस्परिक सम्बन्धों की एक ऐसी व्यवस्था मात्र रह जाता है जो संगठन के मस्तिष्क में अथवा कागज पर होती है। संगठन के भीतर विविध पदों पर कार्य करने वाले सामूहिक रूप से अथक सेवाओं के नाम से पुकारे जाते हैं।

13.5 शब्दावली

सेविवर्ग: पिफनर के अनुसार 'सेविवर्ग' को प्रशासन की आधारभिला कहा जाता है।

इण्डियन सिविल सर्विस: 1947 तक प्रतियोगिता के आधार पर चुने जाते थे। स्वतंत्रता पश्चात इसे भारतीय प्रशासनिक सेवा का नया नाम दिया गया है।

13.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य

13.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

कटारिया, सुरेन्द्र- कार्मिक प्रशासन

शर्मा एवं जैन - लोक सेवीवर्गीय प्रशासन

शर्मा एवं सडाना - लोक प्रशासन

13.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

योडर, डेल- कार्मिक प्रबन्धन एवम औद्योगिक सम्बन्ध

एस. डब्लू. एवम केरने आर. सी- लोक कार्मिक

13.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक सेवा की परिभाषा दीजिए। भारत में लोक सेवा की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

2. लोक सेवा के अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र की विवेचना कीजिए।

3. लोक सेवा के विकास पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई .14 अखिल भारतीय सेवाएं, केन्द्रीय सेवाएं, भर्ती,प्रशिक्षण

इकाई की संरचना

- 14.1 प्रस्तावना
- 14.2 उद्देश्य
- 14.3 अखिल भारतीय सेवाओं की आवश्यकता एवं ऐतिहासिक विकास
 - 14.3.1 अखिल भारतीय सेवाओं का गठन
 - 14.3.2 भारतीय प्रशासनिक सेवा का महत्व
 - 14.3.3 भर्ती प्रणाली के महत्व एवं मूल सिद्धान्त
 - 14.3.4 अखिल भारतीय सेवाओं के कार्मिकों का प्रशिक्षण एवं उसका महत्व
- 14.4 केन्द्रीय सेवाएं
 - 14.4.1 भर्ती का अर्थ
 - 14.4.2 भर्ती की रीतियाँ
 - 14.4.3 चयन
 - 14.4.4 योग्यता प्रणाली का मापदण्ड
 - 14.4.5 प्रशिक्षण
 - 14.4.6 प्रशिक्षण के प्रकार
- 14.4 सारांश
- 14.5 शब्दावली
- 14.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 14.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 14.9 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

कार्मिक-वर्ग सरकारी तन्त्र का संचालन करता है। नीति, विधियों, नियमों तथा विनियमों को क्रियान्वित करने के लिए प्रशासन जो भी कार्यवाहियों करता है वे सब कर्मचारी-वर्ग द्वारा ही की जाती है। इनके द्वारा प्रदत्त सेवाओं को अखिल भारतीय सेवाएं कही जाती हैं।

इस अध्याय को तीन भागों में विभक्त किया गया है। अखिल भारतीय सेवाएं, केन्द्रीय सेवाएं, भर्ती एवं प्रशिक्षण अखिल भारतीय सेवाओं का गठन संविधान के अनुच्छेद 312 के अन्तर्गत की गई हैं। इसी को अखिल भारतीय सेवा अधिनियम की संज्ञा दी गई है।

इनके चयन में तीन चरणों का प्रक्रिया अपनायी जाती है। इन्हें क्रमशः प्रारम्भिक परीक्षा, मुख्य परीक्षा एवं साक्षात्काल कहा जाता है।

चयनोपरान्त भर्ती एवं प्रशिक्षण का कार्य प्रारम्भ होता है। भर्ती वह प्रक्रिया है जिसमें परोक्ष रूप से संगठन का भविष्य निहित होता है क्योंकि संगठन की सफलता एवं कुशलता कार्मिकों की प्रयाप्तता पर आश्रित होती है।

प्रशिक्षण कार्मिक प्रशासन का अभिन्न अंग है। इसके द्वारा कार्मिकों में आत्म विश्वास, निपुणता, निर्णय की क्षमता आदि में वृहद बढ़ोत्तरी होती है।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने से अखिल भारतीय सेवाओं नामक शीर्षक से भली-भाँति परिचित हो जायेंगे--

1. भारत में संघात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया है।
2. संघीय संविधान में केन्द्र एवं राज्यों की सेवायें भिन्न होती हैं।
3. भारतीय संविधान में सम्मिलित सेवाओं का प्रावधान है इसी को अखिल भारतीय सेवायें कहते हैं।
4. संघीय प्रशासन एवं राज्य प्रशासन दोनों के लिए समान रूप से अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना की गई है।
5. अखिल भारतीय सेवाओं की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है।

14.3 अखिल भारतीय सेवाओं की आवश्यकता एवं ऐतिहासिक विकास

अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना की आवश्यकता पर टिप्पणी करते हुए संविधान प्रारूप निर्मात्री समिति के अध्यक्ष डॉ. भीम राव अम्बेडकर ने संविधान सभा के समक्ष अपने वक्तव्य में कहा था कि यह मानी हुई बात है कि प्रत्येक देश में उसकी प्रशासकीय रचना में कुछ ऐसे पद होते हैं जो प्रशासनिक स्तर को बनाये रखने के विचार से महत्वपूर्ण हो सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि प्रशासनिक स्तर इन पदों पर नियुक्त लोक सेवकों की योग्यता पर निर्भर होता है। संविधान में यह प्रावधान किया गया है कि एक अखिल भारतीय सेवा होगी और केवल उस सेवा के ही सदस्य संघ भर में ऐसे महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किये जा सकेंगे। इस प्रकार अम्बेडकर ने उस योगदान पर बल दिया जिससे इस प्रकार की सेवा द्वारा संघ और राज्यों के प्रशासन में अधिक कार्यकुशलता उत्पन्न की जा सके।

साइमन कमीशन के अनुसार इतने विशाल क्षेत्र में यदि सम्पर्क बनाये रखना है तो केन्द्र तथा प्रान्तों के बीच सेवाओं का उचित चक्र आवश्यक है। ए. डी. गोरवाला के शब्दों में, राष्ट्रीय एकता की स्थापना में यह ;सेवाएँ एक मूल्यवान योगदान सिद्ध होगी। प्रत्येक प्रान्त अपने प्रशासन में बहुत से ऐसे तत्वों की एक प्रतिकृति उत्पन्न कर लेगा जो इस प्राचीन देश की सम्पन्नता में योग देते हैं। एक बड़ा नाटककार ऐसी विश्व सरकार की बात सोचता है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक देश का स्थानीय प्रशासन उस देश के निवासियों द्वारा ही चलाया जाता है, जिससे प्रशासन निष्पक्ष हो और साथ ही सभी देशों के निवासियों को विश्व एकता की अनिवार्यता का ज्ञान हो सके। हम भारतीय इतने भाग्यशाली हैं कि यदि हम चाहें तो इस प्रयोग को एक बड़े पैमाने पर कार्यान्वित कर सकते हैं। विघटनकारी प्रवृत्तियों को सफलतापूर्वक रोक कर एकरूपता स्थापित कर सकते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि यह सेवा देश भर में प्रशासकीय प्रणाली में समरूपता स्थापित करने में प्रभावशाली एवं आवश्यक है।

भारत में ब्रिटिश काल में 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के समय में ही भारतीय सिविल सेवा की रचना हुई थी। अतः भारत में हमेशा ही सेवाओं का अखिल भारतीय संवर्ग उपस्थित रहा है। जो कि बाद में धीरे-धीरे अखिल भारतीय संवर्गों की संघीय सरकार के विभिन्न विभागों में अधिकारियों का संवर्ग स्थापित हो गया, परन्तु ये सभी सेवाएँ गवर्नर जनरल के नियन्त्रण में न होकर सीधे भारत मंत्री और उसकी परिषद के अधीन थीं। अखिल भारतीय सेवा के किसी भी पदाधिकारी को 'सपरिषद भारत मंत्री' के अतिरिक्त अन्य कोई अधिकारी सेवा से अपदस्थ नहीं कर सकता था। भारतीय सिविल सेवा के द्वारा इस प्रकार की व्यवस्था की गई थी कि अखिल भारतीय सेवा के किसी

अधिकारी के साथ अनुचित व्यवहार न हो, और यदि हो तो उस अधिकारी को भारत मंत्री से अपील करने का अधिकार प्राप्त होता था एवं प्रान्तीय गवर्नरकी जाँच की उपरान्त सही शिकायत के निवारण का भी विधान था। अखिल भारतीय सेवा के अधिकारी के वेतन, पेंशन ;सेवानिवृत्ति वेतन इत्यादि पर किसी भी भारतीय विधानमण्डल को कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। चूंकि अखिल भारतीय सेवा के अधिकारी लोकमत ;जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं थे अतः अपने विशेषाधिकार से पूर्णतः सुरक्षित भी थे इसलिए भारतीय शासन अधिनियम ; 1919 द्वारा इसमें कुछ सुधार प्रक्रिया को अमल में लाया गया। 1924 में भारत में उच्च लोक सेवा विषयक शाही आयोग ; की नियुक्ति की गयी, जिसके सभापति लार्ड के ली अतः इसे ली आयोग से भी जाना जाता है। ली आयोग ने कुछ अखिल भारतीय सेवाओं की समाप्ति की अनुशंसा की, जो उन विभागों से सम्बन्धित थीं, जिन्हें 1919 के अधिनियम के अन्तर्गत भारतीय को 'हस्तान्तरित' कर दिया गया था, जैसे भारतीय शिक्षा सेवा/इण्डियन एजुकेशनल सर्विस, भारतीय कृषि सेवा/इण्डियन एग्रीकल्चरल सर्विस, भारतीय पशु-चिकित्सा सेवा/ इण्डियन वेटेरिनरी सर्विस, और भारतीय अभियन्ता सेवा की सड़क तथा भवन निर्माण शाखा/ इण्डियन सर्विस ऑफ इंजीनियर्स की रोड्स एवं बिल्डिंग शाखा। लेकिन आयोग ने भारतीय सिविल सर्विस/इण्डियन सिविल सर्विस, भारतीय पुलिस सेवा/इण्डियन पुलिस, भारतीय वन सेवा/इण्डियन फॉरेस्ट सर्विस, भारतीय चिकित्सा सेवा/इण्डियन मेडिकल सर्विस, और भारतीय अभियन्ता सेवा की सिंचाई शाखा/इण्डियन सर्विस ऑफ इंजीनियर्स की सिंचाई शाखा को कायम रखने की अनुशंसा और साथ ही इन सेवाओं के निरन्तर भारतीयकरण किये जाने की भी सिफारिश की थी। इसके अतिरिक्त, आयोग ने यह भी सिफारिश की कि यदि किसी विभाग का नियन्त्रण उत्तरदायी भारतीय मंत्रियों को हस्तान्तरित किया जाए तो उस विभाग में उस समय कार्यरत् किसी भी ब्रिटिश पदाधिकारी को आनुपातिक पेंशन लेकर सेवानिवृत्त होने का अधिकार होना चाहिए। इन सिफारिशों को क्रियान्वित किया गया था।

1935 के भारत शासन अधिनियम ; द्वारा अखिल भारतीय सेवाओं में कुछ अन्य परिवर्तन भी लाए गए। इस अधिनियम की धारा 224 के अनुसार, आई. सी. एस., आई. पी. एस. और आई. एम. एस. ;सिविल की सेवाओं को जारी रखने की व्यवस्था की गई। 1947 में जब राज्य सत्ता का हस्तान्तरण भारतीय को किया गया तो केवल दो अखिल भारतीय सेवाएं अर्थात् आई. सी. एस. और आई. पी. एस. में ही भर्ती जारी रखी गई और आई. एम. एस. को भर्ती को निलम्बित कर दिया गया। इनमें से आई. सी. एस. सबसे महत्वपूर्ण और सर्वोच्च श्रेणी की सेवा थी, क्योंकि इनका वेतनमान, उच्च और अधिकार व्यापक होने के साथ-साथ सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सम्मान प्राप्त थी, इसी कारण इसे 'हेवेन बौर्न-सर्विस' और स्टीम फ्रेम के नाम से भी जाना जाता था।

चूंकि ब्रिटिश सरकार अपनी शक्ति के लिए अपने लोक सेवकों पर निर्भर करती थी अतः उसने उन्हें वे सभी अनुग्रह, विशेषाधिकार तथा रिआयतें प्रदान कर रखी थी। जिनके फलस्वरूप लोक सेवा को 'एक विशेष' स्थिति प्राप्त हो गयी थी।

सत्ता हस्तान्तरण के दौरान अधिकारियों की सेवा शर्तों के सम्बन्ध में ब्रिटिश पार्लियामेण्ट की सन्तुष्टि के अनुरूप व्यवस्था की गई। इस प्रकार जुलाई 1947 के भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम ; में समुचित गारण्टी संनगीकृत की गई। पुरानी सेवाओं की गारण्टी देते समय नयी भारत सरकार ने इस बात की आवश्यकता का ध्यान रखा कि इन सेवाओं के स्थान पर ऐसी सेवा की स्थापना की जाए जो भारतीय द्वारा नियन्त्रित हो तथा जिसमें केवल भारतीय पदाधिकारी ही हों। गवर्नर जनरल की कार्यपालिका परिषद में सरदार बल्लभ भाई पटेल तत्कालीन गृह मंत्री थे, जिनके द्वारा 1946 में ही पुरानी आई. सी. एस और आई. पी. एस. के स्थान पर दो नवीन अखिल भारतीय सेवाओं के संगठन के लिए प्रान्तीय सरकारों की स्वीकृति प्राप्त कर ली गई थी। ये दो नवीन अखिल भारतीय सेवाएं हैं- भारतीय प्रशासनिक सेवा आई. ए. एस. एवं भारतीय पुलिस सेवा ; आई. पी. एस. ।

अखिल भारतीय सेवाएँ

भारतीय प्रशासनिक सेवा	भारतीय पुलिस सेवा	भारतीय वन सेवा
आई. ए. एस.	आई. पी. एस.	आई. एफ. एस.

14.3.1 अखिल भारतीय सेवाओं का गठन

अखिल भारतीय स्तर पर संविधान में सिविल सेवाओं के गठन की व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुच्छेद 312 में इस सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख है।

अनुच्छेद 312 रू अनुच्छेद 312 संसद को विधि द्वारा संघ और राज्यों के लिए सम्मिलित एक या अधिक अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन करने की शक्ति प्रदान करता है। इसके अनुसार यदि राज्य सभा राष्ट्रहित में आवश्यक या इष्टकर समझती है तो राज्यसभा के उपस्थित और मतदान में भाग ले रहे सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा ऐसी सेवाओं का सृजन कर सकती है और इन सेवाओं की भर्ती तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का विनियमन कर सकती है। चूंकि राज्य सभा में विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं इसलिए इसके समर्थन से नवीन सेवाओं के गठन हेतु राज्यों की सहमति सुनिश्चित हो जाती है। इसी अधिकार के अनुसार अक्टूबर 1951 में अखिल भारतीय सेवा अधिनियम पारित किया गया ।

संविधान निर्माण के बाद केवल एक अखिल भारतीय सेवा 'भारतीय वन सेवा' का गठन किया जबकि भारतीय इंजीनियरिंग सेवा ;सिंचाई, शक्ति, भवन निर्माण एवं सड़कें तथा भारतीय चिकित्सा व स्वास्थ्य सेवा के प्रस्ताव को अस्वीकृत किया गया।

संघ सरकार ने अखिल भारतीय सेवा अधिनियम के अनुच्छेद 3 के उप-अनुच्छेद ;1 में दिए गए अधिकारों के अन्तर्गत, पुराने नियमों के कई हिस्सों के अर्थहीन हो जाने के कारण, अखिल भारतीय सेवाओं के लिए नवीन नियम एवं उपबन्ध स्थापित किए। इस अधिनियम के प्रभावी होने के पूर्व के क्रियान्वित नियमों को जारी रखा गया अतः इस प्रकार अखिल भारतीय सेवाओं की सेवा-शर्तों के नियमों के दो वर्ग बन गए। पहले, भारत मंत्री और काउंसिल सहित गवर्नर जनरल द्वारा बनाए गए पुराने नियम, जिनके अन्तर्गत आई. सी. एस. एवं आई. पी. एस. पदाधिकारियों की सेवा शर्तें निर्धारित की जाती थीं तथा दूसरे 1951 के अधिनियम के अनुसार निर्मित नवीन नियम जो कि 'भारतीय प्रशासनिक सेवा' और 'भारतीय पुलिस सेवा' पर लागू किए गए।

भारतीय प्रशासनिक सेवा ; भारतीय प्रशासनिक सेवा ;आई. ए. एस. को पुरानी भारतीय सिविल सेवा का नवीन प्रारूप कहा जा सकता है। यह सेवा अखिल भारतीय सेवा के रूप में केन्द्र सरकार के नियन्त्रण के साथ साथ राज्य संवर्गों ; में भी विभाजित है अतः यह सम्बन्धित राज्य सरकारों के भी प्रत्यक्ष नियन्त्रण में होती है। भारतीय प्रशासनिक सेवा के पदाधिकारियों का वेतन और सेवानिवृत्ति वेतन ;पेंशन राज्य सरकारों द्वारा प्रदान किया जाता है, परन्तु इन पर अनुशासनिक नियन्त्रण रखने और दण्डित करने का कार्य केन्द्र सरकार द्वारा किया जाता है। केन्द्र सरकार अपना यह दायित्व संघ लोक सेवा आयोग की सलाह पर निभाती है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी केन्द्र और राज्य के बीच परिभ्रमण के नियमानुसार प्रतिनियुक्त होते हैं जिससे केन्द्र और राज्य दोनों ही सरकारों को लाभ होता है इस प्रणाली को सरकारी भाषा में अवधि प्रणाली अथवा टेन्योर सिस्टम के नाम से जाना जाता है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा की दूसरी विशेषता इसका बहुउद्देशीय स्वरूप का होना भी है। इसमें ऐसे 'सामान्यज्ञ प्रशासकों' होते हैं, जिनसे समय-समय पर व्यापक विविधतापूर्ण दायित्व एवं कार्य निभाने की अपेक्षा की जाती है। उदाहरणस्वरूप कानून व्यवस्था का दायित्व, राजस्व वसूली, व्यापार, वाणिज्य या उद्योग का विनियमन, कल्याणकारी कार्यक्रम, विकास तथा प्रसार कार्य आदि। इस प्रकार भारतीय प्रशासनिक सेवा एक बहु-पक्षीय सेवा का स्वरूप ले लेती है।

भारतीय पुलिस सेवा ; अखिल भारतीय सेवाओं में से एक 'भारतीय पुलिस सेवा' स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व की सेवा है जो कि भारतीय प्रशासनिक सेवा से निम्न दो बातों से अलग है-

1. इसके अधिकतर अधिकारी राज्यों में ही कार्य करते हैं, कारण केन्द्र में पुलिस से सम्बन्धित अधिक पद नहीं होते हैं।

2. इनका वेतनमान और स्तर आई. ए. एस. से कम है। जबकि इस सेवा के अधिकारी भी इसी सम्मिलित अखिल भारतीय सिविल सेवा परीक्षा के माध्यम से ही नियुक्त किये जाते हैं।

भारतीय पुलिस सेवा के लिए सर्व प्रथम पाँच महीने का बुनियादी प्रशिक्षण ; दिया जाता है तत्पश्चात् विशेष प्रशिक्षण हेतु सरदार पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदाराबाद भेजा जाता है। जहाँ इन्हे हथियारों से सम्बन्धित प्रशिक्षण आदि भी दिया जाता है। लगभग एक वर्ष के प्रशिक्षण कार्यक्रम के पाठ्यक्रम में अपराध मनोविज्ञान, अपराध का पता लगाने में काम आने वाले वैज्ञानिक उपकरण, भ्रष्टाचार निवारक उपाय एवं तत्काल सहायता पहुँचाने के तरीकों आदि का समावेश होता है। तत्पश्चात् परिवीक्षाधीन अधिकारी को संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित परीक्षा में सफलता प्राप्त करनी होती है, उसके बाद ही पुलिस उप-अधीक्षक ;। के पद पर नियुक्ति होती है। यहाँ पर भी नियुक्ति पूर्व एक वर्षीय व्यावहारिक प्रशिक्षण का प्रावधान है।

राज्य संवर्गों में बँटा हर संवर्ग, सम्बन्धित राज्य सरकार के नियन्त्रण में होता है जो कि मूलतः संघ सरकार के नियन्त्रण में भी होता है। पुलिस सेवा का प्रशासन गृह मंत्रालय करता है, लेकिन इसके कार्मिकों के बारे में सामान्य नीति निर्धारण कार्मिक तथा प्रशासनिक सुधार विभाग के अधीन है।

भारतीय वन सेवा

अखिल भारतीय सेवाओं में इसका गठन स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद किया गया है। भारतीय वन सेवा 1967 में संसद द्वारा एक अधिनियम पास किए जाने के बाद प्रारम्भ हुई। इसका वेतनमान एवं स्तर दोनों अखिल भारतीय सेवाओं आई. ए. एस. और आई. पी. एस. से निम्न है। इस सेवा के लिए अधिकारियों का चयन, संघ लोक सेवा आयोग द्वारा ही अलग से एक परीक्षा आयोजित करके किया जाता है। चूँकि इसकी प्रकृति एवं कार्य में विशिष्टता एवं विशेषज्ञता पायी जाती है अतः यह सामान्य सिविल सेवा के अन्तर्गत नहीं आती है। इस सेवा का प्रबन्ध भी कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग के अधीन ही होता है, जो कि सभी अखिल भारतीय सेवाओं में नियुक्ति, अनुशासन एवं सेवा की शर्तों आदि की व्यवस्था करता है। इसका बुनियादी प्रशिक्षण मसूरी में लगभग तीन महीने का होता है। यह प्रशिक्षण इन्हे अखिल भारतीय एवं केन्द्रीय सेवाओं के चयनित अधिकारियों के साथ ही दिया जाता है। तत्पश्चात् परिवीक्षाधीन अधिकारी को देहरादून स्थित 'भारतीय वन संस्थान' में दो वर्ष का सख्त प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है जिसकी समाप्ति के बाद इन्हें एक और अन्तिम परीक्षा पास करनी होती है तभी इन्हे नियुक्ति मिलती है।

भारतीय वन सेवा की अन्य अखिल भारतीय सेवाओं की भाँति संवर्ग सेवा है। इसके पदाधिकारी भी प्रतिनियुक्ति होकर केन्द्र सरकार की सेवा में आ सकते हैं परन्तु यह अवधि पूरी होते ही इन्हे अपनी सेवा में वापस जाना पड़ता है।

14.3.2 भारतीय प्रशासनिक सेवा का महत्व

भारतीय प्रशासनिक सेवा देश में सर्वाधिक प्रतिष्ठा वाली सेवा है। सर्वोच्च स्थान प्राप्त होने के कारण इसका महत्व भी बढ़ जाता है। इस सेवा के पदाधिकारी प्रशासकीय शक्ति एवं अधिकारों का पूरी तरह उपयोग करते हैं। चूँकि भारत में संघीय शासन प्रणाली है अतः इस प्रणाली द्वारा केन्द्र व राज्य दोनों ही सरकारों को लाभ होता है साथ ही अधिकारियों को भी संघ व राज्य दोनों सरकारों की नीतियों और कार्यक्रमों से परिचय प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार ये अधिकारी संघीय तथा राज्य प्रशासनों के बीच प्रशासकीय समन्वय स्थापित करने के सर्वोत्तम माध्यम सिद्ध हो जाते हैं।

यहाँ यह भी गौरतलब है कि संघीय शासन में संघ और राज्यों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध बने होने चाहिए और इसके लिए सबसे महत्वपूर्ण यह है कि अधिकारी तन्त्र पर किसी एक का पूर्ण नियन्त्रण न हो। इस आवश्यकता की पूर्ति प्रशासकीय सेवा के द्वारा की जाती है। क्योंकि भारतीय प्रशासनिक सेवा पर न तो पूर्णतः केन्द्र का नियन्त्रण रहता है और न ही राज्य का नियन्त्रण रहता है। इस सेवा के द्वारा नियुक्त पदाधिकारी को राज्य संवर्ग प्राप्त होता है, जो 'अवधि प्रणाली ; टेन्योर सिस्टम के अन्तर्गत केन्द्र या अन्य राज्य में प्रतिनियुक्त किए जाते रहते हैं।

अखिल भारतीय सेवाओं में भर्ती प्रक्रिया ;

भारत में अखिल भारतीय तथा केन्द्रीय सेवाओं में भर्ती का कार्य संघ लोक सेवा आयोग, नई दिल्ली द्वारा परीक्षाओं के संचालन के माध्यम से किया जाता है। विदित हो कि 1979 से पहले सिविल सेवा की केवल एक परीक्षा होती थी। 1975 में सरकार द्वारा प्रो. डी. एस. कोठारी की अध्यक्षता में नियुक्त समिति की अनुशंसा के आधार पर, 1979 से सिविल सेवा की प्रारम्भिक परीक्षा ; प्रारम्भ हुई जिसका उद्देश्य प्रधान परीक्षा/मुख्य परीक्षा के लिए उम्मीदवारों का चयन, छटनी या स्क्रीनिंग करना है। यह परीक्षा प्रायः जून में आयोजित होती है। सिविल सेवा की प्रधान/मुख्य परीक्षा ; लिखित और साक्षात्कारद्ध द्वारा विभिन्न अखिल भारतीय और केन्द्रीय सेवाओं के पदों के लिए उम्मीदवारों का चयन किया जाता है। यह प्रधान/मुख्य परीक्षा प्रायः दिसम्बर माह में होती है। इस परीक्षा में बैठने की न्यूनतम उम्र 21 वर्ष और अधिकतम 30 वर्ष है।

14.3.3 भर्ती प्रणाली के महत्व एवं मूल सिद्धान्त

किसी भी संगठन में भर्ती की प्रक्रिया का अत्यधिक विशेष महत्व होता है। इसके द्वारा ही लोक सेवाओं का स्तर एवं योग्यता सुनिश्चित की जाती है और प्रशासनिक संरचना में परिवर्तन लाया जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो भर्ती प्रणाली द्वारा ही प्रशासनिक मशीनरी को जनकल्याणकारी तथा समाजोन्मुख बनाया जाता है। भर्ती ही लोक सेवा का आधार होती है जो इसे लक्ष्य तक पहुँचाती है क्योंकि राज्य में सरकार के कल्याणकारी दायित्वों की पूर्ति लोक सेवाओं के माध्यम से होती है। अतः योग्यता आधारित, निष्पक्ष तथा व्यावहारिक भर्ती प्रणाली का महत्व स्वयं सिद्ध हो जाता है।

ओ. ग्लेन स्टॉल ने अपनी महत्वपूर्ण रचना में कहा है- 'भर्ती सम्पूर्ण लोक सेवाओं के ढाँचे की आधार शिला है | उन्होंने भर्ती को कार्मिक ढाँचे का कॉर्नर-पत्थर कहा है। वास्तव में भर्ती की प्रक्रिया में आधार भूत सामग्री उचित होनी चाहिए एवं साथ-साथ यह प्रक्रिया जितनी ईमानदारी से होगी प्रशासन की सफलता उतनी ही अधिक होगी।

भारत में आधुनिक लोक सेवाओं की शुरुआत ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के दौरान सन् 1853 के राजलेख के माध्यम से हुई थी। हालांकि इसके पहले भी लोक सेवाएँ थीं किन्तु उनमें भर्ती का आधार नितान्त स्वैच्छित था। जबकि 1853 से योग्यता का सिद्धान्त को अपनाया गया। भारत में भर्ती प्रणाली के मूल सिद्धान्त इस प्रकार हैं-

1. सिविल सेवाओं में भर्ती योग्यता के आधार पर की जाती है। योग्यता की परख खुली प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से होती है। जिसको संचालन कराने का संवैधानिक कार्य 'लोक सेवा-आयोग' संस्था का है।
2. लोक सेवा आयोग ;भर्ती हेतु संस्था को निर्मित करने में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि यह संस्था राजनीतिक प्रभावों से दूर रहकर एवं निष्पक्ष होकर भर्ती का कार्य करे।
3. भारत में भर्ती की दो प्रक्रियाएँ हैं- प्रत्यक्ष और पदोन्नति द्वारा। प्रायः पदोन्नति द्वारा भरे जाने वाले पदों का अनुपात सेवा की प्रकृति पर निर्भर करता है।

अखिल भारतीय सेवाओं के 33 प्रतिशत पद राज्य प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारियों में से पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं। संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से, अखिल भारतीय सेवाओं में से अनेक सेवाओं, जैसे-भारतीय विदेश सेवा, भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय विदेश सेवा, भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा और केन्द्रीय सेवाओं की विभिन्न श्रेणियों के लिए, एक ही परीक्षा आयोजित होती है। इसमें बैठने वाले की आयु, वर्तमान में नवीन सरकार द्वारा प्रत्याशी की उच्चतम आयु 26 वर्ष से बढ़ाकर ३० वर्ष कर दी है। ब्रिटिश 'सामान्य' ;जनरल प्रणाली पर आधारित इस परीक्षा में विश्वविद्यालय की स्नातक उपाधि वाला ;बी.

ए./बी. एस. सी. या समकक्ष उपाधि, प्रत्याशी बैठ सकता है। इसके अन्तर्गत पहले एक उच्च स्तर की लिखित परीक्षा ली जाती है, जिसमें प्रत्याशी की बौद्धिक क्षमता एवं किताबी जानकारी का अनुमान लगाया जाता है, तत्पश्चात् संघ लोक सेवा आयोग साक्षात्कार के रूप में व्यक्तित्व एवं चरित्र को आँकने हेतु परीक्षा लेता है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा में चयन हेतु तीन परीक्षाएं आयोजित की जाती है।

आयु – भारतीय नागरिक, जिसकी न्यूनतम आयु २१ वर्ष, अधिकतम आयु के सम्बन्ध में भिन्नता है

सामान्य	३० वर्ष
पिक्षणा वर्ग	३५ वर्ष
अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति	३५ वर्ष
शारीरिक रूप से विकलांग	४० वर्ष

प्रारंभिक परीक्षा मुख्य परीक्षा साक्षात्कार

शैक्षिक योग्यता – किसी मान्यता प्राप्त संस्था से स्नातक उपाधि प्राप्त हो, मुक्त और दूरस्थ शिक्षा से प्राप्त डिग्री सामान रूप से मान्य होगी।

परीक्षा के अवसर –

सामान्य	चार
पिक्षणा वर्ग ३५ वर्ष	सात
अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति	कोई सीमा नहीं
शारीरिक रूप से विकलांग	सात

परीक्षा के लिए आवेदन करने वाले यदि परीक्षा में भाग नहीं लेते तो, वह अवसर के रूप में नहीं गिना जायेगा। परन्तु यदि प्रारंभिक परीक्षा का एक प्रश्नपत्र दे देते हैं तो, वह एक अवसर माना जायेगा।

प्रारंभिक परीक्षा- इसमें दो प्रश्नपत्र होंगे। प्रथम प्रश्नपत्र – सामान्य अध्ययन - २०० अंक, द्वितीय – एप्टीट्यूड टेस्ट - २०० अंक, दोनों प्रश्नपत्र, दो, दो घंटे के होंगे।

मुख्य परीक्षा –दो वैकल्पिक विषय ,प्रत्येक में दो प्रश्नपत्र, प्रत्येक ३०० अंक के होंगे।

$$300 \times 4 = 1200$$

सामान्य अध्ययन के दो प्रश्नपत्र, प्रत्येक ३०० अंक के होंगे = ३०० X 2 = 600

निबंध = 200 x 1 = 200

साक्षात्कार – = ३०० अंक

सामान्य हिन्दी – ३०० अंक

सामान्य अंग्रेजी – ३०० अंक

सामान्य हिन्दी ,सामान्य अंग्रेजी के अंक मेरिट निर्धारण में नहीं जोड़े जाते है।

अंतिम चयन में मुख्य परीक्षा और साक्षात्कार के अंक जोड़कर मेरिट के आधार पर चयनित अभ्यर्थियों की सूची तैयार की जाती है।

14.3.4 अखिल भारतीय सेवाओं के कार्मिकों का प्रशिक्षण एवं उसका महत्व

भारत सरकार के कार्यक्षेत्र में निरन्तर वृद्धि तथा प्रशासकीय कार्यों के अत्यन्त प्राविधिक, विशिष्ट तथा जटिल रूप धारण करने के कारण लोक सेवकों का प्रशिक्षण बहुत अधिक महत्व रखता है। लोक प्रशासन में प्रशिक्षण का अर्थ कार्मिकों के पदों से सम्बन्धित ज्ञान तथा कौशल में सुधार अथवा वृद्धि के लिए किया गया प्रयास है साथ ही यह कार्मिकों के दृष्टिकोण तथा मूल्यों को एक खास दिशा में उन्मुख करने का एक माध्यम है।

भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट के अनुसार 'प्रशिक्षण मानवीय साधनों में निवेश है। यह मानवीय क्षमता को सुधारने और सेवी वर्ग की कुशलता बढ़ाने का महत्वपूर्ण साधन है।'

अमरीका की 'सेवायोजन समिति' की रिपोर्ट के अनुसार प्रशिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जो मुख्य रूप से लोक सेवक में वर्तमान तथा भावी कार्य को सम्पन्न करने के लिए गतिशीलता देती है। वह उपयुक्त स्वभाव, विचार, क्रिया, ज्ञान और दृष्टिकोण का उसी के अनुरूप विकास करती है।

अखिल भारतीय और केन्द्रीय सेवाओं के लिए चुने गये प्रत्याशियों को पाँच महीने के आरम्भिक प्रशिक्षण देने के उपरान्त उन्हें उनकी सेवा के अनुरूप विभिन्न संस्थानों में विशेष प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जाती है।

आरम्भिक प्रशिक्षण में सिविल सेवाओं के लक्ष्य, कर्तव्य तथा पेशे की नैतिकता सम्बन्धित सूचनाएं प्रदान की जाती हैं। इनके पाठ्यक्रम का महत्वपूर्ण उद्देश्य उच्च सेवाओं के अधिकारियों को देश के संवैधानिक, आर्थिक व सामाजिक स्वरूप की जानकारी प्रदान करना होता है, जिसके अन्तर्गत उन्हे कार्य सम्पादित करना होगा एवं नीति और उनसे जुड़े कार्यक्रमों का निर्धारण कर उन्हें निर्मित एवं लागू करने के कार्य में योगदान देना होगा। प्रशिक्षण का उद्देश्य इन अधिकारियों को सरकारी तन्त्र एवं लोक प्रशासन के व्यापक सिद्धान्तों की जानकारी देना भी है और साथ-साथ इस प्रकार के प्रशिक्षण से विभिन्न सेवाओं के अधिकारियों के मध्य न केवल समान जनसेवा की भावना पैदा होती है बल्कि व्यापक रूप से समान दृष्टिकोण के प्रति जुड़ाव भी पैदा हो जाता है।

पाँच महीने से इस बुनियादी पाठ्यक्रम के बाद आई. ए. एस. को छोड़कर अन्य सेवाओं के परिवीक्षाधीन अधिकारी अपनी-अपनी सेवाओं के अनुरूप संस्थागत प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु विभिन्न प्रशिक्षण संस्थाओं में अग्रसर किये जाते हैं परन्तु आई. ए. एस. के परिवीक्षाधीन अधिकारी अकादमी में ही संस्थागत प्रशिक्षण के दूसरे पाठ्यक्रम में प्रवेश कर जाते हैं।

द्वितीय चरण

व्यावहारिक प्रशिक्षण ;राज्य

बुनियादी प्रशिक्षण प्रथम चरण ;5 माह

सेंडविच पाठ्यक्रम

नवीन प्रशिक्षण प्रणाली

‘भारतीय प्रशासनिक सेवा’ हेतु 1969 से सरकार द्वारा ‘सेंडविच पाठ्यक्रम’ जैसे नवीन प्रशिक्षण का आरम्भ किया जा चुका है। इसके अन्तर्गत पहले चरण तथा बुनियादी पाठ्यक्रम के मध्य अधिकारी को राज्य में व्यावहारिक प्रशिक्षण हेतु भेजा जाता है, यह वह राज्य होता है, जिसका उसे संवर्ग प्राप्त है। तत्पश्चात् दूसरे चरण में फिर प्रशिक्षण हेतु अकादमी भेजा जाता है, इस प्रकार पूरे प्रशिक्षण में उसे व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक दोनों प्रकार का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इसके उपरान्त प्रशिक्षण सम्बन्धी अन्य नियमों को पूरा करने के बाद ही नियुक्ति होती है।

संवर्ग प्रबन्धन ; 1970 तक भारत सरकार का कार्मिक प्रबन्ध देखने वाली मुख्य एजेन्सी गृह मंत्रालय थी जो कि वित्त मंत्रालय के साथ मिल-जुलकर सर्वजनिक सेवाओं का प्रबन्धन करती थी। इसके अन्तर्गत सामान्य सेवा-शर्तें गृह मंत्रालय द्वारा निर्धारित होती थी तथा वित्त सम्बन्धी सेवा शर्तें वित्त मंत्रालय के द्वारा निर्धारित की जाती थीं। परन्तु चूंकि गृह मंत्रालय कार्मिक प्रबन्ध की मुख्य

एजेंसी थी अतः अखिल भारतीय सेवाओं पर इसका सम्पूर्ण नियन्त्रण था। मंत्रालय विभिन्न सेवाओं में चयन, अनुशासन एवं सेवा शर्तों के समान स्तर को कायम रखने हेतु सभी सेवाओं पर एक समान रूप से लागू होने वाले विषयों की देख-रेख किया करता था। 1970 के बाद गृह मंत्रालय के कार्मिक विभाग द्वारा 'भारतीय प्रशासनिक सेवा' एवं 'भारतीय वन सेवा' का प्रबन्धन किया जाने लगा तथा 'भारतीय पुलिस सेवा' का प्रबन्धन कार्य गृह मंत्रालय द्वारा ही किया जाता है।

14.4 केन्द्रीय सेवाएं

केन्द्रीय सेवाएँ वो सिविल सेवाएँ हैं जो पूरी तरह केन्द्र सरकार के अधीन होती हैं जबकि अखिल भारतीय सेवाओं पर केन्द्र का पूर्णतः नियन्त्रण नहीं होता है। केन्द्रीय सेवा भी राष्ट्रीय स्तर की सेवा में नियुक्ति तथा सेवा शर्तों के सम्बन्ध में कानून संसद बनाती है। इस सेवा के अन्तर्गत शामिल सेवाएँ हैं- भारतीय राजस्व सेवा, भारतीय रेलवे लेखा सेवा, भारतीय चुंगी तथा केन्द्रीय आबकारी सेवा, भारतीय लेखा तथा संपरीक्षा सेवा, भारतीय प्रतिरक्षा लेखा सेवा, भारतीय डाक सेवा, भारतीय रेलवे यातायात सेवा, सैन्य भूमि एवं छावनी सेवा, भारतीय आयुध कारखाना सेवा तथा केन्द्रीय सूचना सेवा।

केन्द्र सरकार की सिविल सेवाओं में नियमित केन्द्रीय सिविल सेवाएँ तथा इनके अतिरिक्त ऐसे बाहरी सिविल पद होते हैं, जिन्हें मिलाकर इसे सामान्य केन्द्रीय सेवा कहा जाता है। इस सेवा के कर्मचारी राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त अपने पद पर बने रहते हैं। केन्द्रीय सिविल सेवाओं और अन्य सिविल पदों को चार श्रेणियों में विभक्त किया गया है- प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ। इनमें से प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओं में भर्ती, संघ लोक सेवा-आयोग द्वारा, आयोजित 'अखिल भारतीय सिविल सेवा परीक्षा' के माध्यम से होती है।

प्रशिक्षण तथा संवर्ग प्रबन्धन –

केन्द्रीय सेवाओं में प्रथम श्रेणी के पद हेतु 'लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी', मसूरी में पाँच महीने का बुनियादी/अथवा आरम्भिक पाठ्यक्रम पूरा करना होता है। तत्पश्चात् अपनी-अपनी सेवाओं के अनुरूप अन्य संस्थानों में प्रशिक्षण के लिए भेजा जाता है, जहाँ पर उनको सेवा के अनुरूप ही प्रशिक्षण देने की व्यवस्था होती है। इसी दौरान इन्हें व्यावहारिक प्रशिक्षण भी दिया जाता है जिसके उपरान्त परिवीक्षाधीन अधिकारी को एक विभागीय परीक्षा पास करनी होती है जिसके विषय उसकी सेवा से सीधे सम्बन्धित होते हैं। फिर इनकी नियुक्ति कर दी जाती है।

केन्द्रीय सेवाओं की सेवा शर्तों के निर्धारण का कार्य कार्मिक विभाग का है तथा वित्त मंत्रालय द्वारा इन पदों के वेतनमान तथा अन्य वित्तीय पक्षों जैसे-वेतन निर्धारण, वेतन वृद्धि की मंजूरी, पेंशन, ग्रेच्युटी एवं भविष्य निधि में अंश दान आदि विषयों को देखा जाता है।

भारतीय विदेश सेवा :

भारतीय विदेश सेवा प्रथम श्रेणी की एक केन्द्रीय सिविल सेवा है। इस सेवा का गठन स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद किया गया एवं इस पर पूर्णतः केन्द्र सरकार का नियन्त्रण होता है। अखिल भारतीय सिविल सेवा परीक्षा के प्रथम श्रेणी के सफल उम्मीदवारों को इस सेवा में नियुक्त किया जाता है। सिविल सेवाओं में इस सेवा को सर्वाधिक सम्मान, प्रतिष्ठा, उच्चस्तर, वेतन तथा भत्ते मिलते हैं। इसके अधिकारियों को विदेशों में भारतीय मिशनों एवं दूतावासों में नियुक्त किया जाता है।

भारतीय विदेश सेवा का प्रबन्धन विदेश मंत्रालय के पास होता है। जिसमें कार्मिक विभाग एवं वित्त मंत्रालय भी शामिल हैं। भारतीय विदेश सेवा के नवनियुक्त अधिकारी का प्रशिक्षण कार्यक्रम तीन वर्ष का होता है जिसके अन्तर्गत इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय कानून, राजनय, भूगोल आदि विषयों की जानकारी दी जाती है तथा इन्हें आई. ए. एस. के परिवीक्षाधीनों के साथ 'संस्थागत प्रशिक्षण' भी दिलाया जाता है। इनके प्रशिक्षण कार्यक्रम में मुख्यतः जिले के व्यावहारिक कार्य, सचिवालय सम्बन्धी कार्य तथा भाषाओं से सम्बन्धित प्रशिक्षण कार्यक्रम शामिल होता है।

14.4.1 भर्ती का अर्थ

पिछले अध्याय में 'लोक सेवाओं के बारे में विस्तृत चर्चा की जा चुकी है जो कि कार्मिक प्रशासन का अभिन्न अंग है। 'भर्ती' वह प्रक्रिया है जिसमें परोक्ष रूप से संगठन का भविष्य निहित होता है क्योंकि प्रत्येक संगठन की सफलता एवं कुशलता कार्मिकों की पर्याप्तता पर आश्रित रहती है। किसी भी देश के लिए, जो कि लोक सेवाओं के लिए कुशल अधिकारियों व कर्मचारियों को प्राप्त करना चाहता है अत्यन्त आवश्यक है कि वह भर्ती की एक सुदृढ़ एवं युक्तिसंगत नीति अपनाये।

सामान्य अर्थ में भर्ती शब्द को नियुक्ति का समानार्थक माना जाता है। परन्तु, यह सही नहीं है। प्रशासन की तकनीकी शब्दावली में भर्ती का अर्थ किसी पद के लिए समुचित तथा उपयुक्त प्रकार के उम्मीदवारों को आकर्षित करना है।

परिभाषाएं

भर्ती से आशय भावी कर्मचारियों को खोजने एवं उन्हें संगठन में रिक्त कृत्यों के लिए आवेदन करने हेतु प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया है।

इडविन बी. फिलिप्पो -भर्ती का आशय प्रयाप्त मानवशक्ति स्रोतों का विकास करना एवं उनको बनाये रखना है। इसमें उपलब्ध कार्मिकों का एक निकाय स्थापित करना भी सम्मिलित है, ताकि संगठन में अतिरिक्त कार्मिकों की आवश्यकता पड़ने पर प्राप्त किया जा सके।

डेल एव. बीच - इस प्रकार भर्ती को एक ऐसी प्रक्रिया माना गया है, जिसके द्वारा कार्य करने को तत्पर भावी कार्मिकों का पता लगाया जाता है और उन्हें नौकरी के लिए आवेदन-पत्र देने को प्रोत्साहित किया जाता है। अतः भर्ती का कार्य संगठन में उपेक्षित मानव शक्ति के पूर्वानुमान बनाये जाने के उपरान्त सम्पादित किया जाता है।

निषेधात्मक और निश्चयात्मक भर्ती की विचारधारा

राजनैतिक प्रभाव को समाप्त करने अथवा पक्षपात को रोकने के उद्देश्य से यदि भर्ती की जाती है तो इसे निषेधात्मक विचारधारा का नाम दिया जाता है। प्रारम्भ में जब 'योग्यता प्रणाली' ने 'लूट प्रणाली' का स्थान ग्रहण कर लिया था तो लोक सेवा आयोग को 'लूट की राजनीति' को समाप्त करने का एक अस्त्र समझा जाता था। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु भर्ती प्रक्रिया में सभी व्यक्तियों को लोक सेवा के लिए खुल बाजार में प्रतियोगिता करने के लिए योग्य वर्ग वंचित रह जाता क्यों कि भर्ती की प्रक्रिया खुल रूप में हो रही थी।

कालान्तर में लूट प्रणाली के द्वारा किये गये निर्णयों पर अंकुष लगने के साथ-साथ भर्ती के सम्बन्ध में सर्वश्रेष्ठ एवं सबसे योग्य सक्षम व्यक्ति को प्राप्त करने पर बल दिया जाने लगा। कार्मिक वर्ग का चुनाव करने वाला अभिकरण सक्रिय होकर योग्य एवं सर्वोत्तम अर्हताओं वाले व्यक्तियों को चुनने लगा। इस विचार धारा को निश्चयात्मक भर्ती की संज्ञा दी जाती है।

14.4.2 भर्ती की रीतियाँ

भर्ती दो प्रकार से की जाती है। प्रत्यक्ष एवं पदोन्नति/सरकारी कर्मचारी-वर्ग की भर्ती दोनों उपरोक्त तरीकों से की जाती है। जब योग्य उम्मीदवारों का चयन खुला रखा जाय तो प्रत्यक्ष भर्ती अथवा सीधी भर्ती कहा जाता है। इसके विपरीत विभाग में कार्यरत कार्मिकों तक ही सीमित करते हुए उन्हें उच्च पद आसीन करने की प्रक्रिया को पदोन्नति कहते हैं। इसे सेवा के अन्दर से की जाने वाली भर्ती कहा जाता है। प्रत्यक्ष भर्ती भी प्रणाली का गुण लोकतान्त्रिक सिद्धान्त के अनुरूप है जिसमें समस्त योग्य व्यक्तियों को सेवा पद प्राप्त करने का समान अवसर प्रदान होता है। दूसरा गुण है कि इस प्रकार के भर्ती प्रक्रिया के द्वारा अधिक विस्तृत स्रोतों के माध्यम से योग्य एवं प्रतिभाशाली लोगों को लोक सेवक बनने का अवसर प्रदान होता है।

अखिल भारतीय सेवाएं अपने आप में एक अलग वर्ग है। उनके लिए अधिकांश भर्ती प्रतियोगिता परीक्षाओं के आधार पर प्रत्यक्ष रीत से की जाती है। दोनों प्रकार के भर्ती प्रक्रिया में गुण एवं दोष दिखते हैं। उदाहरणार्थ सीधी भर्ती वाला कम आयु का होकर अपने अधीनस्थ को जो आयु में बढ़ा है आदेश का अनुपालन सुनिश्चित कराने की सत्ता रखता है।

वहीं दूसरी तरफ पदोन्नति पाने वाला सेवी वर्ग आधिकार्य अनुभव एवं आयु का आधार होता है फलस्वरूप नई भर्ती को संगठन के वातावरण, कार्य शैली एवं संगठन के प्रति निष्ठा का अनुभव प्राप्त होता है। इनके द्वारा नई प्रत्यक्ष भर्ती को मार्ग दर्शन भी प्राप्त होता है जो कि हमारे समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

व्यावहारिक अनुभव से यह सिद्ध होता है कि प्रत्यक्ष भर्ती एवं पदोन्नति की रीति में से किसी से भी अकेले ही काम नहीं चल सकता। यदि उच्चतर पदों पर बाहर से बड़े पैमाने पर भर्ती की जाये तो यह सेवाओं के भीतर उपलब्ध योग्यता एवं प्रतिभा का निरादर है और उससे सेवाओं में अजीवन व्यवसाय की धारणा को ठेस लगती है। इसके विपरीत, प्रत्यक्ष भर्ती की पद्धति न अपनाये जाने से भी सेवा का विकास बाधित होता है, क्योंकि उस स्थिति में सेवाओं के भीतर आत्मसंतोष की भावना उत्पन्न हो जायेगी और वे प्रतिभागी बन जायेगी।

14.4.3 चयन

चयन भर्ती का दूसरा सोपान है। आवेदक के आवेदन पत्र प्राप्त होने के पश्चात यह प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। योग्यतम अभ्यर्थी का चयन करके उसे नियुक्त के लिए प्रमाणित किया जाता है। कार्मिक प्रशासन के इतिहास में चयन प्रक्रिया में तीन प्रकार की प्रणाली का प्रयोग होता था ये प्रकार थे, पदों की नीलामी, संरक्षण प्रथा एवं लूट प्रथा।

पदों की नीलामी: फ्रांस में क्रान्ति के पहले पदों की नीलामी होती थी और उच्चतम बोली बोलने वाले को पद दिया जाता था। वर्तमान के संदर्भ में यह हास्यापद लगता है परन्तु इस प्रकार की प्रक्रिया राज्य को आय स्रोत माना जाता था।

संरक्षण प्रथा: अधिकांश राज्यों में संरक्षण प्रथा के माध्यम कार्मिकों का चयन किया जाता था। इस प्रणाली में वे ही अभ्यर्थी योग्य होते थे जो व्यक्तिगत अथवा राजनीतिक दृष्टिकोण से बहुत प्रिय होते थे।

लूट प्रथा:

संयुक्त राज्य अमेरिका में यह प्रचलन प्रारम्भ से ही प्रचलित था। इस प्रथा के अन्तर्गत वे ही कार्मिक योग्य पाये जाते थे जिनके समर्थन एवं सहयोग से राजनीतिक दल विजयी होता था। जियोपरान्त

सत्ताधारी दल अपने ही समर्थकों को पदों पर नियुक्त करते थे। जब कभी अगले चुनाव में राजनीतिक दल जीतता था तो वह पहले वाले विरोधी सभी कार्मिकों को पदच्युत कर देता था। कालान्तर में जैसे-जैसे लोकतन्त्र विश्व में व्याप्त होता गया। उपरोक्त प्रकार के भर्ती प्रक्रिया पर प्रश्नचिन्ह उठने लगा। अंततः इस प्रकार के भर्ती स्वरूप में बदलाव आया और योग्यता प्रणाली को अपनाया गया। थोड़े ही समय में यह योग्यता प्रणाली सर्वव्यापक रूप से पूर्णतया प्रतिष्ठित हो गई।

14.4..4 योग्यता प्रणाली का मापदण्ड

अधिकांश राष्ट्रों में अधिकतर नियुक्तियों योग्यता के आधार पर ही की जाती है। कुछ राष्ट्र अपवाद हो सकते हैं मैं उनकी चर्चा नहीं करना चाहता। योग्यता का आंकलन परीक्षण के माध्यम से होता है। अभ्यर्थियों की तुलनात्मक योग्यता और उपयुक्तता की जाँच करने के लिए चार प्रकार के परीक्षण प्रचलित हैं। लिखित परीक्षा, मौखिक परीक्षा अथवा साक्षात्कार, कार्य कुशलता का प्रत्यक्ष प्रदर्शन तथा शिक्षा एवं अनुभव के मूल्यांकन द्वारा तुलनात्मक चयन।

लिखित परीक्षा: प्रत्याशियों की योग्यताओं की जाँच करने के लिए सभी देशों द्वारा आमतौर पर लिखित परीक्षाओं का उपयोग किया जाता है। हमारे देश में इस परीक्षा का उद्देश्य यह है कि प्रत्याशियों की सामान्य बुद्धिमत्ता अथवा श्रेष्ठता ज्ञान का पता लगाया जाय। परीक्षार्थी उन विषयों में ली जाती है जो कि स्नातक एवं स्नातकोत्तर में पढ़ाये जाते हैं। इस प्रकार की परीक्षा के समर्थकों का यह विश्वास है कि श्रेष्ठतर बुद्धि एवं ज्ञान वाले व्यक्ति हर प्रकार का कार्य कर सकते हैं और अपने आपको सभी परिस्थितियों के अनुकूल बना सकते हैं। मैकाले इसी विचार धारा के समर्थक थे।

प्रकार: लघु उत्तरीय एवम निबन्धात्मक परीक्षा।

लघु उत्तरीय लिखित परीक्षा: प्रत्याशी को प्रश्न पत्र में सौ या अधिक प्रश्नों के उत्तर देने पड़ते हैं। इन प्रश्नों का स्वरूप बहु विकल्पी उत्तरों पर आधारित होता है। एक प्रश्न के चार उत्तर होते हैं इन्हीं में से सही उत्तर को निषान लगाना होता है।

निबन्धात्मक परीक्षा: प्रत्याशी को इस प्रकार की प्रणाली में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर विस्तृत रूप में लिखना पड़ता है। ये वर्णनात्मक एवं विवेचनात्मक प्रकृति के निबन्ध की परीक्षा होती है, अतः परीक्षा प्रणाली से प्रतिभागी के भावनात्मक तत्व का आंकलन किया जाता है।

मौखिक परीक्षा अथवा साक्षात्कार

लिखित परीक्षा के आधार पर प्रतियोगियों के व्यक्तित्व का पूर्ण परिचय नहीं हो पाता है। अभ्यर्थी लिखित परीक्षा में योग्य सिद्ध हो सकता है, तथापि उसके भीतर धैर्य, अभिक्रम, सर्तकता निर्णायक क्षमता एवं कार्य करने की गति का सर्वथा अभाव है। जबकि ये गुण एक लोक सेवी के लिए अत्यन्त

महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। इस प्रकार से लिखित परीक्षा के उपरान्त मौखिक परीक्षा के द्वारा ही उम्मीदवार का सही मूल्यांकन संभव है।

कार्य कुशलता-

परीक्षण: तकनीकी कार्यों अथवा व्यवसायिक रोजगार के लिए कर्मचारियों की भर्ती करते समय सम्पन्नता अथवा कार्य कुशलता की परीक्षा विधि का उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ मुद्रलेखकों, आशुलिपिकों अथवा तकनीकी कार्यों करने की अपनी प्रवीणता एवं कुशलता का प्रदर्शन करना होता है।

षिक्षा एवं अनुभव मूल्यांकन: प्रत्याशी के चुनाव के लिए उसकी शैक्षणिक योग्यताओं एवं अनुभव का भी मूल्यांकन किया जाता है। ऐसे मूल्यांकन पद्धति में अभ्यर्थी के शारीरिक जाँच भी की जाती है। फलस्वरूप कार्मिक शारीरिक रूप से स्वस्थ है और अपने दायित्वों का निर्वाहन सुचारू रूप से सम्पन्न करेगा।

14.4.5 प्रशिक्षण

प्रशिक्षण कर्मचारी को यथार्थता का पाठ पढ़ाने, आत्म निर्भर तथा स्वतंत्र बनाने, और उसमें निर्णय की क्षमता उत्पन्न करने से प्रशिक्षण बड़ा महत्वपूर्ण है। लोक सेवकों के प्रशिक्षण पर सन् 1944 में ग्रेट ब्रिटेन में गठित समिति ने कुछ उद्देश्य तथा सिद्धान्त निर्धारित किये थे। प्रशिक्षण के पाँच मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. प्रशिक्षण के द्वारा लोक सेवकों को कार्य निष्पादन की यथार्थतः एवं शुद्धता को सत्य के रूप में स्वीकार करने लायक बनाये।
2. परिवर्तनशील परिस्थितियों में लोक सेवक अपने आप को समयानुकूल कार्य निष्पादन करने की उपयुक्त हों।
3. लोक सेवक यन्त्रवत न बने रहें। अपने विभाग द्वारा समाज के लिए सम्पादित की जाने वाली सेवा से उसके कार्य का क्या सम्बन्ध है? वह अपने विस्तृत संगठन में क्या कार्य सम्पन्न कर रहा है?
4. प्रशिक्षण किसी एक कार्य को सम्पन्न करने के लिए नहीं होना चाहिए वरन् अन्य कार्यों के कुशल निष्पादन हेतु भी तैयार करें।
5. कर्मचारी वर्ग के मनोबल की ओर गम्भीरता से विचार करें।

14.4.6 प्रशिक्षण के प्रकार

1. औपचारिक या अनौपचारिक :

विभागाध्यक्षों द्वारा प्रदत्त प्रशिक्षण जो भाषण अथवा अनुदेशों के रूप में होता है औपचारिक प्रशिक्षण कहलाता है। यह औपचारिक प्रशिक्षण कुछ प्रवीणताओं तथा कार्यविधियों से सम्बन्धित वास्तविक अनुदेशों के रूप में होता है। कर्मचारी को विभाग की कार्य प्रणाली, उसके कार्यों की प्रकृति तथा उस आचार संहिता के बारे में दिये जाते हैं जिसका कि उसे कार्यालय में पालन करना होता है। कार्य सम्पादन करते-करते जो अनुभव कर्मचारी को प्राप्त होता है, उसको अनौपचारिक प्रशिक्षण कहते हैं। जब वह अपना कार्य सम्पादित करता है तो उसके बारे में अनेक बातों की जानकारी प्राप्त होती है। लोक प्रशासन में यही परम्परागत प्रशिक्षण होता चला आया है।

2. अल्पकालीन अथवा दीर्घकालीन प्रशिक्षण

समय की अवधि इस कौशल की सरलता अथवा कठिनता पर अवलम्बित होती है। सेवी के अवधि प्रकृति के बारे में ध्यान रखा जाता है, स्थायी है अथवा अस्थायी।

3. प्रवेश पूर्व या सेवाकालीन प्रशिक्षण

सेवा में प्रविष्ट होने से पूर्व जो प्रशिक्षण दिया जाता है उससे भर्ती के लोग भावी सेवा कार्य के लिए तैयार होते हैं। दूसरे शब्दों में स्कूल कालेजों की सभी शिक्षायें पूर्व प्रवेशीय प्रशिक्षण है क्योंकि इस प्रकार भी लोग प्रायः राजकीय सेवाओं के लिए तैयार किये जाते हैं। उदाहरण के रूप में इंजीनियरिंग, मेडिकल संस्थायें आदि।

सेवाकालीन प्रशिक्षण उन लोगों के लिए होते हैं जो पूर्व से ही सेवा में लगे होते हैं। इस प्रकार के प्रशिक्षण का उद्देश्य कार्य का समुचित एवं श्रेष्ठतम निष्पादन है। ऐसा प्रशिक्षण पदोन्नति के लिए भी आवश्यक होता है। सेवाकालीन प्रशिक्षण तभी दिया जाता है जब वे नौकरी में प्रवेश पा लेते हैं।

4. विभागीय प्रशिक्षण:

जब स्वतः कार्यालय या विभाग में ही प्रशिक्षण का प्रबन्ध होता है तब इसको विभागीय प्रशिक्षण कहते हैं। प्रत्येक विभाग अपनी विशेष आवश्यकताओं के अनुसार प्रशिक्षण करता है। इसी प्रकार भारतीय सेवा के लिए प्रशिक्षण संस्था दिल्ली में खोली गयी थी। वह अब मसूरी में है और इसको प्रशासनिक राष्ट्रीय अकादमी के नाम से जानते हैं।

5. कौशल प्रशिक्षण:

इस प्रशिक्षण का उद्देश्य कर्मचारियों में उस विशेष योग्यता को उत्पन्न करना है, जो विशेष विभागों में सहायक हो सकता है। उदाहरण के लिए शिक्षकों का प्रशिक्षण, इसका उद्देश्य अध्यापन प्रणाली सिखाना है। भारत में भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय विदेश सेवा, भारतीय पुलिस सेवा,

भारतीय लेखाप्रशिक्षण तथा लेखा सेवा, आयकर सेवा, केन्द्रीय सचिवालय सेवा प्रशिक्षण संस्थान है जो प्रशिक्षण का कार्य सम्पन्न करते रहते हैं।

अभ्यास प्रश्न

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी में है। सत्य/असत्य

लूट पद्धति की शुरुआत कहाँ हुई ?

भारत में भर्ती कितने प्रकार से की जाती है ?

प्रोकोठारी की अध्यक्षता में नियुक्त समिति की अनुशंसा के आधार पर, 1979 से सिविल सेवा की प्रारम्भिक परीक्षा प्रारम्भ हुई, सत्य/असत्य

14.4 सारांश

उपरोक्त अध्याय के अध्ययन पश्चात् हम अखिल भारतीय सेवाएं के स्वरूप से भली भाँति परिचित हो चुके होंगे। साथ ही साथ केन्द्रीय सेवाओं का भी वर्णन किया गया है। पुनश्च इनके भर्ती एवं प्रशिक्षण को भी लिपिबद्ध किया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् हमने भारत में प्रचलित अखिल भारतीय सेवाओं, केन्द्रीय सेवाओं के बारे में जानने का अवसर प्राप्त हुआ है।

साथ ही साथ राज्यों के लिए, राज्य लोक सेवाओं के बारे में जाना है और इसके साथ में हमने यह भी देखा है कि भारत में लोक सेवकों की भर्ती के कौन से तरीके अपनाये जाते हैं। इसी क्रम में हमने यह जाना है कि पदोन्नति भी भर्ती का एक तरीका है।

14.5 शब्दावली

आई. ए. एस. : भारतीय प्रशासनिक सेवा

आई. पी. एस. : भारतीय पुलिस सेवा

आई. एफ. एस. : भारतीय वन सेवा

आई. एफ. एस. : भारतीय विदेश सेवा

भर्ती : नियुक्ति का समानार्थक अर्थ

14.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१. सत्य २. संयुक्त राज्य अमेरिका ३. दो प्रकार ४. सत्य।

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

एस. डब्लू. एवम केरने आर. सी- लोक कार्मिक
शर्मा एवं सडाना - लोक प्रशासन

योडर, डेल- कार्मिक प्रबन्धन एवम औद्योगिक सम्बन्ध

14.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गोयल एस. एल. - पब्लिक परसोनेल एडमिनिस्ट्रेशन
 2. कटारिया सुरेन्द्र- कार्मिक प्रशासन
 3. शर्मा एवं जैन - लोक सेवी वर्गीय प्रशासन
-

14.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना के कारकों की व्याख्या कीजिए।
2. सेवी वर्ग नीति की परिभाषा दीजिए। सेवीवर्ग प्रशासन में इसके महत्व की व्याख्या कीजिए।
3. लोक कार्मिक प्रशासन में भर्ती अभिकरणों के कार्य एवं भूमिका की विवेचना कीजिए।
4. प्रशिक्षण से आप क्या समझते हैं? इसके विभिन्न प्रकार क्या हैं ?

इकाई 15 : जन शिकायत निवारण

इकाई की संरचना

- 15.1 प्रस्तावना
- 15.2 उद्देश्य
- 15.3 जन शिकायत निवारण अर्थ एवं महत्व
 - 15.3.1 नागरिक प्रशासन
 - 15.3.2 केन्द्रीय सर्तकता आयोग
 - 15.3.3 सर्तकता आयोग के प्रमुख कार्य
- 15.4 लोकपाल, लोकायुक्त
- 15.5 जन लोकपाल विधेयक
- 15.6 लोक सेवा में तटस्थता
- 15.7 सारांश
- 15.8 शब्दावली
- 15.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 15.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 15.12 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

उपरोक्त इकाई १४ में हमने अखिल भारतीय सेवाएं के स्वरूप का अध्ययन किया है। साथ ही साथ केन्द्रीय सेवाओं का भी वर्णन किया गया है। पुनश्च इनके भर्ती एवं प्रशिक्षण को भी लिपिबद्ध किया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमने भारत में प्रचलित अखिल भारतीय सेवाओं, केन्द्रीय सेवाओं के बारे में जानने का अवसर प्राप्त हुआ है। इसके साथ में हमने यह भी देखा है कि भारत में लोक सेवकों की भर्ती के कौन से तरीके अपनाये जाते हैं। इसी क्रम में हमने यह जाना है कि पदोन्नति भी भर्ती का एक तरीका है।

प्रस्तुत इकाई १५ में हम यह अध्ययन करेंगे कि सुशासन के अन्तर्गत प्रशासन का दायित्व जनता के प्रति जवाब देही का है। लोक तांत्रिक व लोक कल्याणकारी राज्य की प्रमुख विशेषता है कि जनता के कल्याण हेतु उनके कार्यक्रमों को उन तक पहुंचाना है। परन्तु उनको इनका लाभ नहीं मिल रहा है तो वे शिकायत करने का अधिकार रखते हैं। इस अध्याय में जन शिकायत निवारण के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

भ्रष्टाचार उन्मूलन हेतु शासन को प्रशासन से अवगत कराना है। यह लेखन कार्य करते समय राष्ट्र भी भ्रष्टाचार के बारे में चर्चा कर रहा है, और लोकपाल एवं न लोकपाल बिल को लेकर राष्ट्र में बहस छिड़ी हुई है कि किनको-किनको लोकपाल बिल के अन्तर्गत रखा जाय?

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम –

1. जन शिकायत निवारण अर्थ एवं महत्व को जान सकेंगे।
2. केन्द्रीय सत्कर्ता आयोग और उसके कार्यों के सम्बन्ध में जान सकेंगे।
3. लोकपाल और जन लोकपाल विधेयक के सम्बन्ध में जान सकेंगे।
4. लोक सेवा में तटस्थता के सम्बन्ध में जान सकेंगे।

15.3 जन शिकायत निवारण अर्थ एवं महत्व

सरकार जन शिकायत निवारण में संलग्न एवं सक्रिय है, परन्तु जनता की प्रशासन के प्रति शिकायतें बढ़ती जा रही हैं। शिकायत शब्द का अर्थ किसी नागरिक द्वारा किये गये उस दावे से जो उसे कुप्रशासन के कारण प्रस्तुत करना पड़ता है।

जनता की सेवा करना ही लोक प्रशासन का लोकतांत्रिक प्रणाली में महत्वपूर्ण एवं केन्द्रीय उद्देश्य है। लोकतांत्रिक व लोक-कल्याणकारी राज्य के, अस्तित्व के कारण सरकार के समक्ष नवीन कार्य एवं जिम्मेदारियाँ जन्म ले चुकी हैं। आज ये नई जिम्मेदारियाँ और कार्य विश्व के लगभग तमाम देशों में बढ़ते जा रहे हैं। आज लोक- प्रशासन के सामने दो बातें महत्वपूर्ण हैं-

प्रथम, सरकारी प्रशासन का दायरा व्यापक हो गया है।

द्वितीय, शिक्षा, सामाजिक और राजनीतिक चेतना बढ़ने से जनता की अपेक्षाएँ लोक-प्रशासन के प्रति कुछ ज्यादा ही बढ़ गयी हैं। आज बहुत से विद्वानों के द्वारा नागरिक और प्रशासन के परस्पर सम्पर्क और सम्बन्धों को बहुत महत्व दिया जा रहा है। जहाँ तक आदर्श स्थिति का प्रश्न है, तो इसे आपसी संबंधों के आधार पर और सक्रिय होना चाहिए, लेकिन व्यावहारिक धरातल पर इस विषय को लेकर बहुत ही विवाद और तनाव देखने को मिलता है। आज तो सरकार जनक शिकायत निवारण में संलग्न एवं सक्रिय है, परन्तु जनता की प्रशासन के प्रति शिकायतें बढ़ती ही जा रही हैं ;शिकायत शब्द का अर्थ किसी नागरिक द्वारा किये गये उस दावे से है जो उसे कुप्रशासन के कारण प्रस्तुत करना पड़ा है।

आधुनिक समय में इंटरनेट के विस्तार के कारण जनता अपनी शिकायत 'जन शिकायत निवारण तंत्र' तक बहुत ही सरलतम तरीके से ;हिन्दी अथवा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में द्वि सम्बन्धित अधिकारी तक पहुँचा सकती है। इसके लिए टाइप करना होता है- इसके बाद हमें जन शिकायत निवारण अधिकारियों की सूची प्राप्त होती है। तत्पश्चात् एक कार्य का प्रारूप प्रदर्शित होता है जिसके अन्तर्गत निम्न जानकारियों का विवरण देना होता है-

शिकायत दर्ज करें

नाम: पिता/माता का नाम :

पता :

ई-मेल :

शिकायत:

जमा करें

रिक्ताकों

मुख्य पृष्ठ

जनता अपनी की गई शिकायत पर की हुई कार्यवाही का विवरण भी जान सकती है जिसके लिए उसे अपना पी. जी. कोड भरना और ओ. के. बटन को 'क्लिक' करके जमा करना होता है। यह पी.जी. कोड नाम भरने के साथ प्राप्त हो जाता है।

15.3.1 नागरिक प्रशासन

आज राज्य की अवधारणा विकास मूलक और कल्याणकारी हो गई है और इस विकास मूलक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए नागरिक और प्रशासन के बीच सम्पर्क का होना मात्र आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो गया है। प्रशासन लोगों की समस्याओं के निदान से सम्बन्धित हैं प्रशासन को लोगों के लिए आवश्यक सुविधाओं को उपलब्ध कराना अनिवार्य है। प्रशासन का मुख्य उद्देश्य अब नागरिकों की संतुष्टि को पूरा करना होता है पर व्यावहारिक स्थिति कुछ अलग ही है। आज भी प्रशासनिक कार्यों में निरंकुशता की प्रवृत्ति देखने को मिलती है तथा जन भावनाओं को प्रशासन द्वारा नजर अंदाज किया जाता है। वास्तविकता तो यह है कि प्रशासन और नागरिकों के बीच परिवर्तन केवल बाहर से आया हुआ मालूम पड़ता है अर्थात् पुरानी प्रवृत्ति बदली नहीं है। आज भी नागरिक प्रशासन से अपना कार्य करवाते वक्त अप्रासंगिक दिखता है।

जैसा कि यह स्पष्ट किया जा चुका है कि वर्तमान समय में जनता और प्रशासन के बीच निरन्तर सम्पर्क रहता है। प्रशासन से नागरिकों के सम्पर्क के कई उद्देश्य हो सकते हैं, जैसे- पानी, बिजली, स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधा पाना, साथ ही साथ अन्य व्यक्तिगत मामलों में प्रशासन से सहयोग चाहना। इन आवश्यकताओं को लेकर जनता की प्रशासन से सम्पर्क में जितनी वृद्धि होती है, सरकारी नियंत्रण और नियम कानून उतने ही बढ़ते चले जाते हैं और इस दरम्यान ही प्रशासन की छवि बनती या बिगड़ती है।

अगर प्रशासनिक सफलता के लिए नागरिक और प्रशासन के बीच सम्बन्ध की अनिवार्यता है, तो दूसरी ओर प्रशासनिक असफलता का कारण नागरिक और प्रशासन के बीच अलगाव का होना है। चूंकि नागरिक अपने कार्यों का सम्पादन प्रशासन से तुरन्त चाहता है, जिसे प्रशासन के द्वारा तुरन्त पूरा करना सम्भव नहीं होता है। इसका कारण है कि प्रशासन को विभिन्न प्रकार के नियमों एवं कानूनों का अवलोकन करना पड़ता है, जिसके बाद ही नागरिकों की इच्छाओं की पूर्ति सम्भव होती है।

जन-शिकायतों का प्रशासन द्वारा त्वरित निष्पादन का न होना भी जनता में प्रशासन के प्रति अलगाव उत्पन्न करता है। जनता यह चाहती है कि उसके द्वारा जो प्रशासन के समक्ष शिकायत की जाती है उस पर प्रशासन निष्पक्ष एवं न्यायपूर्ण ढंग से कार्य करें, प्रशासन से न्याय के मार्ग में निष्पक्षता हेतु जातिवाद, साम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, लालफीताशाही, भाई-भतीजावाद से अलग रहने की आशा की जाती है। भारत में नागरिक और प्रशासन के बीच बेहतर सम्पर्क स्थापित करने तथा भ्रष्टाचार में लिप्त पाए जाने वाले कार्मिकों को दण्डित कर, जन शिकायतों का निवारण करने हेतु निम्नलिखित प्रशासनिक व्यवस्था है-

1. विभागीय नियन्त्रण: अधिकांश सरकारी विभागों में भ्रष्टाचार तथा जन शिकायत निवारण हेतु पृथक से एक अधिकारी नियुक्त किया जाता है जो प्राप्त परिवेदना की जाँच कर आवश्यक कार्यवाही करता है।

15.3.2 केन्द्रीय सतर्कता आयोग:

केन्द्र सरकार के विभागों में प्रशासनिक भ्रष्टाचार की जाँच करने हेतु केन्द्रीय सतर्कता आयोग ; की स्थापना संथानम् समिति की अनुशंसा पर सन् 1964 में की गई थी। सितम्बर 2003 में संसद ने एक कानून बनाकर इसे वैधानिकता प्रदान कर दी।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग में एक आयुक्त ; तथा दो अधीनस्थ आयुक्त होते हैं। इनकी नियुक्ति प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली समिति की संस्तुति पर राष्ट्रपति करता है। इनका कार्यकाल 4 वर्ष या 65 वर्ष की आयु पूरी होने तक ; जो भी पहले होकर होता है। राष्ट्रपति इससे पूर्व भी भ्रष्टाचार, अपराध आदि मामलों में सम्बद्ध हो जाने पर इन्हें पद मुक्त कर सकता है।

15.3.3 सतर्कता आयोग के प्रमुख कार्य

1. भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम 1988 के तहत केन्द्रीय सरकार के लोक सेवकों द्वारा किये गए अपराधों की जाँच करना ।
2. अखिल भारतीय सेवाओं के संघ सरकार के अधिकारी और केन्द्रीय सरकार के समूह 'ए' के अधिकारियों द्वारा किए गए अपराधों की जाँच करना।
3. दिल्ली स्पेशल पुलिस एस्टाब्लिशमेंट के कार्य की समीक्षा एवं निरीक्षण करना और इसे निर्देशित करना।
4. केन्द्रीय सरकार के मंत्रालयों में सतर्कता प्रशासन का निरीक्षण करना।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग किसी भी शिकायत को जो उसे व्यक्तिगत, डाक, समाचार-पत्रों, संसद सदस्यों के भाषणों या अंकेक्षण ; लेखा-परीक्षण रिपोर्ट इत्यादि स्रोतों से प्राप्त होती है, को सम्बन्धित विभाग या मंत्रालय अथवा केन्द्रीय जाँच ब्यूरो को जाँच हेतु भेज सकता है। मंत्रालय में मुख्य सतर्कता अधिकारी सम्बन्धित भ्रष्टाचार के मामले की जाँच करके अपनी रिपोर्ट आयोग को भेजते हैं। जाँच पूरी होने पर दोषी कार्मिक को दण्डित करने, विभागीय कार्यवाही करने या मामला बन्द करने के सम्बन्ध में आयोग से परामर्श किया जाता है। यदि मामला गंभीर प्रकृति का हो तथा विभागीय कार्यवाही के पश्चात् कार्मिक को बड़ा दण्ड देना आवश्यक हो तो पुनः आयोग से परामर्श लिया जाता है। केन्द्र सरकार के सभी विभाग प्रति तिमाही एक रिपोर्ट आयोग को भेजते हैं जिसमें प्राप्त शिकायतों, उनकी जाँच प्रगति तथा लम्बित प्रकरणों का विवरण होता है। इस प्रकार एक परामर्शदाता निकाय के रूप में केन्द्रीय सतर्कता आयोग नियंत्रणकर्ता का कार्य भी करता है।

3. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो

यह भारत सरकार की प्रमुख जाँच एजेन्सी है। इसका कार्यक्षेत्र, केन्द्र एवं राज्य सरकारों सहित समस्त भारत है। इसकी भ्रष्टाचार रोकने में अहम् भूमिका है। सी. बी. आई. का गठन सन् 1963 ई. में गृह मंत्रालय की एक अधिसूचना द्वारा किया गया था। इस समय यह कार्मिक मंत्रालय के साथ सम्बद्ध है। 1941 ई. में गठित स्पेशल पुलिस एस्टाब्लिशमेन्ट को भी इसके साथ सम्बद्ध कर दिया गया है। सी. बी. आई. के गठन की संस्तुति संथानम् कमेटी ने की थी।

सी. बी. आई. के प्रमुख कार्य हैं-

1. केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के भ्रष्टाचार, रिश्वत और दुर्व्यवहार से सम्बन्धित मामलों की विवेचना करना।
2. राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क वाले संगठित समूहों द्वारा किए गए गम्भीर अपराधों की जाँच करना।
3. आर्थिक अपराधों, जैसे- विक्री कर, आय कर, उत्पाद शुल्क आदि से सम्बन्धित अपराधों, आयात-निर्यात नियमों का उल्लंघन आदि से सम्बन्धित मामलों की जाँच करना।
4. अनेक भ्रष्टाचार निरोधक एजेन्सीज एवं राज्यों की पुलिस में बीच सामंजस्य बनाए रखना।
5. राज्य सरकारों के निवेदन पर लोक महत्व के किसी भी मामले की जाँच करना।

सामान्यतः सी. बी. आई. को विशेष पुलिस संगठन कानून के अन्तर्गत अनेक विशेषाधिकार प्राप्त हैं तथा इसकी जाँच प्रणाली बहुत गम्भीर, व्यापक, गहन तथा विश्वसनीय मानी जाती है।

15.4 लोकपाल, लोकायुक्त

सन् 1966 में मोरार जी देसाई की अध्यक्षता वाले प्रशासनिक सुधार आयोग ने 'प्रोब्लम्स ऑफ रिडेसल ऑफ सिटिजन ग्रीवेंसज' पर रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए 'लोकायुक्त' तथा 'लोकपाल' की नियुक्ति की संस्तुत की थी। इसका मुख्य उद्देश्य लोक सेवकों तथा जन-प्रतिनिधियों के कुप्रशासन तथा भ्रष्टाचार के विरुद्ध जनता की शिकायत सुनने तथा उस पर जाँच कर अपनी संस्तुती प्रस्तुत करना है।

भारत सरकार ने प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया तथा केन्द्र में लोकपाल और राज्यों में लोकायुक्त की स्थापना का निर्णय लिया। तद्वरूप केन्द्र सरकार ने अब तक दस बार 'लोकपाल' की स्थापना लिए विधेयक संसद में प्रस्तुत किए, लेकिन लोक सभा के बार-बार विघटित हो जाने के कारण अथवा अन्य किसी कारण से यह अभी तक पारित न हो सका, संसद में लोकपाल विधेयक सर्वप्रथम मई 1968 ई. में तथा आठवीं बार अगस्त 2001 ई. में प्रस्तुत किया गया था। इनके अतिरिक्त अप्रैल 1971, जुलाई 1971, जून 1977, अगस्त 1985, दिसम्बर 1989, सितम्बर 1996, अगस्त 1998 तथा अगस्त 2001, में 2005 एवं 2008, में विधेयक प्रस्तुत किया गया।

सर्वप्रथम लोकायुक्त अधिनियम 1970 में उड़ीसा सरकार ने बनाया था, लेकिन वहाँ लोकायुक्त की नियुक्ति सन् 1983 में हो सकी। महाराष्ट्र में लोकपाल अधिनियम सन् 1971 में बना तथा वहाँ इसी वर्ष इसकी नियुक्ति भी हो गई अतः महाराष्ट्र पहला राज्य है। अन्य राज्यों में लोकायुक्त अधिनियम निर्माण एवं नियुक्ति का वर्ष निम्नलिखित तालिका में दिया गया है:

भारत के राज्यों में लोकायुक्त अधिनियम

क्रम सं.	राज्य	वर्ष
1	उड़ीसा	1970
2	महाराष्ट्र	1971
3	बिहार	1973
4	राजस्थान	1973
5	तमिलनाडु	1974
6	जम्मूकश्मीर-	1975
7	मध्य प्रदेश	1981

8	आन्ध्र प्रदेश	1983
9	केरल	1983
10	हिमाचल प्रदेश	1983
11	कर्नाटक	1984
12	असम	1985
13	गुजरात	1986
14	पंजाब	1995

प्रत्येक राज्य के लोकायुक्त की संरचना, कार्य प्रणाली तथा अधिकार क्षेत्र पृथक रखा गया। लोकायुक्त के क्षेत्राधिकार, कार्यकाल तथा नियुक्ति प्रक्रिया भी भिन्न-भिन्न अपनाई जाती है। लोकायुक्त को लोक सेवकों के विरुद्ध निम्नलिखित मामलों में आरोप एवं शिकायत प्राप्त कर जाँच कराने का अधिकार है।

1. स्वयं या अन्य व्यक्तियों के लाभ या पक्षपात के लिए अपने पद का दुरुपयोग किया हो या दूसरे व्यक्ति की क्षति या अभाव का कारण बना हो।
2. सरकारी कर्मचारी के रूप में व्यक्तिगत स्वार्थ या अनुचित या भ्रष्ट विचार से प्रेरित होकर काम किया हो।
3. भ्रष्टाचार के आरोप में दोषी हो या सरकारी पद पर ईमानदार न रहा हो।
4. ज्ञात आय से असंगत सम्पत्ति हो या परिवार का कोई अन्य सदस्य उसकी तरफ से असंगत सम्पत्ति रखता हो।
5. जिस पद पर वह है उस पद पर लोक सेवक द्वारा ईमानदारी एवं सत्यनिष्ठा आचरण के मापदण्ड के अनुसार कार्य करने में असफल रहा हो।

इसी प्रकार शिकायत शब्द का अर्थ किसी नागरिक द्वारा किए गए उस दावे से है जो उसे कुप्रशासन के कारण प्रस्तुत करना पड़ा है।

4.3.7 कुप्रशासन का अर्थ निम्नलिखित कार्यवाहियों से है-

1. जहाँ इस प्रकार का कार्य या प्रशासनिक प्रक्रिया व्यवहार जो असंगत, अनुचित, दमनात्मक या पक्षपातपूर्ण हो, या

2. जहाँ इस प्रकार की कार्यवाहियों में लापरवाही या अनावश्यक विलम्ब हुआ हो या इस प्रकार की प्रशासकीय प्रक्रिया या व्यवहारों में अनावश्यक देरी हुई हो।

लोकायुक्त संस्था सैद्धान्तिक दृष्टि से सुदृढ़ दिखाई देती है किन्तु व्यावहारिक रूप से किसी भी राज्य में लोकायुक्त संस्था प्रभावी सिद्ध नहीं हो पाई है। लोकायुक्त की भूमिका सरकार को परामर्श देने की है। कई बार लोक-सेवकों का अपराध सिद्ध हो जाने पर भी लोकायुक्त की सिफारिश पर राज्य सरकार समुचित कार्यवाही नहीं करती है। इस प्रकार प्रशासन में अनैतिकता तथा अकार्यकुशलता पर अंकुश नहीं लग पाता है। भ्रष्टाचार निवारण में निस्संदेह लोकायुक्त सशक्त भूमिका निर्वाहित कर सकता है किन्तु पहले लोकायुक्त को प्रभावी बनाना आवश्यक है।

लोकपाल -

भारतीय लोकपाल की अवधारणा स्वीडेन के ओम्बुड्समैन पर आधारित है। जहाँ यह व्यवस्था 1809 से प्रभावी है और जिसके कारण वहाँ के प्रशासन को बहुत साफ-सुधरा माना जाता है। ओम्बुड्समैन नामक यही संस्था भारत में लोकपाल/लोकायुक्त कहलाती है। जिसका शाब्दिक अर्थ 'लोक' अर्थात् 'जनता या लोग' एवं 'पाल' अर्थात् 'संरक्षक या रक्षा करने वाला' है। 'लोकपाल' शब्द इण्डो अर्थात् शब्द है। लोकपाल की स्थापना का मुख्य उद्देश्य लोक सेवकों तथा जन-प्रतिनिधियों के कुप्रशासन तथा भ्रष्टाचार के विरुद्ध जनता की शिकायत सुनने तथा उस पर जाँच कर अपनी संस्तुति प्रस्तुत करना है।

लोकपाल विधेयक

भारत में सर्वप्रथम इसकी स्थापना की मांग डॉ. लक्ष्मीमल सिंधवी द्वारा सन् 1956 में की गई थी। सन् 1966 में मोरारजी देसाई की अध्यक्षता वाले प्रशासनिक सुधार आयोग ने 'प्रोब्लम्स ऑफ रिडेसल ऑफ सिटिजन्स ग्रीवेंसज' पर रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए लोकायुक्त तथा लोकपाल की नियुक्ति की संस्तुति की।

पहली बार 9 मई 1968 को लोकपाल विधेयक संसद में प्रस्तुत किया गया जो कि लोकसभा में पारित हो चुका था लेकिन न लोक सभा के भंग हो जाने के कारण राज्यसभा में पारित न हो पाया।

पिछले 42 वर्षों से लोकपाल विधेयक लोकसभा के बार-बार विघटित हो जाने के कारण अथवा अन्य किसी कारण से अभी तक पारित न हो सका है। इस दौरान छोटी-बड़ी कुल चौदह कोशिशों की गयीं। आठ बार सरकारी विधेयक के रूप में और छह बार गैर सरकारी विधेयक के रूप में इसे स्थापित करने की कोशिश की गयी है, लेकिन किसी न किसी बहाने उसमें रोड़ा अटकाया जाता रहा है अतः अब तक यह मृग मरीचिका ही साबित हुआ है।

शुरूआत में प्रधानमंत्री को इस दायरे में रखे जाने को लेकर मतभेद थे किन्तु ऊंचे पदों पर आसीन लोगों से जुड़े भ्रष्टाचार के प्रकरण इस प्रकार उजागर हो चुके हैं और उनका आभामंडल इतना क्षीण हो चुका है कि सार्वजनिक जीवन का कोई भी पदधारक अब अपने को जाँच के दायरे से अलग रखने की सिफारिश करने का साहस नहीं कर सकता। आभामंडल इतना क्षीण हो चुका है कि सार्वजनिक जीवन का कोई भी पदधारक अब अपने को जाँच के दायरे से अलग रखने की सिफारिश करने का साहस नहीं कर सकता।

संसद में सर्वप्रथम लोकपाल विधेयक मई 1968 ई. तथा अन्तिम बार 2008 ई. में प्रस्तुत किया गया था। इनके अतिरिक्त अप्रैल 1971, जुलाई 1971, जून 1977, अगस्त 1985, दिसम्बर 1989, सितम्बर 1996, अगस्त 1998, अगस्त 2001, 2005 तथा 2008 में विधेयक प्रस्तुत किया गया। परन्तु प्रत्येक बार, समिति के ऊपर नई समितियों के गठन का अनवरत सिलसिला चलता रहा इस विधेयक में निम्नलिखित प्रावधान थे-

1. लोकपाल के रूप में एक उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश एवं दो अन्य सदस्य उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों अथवा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीशों में से नियुक्त करने का प्रावधान था।
2. लोकपाल के अधीन मंत्रियों, अधिकारियों एवं प्रधानमंत्री को भी रखा गया।
3. लोकपाल तथा अन्य सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा करने का प्रावधान था।

लोकपाल विधेयक में न तो भ्रष्टाचार से कमाई गयी दौलत की रिकवरी का प्रावधान है और न ही न्यायपालिका को इसके दायरे में रखा गया है। इस विधेयक के अन्तर्गत लोक सभा के स्पीकर अथवा राज्य सभा के चेयन मैन की अनुमति के बिना किसी की शिकायत की जाँच ही नहीं की जा सकती है और न ही विसलर्लोअस यानि भ्रष्टाचार के विरुद्ध आंतरिक रूप से शंखनाद करने वाले लोगों को सुरक्षा देने का कोई प्रावधान है अतः भ्रष्टाचार पर नकेल कसने के लिए खासतौर पर बनाया गया लोकपाल विधेयक ;सरकारी लोकपाल विधेयक, को नखदंत विहीन बताया जा सकता है। इसमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिससे भ्रष्टाचार के दानव का खात्मा ;अंतर्द्ध किया जा सके। इस विधेयक की तमाम खामियों को दूर करने के लिए जाने-माने सामाजिक कार्यकर्ता अन्ना हजारे ;किशन बाबूराव हजारे ;असली नाम, की अगुवाई में 'इंडिया अंगेस्ट करप्शन'आंदोलन के तहत 'जनलोकपाल विधेयक' को कानून बनाए जाने की मांग की है।

ओम्बुड्समैन की स्थापना सर्वप्रथम सन् 1809 में स्वीडन में तत्पश्चात् फिनलैण्ड ;सन् 1919,ए डेनमार्क ;सन् 1955, तथा नार्वे ;सन् 1962, में हुई। इन स्केन्डिनेवियन देशों के अतिरिक्त यह संस्था

न्यूजीलैण्ड, ब्रिटेन, कनाडा तथा अमेरिका में भी कार्यरत है। 'ओम्बुड्समैन' नामक यही संस्था भारत में 'लोकपाल/लोकायुक्त' कहलाती है। स्वीडिश शब्द 'ओम्बुड' ; जिसका अर्थ है, किसी का प्रतिनिधित्व करने वाला से 'ओम्बुड्समैन' बना है। 1966 में प्रशासनिक सुधार आयोग ने जहाँ केन्द्रीय स्तर पर लोकपाल की सिफारिश की थी वहीं उन्हीं कार्यों के लिए राज्य स्तर पर लोकायुक्त की सिफारिश की थी। उड़ीसा लोकायुक्त अधिनियम 1970 बनाने वाला पहला राज्य बना, जबकि महाराष्ट्र में सबसे पहले 1972 में लोकायुक्त की नियुक्ति की गई। राजस्थान में 1973 में, बिहार में 1973 में, उत्तर प्रदेश में 1975 में, मध्य प्रदेश में लोकायुक्त एवं उपलोकायुक्त अधिनियम अक्टूबर 1981 से प्रभावी है। अब तक कुल 17 राज्यों में यह संस्था कार्य कर रही है। पंजाब में लोकायुक्त की जगह लोकपाल की नियुक्ति की जाती है। अलग-अलग राज्यों में संस्था की प्रभाविकता अलग-अलग है तथा इनके शिकायत तथा अभिकथन सम्बन्धी अधिकार भी अलग-अलग हैं। शिकायत का तात्पर्य कुप्रशासन से है, जिसकी सूचना लोकायुक्त को उस रूप में घटना के 1 वर्ष के भीतर दी जानी चाहिए।

अभिकथन का तात्पर्य किसी लोकसेवक के भ्रष्टाचार 'सत्यनिष्ठा में कमी' अथवा पद के दुरुपयोग से है जिसकी सूचना घटना के पाँच वर्ष के भीतर लोकायुक्त को दी जा सकती है।

15.5 जन लोकपाल विधेयक

देश के प्रबुद्ध नागरिकों द्वारा तैयार 'जनलोकपाल विधेयक' एक ऐसा विधेयक है जिसे कानून बनाकर भ्रष्टाचार को समूल खत्म किया जा सकता है। इस विधेयक में बगैर किसी की अनुमति लिए लोकपाल द्वारा किसी भी जाँच को शुरू करने का, भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठाने वाले व्हिसलब्लोअर की सुरक्षा का भी प्रावधान है। प्रधानमंत्री से लेकर मंत्री से संतरी तक सभी को इसकी जाँच के दायरे में रखा गया है। देश में पहली बार एक विधेयक का प्रस्ताव देश के नागरिक समाज की ओर से संसद में विचार करने के लिए दिया गया है। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि इस विधेयक में सत्ता के शीर्ष पर बैठे लोगों, चाहे वह प्रधानमंत्री, सुप्रीमकोर्ट के न्यायाधीश या फिर अफसरशाही हो, के खिलाफ लगे भ्रष्टाचार के आरोपों की न केवल निष्पक्ष जाँच करने की ताकत है बल्कि उन्हें दण्डित भी करने की क्षमता है। इसमें लूटखसोट ; भ्रष्टाचारद्वारा अर्जित धन भी जनता को वापस दिलाने का प्रावधान किया गया है।

हांगकांग में 1974 में जन लोकपाल जैसा कानून ; इंडिपेंडेंट कमीशन अगेंस्ट करप्शन एक्ट के आधार पर आई.सी.ए.सी. ; प्बुद्ध बनाया गया था, जिससे वहाँ से भ्रष्टाचार समाप्त करने में कामयाबी मिली। भारत में भी अगर यह कानून बना दिया गया तो यहाँ पर भी भ्रष्टाचार का नष्ट किया जा सकता है।

विशेषतार्ये:

- 1.अध्यक्ष समेत दस सदस्योँ वाली एक लोकपाल संस्था होनी चाहिए।
- 2.भ्रष्टाचार के मामलोँ की जाँच करने वाली सी. बी. आई. के हिस्से को इस लोकपाल में शामिल कर दिया जाना चाहिए।
- 3.सी.वी.सी. और विभिन्न विभागोँ में कार्यरत विजिलेंस विंग्स का लोकपाल में विलय कर दिया जाना चाहिए।
- 4.लोकपाल सरकार से एकदम स्वतंत्र होना।
- 5.नौकरशाह, राजनेता और जजोँ ;न्यायधाीशोँद्ध पर इनका अधिकार क्षेत्र होगा।
- 6.बगैर किसी एजेँसी की अनुमति के ही कोई जाँच शुरू करने का इसे अधिकार होगा।
- 7.जनता को प्रमुख रूप से सरकारी कार्यालयोँ में रिश्वत माँगने की समस्या से गुजरना पड़ता है। लोकपाल एक अपीलीय प्राधिकरण और निरीक्षण निकाय के तौर पर केन्द्र सरकार के सभी कार्यालयोँ में कार्यवाई कर सकेगा।
- 8.विसलब्लोअर को संरक्षण प्रदान करेगा
- 9.लोकपाल के सदस्योँ और अध्यक्ष का चुनाव पारदर्शी तरीके से किया जाना चाहिए।
- 10.लोकपाल के किसी अधिकारी के खिलाफ यदि कोई शिकायत होती है तो उसकी जांच पारदर्शी तरीके से एक महीने के भीतर होनी चाहिए।

जन लोकपाल विधेयक: मूल स्वरूप के सूत्रधार

अरबिंद केजरीवाल, प्रशांत भूषण और संतोष हेगड़े द्वारा जन लोकपाल विधेयक का मूल आधार तैयार किया गया है। बाद में इस विधेयक पर अलग-अलग क्षेत्रोँ से जुड़े विद्वानोँ और गणमान्य लोगोँ की राय को भी इसमें शामिल किया गया है। इसके अलावा यह विधेयक लोगोँ द्वारा बेबसाइट ;इंटरनेटद्ध पर दी गई प्रतिक्रिया और जनता के साथ विचार-विमर्श के बाद तैयार किया गया है। इस बिल को शांति भूषण, जे. एम. लिंगदोह, किरन बेदी, अन्ना हजारे, स्वामी अग्निवेश आदि का समर्थन प्राप्त है।

प्रासंगिकता: सरकारी लोकपाल विधेयक का अधिकार क्षेत्र केवल राजनेताओं तक सीमित हैं सरकारी अधिकारियों के लिए सतर्कता आयुक्त जैसी संस्थाएं हैं, जो अब तक निष्प्रभावी साबित हुई हैं। न्यायपालिका के भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए कोई संस्था नहीं है। जनता के लिए राजनेता के भ्रष्टाचार, सरकारी कार्मिकों की रिश्वतखोरी और न्यायाधीशों की बेईमानी में कोई अंतर नहीं है। इस पृष्ठभूमि में जन लोकपाल विधेयक के उपबंध सरकारी विधेयक की तुलना में ज्यादा प्रभावी और प्रासंगिक है।

आवश्यकता: भ्रष्टाचार निरोधक कानून 1988 में भ्रष्ट अफसरों के खिलाफ सजा का प्रावधान महज पाँच वर्ष है जबकि दोषी साबित किये जाने पर उनकी संपत्ति को हड़पने का कोई प्रावधान नहीं है। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशन की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में सरकारी महकमों में काम कराने के लिए कम से कम 50 फीसदी लोगों को अपना वाजिब काम निकालने के लिए अधिकारियों को घूस खिलानी पड़ती है। उन्हें इस चीज के लिए भी घूस देनी पड़ती है, जिसे पाने के वे हकदार हैं। लगभग तीन चौथाई लोगों को किसी न किसी काम के लिए रिश्वत देनी पड़ी है। इस स्थिति के चलते ही भ्रष्टाचार की सूची में भारत 87 वें स्थान पर है।

15.6 लोक सेवा में तटस्थता

लोकसेवा में 'तटस्थता' सिविल सेवा का एक आवश्यक अंग है। इसका एक अर्थ सेवक की निष्पक्ष, एवं स्वतन्त्र और स्पष्ट 'सेवा' से होता है अर्थात् यदि सिविल सेवक स्वयं को राजनीतिक कार्यों एवं गतिविधियों से दूर रख कर अपना कार्य पूर्ण रूपेण दक्षता एवं ईमानदारी के साथ करता है तो वह गुण 'तटस्थता' को व्यक्त करता है। यह कहना सर्वथा उचित होगा कि निष्पक्षता ही तटस्थता को जन्म देती है। तटस्थता के अन्तर्गत अनुशासन, निष्ठा, ईमानदारी, निष्पक्षता एवं स्वतंत्र व स्पष्ट विचार, प्रमुख गुण होते हैं। अजोय बागची के शब्दों में निष्पक्षता की अवधारणा को निम्न प्रकार से कहा गया है। संकेत इस बात की ओर है कि राजनीतिक दलों के साथ सम्पूर्ण तटस्थता के साथ-साथ सरकार के कार्यक्रमों के राजनीतिक पक्षों के साथ संतुलित सम्मान और विवेकपूर्ण सहानभूति का भी मिश्रण होना चाहिए साथ ही साथ सरकार के कार्यक्रमों और निर्णयों की पृष्ठभूमि में मूल दार्शनिक तथा सामाजिक आर्थिक वाद विवाद के प्रति जागरूकता और लोकतांत्रिक धारणाओं के प्रति भक्ति भी होनी चाहिए। जोसेफ पालोम्बरा के मतानुसार एक प्रशासनिक को राजनीतिक दलों के बीच आपका प्रभुत्वकारी दल के भीतरी गुटों के झगड़े में उलझना नहीं चाहिए। इसका अर्थ यह है कि प्रशासन को जागरूक होकर निरंतर यत्न करना चाहिए कि वह राजनीति कैसी भी हो उससे अपने आप को अलग रखे। मोर्सटीन मार्क्स निष्पक्षता को दो दृष्टिकोण से देखते हैं। सकारात्मक एवं नकारात्मक। सकारात्मक निष्पक्षता का अर्थ है कि बिना किसी शर्त के

काम करने के अनुशासन को स्वीकार करें। अर्थात् वे किसी भी विधिवत् सत्तारूढ़ सरकार की सफलता के लिए भक्ति से काम करें। नकारात्मक विचारधारा के अन्तर्गत लोक सेवक नीति, कार्यक्रम तथा प्रबन्ध जैसे मुद्दों पर अपना सर्वात्म निर्णय पेश करें। इनसे अपनों को अलग न रखें और अपनी विशेष योग्यता के अनुरूप इनको अपना भरपूर्ण योगदान प्रदत्त करें। उपरोक्त कथन के अनुसार जिसमें निष्पक्षता की धारणा की व्याख्या की गई है कुछ तथ्य निकल कर आते हैं जैसे जनता को लोक सेवा के अराजनीतिक चरित्र में विश्वास हो, मंत्रियों को चाहे वे किसी भी राजनीतिक दल के हों, अपने स्थायी अधीनस्थ अधिकारियों की वफादारी में विश्वास होना चाहिए तथा लोक सेवकों का उच्च मनोबल जो इस विश्वास पर आधारित होता है कि पदोन्नतियों राजनीतिक विचारों के आधार पर नहीं, अपितु गुण के आधार पर की जायेगी।

सर्वप्रथम मैक्स वैबर ने नौकरशाही की निष्पक्षता की धारणा पेश की थी। तबसे लेकर अनेक विद्वानों ने निष्पक्षता की व्याख्या करने का यत्न किया है। मास्टर मैन के शब्दों में, निष्पक्षता ब्रिटिश प्रशासक का गुण रहा है कि लोक सेवक अपने सार्वजनिक जीवन में राजनीतिक धारणाओं से पूर्ण मुक्त रहता है।

हूवर का कथन है कि लोक सेवकों को केवल औपचारिक वक्तव्य ही प्रेस को देने चाहिए, सार्वजनिक या निजी वक्तव्य नहीं देने चाहिए। उन्हें राजनीतिक या विवादास्पद ढंग से सार्वजनिक भाषण नहीं देने चाहिए। विभिन्न राष्ट्रों में तटस्थता के अलग-अलग रूप मिलते हैं। ग्रेट ब्रिटेन में लोक सेवकों के राजनीतिक कार्यों पर कम बन्धन है। राजनीतिक कार्यों में भाग लेने की सबसे अधिक सुविधायें ग्रेट ब्रिटेन में ही हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में लोक सेवकों के कार्यों पर कठोर प्रतिबन्ध है। लोक सेवकों को राजनीतिक प्रबन्ध या राजनीतिक अभियानों में सक्रिय भाग लेने की सख्त मनाही है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के जस्टिस ब्लैक ने कहा है कि सरकारी कर्मचारियों को प्राप्त राजनीतिक विशेषाधिकार का सारांश है कि वे मौन रूप में मतदान कर सकते हैं, तथा सावधानी से एवं शान्तिपूर्वक वे कोई भी राजनीतिक विचार स्वयं को संकट में डालकर ही प्रकट कर सकते हैं और चुनाव अभियान की सभाओं में वे केवल दर्शक मात्र होते हैं। पश्चिमी यूरोप तथा स्केण्डिनेवियन देशों में लोक-सेवक राजनीतिक क्रियाकलापों में भाग लेने के लिए स्वतंत्र होते हैं। बेल्जियम, तथा स्विटजरलैण्ड में लोक सेवक संसदीय चुनावों में भाग तो लेते हैं परन्तु चुने जाने पर अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ता है। जर्मनी में लोक सेवक को पहले ही अपने पद से त्यागपत्र, देकर चुनाव अभियान में भाग लेता है। परन्तु अगर चुनावी प्रत्याशी हार गया है तो पुनः अपने पद को ग्रहण कर सकता है। चुनाव जीतने पर लोक सेवक पेंशन पर सेवानिवृत्त हो सकता है।

राष्ट्रमण्डलीय देशों में लोक सेवकों के राजनीतिक अधिकारों पर कड़ा प्रतिबन्ध है। कनाडा में लोक सेवकों को राजनीति में सहभागिता वर्जित है। आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड में लोक सेवक चुनाव तो लड़ सकते हैं परन्तु राजनैतिक मुद्दों में उनकी निष्पक्षता तथा तटस्थता पर काफी बल दिया जाता है।

भारत में लोक सेवा सम्बन्धी नियमावली के अनुसार सरकारी कर्मचारियों पर राजनीतिक कार्यों में क्रियात्मक रूप से भाग लेने पर पूर्ण प्रतिबन्ध है। केन्द्रीय लोक सेवा नियम 1955 के अनुसार, लोक सेवक को किसी राजनीतिक संगठन के सदस्य, किसी भी राजनीतिक आन्दोलन में भाग लेने अथवा उसके लिए चन्दा देने या किसी प्रकार की सहायता करने पर निषेध है। विधान मण्डल तथा स्थानीय शासन के किसी चुनाव में भाग लेना भी प्रतिबंधित है।

निष्पक्षता के आयाम: निष्पक्षता की मूल शर्त होती है कि लोक सेवकों को प्रशिक्षण एवं परम्परा के द्वारा एक ऐसे राजनीतिक संस्थान का रूप दे दिया जाये कि वह अपने राजनीतिक विचारों के प्रभाव के बिना सार्वजनिक नीतियों को लागू करे। निष्पक्षता को निम्नलिखित पैमानों के आधार उसकी धारणा को गलत या सही ठहरा सकते हैं। निर्णय करने की प्रक्रिया के प्रभाव में मात्रा, किस दर्जे तक राजनीतिक कार्य कारिणी को नौकरशाही से अलग किया जाये, लोक सेवकों के कार्य में राजनीतिक हस्तक्षेप कहीं तक होता है, जनता का विश्वास इनमें कितना है। इन मापदण्डों के आधार पर लोक सेवकों के पक्ष या निष्पक्ष होने के प्रभाव सामने आ जाते हैं।

निष्पक्षता की प्रासंगिता वर्तमान में: निष्पक्षता की अवधारणा देश की विशेष परिस्थितियों के अनुरूप हुआ करती थी। भारत में एक निष्पक्ष लोक कर्मचारी बनाने के कई उद्देश्य थे। उनमें से एक प्रमुख उद्देश्य था कि उनको देश में चल रही राजनीतिक गति-विधियों से पृथक रखा जाये। कुलदीप माथुर न कहा था कि षड्स समय उनका राजनीतिकरण केवल ब्रिटिश विरोधी ही हो सकता था। इस निष्पक्षता का अभिप्राय केवल नौकरशाही को करणत्व का एक मात्र सिद्धान्त बनाना नहीं था, अपितु लोक सेवा को साम्राज्यवादी शक्ति को बनाये रखने के कार्यों के प्रति विश्वास ही न होने से बचाना था। निष्पक्षता की यह धारणा द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्त तक ठीक ठाक काम करती रही। उसके उपरान्त इस धारणा को चुनौती दी जाने लगी। यहाँ तक जिस राष्ट्र ब्रिटेन ने सर्वप्रथम निष्पक्षता को सम्बोधित किया एवं कठोर अनुयायी था उसने भी इसकी निरन्तर प्रमाणिकता पर सन्देह करने लगा। अपने लोक सेवकों को भारी मात्रा में राजनीतिक अधिकार प्रदत्त कर उन्होंने परोक्ष रूप से यह स्वीकार लिया है कि आज के बदलते राजनीतिक परिवेश एवं परिस्थितियों में लोक सेवकों को पूर्णतया राजनीतिक दृष्टि से निष्पक्ष अथवा अलग रखना सम्भव नहीं है। लोक सेवकों को अब मूल्य रहित नहीं समझा जाता है, अपितु ये राजनीतिक शक्ति का उपयोगी तंत्र माना जाता है।

फलस्वरूप निष्पक्षता को त्यागने के कई कारण माने जाते हैं। जैसे नीति निर्णय प्रक्रिया में सहभागिता, राजनीतिक व्यवस्थाओं में लोक सेवा के नेतृत्व की भूमिका, कल्याणकारी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु, पालन पोषण के उत्पादन हेतु, विकासशील देशों में राजनीतिक मतभेदों को समाप्त करने इत्यादि हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. सी का गठन सन् .आई .बी .1963 ई. हुआ ।सत्य/असत्य
2. संसद में लोकपाल विधेयक सर्वप्रथम मई 1968 ई. में पेश किया गया था । सत्य/असत्य
3. सर्वप्रथम लोकायुक्त अधिनियम 1970 में उड़ीसा सरकार ने बनाया था । सत्य/असत्य
4. राज्यों में लोकायुक्त की नियुक्ति 1971 ईसे प्रारम्भ हो गई है . । सत्य/असत्य
5. महाराष्ट्र सभी राज्यों में प्रथम राज्य है जिसने 1971 में लोकायुक्त की नियुक्ति की । सत्य/असत्य

15.7 सारांश

इस पाठ के अध्ययन पश्चात जन शिकायत निवारण के बारे में भली-भाँति परिचित हो जायेंगे। इसके अन्तर्गत शिकायत कैसे की जाती है एवं उसके निवारण हेतु किसको आवेदन करना पड़ता है? लोक प्रशासन के दृष्टिकोण से लोक पाल विधेयक अत्यन्त आवश्यक है परन्तु पिछले कई वर्षों से अधर में लटका हुआ है। अभी-अभी इसकी चर्चा काफी जोरों पर है, कि इसका स्वरूप क्या होगा? एवं कौन-कौन से शासन के तंत्र इसमें सम्मिलित किये जायें?

15.8 शब्दावली

- सी. वी. सी. : केन्द्रीय सर्तकता आयोग
 सी. वी. आई : केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो
 ए. आर. सी : प्रशासन सुधार आयोग
 ओम्बुड्समैन : संस्था का नाम है जिसके अन्तर्गत लोक पाल एवं लोक आयुक्त आते हैं।

15.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य , 2. सत्य , 3. सत्य 4. सत्य , 5. सत्य

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

बसु, रूमकी - लोक प्रशासन

सडाना एवं शर्मा - लोक प्रशासन के सिद्धान्त

15.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

शर्मा एवं शर्मा - कार्मिक प्रशासन

कटारिया, सुरेन्द्र - कार्मिक प्रशासन

15.12 निबंधात्मक प्रश्न

- 1.जन शिकायत निवारण से क्या समझते ? सर्तकता आयोग के कार्यों को विस्तार से लिखिये।
- 2.लोक प्रल विधेयक क्या है? इसमें कार्यों को विवेचना कीजिए।
- 3.लोक प्रशासन में तटस्थता पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई 16 प्रशासन में भ्रष्टाचार

इकाई की संरचना

- 16.1 प्रस्तावना
- 16.2 उद्देश्य
- 16.3 प्रशासन में भ्रष्टाचार: अर्थ एवं इतिहास
 - 16.3.1 भ्रष्टाचार की अवधारणा
 - 16.3.2 भ्रष्टाचार: गतिविधियाँ
 - 16.3.3 भ्रष्टाचार के कारण
 - 16.3.4 भ्रष्टाचार के परिणाम
 - 16.3.5 वर्तमान में भ्रष्टाचार के बदलते आयाम
 - 16.3.6 भ्रष्टाचार उन्मूलन: सुझाव एवं प्रयास
 - 16.3.7 प्रशासनिक सुधार आयोग की भ्रष्टाचार कम करने के लिए
 - 16.3.8 भ्रष्टाचार चक्र
- 16.9 सारांश
- 16.10 शब्दावली
- 16.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 16.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 16.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 16.14 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

भ्रष्टाचार विश्वव्यापी समस्या है। विकासशील देशों में भ्रष्टाचार काफी व्याप्त है। लोक प्रशासन के क्षेत्र में यह एक ऐसा रोग है जिससे समस्त समाज को परेशानियाँ उठानी पड रही है। भारत देश में यह मुद्दा काफी तूल पकड़े हुए है। इसी मुद्दे को लेकर बाबा रामदेव जी ने भी अनशन शुरू किया था। वैसे कौटिल्य ने भी अपने समय में चालीस प्रकार के भ्रष्टाचार बताये थे। प्रस्तुत लेख में इसी पर विस्तार से चर्चा की गई है।

सुशासन के अन्तर्गत शासन द्वारा स्वीकृत कार्यक्रमों को प्रशासन से जनता तक पहुँचाना ही एक मात्र कार्य है। परन्तु प्रशासन अपने दायित्वों का निर्वाहन इमानदारी से नहीं करता। फलस्वरूप समाज में फैली विकृतियाँ कम होने के बजाय बढ़ती जा रही है। उदाहरण के रूप में गरीबी उन्मूलन, अमीर एवं गरीब के बीच काफी अन्तर बढ़ गया है। विकास के हर क्षेत्र में यही समस्या विद्यमान है। इससे निपटने के लिए समय-समय पर बहुत सुझाव भी दिये गये।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त -

1. प्रशासन में भ्रष्टाचार अर्थ एवं इतिहास को जान सकेंगे।
2. भ्रष्टाचार के कारण और भ्रष्टाचार के परिणाम को जान सकेंगे।
3. भ्रष्टाचार उन्मूलनके विभिन्न पक्षों को जान सकेंगे।
4. प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा भ्रष्टाचार कम करने के लिए सुझावों का अध्ययन कर सकेंगे।

16.3 प्रशासन में भ्रष्टाचार: अर्थ एवं इतिहास

सर्वश्रेष्ठ के भ्रष्ट होने के समान कोई बुराई नहीं है। यूं तो आज समाज में चारों ओर भ्रष्टता का प्रदूषित वातावरण परिव्याप्त है किन्तु राजनीति और प्रशासन में भ्रष्टता का ओर-छोर हाथ ही नहीं आ रहा है। वर्तमान समय में भ्रष्टाचार की समस्या सभी देशों में पायी जाती है और इसका कोई रूप सर्वत्र देखने को मिलता है। भ्रष्टाचार में व्यक्ति सामाजिक नियमों का सोच-समझकर उल्लंघन करता है तथा अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए दूसरों के हितों की अवहेलना करता है। साथ ही वह व्यक्तिगत लाभ के लिए अपने अधिकारों का दुरुपयोग करता है, मिलावट करता है, रिश्तत लेता है, पक्षपात का सहारा लेता है। स्वतन्त्रता के बाद भारत में भ्रष्टाचार की मात्रा बढ़ी है और इंजीनियर, डाक्टर, मंत्री, विधायक, उद्योगपति, व्यापारी, प्रशासक व राजनीतिज्ञों द्वारा भ्रष्टाचार किये जाने के अनेक मामले प्राक्या में आये हैं। इसके निवारण के लिए समय-समय पर कई विभागों और समितियों की स्थापना की जाती रही है किन्तु भ्रष्टाचार उन्मूलन के स्थान पर इसमें बढ़ोत्तरी ही हुई है।

पतन का मार्ग

यह बात सभी जानते हैं कि भारत धर्म प्रधान देश रहा है। भारत में धर्म देशवासियों के आचरण में स्थान पाकर मूर्तरूप प्राप्त करता है। इस धार्मिक आचरण धार्मिक, न्यायसंगत, नैतिक आचरण के विपरीत होता है उसे प्रायः भ्रष्ट आचरण का नाम प्रदान करते हैं। धार्मिक एवं नैतिक आचरण पर्वत लंघन की भांति आचरणशील व्यक्ति को ऊपर उठाते हैं इसके विपरीत भ्रष्ट आचरण मनुष्य को व्यक्तिगत रूप से पतन की ओर, अवनति की ओर ले जाते हैं। भ्रष्ट शब्द 'गिरने का अर्थ देने वाली' धातु से बना है। भ्रष्टआचरण अथवा भ्रष्टाचार पहले व्यक्ति को और बाद में देश को पतित करता है।

प्रशासन में भ्रष्टाचार

विश्व के सबसे बड़े प्रजातंत्रीय व्यवस्था वाले देश भारत वर्ष में पिछले 64 वर्षों में भ्रष्टाचार गंभीर रूप से अपनी जड़ों को जमा चुका है। हमारे देश का नारा 'सत्यमेव जयते' है, परन्तु इतना होने पर भी मानो स्वाधीन भारत में सर्वत्र भ्रष्टाचार का ही राज है। न केवल भारत बल्कि पूरा विश्व जिस प्रकार मूल्य निरपेक्ष दृष्टि से आगे बढ़ रहा है वहाँ-भौतिक उपलब्धि ही सब कुछ है तथा साधन की पवित्रता अप्रसांगिक हो गई है। 'सदाचार' तो आज मूर्खता, फूहड़पन, दकियानूसी आदि का पर्याय माना जाने लगा है। येन केन प्रकारेण अपना उल्लू सीधा करना ही परम पुरुषार्थ माना जा रहा है।

भ्रष्टाचार ने आज हमारे जीवन में सभी क्षेत्रों पर गहरा अधिकार कर लिया है जिसके कारण हमारे पारिवारिक सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में भ्रष्टाचार का महा तांडव नृत्य हो रहा है। प्रत्येक व्यक्ति भ्रष्टाचार से भराक्रान्त होकर भी उसमें अग्रसर हो रहा है इसलिए व्याप्त भ्रष्टाचार आज के भारतीय

जीवन की सर्व प्रधान समस्या बन गया है। लोकसभा हो या राज्यसभा किसी प्रदेश की विधानसभा हो या विधान परिषद, नगर निगम हो या नगरपालिका किसी भी कार्यवाही को उठाकर देखिए भ्रष्टाचार का उल्लेख अवश्य मिलेगा। यही नहीं समाचार पत्रों सभा समितियों में भी

भ्रष्टाचार का मूल मानव नीयत में विद्यमान है। नीयत का निर्देशन कर रही है आज की भौतिक प्रगति। समिति साधनों में भौतिक ऐश्वर्य को प्राप्त न कर सकने पर मानव की स्वतः किसी भी प्रकार उन साधनों को जुटाने के लिए अनैतिक राहों पर चलना ही एकमात्र उपाय रह जाता है। यह भ्रष्टाचार रिश्वत व कमीशन के रूप में सरकारी, गैर सरकारी क्षेत्रों में विद्यमान है। यह रिश्वतखोरी ही है जो भ्रष्टाचार को जन्म देती है।

भारतीय परम्परा में व्यक्ति को भ्रष्ट मार्ग पर चलने से रोकने का कार्य शासन कर्ता का है। शासन का केवल एक ही कार्य है वाह्य शत्रुओं से देश की रक्षा और देश के अन्दर शान्ति की स्थापना। देश की आन्तरिक शान्ति को भ्रष्टाचारी ही भंग करते हैं, इनका ही अन्यथा आचारण शान्ति प्रिय जनता को अशान्त बनाता है, सताता है और कष्ट देता है, शासन इसे रोकता है। शासन का कर्तव्य स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि 'निहन्ति दण्डेन सः धर्म विप्लवम्' अर्थात् धर्म में विक्षोभ उत्पन्न करने वाले व्यक्ति को शासन दण्ड देकर धर्म विक्षोभ से रोकता है। यही कारण है कि शासक-राजा का निर्माण बालक गर्भाधान से ही प्रारम्भ हो जाता था। कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवंश में महाराज रघु ने गर्भाधान से लेकर राज्य ग्रहण करने तक का इसका संकेत दिया है। इसीलिए भारतवर्ष की मनीषा राजा को काल का कारण मानती है। 'राजा कालस्य कारणम्'। यथा राजा तथा प्रजा'। आज अपने धार्मिक देश की दशा देखकर आँखों में आंसू आ जाते हैं। जिस देश ने समस्त विश्व को अपने-अपने चरित्र की शिक्षा दी थी वह अद्योगति को प्राप्त हो गया है। आज न्यायालयों में न्याय बिक रहा है, शिक्षा और ज्ञान भी वैसे से प्राप्त होते माने जा रहे हैं, मिावट का दौर है, औषधें भी मिलावट के घेरों में आ गई हैं, व्यापार तो इतना भ्रष्ट हुआ है कि कहना संभव नहीं, व्यापारी- अधिक से अधिक दाम लेकर निर्धारित सामग्री प्रदान नहीं करना चाहता। यदि एक शब्द में कहें तो देश भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूब गया है। पीड़ा तो सबसे बड़ी यह है कि इस भ्रष्टाचार को रोकने का प्रयत्न शासन नहीं करता।

आज भ्रष्टाचार एक विश्वव्यापी तथा परम्परागत समस्या बनता जा रहा है। भ्रष्टाचार का विलोम 'सच्चरित्रता', नैतिक सिद्धान्तों की दृढ़ता, निर्दोष चरित्र, स्पष्टता, ईमानदारी एवं निष्कपटता के रूप में परिभाषित किये गये हैं। सच्चरित्रता राज्य का परमावश्यक धर्म होता है। जो कि एक दुर्लभ प्रवृत्ति का रूप लेती जा रही है। सार्वजनिक प्रशासन में सच्चरित्रता के महत्व को स्पष्ट करते हुए 'प्रथम पंचवर्षीय योजना में कहा गया था- 'सार्वजनिक मामलों एवं प्रशासन में सच्चरित्रता होना

आवश्यक है, अतः प्रत्येक सार्वजनिक कार्य सम्बन्धी शाखा में इस बल पर दिया जाना चाहिए। भ्रष्टाचार का दुष्प्रभाव बहुत व्यापक होता है। इसके फलस्वरूप न केवल ऐसी गलतियाँ होती हैं जिनको सुधारना कठिन हो जाता है। बल्कि यह प्रशासनिक ढाँचे की जड़ों एवं प्रशासन में जनता के विश्वास को ही हिला देता है, अतः प्रशासन में भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक निरन्तर चलने वाला युद्ध छेड़ देना चाहिए। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में प्रशासन में सच्चरित्रता को सर्वोच्च प्राथमिकता देने पर बल दिया गया है। योजना के मुख्य प्रशासकीय कार्यों की सूची में इसे जो स्थान दिया गया है एवं सार्वजनिक अधिकारियों से इस ओर विशेष ध्यान देने का जो आग्रह किया गया है, उससे भी उपरोक्त मत की पुष्टि होती है।

भ्रष्टाचार का अर्थ: संकीर्ण दृष्टि में भ्रष्टाचार का अभिप्राय किसी कार्य को करने या न करने के लिए रिश्वत लेना है। व्यापक दृष्टि में भ्रष्टाचार, सार्वजनिक पद या सत्ता का दुरुपयोग करने को कहते हैं।

भ्रष्टाचार का इतिहास

भ्रष्टाचार का मानव से सम्बन्ध किसी न किसी रूप में हमेशा से अस्तित्व में रहा है। भले ही इसका क्षेत्र सीमित से व्यापक हुआ है। मौर्यकाल के सन्दर्भों में अर्थशास्त्र के रचयिता प्रसिद्ध भारतीय विद्वान कौटिल्य ने भ्रष्टाचार के 40 प्रकार बताए थे। उनके अनुसार जिस प्रकार जिह्वा के लिए परखे हुए शहद का स्वाद न लेना असम्भव है उसी प्रकार किसी शासकीय कर्मचारी के लिए राज्य के राजस्व के एक अंश का भक्षण न करना असम्भव है। सल्तनत एवं मुगलकाल में भ्रष्टाचार प्रचलित था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में भ्रष्टाचार भारतवर्ष में सर्वत्र फैल गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारियों ने समस्त आदर्शों एवं मान्यताओं को जड़ से उखाड़ फेंका जिससे ईस्ट इण्डिया कम्पनी पूरी तरह से कमजोर हो गई और अन्त में कम्पनी को हटना पड़ा तत्पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने भारतवर्ष का शासन अपने हाथ में ले लिया।

लगभग 150 वर्षों के शासन में अंग्रेजों ने एक श्रेष्ठ प्रशासन तन्त्र की स्थापना की थी। ब्रिटिश भारतीय प्रशासन में राजस्व, पुलिस व आबकारी विभागों को विस्तृत स्वविवेकी की शक्तियाँ प्राप्त थीं। परिणामस्वरूप, उनके भ्रष्ट होने की पर्याप्त गुंजाइश थी। न्यायपालिका के छोटे न्यायालयों का भी यही हाल था। द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होने तक भ्रष्टाचार अधिकांशतः प्रशासन के निम्न स्तर तक ही समिति था। उच्च लोक सेवक पतित नहीं हुए थे। वरिष्ठ अधिकारी अधिकांशतः अंग्रेज थे। वे भारतीय जनमानस से दूर रहते थे तथा सेवा निवृत्ति के बाद वे इंग्लैण्ड चले जाते थे। इसके अतिरिक्त उन्हें अच्छा वेतन मिला था इसके कारण वे सच्चरित्र बने रहें।

वास्तव में भारतवर्ष को कुशल तथा अपेक्षाकृत ईमानदार लोक सेवा विरासत में प्राप्त हुई। स्वतंत्रता के पश्चात् लोगों की सच्चरित्रता में कमी आई है।

मौर्यों के महाअमात्य ;प्रधानमंत्री चाणक्य ने कहा था- ‘अगर राज्य को कर्तव्य निष्ठा और नियमों के अनुरूप चलाना है तो प्रशासनिक अनुक्रम में सबसे ऊपर बैठे व्यक्ति को पारदर्शिता लानी होगी।’

इसी सन्दर्भ में चाणक्य की एक कहानी मशहूर है। एक बार वे रात्रि में अपनी कुटिया में करणिक ;क्लर्क के साथ सरकारी कामकाज निपटा रहे थे। थोड़े समय बाद जब सरकारी काम निपट गया तो उन्होंने दीया बुझा दिया और कलम रख दी। इसके बाद उन्होंने वहीं पड़ा एक दूसरा दीया जलाया और अपने पास से दूसरी कलम और स्याही निकाल कर कुछ लिखने लगे। इस पर उनके क्लर्क ने आश्चर्य से पूछा कि इसका क्या मतलब है? इसके जवाब में उन्होंने कहा कि जब मैं सरकारी काम कर रहा था तो उस समय सरकारी दीपक और सरकारी कलम का उपयोग नीति सम्मत था। अब मैं निजी काम कर रहा हूँ, इसलिए निजी दीये और कलम का उपयोग व्यावहारिक है। इस तरह की पारदर्शिता अगर पदानुक्रम में उच्च स्तर पर बैठे लोग दिखाने लगे तो राज्य का विकास कोई नहीं रोक सकता।

16.3.1 भ्रष्टाचार की अवधारणा

भ्रष्टाचार शब्द का प्रयोग बड़े व्यापक अर्थों में हुआ है। पुलिस एवं सरकारी अधिकारियों द्वारा घूस लेना, औद्योगिक प्रष्ठानों की भ्रष्ट व्यवस्था, यौन अनाचार, व्यापारियों द्वारा कम तोलना, मिलावट करना, स्मगलिंग, कालाबाजारी, सेल-टैक्स आदि की चोरी, न्यायाधीशों द्वारा पैसा लेकर अपराधी को मुक्त कर देना, चुनाव जीतने के लिए गडबड़ियाँ करना, अधिकारियों द्वारा राज्य की भूमि और संपत्ति की चोरी, आदि सभी भ्रष्टाचार के अन्तर्गत आते हैं।

भ्रष्टाचार के अनेक प्रकार होने के कारण इसकी परिभाषा कठिन प्रतीत होती है। भ्रष्टाचार की कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं: भ्रष्टाचार निरोध समिति, 1964 अनुसार षष्ठ शब्द के व्यापक अर्थ में एक सार्वजनिक पद ; अथवा जनजीवन में उपलब्ध एक विशेष स्थिति ; के साथ संलग्न शक्ति तथा प्रभाव का अनुचित या स्वार्थपूर्ण प्रयोग ही भ्रष्टाचार है। राबर्ट सी. ब्रुक्स के अनुसार कोई प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने के लिए जान बूझकर प्रदत्त कर्तव्य का पालन न करना राजनैतिक भ्रष्टाचार है। भ्रष्टाचार सदैव कभी किसी स्पष्ट अथवा अस्पष्ट लाभ के लिए कानून एवं समाज के विरोध में किया जाना वाला कार्य है।

इटियट व मैरिन के अनुसार, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्ति हेतु जान-बूझकर निश्चित कर्तव्य का पालन न करना ही भ्रष्टाचार है।

भारतीय दण्ड विधान ; की धारा 161 के अनुसार, कोई भी सार्वजनिक कर्मचारी वैध पारिश्रमिक के अतिरिक्त अपने या किसी दूसरे व्यक्ति के लिए जब कोई आर्थिक लाभ इसलिए लेता है कि

सरकारी निर्णय पक्षपातपूर्ण ढंग से किया जाये तो यह भ्रष्टाचार है तथा इससे सम्बन्धित व्यक्ति भ्रष्टाचारी है। यह परिभाषा केवल राज्य कर्मचारियों तक ही सीमित है। कानून की दृष्टि में यह परिभाषा भ्रष्टाचार की परख है तथा उपरोक्त प्रकार से वर्णित भ्रष्टाचार केन्द्रीय या अन्य राज्य सरकार या सांसद या विधानमण्डल या किसी लोक सेवक के सन्दर्भ में किया गया है तो उसे तीन वर्ष तक के कारावास का दण्ड या अर्थ दण्ड या दोनों दिये जा सकेंगे।

लोक कर्मचारियों के सम्बन्ध में भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1947 ने भ्रष्टाचार के क्षेत्र की निम्नलिखित परिभाषा दी है: एक लोक सेवक अपने कर्तव्य के सम्पादन में आपराधिक दुराचरण का दोषी होता है:

१. यदि वह आदतन अपने लिए या अन्य किसी व्यक्ति से अपने लिए या अन्य व्यक्ति के लिए ऐसी धनराशि, जो विधिक पारिश्रमिक के अतिरिक्त होती है किसी उद्देश्य या पुरस्कार के रूप में, जैसा भारतीय दण्ड विधान की धारा 161 में उल्लिखित है, स्वीकार करता है या प्राप्त करता है या स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता है।

२. यदि वह आदतन अपने लिए या अन्य किसी व्यक्ति से अपने लिए या अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान वस्तु बिना कारण या किसी ऐसे कारण के लिए जो वह जानता है कि अनुचित है, किसी जान पहचान के व्यक्ति या किसी सम्पादित कार्य या व्यापार से सम्बन्धित या उसके या किसी ऐसे लोक सेवक के जिसका वह अधीनस्थ है, कार्यालय सम्बन्धी कार्यों या किसी ऐसे अन्य व्यक्ति से जिसे वह जानता है या जिससे सम्बन्धी व्यक्ति का हित है या सम्बन्धित है, ग्रहण करता है, तथा

३. यदि वह बेईमानी या जालसाजी से धन का दुरुपयोग करता है या लोक सेवक के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करते हुए अपने या अन्य किसी व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है।

भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1947 के प्रावधानों की पकड़ मजबूत करने के लिए सन् 1988 में संशोधन किया गया। लोक सेवक की परिभाषा भी अब अधिक विस्तृत कर दी गई है, जो उचित भी है। मन्त्री तथा सांसद भी लोक सेवक हैं।

16.3.2 भ्रष्टाचार: गतिविधियाँ

1. सरकारी पद या सत्ता का दुरुपयोग
2. जानबूझ कर कार्य को रोकना
3. सार्वजनिक सम्पत्ति को हानि पहुंचाना

4. स्वार्थवश अनैतिक लाभ प्राप्त करना ;मौद्रिक या अमौद्रिकद्वय
5. निर्धारित नियमों का उल्लंघन करना ।
6. ऐसा कृत्य जिससे परिचित को लाभ मिले एवं किसी अन्य का अधिकार ;प्राकृतिक न्याय छीना जाता हो।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग द्वारा गिनाए भ्रष्टाचार के 27 रूपः

- 1.निम्न स्तरीय वस्तुओं या कार्य को स्वीकार करना ।
- 2.सार्वजनिक धन और भण्डार का दुरुपयोग करना ।
- 3.जिन व्यक्तियों से अधिकारियों के कार्यालय स्तर पर सम्बन्ध हैं उनके आर्थिक दायित्वों को वहन करना ।
- 4.ठेकेदारों या फर्मों से कर्ज लेना जिनसे उनके कार्यालय स्तरीय सम्बन्ध होते हैं।
- 5.ठेकेदारों एवं फर्मों को रियायतें देना ।
- 6.झूठे दौरे, भत्ते एवं गृह-किराया आदि का दावा करना ।
- 7.अपनी आमदनी से अधिक वस्तुओं को रखना ।
- 8.बिना पूर्व सूचना या पूर्वानुमति के अचल सम्पत्ति अर्जित करना ।
- 9.प्रभाव या अन्य कारण से शासन को हानि पहुंचाना ।
- 10.शासकीय पद या सत्ता का दुरुपयोग करना ।
- 11.भर्ती, नियुक्ति, स्थानान्तरण एवं पदोन्नति के सम्बन्ध में गैर कानूनी रूप से धन लेना ।
- 12.शासकीय कर्मचारियों का व्यक्तिगत कार्यों में प्रयोग करना ।
13. जन्मतिथि एवं समुदाय सम्बन्धी जाली प्रमाण-पत्र तैयारकरना।
- 14.रेल तथा वायुयान में स्थान सुरक्षित करने में अनियमितता ।
- 15.मनीऑर्डर, बीमा एवं मूल्य देय पार्सलों को न देना ।

-
16. नए डाक टिकटों को हटाकर पुराने टिकट लगाना ।
 17. आयात निर्यात लाइसेंस देने में असहयोग एवं अनियमितता ।
 18. लोक सेवकों की जानकारी एवं सहयोग से विभिन्न फर्मों द्वारा आयातित एक निर्धारित कोटे का दुरुपयोग ।
 19. टेलीफोन कनेक्शन देने में अनियमितता ।
 20. अनैतिक आचारण ।
 21. उपहार ग्रहण करना ।
 22. आर्थिक लाभ के लिए आयकर तथा सम्पत्ति कर आदि का कम मूल्यांकन प्रस्तुत करना य
 23. स्कूटर एवं कार खरीदने के लिए स्वीकृत अग्रिम धनराशियों का दुरुपयोग करना ।
 24. विस्थापितों के दावों के निपटारे में अनुचित विलम्ब ।
 25. विस्थापितों के दावों का गलत मूल्यांकन ।
 26. आवासीय भूमि के हिस्सों के क्रय एवं विक्रय के सम्बन्ध में धोखा देना ।
 27. सरकारी आवासों पर अनाधिकृत कब्जा और उन्हें अनाधिकृत रूप से किराए पर उठाना ।

भ्रष्टाचार की सीमाएं अनन्त हैं। भारतीय लोक प्रशासनिक व्यवस्था में व्यापक स्तर पर द्रष्टव्य भ्रष्ट आचरण के कुछ उदाहरण:-

1. सरकारी भवन, वाहनों तथा टेलीफोन को निजी प्रयोग में लाना ।
2. झूठे चिकित्सा पुनसंरण बिल तथा बीमा राशि का भुगतान प्राप्त करना
3. सरकारी चिकित्सक द्वारा चिकित्सालय समय में घर पर फीस लेकर रोगी को देखना
4. शिक्षकों द्वारा ट्यूशन कराना, प्रश्न पत्र बताना व अंक बढ़ाना
5. किराया लेकर ट्रेन या बस का टिकट न देना या कम राशि की टिकट देना

6. सरकारी स्टेशनरी, दवा, उपकरण, फर्नीचर इत्यादि को बेचना या अपने घर पर ले आना अथवा निजी इस्तेमान में लाना
7. कम कीमत अदा करके अधिक की रसीद प्राप्त करना
8. यात्रा बिल में वास्तविक श्रेणी के बजाए उच्च श्रेणी की राशि उठाना
9. व्यक्तिगत कार्यों की क्रियान्विति हेतु सरकारी टूर बनाना
10. सरकारी कार्य में घटिया स्तर की सामग्री प्रयुक्त करना
11. राशन सामग्री गायब करना
12. उपस्थिति पंजिका में हस्ताक्षर करके अनुचित रूप से सीट से गायब रहना
13. लाइसेंस, परमिट, अनुमति तथा अनापत्ति प्रमाण-पत्र इत्यादि में अनियमितता बरतना
14. निजी क्षेत्र से प्रतिस्पर्द्धा में अनैतिक कृत्य करके सरकार को हानि पहुंचाना
15. झूठे प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करना या उनकी स्वीकृति देना
16. सरकारी कर्मचारी द्वारा अपनी पत्नी या सम्बन्धी के नाम से कोई एजेंसी लेना या स्वयं उसके कार्य से संलग्न रहना
17. वरीयता या प्राथमिकता क्रम को भंग करना
18. सरकारी कानूनों व नियमों की कमियाँ दूसरों को बताकर प्रशासन को हानि पहुँचाना तथा
19. निःशुल्क पास सुविधा का दुरुपयोग करना।

भ्रष्टाचार की विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

1. भ्रष्टाचार में स्वार्थपूर्ति के लिए लघुमार्ग अपनाया जाता है।
2. इसमें नगद या वस्तु के रूप में धूस दी जाती है।
3. इसमें अयोग्य के प्रति पक्षताप व योग्य के प्रति अन्याय होता है। इससे अन्ततः समाज को हानि होती है।

4. यह लेन-देन के सिद्धान्त पर आधारित है।
5. भ्रष्टाचार में पैसा उद्देश्य भी है और साधन भी है।
6. भ्रष्टाचार में कानून या नियमों की अवहेलना की जाती है। कभी-कभी कानून के विपरीत न होने पर भी न्याय एवं नैतिकता के विरुद्ध आचरण भ्रष्टाचार कहलाता है।
7. भ्रष्टाचार में व्यक्ति अपने निश्चित कर्तव्य का उल्लंघन करता है।
8. भ्रष्टाचार में कर्तव्यों का उल्लंघन जान-बूझकर किया जाता है।
9. भ्रष्टाचार में कर्तव्यों का उल्लंघन प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कोई अनुचित लाभ उठाने के लिए किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न नं. 1

1. भ्रष्ट से क्या तात्पर्य है?
2. कौटिल्य के द्वारा भ्रष्टाचार कितने प्रकार के बताये गये हैं?

16.3.3 भ्रष्टाचार के कारण

जैसा कि हम जानते हैं भ्रष्टाचार का मूल कारण मानव नीयत में विद्यमान है। यद्यपि भ्रष्टाचार के मूल में अनेक राजनीतिक, सामाजिक, भौगोलिक तथा सांस्कृतिक कारक निहित हैं। आज हम समाज के किसी एक क्षेत्र विशेष को ही भ्रष्टाचार का दोषी नहीं ठहरा सकते समाज के सभी क्षेत्र और वर्ग इस भ्रष्टता में बुरी तरह डूबे हुए हैं। समस्त देश की व्यवस्था सड़-गल गयी है जिसमें आमूल-चूल परिवर्तन की तीव्र आवश्यकता है। तथाकथित सम्भ्रान्त लोगों ने भ्रष्टाचार का निर्वाह बड़ी शालीनता से किया है। इनका पहला कार्य शिक्षण को जीवन से अलग करना है। जनसाधारण से कहा जाता है कि शिक्षण के बिना राष्ट्र का कल्याण होने वाला नहीं है। वास्तविकता यह है कि शिक्षा को इस ढाँचे में ढाला जाता है कि पढ़कर नवयुवक अपने स्वावलम्बी जीवन में सर्वथा असमर्थ हो जाता है। वह सिर्फ इन लोगों की सरकार में अर्थ तन्त्र में एक अफसर, क्लर्क या कारीगर बनकर रह जाता है। शिक्षा के माध्यम से एक ऐसी फौज खड़ी हो जाती है जिसका इस युग में मुख्य काम पैसा कमाना हो जाता है। परिणामस्वरूप सीमित साधनों में भौतिक ऐश्वर्य जुटाने के लिए अनैतिक राह भ्रष्टाचार को जन्म देने का कारण बनती है।

भ्रष्टाचार के कतिपय विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण कारण इस प्रकार से हैं :-

1. राजनैतिक इकाइयों: - राजनीति में भ्रष्टता का सबसे बड़ा कारण चुनाव, वोट और कुर्सी के लिए किये गये दांव-पेंच हैं। स्वतन्त्रता से पूर्व स्वाधीनता संग्राम के समय में राजनीति एक 'मिशन' के रूप में थी, किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् इसने 'कमीशन' का रूप ले लिया है। वर्तमान समय में राजनेता के जीवन विकास की प्रक्रिया में एक क्रम है, पहले प्रभावी या सरकार जिसकी है, उस पार्टी का टिकट प्राप्त करने की दौड़, जाति, पैसे आदि के आधार पर यदि टिकट मिल जाये तो फिर चुनाव की जोड़-तोड़, विभिन्न प्रकार की सांठ-गांठ, चुनाव जीत गये तो फिर मंत्री पद प्राप्त करने और उसे बरकरार रखने तक यही राजनेता का जीवन-चक्र है। इस सब में जन-सेवा तो सबसे गौण बात है। सामाजिक परिवर्तन, नियन्त्रण तथा नैतिक विकास में राजनेताओं की आदर्श छवि किसी भी देश के लिए गर्व की बात होती है लेकिन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का पतन तथा इसके कर्णधारों की धूमिल होती छवि एक गंभीर चिंता का विषय बन चुकी है। ये लोग प्रजा को मताधिकार तो देते हैं फिर उसका उपभोग स्वार्थी तत्वों द्वारा भी करते हैं। कहीं प्रलोभन, कहीं रूपया, कहीं धोखा और कहीं जूता, कहीं रिश्ता तो कहीं बिरादरी, ये सारे हथकण्डे भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने के लिए अपनाते हैं। स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार का जन्म सत्ता के उच्च शिखरों में होता है जो शनैः-शनैः सम्पूर्ण तन्त्र में रिस जाता है। राजनीति से ही प्रभावित यह भ्रष्टता प्रशासन तंत्र में घुस बैठती है। वस्तुतः प्रशासन मंत्रियों की अधीनस्थ सेवा है, यदि मंत्रियों में भ्रष्टाचार फैला हुआ है तो प्रशासन में उससे बेहतर व्यवहार की अपेक्षा नहीं की जा सकती। हमारे देश में रिश्वत के बिना फाइल क्या कोई कागज़ ज़रा भी आगे खिसकने से इनकार करता है। प्रांतीय सेवाओं में हर पद का ऐसा ऊंचा रेट हो गया है कि उसे दे पाना हर एक के बूते की बात नहीं। जो इस ऊंचे रेट को देकर पद प्राप्त करते हैं वे जल्दी ही इस रूपये को वसूलने के चक्कर में पड़ जाते हैं इस प्रकार पूरा प्रशासन-तंत्र और नौकरशाही भ्रष्टाता में डूबी हुई है।

2. व्यापार एवं राजनीति में निकट सम्बन्ध:- बड़े-बड़े व्यापारियों और राजनीतिज्ञों के बीच गठबन्धन के कारण कई उद्योगपति चुनाव के समय राजनीतिज्ञों तथा विशेषतः सत्तारूढ़ दल को भारी रकम, आर्थिक सहायता के रूप में देते हैं तथा उनके सत्ता में आने पर उनसे कई लाभ उठाते हैं ऐसे लोग चाहते हैं कि वे कम टैक्स चुकायें, टैक्स की चोरी करें, वस्तुओं में मिलावट करें, और वस्तुओं को संग्रह करें, ; सत्यम घोटाला अधिक मुनाफा कमायें और इन सारे कार्यों के लिए कई राजनेता उन्हें संरक्षण प्रदान करते हैं।

3. प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था के दोष:- प्रजातन्त्र में दलीय प्रणाली महत्वपूर्ण है। दल को समर्थन देने वाले व्यक्ति अपने हितों के अनुरूप शासक दल से कार्य करवाते हैं। दलगत राजनीति भी

भ्रष्टाचार के लिये उत्तरदायी है। अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए सत्तारूढ़ दल सभी प्रकार के उचित व अनुचित कदम उठाता है। भारत में 'आयाराम -गयाराम' ; दल-बदल की राजनीति ने भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया हो।

4. कार्मिक नीतियाँ:- कुछ वर्षों में कुछ ऐसे उद्देश्यों से गलत कार्मिक नीतियाँ अपनायी गई, जिससे अफसरशाही कमजोर हो गई हो, उसका मनोबल टूट सा गया है। आज उच्च सरकारी वर्ग में पदोन्नति कार्य कुशलता से जुड़ी नहीं है। अवसरवादी व्यक्ति जो अधिकतर योग्यता व ईमानदारी में शून्य होते हैं, परन्तु लचीली अन्तरात्मा व मुखौटे लिये घूमते हैं, महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त हो जाते हैं। कई बार वरिष्ठ, योग्य, ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ अधिकारियों को जानबूझकर ऐसे पदों से दूर रखा जाता है। कभी-कभार ऐसे योग्य व्यक्तियों को बार-बार स्थानान्तरित कर अन्य ऐसी युक्तियों के द्वारा पेशान किया जाता है। इन परिस्थितियों के कारण अधिकारी वर्ग का मनोबल इतना कमजोर हो गया है कि यह वर्ग अब सरकारी नीतियों को लागू करने में अपने को अक्षम पा रहा है। वह इतना हतोत्साहित है कि वह रोजमर्रा का सामान्य प्रशासन चलाने में भी कठिनाई अनुभव करता है। इसमें संदेह नहीं कि भारतीय राजनीतिज्ञ भी इस दशा के लिए जिम्मेदार हैं। सरकार की नीतियों, कार्यक्रमों तथा नौकरशाही की कार्यशैली में कोटा, परमिट तथा लाइसेंस प्रणालियों में भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है। जिन व्यक्तियों के पास साधन थे, वे अपने व्यापार या उद्योग का विस्तार करते गये और इस प्रक्रिया में बाधा अनुभव करने पर सम्बन्धित कार्मिक अथवा प्रशासन को खरीद कर भ्रष्टाचार को बढ़ावा देते हैं।

5. सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन:- वर्तमान समय में सामाजिक मूल्य बदलते जा रहे हैं। अब व्यक्तिवाद और भौतिक लाभ को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। आज व्यक्ति का मूल्यांकन धन के आधार पर होने लगा है। अतः व्यक्ति सभी प्रकार के अनुचित साधनों का प्रयोग कर सम्पत्तिशाली बनना चाहता है जिसके लिये वह भ्रष्ट साधनों का उपयोग करने से भी नहीं हिचकिचाता। मानव का भौतिकवादी होना समस्या का सबसे गंभीर पक्ष है। इसमें व्यक्ति के पास एकत्रित भौतिक वस्तुएं उसकी जीवन शैली को और सुविधाजनक तो बनाती हैं। जिसको वह अपना प्रतिष्ठा का परिचायक समझता है। समाज में व्यक्ति के पास उपलब्ध सम्पत्ति का आकलन तो किया जाता है। किन्तु इस विषय पर विचार नहीं होता कि एकत्रित सम्पत्ति का स्रोत क्या है। अतः यह कहा जा सकता है कि इसके द्वारा भ्रष्टाचार को सामाजिक मान्यता प्राप्त हो जाती है।

6. मुद्रा अर्थ-व्यवस्था:- मुद्रा अर्थव्यवस्था के प्रचलन के कारण धन संग्रह करना और उसे छिपाकर रखना सरल हो गया है।

काका हाथरसी ---

धन्य तूरिश्चत रानी, अनगिनत तेरे नाम

हक, पानी, बक्शीस, भेंट, रिश्चत, घूस,

इनाम नज़र, नजराना, पगडी, तेरे

कारन खॉऊ माल की इन्कम तगडी।

7.विकास के असमान अवसर:- सभी लोगों को विकास के समान अवसर प्राप्त न होने के कारण भी कई लोग अपना विकास करने एवं साधन जुटाने के लिए भ्रष्टाचार का सहारा लेते हैं। पूरी व्यवस्था पर भ्रष्ट अफसरशाह और नेता काबिज हो गये हैं और कमाई वाले पदों पर बने हुये हैं। इन लोगों ने घूसखोरी और सरकारी योजनाओं के धन को हेराफेरी का एक फलता-फूलता व्यवसाय बना दिया है। इनके भ्रष्टाचार के लिए किसी सबूत की जरूरत नहीं है। देश के बड़े-बड़े महानगरों में इनकी आलीशान कोठियां, फार्म हाउस, मंहगी गाड़ियों और तमाम नामी बेनामी सम्पत्तियां हैं। आज भारतीय अफसरशाही को अधिकतर लोग दबू, अयोग्य व भ्रष्ट व्यक्तियों का समूह समझते हैं। यह छवि किसी भी मानक के अनुसार गलत या अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं है।

8.प्रशासकीय कठिनाइयों:- राजनीतिक संस्थाओं का विशाल क्षेत्र होने के कारण सभी व्यक्ति इन संस्थाओं के कार्यों का लाभ नहीं उठा पाते। वे इन प्रशासकीय कठिनाइयों और बारीकियों से पूर्णतः परिचित नहीं हो पाते। अतः झंझटों से मुक्ति पानेके लिए वे रिश्चत के रूप में रूपया देकर अपना काम निकलवा लेते हैं।

9.अशिक्षा:- भारत में अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित है। अशिक्षितों की अनभिज्ञता का लाभ उठाने के लिए कर्मचारी एवं अधिकारी-गण उनसे किसी न किसी प्रकार से रिश्चत के रूप में रूपया ऐंठ लेते हैं।

10.कानून की अनभिज्ञता:- विभिन्न क्षेत्रों में कानून की अधिकता एवं कानून की बारीकियों से सभी लोग परिचित नहीं हैं। अतः जो लोग कानून के रक्षक माने जाते हैं, वे लोगों की कानून के प्रति अनभिज्ञता का लाभ उठाकर रिश्चत लेते है।

11.नियन्त्रण प्रणाली:- प्रशासनिक कार्यों में नैतिकता समाहित करने तथा जवाब देयता सुनिश्चित करने के लिये अनेक कानून तथा प्रशासनिक संरचनाएं कार्यरत हैं किन्तु नियंत्रण का यह तंत्र प्रायः निष्क्रिय और अकार्य कुशल पाया गया है। सतर्कता आयोग, भ्रष्टाचार निरोधक विभाग, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, पुलिस एवं गुप्तचर विभाग। जन प्रतिनिधि- ;मंत्रीद्ध लेखा परीक्षक तथा लोकायुक्त

सहित भ्रष्टाचार नियंत्रण की विभागीय प्रणालियाँ सम्पूर्ण मारक क्षमता से क्रियाशील नहीं रह पाती हैं।

12. चारित्रिक एवं नैतिक पतन:- चरित्र एवं नैतिकता में पतन भ्रष्टाचार के लिए काफी कुछ सीमा तक उत्तरदायी है। आज व्यक्ति का मूल्यांकन धन के आधार पर किया जाता है, चाहे वह अनैतिक तरीके से ही एकत्रित किया गया हो। प्राचीन काल में समाज की संरचना, सरल थी, जीवन की इच्छाएं कम थी तथा ग्रामीण परिवेश में नैतिकता का एक विशिष्ट महत्व था। वर्तमान भारत में सच्चरित्रता या ईमानदारी की बातें करने वाला 'उपहास' का पात्र बन जाता है क्योंकि मानसून में तैरते मेढ़कों के झुण्ड में कोयल की कौन सुनें? भारत में भ्रष्टाचार की स्थिति को स्पष्ट करते हुए नीरद सी. चौधरी ने लिखा है- छोटे से क्लर्क से लेकर मंत्री तक शायद ही कोई व्यक्ति हो जिसे किसी न किसी मात्रा में धन द्वारा नियंत्रित न किया जा सके। भ्रष्टाचार के इस तंत्र को उजागर करते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री, 1985 श्री राजीव गॉंधी ने कहा था कि विकास कार्यों के लिए मैं केन्द्र से एक रूपया भेजता हूँ लेकिन जरूरतमंद तक 15 पैसे ही पहुँच पाते हैं। वर्तमान समय में तो यह स्थिति सुधरने की बजाय और बिगड़ गयी है- श्री राहुल गॉंधी महासचिव कांग्रेस, के बयान के अनुसार 'मेरे पिता राजीव गॉंधी ने एक बार कहा था कि एक रूपये में 15 पैसे ही आम आदमी तक पहुँच पाते हैं। मैंने कई जिलों का दौरा किया है। ऐसा नहीं लगता कि पाँच पैसे भी गरीब तक पहुँचते होंगे।

13. भ्रष्टाचार पनपाने में उच्चाधिकारियों का सहयोग - भ्रष्टाचार तभी पनपता है जब उच्चाधिकारियों का सहयोग हो। जब कलैक्टर, एस. पी. और मंत्रीगण ही भ्रष्ट होंगे तो उनके अधीन कर्मचारी भी भ्रष्ट होंगे। जब रक्षक और शासन करने वाले व्यक्ति ही भक्षक और भ्रष्ट हों तो सामान्य लोगों से क्या अपेक्षा की जा सकती है।

14. देश भक्ति में हास या अपकर्ष ; स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में भ्रष्टाचार बढ़ा है। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात यहाँ के अधिकांश नागरिक स्वयं को स्वतंत्र नहीं अपितु स्वच्छन्द समझने लगे हैं। यहाँ की जनता, सरकार को स्वयं से सर्वथा पृथक् समझती है देश के सरकारी कार्मिक से लेकर आम आदमी तक हर कोई सरकार को पराएपन की नजर से देखता है।

सरकारी संस्था को लूटने या हानि पहुँचाने को सामान्यतः अपराध नहीं माना जा रहा है। यहाँ लोक तंत्र नहीं लूटतंत्र राज करता है। बहुत से नागरिक तो देश की सीमाओं पर युद्ध करने को ही देशभक्ति का परिचायक मानते हैं। रिश्वत देना और लेना दोनों ही भ्रष्टाचार के अन्तर्गत आते हैं। कई बार ऐसा भी होता है जब व्यक्ति अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु सरकारी कार्मिक को प्रस्ताव करके रिश्वत देता है। ऐसी स्थिति में भ्रष्टाचार का फैलाव सरलता से होता है। जिसके कारण देश को इतनी बड़ी

हानि पहुँचती है जिनके परिणाम दूरगामी होते हैं। जैसे शासन की जगह शोषण, न्यायपालिका की जगह भ्रष्ट पालिका लोकतंत्र की जगह लूट-तन्त्र, और इस प्रकार सम्पूर्ण दम घोटू भ्रष्टतंत्र का निर्माण हो जाता है।

15. वेतनमानों में विसंगतियाँ:- विशाल भू-भाग तथा विविध सामाजिक आर्थिक जटिलताओं के कारण भारत के प्रत्येक स्थान पर जीवनयापन एक समान नहीं है। गाँवों में कम आय में भी सम्मानपूर्वक जीवन बिताया जा सकता है। वहीं महानगरों में विपुल धनराशि भी अपर्याप्त सिद्ध होती है। जिन कर्मचारियों को वेतन कम मिलता है वे अपनी आवश्यकताओं एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिए भ्रष्ट तरीके से धनोपार्जन करने का मार्ग तलाशते हैं। इसके अलावा प्रतिवर्ष फरवरी तथा मार्च माह में सरकारी अधिकारियों को या तो अधिकांश रूप से बचत योजनाओं में विनियोजित करने पड़ते हैं अथवा आयकर के रूप में सरकार को चुकाने होते हैं। सारांशतः भारत में कार्य पद, योग्यता, मँहगाई तथा परिस्थिति के अनुसार वेतन नहीं दिया जाता है। अतः कतिपय कार्मिक मजबूर होकर अवैधानिक तरीकों से आय करना भी शुरू कर देते हैं।

16. कर्मचारी संघ:- आज सरकारी और गैर सरकारी सभी विभागों में कर्मचारियों के संघ एवं संगठन बने हुए हैं। जब भी किसी कर्मचारी पर रिश्तत लेने या भ्रष्ट होने का आरोप लगाया जाता है या उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही की जाती है या उसका स्थानान्तरण कर दिया जाता है तो ये संगठन ऐसी किसी भी कार्यवाही का समान्यतः विरोध करते हैं। वे कर्मचारी के प्रति अन्याय एवं शोषण का नारा बुलन्द करते हैं तथा हड़ताल करते हैं। ऐसी स्थिति में भ्रष्ट अधिकारियों के विरुद्ध कोई कदम उठाना बड़ा कठिन होता है। इससे भ्रष्टाचार को प्रश्रय एवं बढ़ावा मिलता है।

16.3.4 भ्रष्टाचार के परिणाम

भ्रष्टाचार आज रामनाम की लूट बन गया है- इतना ही नहीं, यह बढ़ भी द्रोपदी की चीर की तरह रहा है। इसे जितना रोकने की कोशिश की जा रही है उतना ही बढ़ता जा रहा है। भ्रष्टाचार त्याग की तरह ऊपर से शुरू होता है और नीचे की ओर प्रसारित होकर सम्पूर्ण समाज को अपने रंग में रंग लेता है। वास्तव में भ्रष्टाचार ऊँचे आसनों पर अधिक गहरे और भयानक रूप में है। भ्रष्टाचार के निम्नांकित परिणाम होते हैं।

1. वृहत वफादारी के स्थान पर स्थानीय वफादारी बढ़ती है और देश एवं सामुदायिक हितों के स्थान पर व्यक्तिगत व स्थानीय हितों को महत्व दिया जाता है। परिणामस्वरूप राजनीतिक स्थिरता और एकता खतरे में पड़ जाती है।

2.मिर्डल का मत है- कि भ्रष्टाचार के कारण लालफीताशाही व उत्तरदायित्व से भागने की प्रवृत्ति बढ़ती है और लोग अक्षम हो जाते हैं। तथा विकास कार्य रूक जाता है।

3.नियमहीनता और कानून की अवहेलना में वृद्धि होती है।

4.महँगाई बढ़ती है।

5.जन मानस में आक्रोश,तनाव, निराशा एवं संघर्ष पैदा होता है - जन मानस में भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति उमड़ते इस आक्रोश की अभिव्यक्ति आये दिन निकलने वाले जुलूस, हड़ताल, बंद, तोड़-फोड़ की अन्य कार्यवाही हिंसा आदि के द्वारा भी होती हैं। अब तो विभिन्न वर्गों की रैलियों आम हो गयी हैं, किसान, अध्यापक, मिल मजदूर, सरकारी कर्मचारी आदि सभी रैलियों कर रहे हैं। सरकार के लिए भी यह प्रदर्शन अब आम हो गये हैं, इसलिए उनका विशेष असर नहीं रह गया है। गॉंधी जी का यह अस्त्र नाकाम सा नज़र आता है और इसका प्रयोग गलत रूप में तो हो ही रहा है किन्तु प्रदर्शन रैलियों भी आज एक आवश्यकता बने नज़र आते हैं। इनके बिना सरकार के कानों पर जूँ ही नहीं रेंगती है।

6.राष्ट्रीय चरित्र एवं नैतिकता का पतन होता है।

16.3.5 वर्तमान में भ्रष्टाचार के बदलते आयाम

लम्बे संघर्ष और बलिदान के बाद जब यह देश आजाद हुआ था तो आम आदमी में भी खुशहाली के साथ अमन चैन की अरमान भरी संभावनाएं पैदा हुई थी। उसने सोचा था कि अब वह आजाद देश का नागरिक है और सिर ऊँचा करके चलने का अधिकारी है। देश के रक्तरंजित बंटवारों के बावजूद लोगों को बहुत आशाएं थीं। नये शासकों के सामने भी समस्याएं कम नहीं थीं लेकिन वे आतंकित नहीं थे। उनके पास आजाद भारत के मार्ग दर्शन के लिए कुछ योजनाएं थी और उनकी निगरानी में सफर की शुरूआत हुई। विषम परिस्थितियों और कठिन चुनौतियों के बावजूद ऊँचे लक्ष्य रखे गये ताकि वे लोगों का जीवन स्तर सुधार सकें और राष्ट्र को आत्मनिर्भर बना सकें। उनके प्रयास व्यर्थ नहीं गये और देश ने एक मजबूत आधार व्यवस्था का ढांचा निर्मित किया। आज देश की एक तिहाई आबादी निपट दरिद्रता में गुजर-बसर करती है लेकिन भारत की अर्थव्यवस्था मजबूत भी हुई है। आजादी का सुखभोग करते-करते कई दशक बीत गये। जिन्होंने आजादी की लड़ाई में हिस्सा लिया था, उन्होंने शायद ही इतना सुख भोग किया हो जितना अब की पीढ़ी के लोग कर रहे हैं वे तो देश की तरक्की के लिए खून-पसीना बहाते रहे, लेकिन अब तो हालत इतनी बिगड़ गयी है कि लक्ष्य ही कुर्सी हथियाना रह गया। बस कुर्सी बची रहनी चाहिए चाहे कुछ भी करना पड़े। जन सेवा के नाम पर परिवार सेवा और सात पीढ़ी की सुरक्षा, सुख-समृद्धि का इन्तजाम

ही ध्येय रह गया है। इस जोड़-तोड़ में अगर फंस जाते हैं तो कानून तक बदलने की सोचने लगते हैं। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल के सर्वे में यह बात उभर कर आयी है कि देश में सबसे ज्यादा भ्रष्ट राजनीतिक दल ही है। तत्पश्चात् कानून व्यवस्था संभालने वाली पुलिस, न्यायपालिका, तथा भूमि प्रशासन आते हैं।

आज सत्ता की रामनामी ओढ़कर सभी का भ्रष्टाचार की वैतरणी तैरना आम बात हो गयी है। यह आम कहावत हो गयी है कि अगर भ्रष्टाचार रिश्वत में पकड़े जाओ तो भ्रष्ट तरीके अपनाकर रिश्वत, देकर ही छूट पाओगे। आज महान वही है जो महान भ्रष्टाचारी है जिसकी ऊँचे- ऊँचे भ्रष्टाचारी नेता और अफसरों से सांठ-गांठ है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि आज सभी भ्रष्टाचार के आगोश में समा चुके हैं।

सुविधाभोगी होते समाज को भ्रष्टाचार का अजगर निगल रहा है। उदाहरण स्वरूप राष्ट्रमंडल खेल घोटाला, आदर्श सोयायटी घोटाला, टू जी स्पेक्ट्रम घोटाला,, हाउसिंग लोक घोटाला। आज स्थिति यह है कि जॉच एजेंसिया जब तक किसी घोटाले की तह तक पहुँचती हैं, दूसरा घोटाला सामाने आ जाता है।

भ्रष्टाचार रूपी असाध्य रोग अब हमारे देश के आर्थिक महाशक्ति बनने में भी बड़ा अवरोध साबित हो रहा है। इससे हर साल अर्थव्यवस्था को करोड़ों रूपये की चपत लगती है। सेना, न्यायपालिका और खुफिया जैसे अपेक्षाकृत साफ-सुथरे और दाग रहित संस्थानों में भी भ्रष्टाचार की नई प्रवृत्ति ने आम आदमी को आवाक् किया है।

जड़ों का जमाव:- आजादी के बाद देश में 1950.90 के बीच समाजवाद से प्रेरित नीतियाँ लागू की गईं इसके तहत अर्थव्यवस्था को मजबूती से नियंत्रण में रखा गया। संरक्षणवाद और सार्वजनिक इकाईयों को पोषित किया गया। लिहाजा लाइसेंस राज का उदय हुआ। जिससे आर्थिक वृद्धि मंद पडी और भ्रष्टाचार का बोलबाला बढ़ा।

अफसरशाही:- ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल के अनुसार देश के 50 प्रतिशत से अधिक लोगों को सरकारी दफ्तरों में अपना काम कराने के लिए रिश्वत देना या प्रभाव का इस्तेमाल करना पड़ता है।

2009 में किए गए सर्वे के मुताबिक देश में अफसरशाही की कार्य कुशलता का स्तर एशिया की दिग्गज अर्थव्यवस्थाओं वाले देशों मसलन सिंगापुर, दक्षिण कोरिया, जापान, चीन और इंडोनेशिया की तुलना में दोयम दर्जे का है।

भूमि और सम्पत्ति:- अधिकारी राज्य की सम्पत्ति को ही चुरा लेते हैं, बिहार में 80 प्रतिशत से भी ज्यादा रियायती दरों पर गरीबों को दी जाने वाली खाद्य सहायता चुरा ली जाती है।

पूरे देश में पनप चुका भूमाफिया राजनीतिज्ञों, अफसरों, बिल्डरों, की मदद से अवैध तरीके से भूमि का अधिग्रहण कर उसको गैरकानूनी ढंग से बेच देता है।

टेंडर और कांटैक्ट प्रक्रिया:- नीलामी प्रक्रिया में पारदर्शिता का घोर अभाव है। सरकारी अधिकारी बोली लगाने में अपने चहेते चुनिंदा लोगों के हक में टेंडर जारी कर देते हैं। सरकार द्वारा सड़क निर्माण कार्य में तो कंस्ट्रक्शन माफिया का बोलबाला है।

स्वास्थ्य:- सरकारी अस्पतालों में भ्रष्टाचार, दवाओं की गैर मैजुदगी, मरीज को भर्ती करने की जिद्दोजहद, डाक्टरों की अनुपलब्धता से जुड़ा है। हाल ही में राजधानी उत्तर प्रदेश में सी. एम. ओ. के मर्डर जैसी घटनाएं विभागीय भ्रष्टाचार का परिणाम है।

न्यायपालिका:- ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल के मुताबिक मुकदमों के निपटारे में होने वाली देरी जटिल न्यायिक प्रक्रिया और जजों की कमी के कारण न्यायिक तंत्र के भ्रष्टाचार पनप रहा है।

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो की रिपोर्ट के अनुसार भ्रष्टाचार निरोधक कानून तथा आई. पी. सी. की धाराओं के तहत लगभग 29117 लोगों पर भ्रष्टाचार के मामले चल रहे हैं। जॉच एजेंसियों और अदालतों की रफ्तार इतनी सुस्त है कि सालभर में एक हजार भ्रष्ट लोगों को भी सजा नहीं हो पाती। अगर किसी को सजा होती भी है तो अधिकतम सात साल की जबकि उसकी काली कमाई उसके पास ही रहती है।

एन. सी. आर. बी. राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार भ्रष्टाचार के करीब 17792 मामले विभिन्न अदालतों में घूल फांक रहे हैं। अकेले सीबी आई. के पास 9910 भ्रष्टाचार के मामले लंबित पड़े हैं।

सशस्त्र सेना:- सेना में भी भ्रष्टाचार अचंभित करता है। हाल के वर्षों में सुकना भूमि घोटालें में तो सेना के चार लेफ्टिनेंट जनरल स्तर के अधिकारियों पर आरोप लगे हैं। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल के एक अध्ययन के मुताबिक सरकार द्वारा जनता को दी जाने वाली 11 बुनियादी सुविधाओं मसलन शिक्षा, स्वास्थ्य, न्यायपालिका और पुलिस वगैरह में भ्रष्टाचार को यदि मौद्रिक मूल्यों में आंका जाए तो यह करीब 21068 करोड़ रुपये का होगा।

स्विस बैंक में जमा देश की धनराशि: देश के 66 हजार अरब रूपये स्विस बैंक में जमा है। इस जमा काले धन के मामले में दुनिया के सभी देशों में भारत अक्वल है। यह रकम हमारे ऊपर कुल विदेशी कर्ज की 13 गुना है।

9.6 लाख करोड़ रूपये:- आजादी के बाद से 2008 तक अवैध तरीकों से विदेश भेजी गई रकम है। ग्लोबल फाइनेंशियल इंटीग्रिटी के अनुसार आज की तारीख में इस धनराशि की कीमत करीब 21 लाख करोड़ रूपये होगी।

भ्रष्टाचार सूचकांक: ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल द्वारा जारी सूचकांक में भारत सर्वाधिक भ्रष्ट देशों में शुमार है। साल दर साल स्थिति सुधरने की बजाय और बिगड़ रही है।

साल	रैंक	स्कोर	
2001	71	2.7	91 देशों में
2003	71	2.7	102 देशों में
2004	83	2.8	133 देशों में
2005	90	2.8	145 देशों में
2006	88	2.9	158 देशों में
2007	70	3.3	163 देशों में
2008	72	3.5	179 देशों में
2009	84	3.4	180 देशों में
2010	87	3.3	178 देशों में

16.3.6 भ्रष्टाचार उन्मूलन: सुझाव एवं प्रयास

भ्रष्टाचार उन्मूलन मूलतः एक व्यक्तिगत लड़ाई है य स्वयं से लड़ाई और उसके बाद ईमानदार लोगों को संगठित करने और फिर प्रशासन में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने का काम है जिससे देश के कार्यों को कहीं अच्छे ढंग से और कहीं अधिक तेजी से निपटाया जा सके। इस सम्बन्ध में सरकार को भी व्यापक आन्दोलन चलाना चाहिए जिससे जनता में यह भावना पैदा हो, कि वे रिश्तत देना और लेना दोनों ही अनुचित समझें।

भ्रष्टाचार का जाल सरकारी नीतियों और प्रशासनिक कार्य प्रणाली के अलावा लोगों की मानसिकता एवं समाज में मौजूद मूल्यों पर आधारित है। जरूरी है कि भ्रष्टाचार के प्रति जन सामान्य की मानसिकता व सामाजिक सोच और मूल व्यवस्था में बदलाव लाया जाये। भ्रष्टाचार को दूर करने हेतु समय-समय पर कई संकल्प किये गये। अनेक समितियों और आयोगों का गठन किया गया। फिर भी इससे छुटकारा नहीं मिल पाया है। इसलिए इस खतरे का मुकाबला लोकतंत्र के गाँधीवादी तरीके से ही किया जा सकता है। इसके लिए जनता को विभिन्न वर्गों के ऐसे समूह बनाने होंगे जो राजनीतिक, प्रशासनिक और सामाजिक सुचिता के लिए संघर्ष कर सके। क्योंकि दूध मे पानी की तरह घुल चुके भ्रष्टाचार को रोकने के लिए आम नागरिकों की भागीदारी से ही भ्रष्टाचार को जड़ से मिटाया जा सकता है। अतः भ्रष्टाचार को रोकने की आशा, अब देश के संवेदनशील, संघर्षशील समाजसेवियों से ही की जा सकती है। ऐसे ही कुछ लोगों ने मिलकर सार्थक लोकपाल बिल का मसौदा तैयार किया। भ्रष्टाचार पर नकेल कसने के लिए खासतौर पर बनाया गया लोकपाल विधेयक पिछले 42 (1968 से) सालो से पारित ही नहीं हो पा रहा है। यह हाल तब है जब सरकारी लोकपाल विधेयक की नख दंत विहीन बताया जा रहा है, इसमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिससे भ्रष्टाचार के दानव का खात्मा हो सके। इस विधेयक की तमाम खामियों को दूर करने के लिए जाने माने सामाजिक कार्यकर्ता और गाँधीवादी अन्ना हजारे ;किशन बाबूराव हजारे ;1938 ने 5 अप्रैल 2011 से दिल्ली के जंतर-मंतर पर अनिश्चित कालीन भूख हड़ताल शुरू की। वे सरकार द्वारा प्रस्तावित लोकपाल विधेयक को नख दंत विहीन मानते हैं। उनकी मांग यह थी कि इसकी जगह जन लोकपाल विधेयक कानून बनाया जाए। लगभग चार दिन चला अन्ना हजारे का अनशन रंग लाया। सरकार को लोकपाल विधेयक का मसौदा तैयार करवे वाली साझा समिति पर अन्ना की सभी माँगों को मानना पडा और सरकारी आदेश ;जी0 ओ0 जारी कर इस समिति को औपरचारिक रूप देने की घोषण भी करनी पड़ी।

हांगकांग में 1974 में जन लोकपाल जैसा कानून बनाया गया था, जिससे वहाँ से भ्रष्टाचार समाप्त करने में कामयाबी मिली। अगर यह कानून बना दिया गया तो भारत में भी भ्रष्टाचार को नष्ट किया जा सकता है।

सूचना का अधिकार:- भ्रष्टाचार पर लगाम कसने व सरकारी जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए 12 अक्टूबर, 2005 में सूचना का अधिकार कानून बना।

लोक आयुक्त ;ऑम्बड्समैन:- लोक आयुक्त भ्रष्टाचार निरोधक संगठन है। ये संस्था स्कैंडेनेविया देशों की तर्ज पर बनाई गई है। देश के सभी राज्यों में एक समान रूप से काम करने के लिए तीन सदस्यीय लोक आयुक्त के गठन का प्रस्ताव संसद में लंबित है।

भ्रष्टाचार को उजागर करने वाले:- चाहे वो मंजूनाथ हों या सत्येन्द्र दुबे, भ्रष्टाचार की उजागर करने में ये व्हिसलब्लोअर्स अहम् भूमिका निभाते हैं। हालांकि देश में अभी उनकी सुरक्षा के लिए कोई कानून नहीं है।

निजी क्षेत्रों द्वारा किए गए उपाय:- फिफ्थ पिलर डॉट ओआर जी, टाटा-टी का जागो रे, एक अरब वोटों और नो ब्राइब डॉट ओ आर जी जैसी निजी क्षेत्र की संस्थाओं ने भी भ्रष्टाचार के खिलाफ मुहिम छेड़ रखी है।

भारत सरकार ने भी भ्रष्टाचार निवारण के लिए समय-समय पर कई प्रयास किये हैं। सन् 1947 में भ्रष्टाचार निवारण कानून पास किया गया। भ्रष्टाचार अधिनियम की कार्यान्विति के सम्बन्ध में आवश्यक सुझाव देने के लिए 1949 में टेकचन्द्र समिति की स्थापना की गयी। 1953 में आचार्य कृपलानी की अध्यक्षता में रेलवे भ्रष्टाचार जाँच कमेटी निर्मित की गयी। गृह मन्त्रालय ने सन् 1955 में प्रशासन सतर्कता विभाग की स्थापना की। जून 1962 में तत्कालीन गृहमंत्री ने संस्थानम् कमेटी की स्थापना की जिसने 1964 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। 1964 में तत्कालीन गृहमन्त्री गुलजारी लाल नन्दा ने भी भ्रष्टाचार निवारण के लिए संस्थानम् कमेटी की सिफारिशों को लागू करने एवं अन्य बड़े कदम उठाने की घोषणा की। श्री के. संस्थानम् की अध्यक्षता में बनी भ्रष्टाचार निरोधन समिति ने सरकार को 137 अनुशंसाएँ भ्रष्टाचार निवारण ;1964 हेतु प्रस्तुत कीं। एवं प्रशासनिक सुधार आयोग ;1966 द्वारा प्रस्तुत सुझाव भ्रष्टाचार को दूर करने से भी सम्बन्धित रहे हैं। इस दिशा में द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग, 2005 का गठन भी एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

भारत में भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए कई तरह की संस्थाओं के रूप में लोकपाल तथा लोकायुक्त की दिशा में प्रयास सम्मिलित हैं। भारत में अब तक प्रशासनिक भ्रष्टाचार के स्वरूप एवं विभिन्न समितियों एवं आयोगों की रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए भ्रष्टाचार के उपचार के लिए निरोधात्मक तथा सकारात्मक निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं -

1. प्रशासनिक भ्रष्टाचार चूँकि राजनीतिक भ्रष्टाचार से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है, इसलिए निर्वाचन प्रक्रिया को सरल बनाकर मन्त्रियों तथा अन्य महत्वपूर्ण नेताओं को पूँजीपतियों के प्रभाव से मुक्त किया जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में मन्त्री या अन्य राजनीतिक नेता, लोक सेवकों पर अनावश्यक दबाव नहीं डालेंगे।

2. फाइलों के सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए एक समय निर्धारित होना चाहिए। यदि उस समय के अन्दर निर्णय नहीं लिया जाता है तो सम्बन्धित पदाधिकारी से 'कारण बताओं' पूछा जाना चाहिए।

साथ ही साथ इस बात की जाँच की भी व्यवस्था होनी चाहिए कि फाइलों का निष्पादन उचित ढंग से हो रहा या नहीं।

3.आई. ए. एस., आई. पी. एस. तथा आई. एफ. एस. के पदाधिकारियों के लिए ऐसे साक्षात्कार की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे योग्य एवं सक्षम व्यक्ति ऐसी सेवाओं में आ सकें।

4.बढ़ती हुई महंगाई से उत्पन्न कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए सेवाओं के वेतनमान में वृद्धि होनी चाहिए।

5.पादाधिकारियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोप की यथाशीघ्र जाँच की व्यवस्था होनी चाहिए और यदि वह भ्रष्टाचार का दोषी पाया जाए तो उसके विरुद्ध जल्द से जल्द कार्यवाही हो जानी चाहिए।

6.साधारण न्यायालयों के कार्यभार तथा निम्न न्यायालयों के मन्त्रियों तथा अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों से प्रभावित होने की सम्भावना को देखते हुए पदाधिकारियों के विरुद्ध आरोप की जाँच के लिए विशेष न्यायालय का गठन भी वांछनीय है।

7.ईमानदार पदाधिकारियों को पदोन्नति तथा अन्य प्रकार के प्रोत्साहन मिलने चाहिए ताकि अन्य पदाधिकारी भी पदोन्नति पाने एवं नाम पैदा करने की कोशिश करें।

8.गलत तथा सही कार्यों के प्रचार के माध्यम से भी लोक सेवकों की नैतिकता को प्रभावित किया जा सकता है। इससे प्रशासन के प्रति जनता की जागरूकता में भी वृद्धि होगी और लोकसेवकों के कार्य सम्पादन में भी अनुकूल प्रभाव पड़ेगा।

अभ्यास प्रश्न नं. 2

1. लोक आयुक्त एवं भ्रष्टाचार का क्या सम्बन्ध है?

16.3.7 प्रशासनिक सुधार आयोग की भ्रष्टाचार कम करने के लिए महत्वपूर्ण सिफारिशें ;2007

कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता वाले प्रशासनिक सुधार आयोग की चौथी रिपोर्ट में देश के राजनीतिक, प्रशासनिक एवं न्यायिक परिदृश्य में व्यापक सुधारों एवं भ्रष्टाचार रोकने के उपायों की सिफारिशें की गई हैं। 236 पृष्ठों वाली यह रिपोर्ट 6 सदस्यीय आयोग ने 12 फरवरी, 2007 को प्रधानमंत्री डॉ मनमोहन सिंह को प्रस्तुत की है। इसकी प्रमुख सिफारिशों में निम्नलिखित शामिल हैं-

1. गठबन्धन से हटने वाले राजनीतिक दलों के सदस्यों को पुनः जनादेश लेना चाहिए। इससे केन्द्र एवं राज्यों में गठबन्धन सरकारों को अधिक स्थायित्व मिल सकेगा तथा उन्हें अनावश्यक ब्लैक मेंलिंग से बचाया जा सकेगा।
2. दलबदल विरोधी कानून कड़ा किया जाए। इन कानून का उल्लंघन करने वालों की सदस्यता रद्द करने का अधिकार राष्ट्रपति एवं राज्यपालों के पास हो, जो चुनाव आयोग की सलाह पर फैसला देंगे।
3. निर्वाचित सदस्यों की अयोग्यता निर्धारित करने के लिए अलग से कानून बनाया जाए।
4. मन्त्रियों एवं नौकरशाहों के लिए एक नैतिक आचार संहिता बनाई जाए।
5. सांसद एवं विधायक निधि समाप्त की जाए।
6. राजनीतिक दलों के चुनावी खर्च का आंशिक वित्तीयन सरकार द्वारा किया जाए।
7. मुख्य चुनाव आयुक्त एवं चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति का अधिकार प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाले चयन समूह के पास हों। लोक सभाध्यक्ष, राज्य सभा के उपाध्यक्ष, विधि मंत्री एवं विपक्ष के नेता इस चयन समूह में शामिल रहें।
8. लाभ के पद मामले से सम्बन्धित कानून में संशोधन किया जाए तथा सलाहकार किस्म के पदों को लाभ के पद की परिभाषा से दूर रखा जाए।
9. राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् का गठन किया जाए। उपराष्ट्रपति की अध्यक्षता में बनने वाली इस परिषद् में प्रधानमंत्री, लोक सभाध्यक्ष, सर्वोच्च न्यायाधीश, विधिमंत्री तथा लोक सभा एवं राज्यसभा में विपक्ष के नेता शामिल किए जाने चाहिए। परिषद् की सलाह पर सर्वोच्च न्यायालय एक उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को हटाया जा सके।
10. राष्ट्रीय लोकायुक्त का गठन किया जाए जिसके अधिकार क्षेत्र में सभी केन्द्रीय मंत्री, मुख्यमंत्री व सांसद आदि हों, किन्तु प्रधानमंत्री को उसके दायरे से बाहर रखा जाए।
11. जनसेवक आदि रिश्तत लेते हुए रंगे हाथों पकड़ें जायें तो कानूनी कार्यवाही के लिए पहले मंजूरी लेने की आवश्यकता न हो, यदि किसी मामले में रिश्तत लेने से राज्य, जनता या जनहित का नुकसान हो रहा हो, तो सजा दोगुनी होनी चाहिए।

12. बड़े घोटलों की विशेष जाँच के लिए अलग से कानूनी प्रावधान हो इस सन्दर्भ में आर्थिक अपराध जाँच ऑफिस के गठन की भी संस्तुति है।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने स्टेट ऑफ एम. पी. और अन्य बनाम राम सिंह ;2005 सुप्रीम कोर्ट केसेस पृष्ठ 88 में भ्रष्टाचार की चारित्रिक विशेषतायें बतलाते हुए ‘भ्रष्टाचार को प्लेग की बीमारी की तरह भयावह बताया है एवं जिसके वायरस की तुलना एच. आई. वी. वायरस से की है जिससे एड्स की बीमारी हो जाती है जो कि लाइलाज है।

भारत में भ्रष्टाचार निरोध के लिए विधिक प्रावधान एवं संस्थाएं

Public Servants (Enquiries) Act, 1850	Indian Panal code, 1860
Delhi Police Establishment Act, 1946	Special Polic Establishement, 1941
Commission of Inquiry Act, 1952 (against Political leaders and Eminent Public Men)	Prevention of Corruption Act. 1947 (fujflr) (All India Services(Conduct) Rules, 1954
Central Civil Services (Conduct) Rules, 1955	Railway Services (conduct) Rules, 1956
Central Bureav of Investigation, 1963	Central Vigilance Commission, 1964
State Vigilance Commission, 1964	Prevention of Corruption Act, 1988
Lokayukta (ombudsman) in State	Anti Corruption Bureaus in States
National Consumer Disputes Redressal – Commission	Divisional Vigilance Board
Directorate of Public Grievances in the -cabinet secreatariat 1988	Divisional Vigilanc Office Administrative Tribunals (Quasi Judicial bodies)

16.3.8 भ्रष्टाचार चक्र

1. राजनैतिक तंत्र
2. प्रजातंत्रात्मक शासन व्यवस्था
3. व्यापार एवं राजनीति में निकट सम्बन्ध
4. सरकारी कार्यों का वृहद एवं विशाल क्षेत्र
5. सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन
6. मुद्रा अर्थव्यवस्था
7. विकास के असमान अवसर
8. निर्धनता/गरीबी
9. भ्रष्टाचार उन्मूलन के तरीकों का अभाव
10. देश भक्ति की कमी
11. नैतिक मूल्यों का पतन
12. अशिक्षा
13. अज्ञानता एवं जागरूकता में कमी
14. चरित हीनता/ नैतिक पतन
15. प्रशासकीय कठिनाइयां
16. पूंजी संग्रह की प्रवृत्ति
17. शिक्षा का अभाव
18. बेरोजगारी
19. कानून की अनभिज्ञता
20. अपर्याप्त वेतन/ वेतनमानों में विसंगतियाँ

21. अत्यधिक प्रतिस्पर्धा
22. आबादी में भिन्नता
23. अत्यधिक लाभान्वित होने की प्रवृत्ति
24. उच्चाधिकारियों का सहयोग
25. कर्मचारी संघ
26. अदूरदर्शिता
27. कालाबाजारी
28. वर्गवाद
29. अकर्मण्यता
30. स्वार्थी प्रवृत्ति

अभ्यास प्रश्न

1. कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता वाले प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया गया | सत्य/असत्य
2. 1949 में टेकचन्द्र समिति की स्थापना की गई | सत्य/असत्य
3. 1953 में आचार्य कृपलानी की अध्यक्षता में रेलवे भ्रष्टाचार जाँच कमेटी निर्मित की गयी | सत्य/असत्य
4. 1955 में प्रशासन सर्तकता विभाग की स्थापना की। सत्य/असत्य

16.9 सारांश

इस इकाई में हमने यह अध्ययन किया है कि भ्रष्टाचार में व्यक्ति सामाजिक नियमों का सोच समझकर उल्लंघन करता है तथा अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए दूसरों के हितों की अवहेलना करता है साथ ही व्यक्तिगत लाभ के लिए अपने अधिकारों का दुरुपयोग करता है, मिलावट करता है, रिष्वत लेता है, पक्षपात का सहारा लेता है, निर्माण कार्यों के घटिया स्तर की वस्तुओं का उपयोग करता है। ये सारी बातें नियमों के प्रतिकूल हैं और कानून भी अंधा हो गया है। वैसे भी कानून की हिफाजत करना सभी भारतवासियों का धर्म है परन्तु सभी निजी स्वार्थ एवं भौतिक उपलब्धियों के लिए धर्म का

पालन न करके उसे तोड़ने में विश्वास रखते हैं। मेरा मानना है जब तक स्वयं में चेतना नहीं जागृत होगी तब तक कुछ नहीं हो सकता है। हम लोग मानसिक रूप से वृद्धि हो चुके हैं।

16.10 शब्दावली

सच्चरित्रता	:	नैतिक सिद्धान्तों की दृढ़ता
लघु मार्ग	:	स्वार्थ पूर्ति के लिए छोटे रस्ते तो अपनाना
प्रतिष्ठा का परिचायक	:	भौतिक सुख साधन हेतु वस्तुओं की उपलब्धता
विकास	:	समाज के प्रत्येक वर्ग के सभी क्षेत्रों में विकसित होना
विधिक प्रावधान	:	विधि द्वारा बनाये गये नियम

16.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, 2. सत्य, 3. सत्य, 4. सत्य

16.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कटारिया, सुरेन्द्र : कार्मिक प्रशासन
2. महेश्वरी एवं अवस्थी : लोक प्रशासन के सिद्धान्त

16.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भट्टाचार्या, मोहित : लोक प्रशासन

16.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रशासन में भ्रष्टाचार पर एक निबन्ध लिखिए
2. भ्रष्टाचार में वे कौन-कौन से कारक हैं जो इसे बढ़ावा देते हैं विवेचना कीजिए
3. वर्तमान में भ्रष्टाचार के बदलते आयामों का वर्णन कीजिए
4. भ्रष्टाचार के उन्मूलन पर सुझाव एवं प्रयास की व्याख्या कीजिए

इकाई 17 भारत में वित्तीय प्रबन्ध व बजट का निर्माण प्रक्रिया

इकाई की संरचना

17.1. प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 वित्तीय प्रबन्धन: आशय

17.3.1 वित्तीय प्रबन्धन: महत्व

17.4 भारत बजट निर्माण प्रक्रिया

17.4.1 बजट की तैयारी

17.4.2 बजट की स्वीकृति

17.4.3 बजट का क्रियान्वयन

17.4.4 बजट का विधायी नियन्त्रण

17.5 सांराश

17.6 शब्दावली

17.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

17.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

17.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1. प्रस्तावना

भारत में लोक प्रशासन के वित्तीय प्रबन्ध व बजट का निर्माण प्रक्रिया से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है, इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि भारतीय प्रशासन क्या है, इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि भारतीय प्रशासन क्या है, इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि भारतीय प्रशासन क्या है।

वित्त प्रशासन का जीवन रक्त है, प्रशासन के प्रबन्ध में वित्त शरीर और उसकी छाया के रूप में जुड़े हैं। किसी भी संगठन, उद्योग, कार्यालय और उद्यम के क्रियान्वयन हेतु कर्मचारी और पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है, जिसे केवल वित्त के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। प्रशासकीय इंजन का ईंधन वित्त है। प्रशासन का प्रबन्ध बिना उसके असम्भव है। भारत में लोककल्याणकारी और विकासात्मक राज्य की अवधारणा के परिणामस्वरूप सरकार के सामाजिक और विकासात्मक कार्यों में अप्रत्याशित वृद्धि बनी हुई है। जिस हेतु राजस्व एकत्रण, क्रियान्वयन एवं विधायी नियंत्रण की महती आवश्यकता है। जो उपलब्ध वित्तीय स्रोतों के इष्टतम प्रयोग को बनाए रखे।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भारत में वित्तीय प्रबन्ध के आशय, तत्व, सिद्धांत एवं बजट के माध्यम से उसके सम्पूर्ण कार्यक्षेत्र का विवेचन कर सकेंगे।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. वित्तीय प्रबन्ध के अर्थ तथा विभिन्न परिभाषाओं को जान सकेंगे।
2. वित्तीय प्रबन्ध के महत्व को लिख सकेंगे।
3. बजट निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे।

17.3 वित्तीय प्रबन्धन: आशय

“ वित्तीय प्रबन्ध ” दो शब्दों के मेल से बना है। “ प्रबन्ध ” शब्द का आशय सामान्य उद्देश्य के लिए मानव एवं संसाधनों का सरल प्रयास करने से है। “ वित्तीय ” का शाब्दिक अर्थ है धन सम्बन्धित संसाधन लोक प्रशासन में वित्तीय प्रबन्ध में उन प्रशासनिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनके द्वारा वित्तीय साधनों का संग्रह, विनियोजन तथा लेखांकन किया जाता है। बजट बनाने तथा उसे क्रियान्वित करने से सम्बन्धित सभी प्रक्रियाँ वित्तीय प्रबन्ध का केन्द्र-बिन्दु होती हैं।

सार्वजनिक आवश्यकताओं को परिपूर्ण करने के लिए सरकार द्वारा विभिन्न स्रोतों से धन एकत्र किया जाता है। परन्तु लोकल्याणकारी और विकासात्मक राज्य की अवधारणा के परिणामस्वरूप सरकार के सामाजिक और विकासात्मक कार्यों में निरन्तर वृद्धि होने से राजकोष में धन अपर्याप्त रहता है; दूसरी ओर प्रशासनिक संरचना की आवश्यकता और कर्मचारियों की सार्वजनिक वित्त पर तीक्ष्ण नजर सार्वजनिक वित्त प्रयोग को दिग्भ्रमित कर सकती है। अतः चोरी को रोकने एवं उपलब्ध वित्तीय स्रोतों के इष्टतम प्रयोग के लिए उत्तम वित्तीय प्रबन्ध की आवश्यकता होती है। लोक प्रशासन में इसके अध्ययन को ही वित्तीय प्रबन्ध कहा जाता है। इस प्रकार वित्तीय प्रबन्ध का प्रमुख ध्येय राज्य के वित्त का उचित, दक्ष और प्रभावशाली प्रबन्ध है। इसके अर्न्तगत सरकार के वे तमाम कार्य आते हैं जिनका संबंध सार्वजनिक धन को इकट्ठा करने, व्यय करने, बजट बनाने, आय-व्यय का हिसाब बनाने, सरकार के लेन देन तथा पूँजी एवं दायित्वों का विवरण रखने एवं इनका सम्पूर्ण प्रतिवेदन तैयार करने से होता है।

वित्तीय प्रबन्ध का सम्बन्ध मुख्यतया निम्नलिखित बातों से है-

- 1- सार्वजनिक सेवाओं को सम्पन्न करने के लिए धन का एकत्रीकरण करना।
- 2- सार्वजनिक सेवाओं को प्रदान करने के लिए धन का व्यय करना (बजट तैयार करना) ।
- 3- धन एकत्रीकरण और व्यय के लिए प्रशासन को अधिकृत करना अर्थात् अनुमानित बजट का विधानमंडल में स्वीकृत कराना।
- 4- सार्वजनिक धन के प्रयोग करने वालों की नियन्त्रण सत्ता का निर्धारण करना।
- 5- आय-व्यय सम्बन्धी सिद्धान्तों को क्रियान्वित करना, जिससे बजट का निष्पादन कहते हैं।

6- व्यय किए गए धन के सम्बन्ध में उत्तर दायित्व का निर्धारण करना।

7- बजट सम्बन्धी समस्त प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में कानूनी उत्तरदायित्व लेना तथा परीक्षण कराना, ताकि विधायिका को जवाब दिया जा सके।

आइए अब वित्तीय प्रबन्ध के कुछ अधिक परिष्कृत परिभाषाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। एल0 डी0 व्हाइट के अनुसार, “वित्त प्रबन्ध के अन्तर्गत वे क्रियाएं सम्मिलित हैं जो अधिकारियों को धन उपलब्ध कराती हैं तथा उसका नीतिपरक एवं वैधानिकता के साथ कुशलतापूर्वक प्रयोग का आश्वासन देती हैं”।

डॉ0 सी0 पी0 भाम्भरी के अनुसार, “ वित्त का प्रशासन में वही मूल्य बताया है जो वातावरण में ऑक्सीजन का है एवं प्रबन्ध उसको वैधानिकता के साथ प्रयोग करता है”।

जेज गैस्टन के अनुसार, “ वित्त प्रबन्ध सरकारी संगठन का वह भाग है जो सार्वजनिक धन के संग्रह, सुरक्षा तथा आबंटन, सार्वजनिक राजस्व तथा व्यय में समन्वय, राज्य की तरफ से ऋण, क्रियान्वयन के प्रबन्ध, सार्वजनिक घरेलू वित्त मामलों के सामान्य नियंत्रण से सम्बन्धित है”।

यद्यपि उपरोक्त परिभाषा वित्तीय प्रबन्ध के संकुचित क्षेत्र को दर्शाती है, लेकिन वित्तीय प्रबन्ध को व्यापक रूप में जी0 एस0 लाल निम्न शब्दों में व्यक्त करते हैं, “वित्तीय प्रबन्ध में राज्य के वित्त के समुचित प्रयोग और फलोत्पादक प्रशासन से सम्बन्धित सिद्धान्तों और व्यवहार के साथ सम्बन्धित होता है।” इस प्रकार उपरोक्त बातों के अध्ययन के बाद निम्नलिखित परिभाषा दी जा रही है।

“वित्तीय प्रबन्ध में सार्वजनिक आय-व्यय की उन समस्त क्रियाओं को शामिल करते हैं जोकि विधानमंडल के द्वारा बनाई गयी विधि के अनुसार है ताकि समस्त प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में कानूनी उत्तरदायित्व लेना तथा परीक्षण कराना, ताकि विधायिका को जवाब दिया जा सके।”

17.3.1 वित्तीय प्रबन्धन: महत्व

लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा के विस्तार के साथ सरकार के कार्यों में लगातार वृद्धि हुई। इसी प्रकार प्रशासन के प्रत्येक कार्य के लिए कर्मचारी एवं संसाधन की माँग बढ़ी जिसकी पूर्ति वित्त द्वारा ही सम्भव थी। वर्तमान वैश्वीकरण की परिधि में जिस नवीन कल्याणकारी विश्व संकल्पना का उद्भव हुआ है, वहाँ सरकार ने उन नए क्षेत्रों में प्रवेश किया जो राज्य के कार्य क्षेत्र से बाहर रखे गये थे। इस प्रकार बदलते हुए सन्दर्भ में वित्तीय प्रबन्ध की महत्ता प्रशासन में अपने आप दृष्टिगोचर होती है कि बढ़ते हुए सार्वजनिक व्यय को पूरा करने के लिए संसाधन की उत्पत्ति के नए स्रोतों तथा अनुकूलतम प्रयोग को महत्ता दी जाए।

वित्त प्रशासन का महत्वपूर्ण अंग है। वह उसका जीवन रक्त या जीवन आधार है। प्रशासन में तथा वित्त में उतना ही धनिष्ठ संबंध है जितना शरीर और रक्त में वस्तुतः प्रशासनिक इंजन का ईंधन वित्त है। शासन के प्रत्येक कार्य वित्त के अभाव में पूर्ण नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार हृदय शरीर में शुद्ध रक्त की पूर्ति कर चेतना और ऊर्जा का संचार करता है। उसी प्रकार प्रशासन में वित्त उसकी नीतियाँ तथा योजनाओं को पूर्ण करता है, क्योंकि वित्त के अभाव में उनका कार्यन्वयन संभव नहीं है। अतः वित्त को लोक प्रशासन की चालक शक्ति कहा जाता है।

प्राचीन समय में जब राज्य वाहा आक्रमण से बचाव, आन्तरिक शान्ति को बनाये रखने तथा प्रशासन के सामान्य क्रियाओं के संचालन हेतु धन की आवश्यकता पड़ती थी। परन्तु आज राज्य के कार्य में उसके लोककल्याणकारी योजनाओं के लगातार वृद्धि से वित्त की अनिवार्यता बढ़ती जा रही है। फलस्वरूप वित्तीय प्रबन्ध का प्रशासन अत्यन्त महत्वपूर्ण वस्तु बन गया है, जो सीमित संसाधन के आधार पर कल्याणकारी विचारधारा के अतिरिक्त लोकतंत्रात्मक व्यवस्था और प्रबन्ध के क्षेत्र में विकसित तकनीकी विशेषता के फलस्वरूप भी बड़ा है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. लघु-उत्तरीय प्रश्न

अ. वित्तीय प्रबन्ध का क्या आशय।

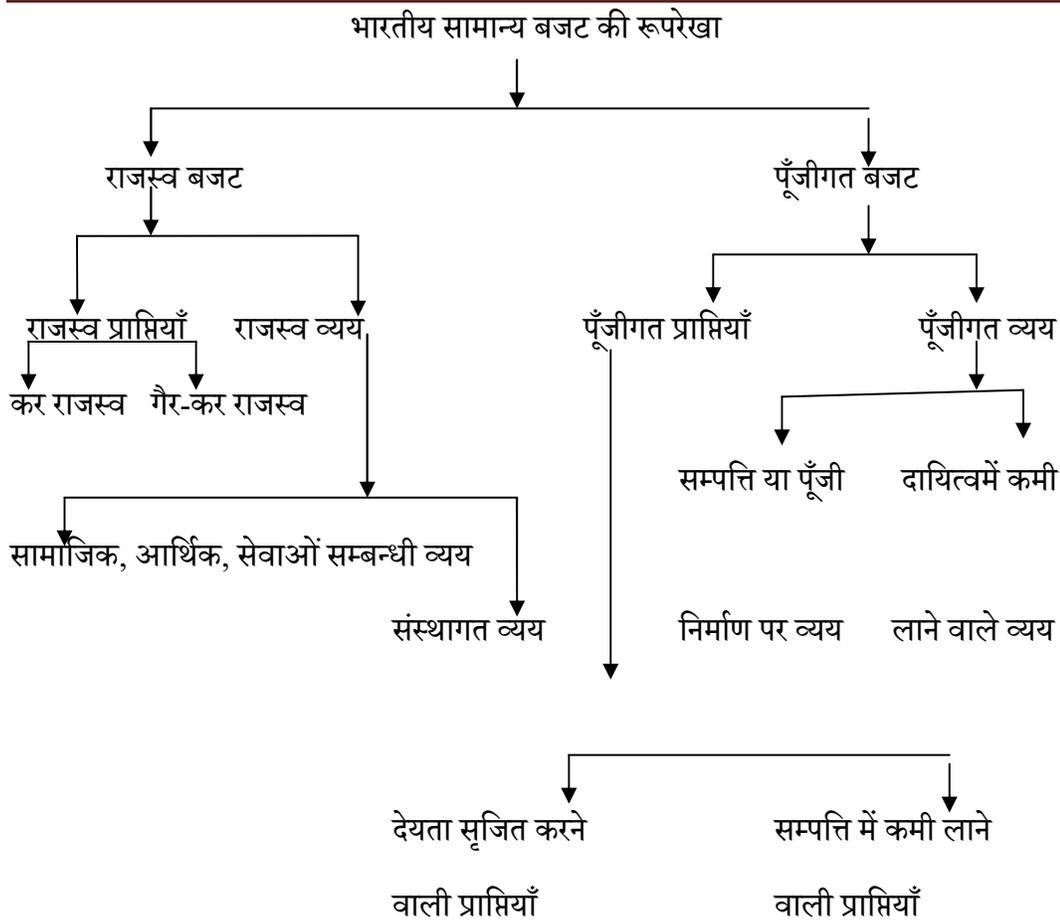
ब. वित्तीय प्रबन्ध महत्व को बताइए।

17.4 भारत बजट निर्माण प्रक्रिया

भारत में आधुनिक युग में बजट पद्धति का आरम्भ वायसराय लार्ड केनिंग के कार्यकाल में हुआ। जेम्स विल्सन को 1859 में वायसराय कार्यकारिणी में वित्त विशेषज्ञ के रूप में नियुक्त किया गया। जिन्होंने 1860 में बजट के माध्यम से भारत की वित्तीय स्थिति का बड़ा सुन्दर विश्लेषण और सर्वेक्षण प्रस्तुत किया। जिस कारण इन्हे भारत में आधुनिक बजट पद्धति का संस्थापक और जन्मदाता कहा जाता है। भारत में बजट पद्धति तैयार करने का उत्तरदायित्व कार्यपालिका को देती है। 'बजट' शब्द का तो संविधान में कहीं उल्लेख ही नहीं है। संविधान का अनुच्छेद 112 के अनुसार एक "वार्षिक वित्तीय विवरण" तैयार करने का उल्लेख करता है, जो, जो प्रत्येक वित्तीय वर्ष के आरम्भ में राष्ट्रपति की स्वीकृति के साथ संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखा जायगा जिसमें भारत सरकार के आय और व्यय के अनुमान प्रस्तुत किए जायेंगे। संघीय व्यवस्था के अनुरूप भारत में सम्पूर्ण देश के लिए केवल एक ही बजट नहीं होता है। राज्यों के अपने अपने पृथक् बजट होते हैं।

संघीय स्तर पर भारत में द्वि-बजट की व्यवस्था विद्यमान है- (1) सामान्य बजट, तथा (2) रेलवे बजट। रेलवे बजट का आरम्भ सन् 1921 में एकवर्ध समिति की सिफारिश पर सामान्य बजट से अलग कर किया गया। ऐसा व्यापारिक दृष्टिकोण के आधार पर किया गया कि रेलवे द्वारा निश्चित अंशदान की व्यवस्था होने से सिविल अनुमानों में स्थिरता आए और रेलवे वित्त के प्रशासन में लोचपन बना रहें। सामान्य बजट का परिसीमन भारतीय संघीय व्यवस्था में शक्तियों के बँटकारे द्वारा कर दिया गया है। संघीय सरकार और राज्य सरकारें क्रमशः संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची में उल्लिखित कार्यों तक ही सीमित है। इस प्रकार केन्द्रीय बजट इस सीमाओं के अर्न्तगत रहकर ही बनाया जाता है।

भारतीय सामान्य बजट की रूप-रेखा के अर्न्तगत बजट में सरकार के आय-व्यय को तीन खण्डों में रखा जाता है (1) समेकित संचित निधि, (2) आकस्मिक निधि, तथा (3) लोकखाता। जिसमें समेकित निधि से व्यय करने के लिए संसद से पूर्व-स्वीकृति अनिवार्य है, जिस हेतु संविधान के अनुच्छेद 113 के अनुसार अनुदानों की माँगों के रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। जबकि आकस्मिक निधि से राष्ट्रपति के आदेशानुसार आकस्मिक घटनाओं युद्ध, बाढ़, आकाल, भूकम्प आदि आवश्यकताओं में परिपूर्ति के लिए व्यय किया जाता है। लोकखाता में जन सामान्य के द्वारा भविष्य निधि, अल्प बचत संग्रह और अन्य जमा धन आता है जो सरकार की निगरानी में रहता है, और वापस लौटाने की जिम्मेदारी होती है। अतः इनमें से होने वाले व्यय के लिए संसद की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती है। व्यय के आधार पर भारतीय बजट में दो खण्ड पाये जाते हैं (1) राजस्व बजट (2) पूँजीगत बजट। राजस्व बजट में दो भाग राजस्व प्राप्तियाँ तथा राजस्व व्यय राजस्व प्राप्तियाँ में आयकर, निगम कर, उत्पादकर और अन्य करों, फीस एवं गैर कर इत्यादि से होने वाली आय को शामिल करते हैं। राजस्व व्यय जिसमें सामाजिक, आर्थिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं और व्यवस्था सम्बन्धी व्यय को इस भाग में शामिल किया जाता है। पूँजीगत बजट में सरकार की पूँजीगत प्राप्तियाँ तथा पूँजीगत व्यय शामिल है। पूँजीगत प्राप्तियाँ में जनता से लिए गए उधार, विदेशी सरकार और संस्थाओं से प्राप्त उधार, अल्प बचत तथा भविष्य निधि, ऋण तथा अग्रिमों की वापसी, विनिवेश, विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से प्राप्त आय को शामिल किया जाता है। पूँजीगत व्ययों को दो भागों में योजनागत पूँजीगत व्यय तथा गैर योजनागत पूँजीगत व्यय में रखा जाता है, जिसमें जमीन, इमारतों, मशीनों, उपकरणों जैसे परिसम्पत्तियों को प्राप्त करने के लिए किए जाने वाले व्यय को शामिल करते हैं।



भारत में बजट निर्माण करने का दायित्व वित्त मन्त्रालय को प्राप्त है। वित्तमन्त्री, जोकि राष्ट्र के कोष का संरक्षक तथा देश को वित्तीय नीति का कर्णधार माना जाता है, बजट प्रस्ताव संसद के समक्ष रखता है और वित्त विधेयक पारित कर संसद वित्तीय वर्ष के लिए बजट का अनुमोदन करती है इस बजट निर्माण में वित्त मन्त्रालय को अनेक प्रशासनिक मन्त्रालय, योजना आयोग एवं नियन्त्रक-महा लेखा परीक्षक का महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त होता है, जो एक दिन नहीं अपितु वर्ष भर चलने वाली प्रक्रिया की परिणत है। भारतीय बजट प्रक्रिया को प्रमुख रूप से चार चरणों में विभाजित किया जा सकता है:-

- (1) बजट की तैयारी
- (2) बजट की स्वीकृति

(3) बजट का विधायी नियन्त्रण

17.4.1 बजट की तैयारी

भारत में बजट निर्माण प्रक्रिया में सर्वप्रथम वित्त मन्त्रालय प्राथमिकता रूप में विभिन्न मन्त्रालय, वित्त आयोग, योजना आयोग तथा नियन्त्रण महालेखा परीक्षक के सहयोग से वित्तीय वर्ष (भारत में वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से आरम्भ होकर 31 मार्च तक रहता है) के शुरू होने के सात से आठ माह पूर्व बजट अनुमान तैयार करता है। बजट की तैयारी के इस प्रथम चरण में कार्यपालिका के द्वारा सरकार की निति, योजना कार्यक्रम आदि का निरूपण किया जाता है जिसके आधार पर बजट की तैयारी शुरू की जाती है। प्रशासनिक मन्त्रालय और उसके अधीनस्थ कार्यालयों से उसकी आवश्यकताओं की विस्तृत जानकारी प्राप्त की जाती है। वित्त आयोग केन्द्र और राज्य के मध्य बाँटे जाने वाले संसाधनों के सम्बन्ध में सिद्धान्तों को निर्धारित करता है। योजना आयोग योजनाओं की प्राथमिकता के सम्बन्ध में मन्त्रणा देता है इस बजट अनुमान की विचार विमर्शीय प्रक्रिया में विभिन्न वित्तीय संस्थाओ, जैसे जीवन बीमा निगम, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, औद्योगिक विकास संस्थान आदि के प्रतिनिधि शामिल होते है। योजना आयोग अपने स्तर पर विचार विमर्श में राज्यों के वित्त सचिवों वित्त आयुक्तों, विभिन्न क्षेत्रों के तकनीकी विशेषज्ञों, संघीय सरकार के मन्त्रियों के साथ गोष्ठियाँ आयोजित करता है। इस विचार विमर्श प्रक्रिया में गैर-योजना खण्ड के व्यय की सीमा का भी निर्धारण किया जाता है, एवं संघीय सरकार के समस्त स्रोतों का आकलन किया जाता है, और नियन्त्रक महालेखा परीक्षक प्राक्कलन तैयार करने हेतु लेखा कौशल उपलब्ध कराता है।

बजट निर्माण प्रक्रिया- विभिन्न चरण

बजट अनुमान का कार्य भारत में वित्त मन्त्रालय द्वारा जुलाई-अगस्त से ही आरम्भ हो जाता है। वह विभिन्न मन्त्रालयों तथा विभागों के अध्यक्ष को राजस्व और व्यय का अनुमान प्रस्तुत करने के लिए निर्धारित प्रपत्र भेजता है। जो विभागाध्यक्ष द्वारा स्थानीय कार्यालयों को भेजता है। इस प्रपत्र में निम्नलिखित खण्ड होते है:-

- (1) विनियोगों के मुख्य और उपशीर्षक
- (2) गत वर्ष की वास्तविक आय तथा व्यय
- (3) चालू वर्ष के स्वीकृत अनुमान
- (4) चालू वर्ष के संशोधित अनुमान
- (5) आगामी वर्ष के लिए बजट अनुमान

(6) बजट अनुमानों में प्रस्तावित वृद्धि या कमी का स्पष्टीकरण।

स्थानीय कार्यालयों में अनुमान प्रपत्र तैयार करके सम्बन्धित विभागों को भेज दिया जाता है। विभागाध्यक्ष प्राक्कलन प्रपत्र का सूक्ष्म निरीक्षण-परीक्षण कर उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन करके उन्हें समेकित एवं एकीकृत करके मन्त्रालय को भेजा जाता है। मन्त्रालय में विभाग स्तर पर इनका सूक्ष्म निरीक्षण करके संशोधन उपरान्त नवम्बर मध्य तक वित्त मन्त्रालय को प्रेषित कर देते हैं। मन्त्रालय द्वारा ही इसकी एक प्रति नियन्त्रक महालेखा परीक्षक को भी प्रेषित कर दी जाती है जो अपनी टिप्पणियां वित्त मन्त्रालय के पास भेजता है। वित्त मन्त्रालय अनुमान प्रपत्रों का सूक्ष्मता पूर्वक मितव्ययिता सम्बन्धी परीक्षण करता है। यहाँ नीति सम्बन्धी परीक्षण नहीं किया जाता, न ही विशेषज्ञ की तरह जाँच ही की जाती है।

पूँजीगत अनुमानों के लिए योजना आयोग से परामर्श करता है नयी योजनाओं के बारे में वित्त मन्त्रालय द्वारा छानबीन करते समय निम्न प्रश्न कर सकता है-

- (1) क्या प्रस्तावित व्यय वास्तव में आवश्यक है ?
- (2) यदि है तो अब तक इसके बिना कैसे काम चल रहा था ?
- (3) इसकी आवश्यकता अभी क्यों पड़ी ?
- (4) इस व्यय के लिए वित्तीय साधन कहां से प्राप्त होंगे ?
- (5) क्या नए विकास इस व्यय को अनावश्यक बना सकते हैं ?

इस प्रकार वित्त-मन्त्रालय प्रश्नों के द्वारा नए व्यय मद की छानबीन पर्याप्त गहराई तक करता है। वित्त मन्त्रालय की व्यय मद की स्वीकृति के बिना उसे बजट में शामिल नहीं किया जा सकता उसकी असहमति पर सम्बन्धित विभाग का मन्त्री इस सम्बन्ध में अपने विचार रखता है। असहमति होने पर प्रस्तावित योजना पर मन्त्रिमण्डल में विचार - विमर्श होता है। मन्त्रिमण्डल द्वारा जो भी निर्णय लिया जाए उसे सभी को मानना होता है। अन्यथा असहमति प्रकट करने वाले व्यक्ति के समक्ष मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र देने का ही विकल्प मौजूद होता है। वित्त मन्त्रालय यह निगरानी करता है कि किसी मन्त्रालय को उसकी वास्तविक आवश्यकताओं से अधिक धन आवंटित न हो जाए। नयी योजनाओं या कार्यक्रम से सम्बन्धित व्यय पर ही अधिक सूक्ष्म निरीक्षण की आवश्यकता रहती है। इस सन्दर्भ में सर हर्बर्ट कहते हैं कि, “वित्त मन्त्रालय को समीक्षा तथा प्रति-परीक्षण करने की एक विशेष दक्षता प्राप्त होती है, जो लम्बे अनुभव का परिणाम है, लेकिन इसमें समयानुसार निरन्तर नया परिवर्तन होते रहना जरूरी है ताकि उसका दृष्टिकोण कुछ बुद्धिमान व्यक्ति जैसा लगे।”

वित्त मन्त्रालय के नियन्त्रण का समर्थन दो बातों के आधार पर किया जाता है:- (1) वित्त मन्त्रालय स्वयं व्ययकारी विभाग नहीं होता है इसलिए वह करदाताओं द्वारा चुकायी गयी राशियों का अधिक निष्पक्षता से रक्षा करता है। (2) वित्त मन्त्रालय द्वारा दूसरे मन्त्रालयों के व्यय के लिए वित्त का प्रबन्ध किया जाता है अतः यह आवश्यक है कि वह इस व्यय के औचित्य के सम्बन्ध में निर्णय ले सके। इन्हीं बातों पर वित्त मन्त्री और वित्त-मन्त्रालय की विशिष्टता के व्यक्त करते हुए ब्रिटेन में गठित हाल्डेन कमेटी ने कहा था कि, “यदि वित्त मन्त्री को जलाशय में पानी एकत्रित करने तथा पानी के निश्चित स्तर को बनाए रखने के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है तो उसे पानी की निकासी पर भी नियन्त्रण रखने का हक प्राप्त होना चाहिए”

उपरोक्त तथ्यों के अतिरिक्त वित्त-मन्त्रालय के सूक्ष्म निरीक्षण को दोषपूर्ण माना जाता है प्रथम भारी व्यय की आवश्यकताओं वाली योजनाओं में सूक्ष्म निरीक्षण पूर्ण नहीं हो पाता है। फलतः बजट में इनके लिए एक मुश्त राशि रख दी जाती है जो उन योजना के लिए कम अथवा ज्यादा पड़ती है। इस लिए बजट बाद ऐसी योजनाओं के पुननिरीक्षण की जरूरत होती है द्वितीय आज की बदलती हुई परिस्थितियों में नियन्त्रण असामायिक है। वित्त-मन्त्रालय का बड़े भैया जैसा व्यवहार अधिकांश मन्त्रालयों के लिए सरदर्द बन जाता है। इस से प्रत्येक नए प्रस्ताव पर स्वीकृति देने से इन्कार की आदत हो जाती है और इस प्रकार प्रगतिशील नीतियाँ अवरूद्ध हो जाती है तृतीय योजनाएँ बजट तैयारी के अन्तिम समय आती है जिन्हे राजनीतिक कारणों से बिना सूक्ष्म निरीक्षण के बजट में शामिल कर लिया जाता है जो पूरे बजट कार्यक्रम को नुकसान पहुँचा सकता है चतुर्थ वित्त-मन्त्रालय के कर्मचारी मानवीय कमजोरियों एवं सीमाओं से अछूते नहीं होते हैं। अनेक अवसरों पर ऐसा होता है कि एक पैसा बचाने के लिए रूपया खर्च कर देते हैं यह छोटी छोटी मदों की स्वीकृत में आनाकानी दिखते हैं किन्तु बड़ी-बड़ी योजनाओं को बिना आपत्तियाँ उठाए स्वीकार कर लेते हैं।

व्यय सम्बन्धी अनुमान पूर्ण हो जाने पर सरकारी आय तथा राजस्व के अनुमान तैयार किए जाते हैं। इस कार्य में वित्त-मन्त्रालय को आयकर विभाग, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क विभाग आदि द्वारा सहायता प्राप्त होती है ये गतवर्ष की आय के आधार पर आगामी वित्तीय वर्ष की सम्भावित आय का अनुमान लगाते हैं। वित्त मन्त्रालय व्यय के आधार पर आवश्यक आय हेतु कर की दरों में परिवर्तन कर सकता है वित्त मन्त्रालय समस्त विभागों की अनुदान मांगों के एकत्रित कर जो आय व्यय का दस्तावेज बनाता है इसे ही बजट कहते हैं। उसके दो भाग किए जाते हैं (1) वार्षिक वित्तीय विवरण पत्र, और (2) अनुदानों की माँग। प्रथम भाग में जन-आलेखन तथा संचित निधि को रखा जाता है, जबकि दूसरे में संचित निधि के पूरे किए जाने वाले व्यय को दिखलाया जाता है।

बजट- पत्रांको संक्षिप्त विवरण

वार्षिक वित्तीय विवरण

संविधान के अनुच्छेद 112 के अनुसार प्रत्येक वित्तीय वर्ष के सम्बन्ध में, जो 1 अप्रैल से 31 मार्च तक होता है, भारत सरकार अनुमानित आय और व्यय का विवरण संसद के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है इस वार्षिक वित्तीय विवरण को ही प्रमुख बजट- प्रपत्र कहते हैं। इस वार्षिक वित्तीय विवरण में सरकार के आय और व्यय को तीन भागों में, जिनके अनुसार सरकारी लेखे रखे जाते हैं, दिखाया जाता है ये भाग हैं- (1) समेकित निधि (2) आकस्मिकता निधि तथा (3) लोक खाता

सरकार को प्राप्त होने वाले सभी कर राजस्व गैर कर राजस्व, शुल्कों तथा उसके द्वारा लिए गये ऋण और उसके द्वारा वितरित ऋणों की वसूली से प्राप्त होने वाली आय “समेकित निधि” में दिखाई जाती है। सरकार का पूरा व्यय समेकित निधि से किया जाता है और जब तक संसद की स्वीकृति नहीं मिल जाती तब तक इस निधि में से कोई रकम खर्च नहीं किया जा सकता है। कभी कभी ऐसे अवसर आ जाते हैं जब सरकार को संसद की स्वीकृति मिलने के पहले कुछ आवश्यक आकस्मिक व्यय करना पड़ता है, जिसका अनुमान ही नहीं रहता है। इस तरह का व्यय आकस्मिक निधि से किया जाता है। यह निधि अग्रदाय के रूप में राष्ट्रपति के पास रहती है। आकस्मिक निधि से इस तरह जो भी व्यय करती है, उसे बाद में संसद की स्वीकृति से पूरा कर उतनी ही रकम आकस्मिक निधि में वापस डाल दी जाती है।

सरकारी खातों में समेकित निधि से अलग कुछ अन्य लेन देनों जैसे भविष्य निधियों के सम्बन्ध में लेन देन, अल्प बचत संग्रह तथा अन्य जमा आदि का हिसाब रख जाता है। सरकार इन लेन-देनों के सम्बन्ध में बैंक के रूप में कार्य करती है। इस तरह जो आय होती है उसे लोक खाते में दिखाया जाता है और सम्बन्धित व्यय इसी में से धनराशि निकाल कर किया जाता है। सामान्य तौर पर लोक खाते में दिखाई जाने वाली आय सरकार की आय नहीं होती, क्योंकि इस धनराशि को किसी न किसी समय, उन व्यक्तियों या प्राधिकारियों को जो इसे जमा करते हैं वापस देना होता है। इसलिए लोक खाते से अदायगी के लिए संसद की स्वीकृति लेना आवश्यक नहीं होता। सरकार की आय का कुछ भाग, कुछ मामलों में खास-खास कार्यों के लिए जैसे कोयला खान श्रमिक कल्याण के लिए, चीनी विकास के लिए या वाणिज्यिक उपक्रमों में पुरानी मशीनरी के स्थान पर नई मशीनरी प्रतिस्थापन लाने, आदि के लिए अलग-अलग निधियों से अलग निकाल कर रख दिया जाता है। यह धनराशि संसद की स्वीकृति से समेकित निधि से निकाली जाती है और विशेष कार्यों पर व्यय किये जाने के लिए लोक खाते में जमा रखी जाती है परन्तु कार्य विशेष पर जो खर्च किया जाता है उसे संसद के सम्मुख उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। यद्यपि यह धन-राशि निधियों से अन्तरित करने से पहले ही संसद द्वारा निर्धारित की हुई होती है।

संविधान के अनुसार व्यय की कुछ मदे, जैसे राष्ट्रपति की परिलब्धियां, राज्यसभा के सभापति और उप-सभापति तथा लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन भत्ते, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों और भारत के नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक के वेतन भत्ते और पेंशन, सरकार द्वारा लिए गये उधारों के ब्याज एवं अदायगी और अदालती डिग्रियों के सम्बन्ध में की गयी अदायगियां आदि समेकित निधि पर भारित होती हैं और इन्हे संसद द्वारा स्वीकृति देने की आवश्यकता नहीं है। वार्षिक वित्तीय विवरण में समेकित निधि पर भारित व्यय को अलग से दिखाया जाता है।

संविधान के अनुसार बजट में राजस्व खाते के व्यय को अन्य व्यय से अलग दिखाना होता है, इसलिए सरकार का बजट (1) राजस्व बजट और (2) पूँजी बजट, दो भागों में बांटा होता है।

वित्त विधेयक

सरकार द्वारा लगाए जाने वाले नए करों के प्रस्ताव, विद्यमान कर ढाँचे को संसद द्वारा स्वीकृत अवधि के बाद जारी रखने के प्रस्ताव वित्त विधेयक के रूप में संसद के सम्मुख प्रस्तुत किए जाते हैं।

लेखाओं का वर्गीकरण

सरकार के लेखे, संविधान के अनुच्छेद 150 के अधीन भारत के नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक द्वारा निर्धारित रीति के अनुसार रखे जाते हैं। वार्षिक वित्तीय विवरण में आय और व्यय अनुमान तथा अनुदानों की माँगों में व्यय के अनुमान लेखाओं के इसी वर्गीकरण के अनुसार दिखाए जाते हैं। इस वर्गीकरण का उद्देश्य संसद और जनता को संसाधनों के आबंटन और खर्च करने में सरकार के उद्देश्य को समझने में सहायता देना है।

अनुदान की माँगे

वार्षिक वित्तीय विवरण में समेकित निधि से किए जाने वाले व्यय के अनुमान दिए जाते हैं। ये अनुमान संविधान के अनुच्छेद 113 के अधीन अनुदान की माँगों के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। प्रायः प्रत्येक मन्त्रालय अथवा विभाग के सम्बन्ध में अनुदान की एक माँग प्रस्तुत की जाती है। परन्तु बड़े मन्त्रालय या विभाग जो कई अलग-अलग सेवाओं के लिए उत्तरदायी होते हैं, वहां प्रत्येक मुख्य सेवा के लिए एक अलग माँग प्रस्तुत की जाती है। प्रायः प्रत्येक माँग में एक सेवा के लिए आवश्यक कुल व्यवस्था दी गई होती है अर्थात् इसमें राजस्व से किये जाने वाला व्यय, पूँजी व्यय राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों को दिये जाने वाले अनुदान और उस सेवा के सम्बन्ध में ऋणों और अग्रिमों के लिए की गई व्यवस्था शामिल होती है। जिन मामलों में किसी सेवा से सम्बद्ध व्यवस्था पूर्ण रूप से समेकित निधि पर भारित व्यय के लिए होती है, जैसे-ब्याज की अदायगियां, तो यह व्यय बिलकुल भिन्न माँग से है, एक अलग विनियोग प्रस्तुत कर उस पर संसद द्वारा स्वीकृत लिए जाने

की आवश्यकता नहीं होती है, किन्तु ऐसी किसी सेवा के व्यय के मामले में, जिसमें 'स्वीकृत' एवं 'भारित' दोनों मदें शामिल हैं तो उस सेवा के लिए प्रस्तुत की जाने वाली माँग में भारित व्यय भी शामिल कर लिया जाता है, लेकिन दोनों की व्यवस्थाएँ अलग-अलग दिखाई जाती हैं। वार्षिक वित्तीय विवरण के साथ अनुदान माँग प्रस्तुत की जाती है। प्रत्येक माँग में ऊपर की ओर पहले 'स्वीकृत' और 'भारित' व्यय तथा माँग में शामिल 'राजस्व' और 'पूँजी व्यय' के अलग-अलग जोड़ दिखाया जाता है। इसके उपरान्त विभिन्न मुख्य लेखा शीर्षों के अर्न्तगत व्यय के अनुमान दिए जाते हैं। इन ब्यौरों के बाद माँगों के अन्त में वसूलियों का ब्यौरा दिया जाता है, जिन्हें व्यय में से घटा कर खातों में दिखाया जाता है।

विनियोग विधेयक

लोक सभा द्वारा अनुदानों की माँगों को स्वीकार किए जाने के बाद इस प्रकार स्वीकृत रकमों और समेकित निधि पर भारित व्यय को पूरा करने के लिए आवश्यक रकम को समेकित निधि से निकालने के लिए विनियोग विधेयक के माध्यम से संसद का अनुमोदन प्राप्त किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 114 (3) के अनुसार समेकित निधि से कुछ भी रकम संसद द्वारा इस सम्बन्ध में कानून बनाए बिना नहीं निकाली जा सकती है।

17.4.2 बजट की स्वीकृति

वार्षिक वित्तीय विवरण या बजट संसद में निम्नलिखित पांच स्तरों से गुजरता है:-

बजट प्रस्तुतीकरण स्तर

सामान्य विचार-विमर्श का स्तर

माँगों पर मतदान का स्तर

विनियोजन विधेयक पर विचार-विमर्श और उसकी स्वीकृति का स्तर

कर प्रस्ताव पर विचार विमर्श और उसकी पुष्टी का स्तर

बजट प्रस्तुतीकरण स्तर - संसद का बजट अधिवेशन सामान्यतया फरवरी के मध्य में आरम्भ होता है। प्रथमतया रेल मन्त्री रेल विभाग का बजट प्रस्तुत करता है। इसके पश्चात् वित्त मन्त्री (28 फरवरी) 'वार्षिक वित्तीय विवरण' संसद के दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत करता है। इस विवरण वक्वव्य के दो भाग होते हैं:-

(1) वित्त मन्त्री का बजटीय भाषण

(2) बजट अनुमान

बजट भाषण में वह देश की सामान्य आर्थिक स्थिति, सरकार की वित्तीय नीति, चालू वर्ष के वित्तीय अनुमानों, संशोधित अनुमानों में उत्पन्न अन्तर का कारण, चालू वर्ष की स्वीकृत माँग और आगामी वर्ष के लिए प्रस्तुत की जाने वाली माँगों में पाए जाने वाले अन्तर के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण होता है। इस भाषण द्वारा ही वित्त मन्त्री आगामी वर्ष के लिए सरकार की वित्त और आर्थिक नीति की घोषणा करते हैं।

सामान्य विचार विमर्श

बजट प्रस्तुत होने के कुछ दिन बाद उस पर विचार विमर्श आरम्भ किया जाता है जो कि तीन से चार दिन चलता है। इसका आरम्भ विरोधी दल के नेता द्वारा किया जाता है जो अन्तर्निहित नीति अथवा सिद्धान्तों पर होती है। इस स्तर पर कोई प्रस्ताव नहीं आता। इसका उद्देश्य देश की वित्तीय व्यवस्था सम्बन्धी समस्याओं को उठाना और बजट पर विस्तार से विचार नहीं होता और न ही कटौती प्रस्ताव आते हैं। विचार-विमर्श के अन्त में वित्त मन्त्री द्वारा एक सामान्य उत्तर दे दिया जाता है।

बजट का सार

	मद	2009-10	2010-11	2010-11	2011-12
		वास्तविक (अन्तिम)	बजट अनुमान	संशोधित अनुमान	बजट अनुमान
1	राजस्व प्राप्तियाँ	572811	682212	783833	789892
2	पूँजी प्राप्तियाँ	451676	426537	432743	467837
3	कुल प्राप्तियाँ	10244487	1108749	1216576	1257729
4	आयोजन भिन्न व्यय	721096	735657	821552	816182
5	आयोजन व्यय	303391	373092	395024	441547
6	कुल व्यय	1024487	1108749	1216576	1257729
7	राजस्व घाटा	338998	276512	269844	307270
8	राजकोषीय घाटा	418482	381408	400998	412817
9	प्राथमिक घाटा	205389	132744	160241	144831

स्रोत: बजट का सार 2011-12 वित्त मन्त्रालय बजट प्रभाग

माँगों पर विचार विमर्श और उसकी स्वीकृति

सामान्य विचार विमर्श के पश्चात राज्यसभा का कार्य प्रायः समाप्त हो जाता है। परन्तु अब लोकसभा उन अनुदान माँगों जो संचित निधि पर भारित नहीं होते, पर मतदान कार्य आरम्भ करती है। मतदान सम्बन्धी अधिकार लोकसभा का अक्षुण्ण अधिकार होता है। इस सन्दर्भ में उसे अधिकार है कि चाहे यह (1) माँग को स्वीकार कर ले, या (2) माँग को अस्वीकार कर दे, या (3) माँग की गई धनराशि कम कर दे। संविधान के अनुच्छेद 113(1) के अनुसार सदन को माँग में वृद्धि करने का कोई अधिकार नहीं है। न ही यह अनुदान के लक्ष्य को बदल सकती है, न ही अनुदान विनियोजन के साथ कोई शर्त लगा सकती है। वे केवल इनमें कटौती प्रस्ताव रख सकते हैं। यह प्रस्ताव तीन प्रकार के होते हैं:- (1) नीति सम्बन्धी कटौती प्रस्ताव वे होते हैं जिनका उद्देश्य प्रस्तावित व्यय में अन्तर्निहित नीति का विरोध करना होता है। (2) मितव्ययता कटौती प्रस्ताव किसी माँग से धन की राशि कम करने का उद्देश्य रहता है। इस प्रस्ताव से सम्बन्धित वक्तव्य मितव्ययता लाने के उपायों पर विचार करते हैं। (3) प्रतीक कटौती प्रस्ताव माँग से सम्बन्धित विशेष शिकायतों को सामने लाने का कार्य करते हैं।

व्यवहार में यह कटौती प्रस्ताव मन्त्रिमण्डल की इच्छा से स्वीकार किया जाता है अन्यथा यह उसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव जैसा होता है। भारतीय संसद में माँगों पर मतदान के लिए छब्बीस दिन निर्धारित किए गए हैं। इस अवधि में सभी माँगें एक साथ मतदान के लिए ली जाती हैं, एवं साथ ही पारित की जाती हैं। जब एक मन्त्रालय की माँग संसद में प्रस्तुत की जाती है तो उस पर वाद विवाद के दौरान मन्त्रालय की नीति और प्रशासनिक गतिविधियों का सूक्ष्म परीक्षण किया जाता है। इस दौरान सम्बन्धी मन्त्री विवाद सम्बन्धी उत्तर देता है और अपने विभाग की माँग का औचित्य भी सिद्ध करता है।

विनियोजन विधेयक पर विचार विमर्श और उसकी स्वीकृति माँगों पर मतदान के बाद विनियोजन विधेयक की स्वीकृति के रूप में मतदान का अन्तिम चरण पूरा किया जाता है। सदन द्वारा स्वीकृत माँगों को विनियोजन विधेयक के माध्यम से कानूनी रूप दिया जाता है। इसे पारित करते समय सदन पूर्व पारित अनुदानों में अथवा संचित निधि के प्रस्तावों में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती संसद द्वारा पारित होने के बाद यह राष्ट्रपति की स्वीकृति हेतु भेज दिया जाता है जो संविधिक प्रावधानों के कारण उसको निश्चित रूप से स्वीकृति प्रदान करता है।

कर प्रस्ताव पर विचार-विमर्श और उसकी पुष्टि

कर सम्बन्धी प्रस्तावों को वित्त विधेयक का रूप दिया जाता है। वित्त विधेयक में सरकार द्वारा आगामी वर्ष के लिए वित्तीय प्रस्ताव प्रस्तुत किए जाते हैं जिसे वार्षिक वित्तीय विवरण के साथ ही रखा जाता है। विनियोजन विधेयक के पारित होने से सरकार संचित निधि से धन व्यय करने का

अधिकार तो अधिकार मिल जाता है पर सरकार की आय हेतु वित्त विधेयक की आवश्यकता होती है। वित्त विधेयक के पारित होने के उपरान्त बजट को संसद द्वारा स्वीकृत मान लिया जाता है।

विनियोजन एवं वित्त विधेयक को धन विधेयक की संज्ञा दी जाती है अतः लोकसभा की तुलना में राज्यसभा का क्षेत्राधिकार सीमित होता है। सरकार के द्वारा रखे गये बजट में आय व्यय के सभी अनुमान होते हैं लेकिन विशेष स्थिति का सामना करने के लिए लोकसभा से कुछ और अनुदान पास कराये जाते हैं-

लेखानुदान बजट सत्र के दौरान 31 मार्च तक सभी माँगों पर बहस न भी हो पाये तो भी अन्तिम दिन में उन सब माँगों को पारित कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति में सभी माँगें अनुदान बन जाती हैं। इस व्यवस्था को लेखानुदान कहा जाता है। इससे वित्तीय वर्ष आरम्भ होने पर अर्थात् पहली अप्रैल से वित्त के व्यय करने की वैधानिक अनुमति मिल जाती है। साथ ही नवीन वित्तीय वर्ष के आरम्भ होने के बाद भी विभिन्न माँगों पर बहस की जा सकती है। प्रत्यानुदान वह अनुदान है जिसमें संसद उन माँगों को भी स्वीकृत कर सकती है जो कि अप्रत्याशित स्थिति का मुकाबला करने के लिए आवश्यक हो जैसे युद्ध आदि पर व्यय करने के सम्बन्ध में।

अनुपूरक अनुदान का संविधान के अनुसार निम्न रूप में प्रावधान है- (1) यदि विनियोजन विधेयक द्वारा चालू वित्तीय वर्ष के लिए स्वीकृत धन अपर्याप्त हो। (2) यदि चालू वित्त वर्ष में किसी नये विषय जो कि बजट में न दिया हो, पर खर्च के लिए अतिरिक्त धन की आवश्यकता हो। (3) यदि किसी कारण से चालू वित्त वर्ष में किसी विषय पर अनुदान से अधिक धन खर्च कर दिया गया हो।

अतिरिक्त अनुदान पर वित्त वर्ष की समाप्ति पर मतदान होता है। अनेक बार व्यय का निश्चित अनुमान लगाना तथा निर्धारित परिधि की सीमा के रूप में व्यय करना संभव नहीं होता। अतः अतिरिक्त अनुदान संसद द्वारा स्वीकृत कर धन के व्यय को वैधानिकता प्रदान की जाती है। इसे में संसद प्रस्तुती से पूर्व लोक लेखा समिति से अनुमोदन करना आवश्यक है।

17.4.3 बजट का क्रियान्वयन

बजट का सफल क्रियान्वयन वह है जिसमें सभी वित्तीय नियमों, विनियमों का पालन होता है। इस क्रियान्वयन कार्य में अग्रलिखित वित्तीय संक्रियाएं और उनसे सम्बन्धित अधिकारी और अभिकरण जुड़े हैं। बजट क्रियान्वयन सम्बन्धी इन विभिन्न संक्रियाओं का विवेचन निम्नवत है:-

वित्तीय संक्रियाएं सम्बन्धि अभिकरण / अधिकारी

संक्रियाएं

अभिकरण / अधिकारी

(1) राजस्व का एकत्रीकरण	राजस्व विभाग
(2) एकत्रित राजस्व का रक्षण	बैंक (सरकारी निजी) एवं राजकोष
(3) उपलब्ध धन का वितरण	वितरण अधिकारी
(4) आय व्यय का लेखांकन	महालेखाधिकारी
(5) अंकेक्षण तथा प्रतिवेदन	महालेखा परीक्षक

राजस्व का एकत्रीकरण

यह बजट के क्रियान्वयन सम्बन्धी प्रथम प्रक्रिया है। वित्त विधेयक में प्रस्तावित कर प्रस्तावों के अर्न्तगत आय सम्बन्धी अनुमान लगाना और अनुमानित राजस्व का एकत्रीकरण करना होता है। अनुमान का अभिप्राय है कि उन व्यक्तियों और निगमनात्मक इकाइयों को वित्त अधिनियम में निहित आधार के अनुरूप पहचानना और उनसे वसूल की जाने वाली कर राशि को आंकला। उसके पश्चात उनसे इस धन को वसूल करने का कार्य ही राजस्व एकत्रीकरण कार्य है। आय स्रोतों के मूल्यांकन तथा वसूली का कार्य वित्त मंत्रालय का राजस्व विभाग करता है, जो एक सचिव के नियन्त्रण निर्देशन में कार्य करता है। यह केन्द्रीय प्रत्यक्ष का बोर्ड और केन्द्रीय उत्पादन शुल्क तथा सीमा शुल्क बोर्ड के माध्यम से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष सभी प्रकार के संघीय कर से सम्बन्धित राजस्व मामलो में नियन्त्रण एवं वसूली करता है।

राजस्व का संरक्षण

राजस्व कोष के संरक्षण व्यवस्था के सन्दर्भ में दो बातें आवश्यक हैं-(1) वित्तीय लेन देन को सुविधाजनक बनाना और (2) वित्तीय साधनों के गबन और दुरुपयोग को रोकना।

धन संरक्षण और वितरण की व्यवस्था प्रत्येक देश द्वारा की अपनी ऐतिहासिक परम्पराओं द्वारा निर्धारित होती है। भारत में राजकोष व्यवस्था का प्रचलन है इस समय भारत में 400 राजकोष तथा 1200 उपराजकोष कार्य कर रहे हैं। ये राजकोष जिला तथा तहसील स्तर पर सरकार की तरफ से भुगतान स्वीकार करते हैं एवं भुगतान देते हैं। साथ ही भारतीय रिजर्व बैंक एवं भारतीय स्टेट बैंक जहाँ भारतीय रिजर्व बैंक के शाखाएँ नहीं हैं वित्तीय भूमिका निभा रहे हैं। जो चालान के माध्यम से धन जमा करते हैं। जब भी किसी को सरकार से धन प्राप्त करना होता है वह उसके नाम जारी किये गये चेक या प्राप्ति बिल को सरकारी राजकोष या बैंक में सम्बन्धित अधिकारी के सम्मुख पेश करके धन ले सकता है। यह सम्पूर्ण व्यवस्था वित्त मंत्रालय के दिशा निर्देश में चलती है।

राजकोष का वितरण

एकत्रित धन को वितरित करना बजट क्रियान्वयन सम्बन्धी एक प्रमुख स्तर है। बजट पास होने के तुरन्त बाद वित्त मंत्रालय विभिन्न मंत्रालयों को स्वीकृत अनुदानों की सूचना दे देता है। मन्त्रालय बजट प्रावधानों तथा प्रशासनिक स्वीकृतियों की सूचना विभागाध्यक्ष को दे देता है। जो प्रक्रिया जिला स्तर तक पहुँच जाती है। वितरण अधिकारी सरकारी कोषों के संरक्षण तथा संवितरण का कार्य राजकोष, उप-राजकोष तथा अधिकृत बैंक की शाखाओं के माध्यम से नियमानुसार करते रहते हैं। यहाँ वह देखता है कि चालान या चैक सम्बन्धित अधिकृत अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित है अथवा नहीं परन्तु इसके साथ यह देखता है कि

- (1) क्या वह बजट प्रावधान के अनुरूप है अथवा नहीं ?
- (2) क्या तत्सम्बन्धी समुचित प्रशासनिक और तकनीकी अनुमोदन प्राप्त हो चुका है ?
- (3) क्या भुगतान की माँग उचित है ?
- (4) क्या भुगतान के लेखा की व्यवस्था है अथवा नहीं ?

आजकल अधिकांश धन सम्बन्धी लेन देन चेक या प्रॉप्सि बिल द्वारा ही किया जाता है अतः संवितरण का कार्य इतना कठिन नहीं रहा है। बैंकिंग के विस्तार के कारण अब सरकारी कोषों का भण्डारण रिजर्व बैंक स्टेट बैंक अथवा उसकी शाखाओं में किया जाता है। इसके साथ राजकोष अथवा उपराजकोष भी इस दायित्व का निर्वाह करते हैं।

आय व्यय लेखे

आय व्यय या नियन्त्रण लेखे का मुख्य ध्येय धन संग्रहण, एकत्रण और रक्षण करने वाले अधिकारियों की ईमानदारी का आश्वासन देना और इन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए नियमों, निर्देशों और सीमाओं का कठोरता से अनुपालन करने का आश्वासन प्राप्त करना है। जो अलग लेखा तथा अंकेक्षण विभाग के माध्यम से नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की सहायता से किया जाता है रेलवे के अलावा प्रत्येक विभाग एवं राज्यों में एक महालेखापाल होता है। लेखा परीक्षक द्वारा निर्धारित नियमों के अनुरूप प्रारम्भिक लेखा उस कोषागार में होता है जहाँ किसी प्रकार का लेन देन होता है, फिर व्यय शीर्षों के अनुसार सभी लेन-देनों का व्यौरा-वार वर्गीकरण एवं लेखाधिकारियों द्वारा लेखों का मासिक संकलन तथा अन्त में भारत के महालेखा परीक्षक द्वारा इनका वार्षिक संकलन होता है।

लेखों का अंकेक्षण तथा परिक्षण

महालेखाकार कार्यालय देश भर के हिसाब-किताब को पहली तारीख को प्राप्त कर प्राप्तियों तथा खर्च का शीर्ष के अनुसार वर्गीकरण करता है। जहाँ राजस्व खाता, पूँजीगत खाता, ऋण खाता, और दूरस्थ प्राप्तियों रूपी चार शीर्षों में लेखा सूचनाएँ संकलित की जाती हैं। जहाँ अन्तिम रूप में भारत का महालेखा परीक्षक सरकार के समस्त लेखों का उपरोक्त शीर्षों के आधार पर कर केन्द्र और राज्यों में क्रमशः राष्ट्रपति और राज्यपाल के सम्मुख पेश करता है जिसमें वित्तीय लेखे, विनियोजन लेखे और तत्सम्बन्धी अंकेक्षण प्रतिवेदन होती हैं। प्रतिवेदन निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करता है- (1) क्या धन का विकनयोजन अधिनियम के अनुसार किया गया ? (2) क्या धन के विनियोजन में निर्धारित नियमों का अभिपालन किया गया ? (3) क्या सार्वजनिक धनदुरुपयोग तो नहीं किया गया ? (4) सेवाओं की सम्पन्नता में कितना समय व्यय किया गया ? इत्यादि।

इस प्रकार लेखा परीक्षण सार्वजनिक हित सार्वजनिक धन के उचित व्यय को आश्वस्त करने का एक महत्वपूर्ण उपाय है जो प्रशासनाधिकारियों को किसी प्रकार के घोटाले के प्रति सचेत करता है।

17.4.4 बजट का विधायी नियन्त्रण

प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था में सरकारी वित्त पर विधायिका का नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। भारत में इस नियन्त्रण के विकास का एक रोचक इतिहास रहा है। यहाँ 1911 में केन्द्रीय व्यवस्थापिका में निर्वाचित प्रतिनिधियों का बहुमत रखा गया है। इसके साथ ही जन लेखा समिति का गठन किया जाता है, जिनमें निर्वाचित एवं सरकारी दोनों प्रकार के सदस्यों को लिया जाता है। स्वतन्त्रता के बाद विधायिकों द्वारा लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति तथा सार्वजनिक उपक्रमों और विभागीय समिति के माध्यम से सार्वजनिक वित्त पर नियन्त्रण रखती है। इस लिए वित्तीय नियन्त्रण की दृष्टि से समितियाँ अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

1. लघुरीय प्रश्नोत्तर-

अनुदान माँगें क्या हैं ?

बराजस्व बजट का क्या आशय।

2. रिक्त स्थान भरिए

1. संविधान के अनुच्छेद.....के अनुसार भारत सरकार अनुमानित आय और व्यय का विवरण संसद के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है।

2. भारत में वित्तीय वर्ष.....से आरम्भ होकर..... मार्च तक रहता है।

3. लेखानुदान बजट सत्र के दौरान..... तक पारित कर दिया जाता है।

17.5 सांराश

प्रशासनिक कार्यों को बिना वित्त के पूर्ण किया जाना सम्भव ही नहीं है। वित्तीय प्रबन्ध में उन प्रशासनिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनके द्वारा वित्तीय साधनों का संग्रह, विनियोजन तथा लेखांकन किया जाता है। बजट के निर्माण, क्रियान्वयन और उस पर नियन्त्रण सम्बन्धी सम्पूर्ण प्रक्रिया के केन्द्र बिन्दु वित्तीय प्रबन्ध का प्रमुख ध्येय राज्य के वित्त का उचित, दक्ष और प्रभावशाली प्रबन्ध है। इसके अन्तर्गत सरकार के वे तमाम कार्य आते हैं, जिसका सम्बन्ध सार्वजनिक धन को इकट्ठा करने, व्यय करने, बजट बनाने, आय व्यय का हिसाब बनाने, सरकार के लेन-देन तथा पूँजी एवं दायित्वों का विवरण और इनका सम्पूर्ण प्रतिवेदन तैयार करने से होता है। इस लिए कहा जाता है कि प्रशासनिक इंजन का ईंधन वित्त है। प्रशासन के प्रत्येक कार्य वित्त के अभाव में पूर्ण नहीं किया जा सकता जिस प्रकार हृदय शरीर में शुद्ध रक्त की पूर्ति कर चेतना और ऊर्जा का संचार करता है उसी प्रकार प्रशासन में वित्त उसकी नीतियाँ तथा योजनाओं को पूर्ण करता है, क्योंकि वित्त के अभाव में उनका कार्यान्वयन सम्भव नहीं है। इसी कारण वित्त को लोक प्रशासन की चालक शक्ति कहा जाता है।

भारत में बजट निर्माण प्रक्रिया का प्रमुख उत्तरदायित्व वित्त मन्त्रालय का है। वित्त मन्त्रालय का प्रमुख वित्त मन्त्री होता है, जो राष्ट्र के कोष का संरक्षक तथा देश की वित्तीय नीति का कर्णधार माना जाता है। लोक वित्त का उचित वितरण एवं प्रयोग करना उसका प्रमुख कार्य है। 'बजट' का निर्माण एक दिन में न करके अपितु साल भर चलने वाली प्रक्रिया के रूप में करता है। जिसके प्रमुख रूप में चार चरण हैं प्रथम वह बजट की तैयारी करता है, जिसके अन्तर्गत वह बजट अनुमान आगामी वित्तीय वर्ष के आरम्भ होने के 7 से 8 माह पूर्ण प्रारम्भ करता है। इस प्रक्रिया के पूर्ण करने में विभिन्न प्रशासनिक मन्त्रालय, योजना आयोग तथा नियन्त्रक महालेखा परीक्षक उसकी सहायता करते। द्वितीय चरण में बजट की संसदीय स्वीकृति प्राप्त की जाती है। जहाँ बजट प्रस्तुतीकरण से लेकर धन विधेयक की स्वीकृति लेखानुदान माँगों को पास करना, विनियोग विधेयक एवं वित्त विधेयक की स्वीकृति ली जाती है। तृतीय चरण में बजट का क्रियान्वयन है, जिसके अन्तर्गत वित्त के एकत्रीकरण, संरक्षण, वितरण लेखा एवं अंकेक्षण और प्रतिवेदन की प्रक्रिया समाहित है। बजट निर्माण प्रक्रिया का अन्तिम चरण उसका विधायी नियन्त्रण है जो संसदीय एवं विभागीय समितियों एवं नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक के द्वारा पूर्ण किया जाता है।

17.6 शब्दावली

पूँजी व्यय:- यह अर्थव्यवस्था में भौतिक रूपी की परिसम्पत्तियों के निर्माण के लिए किया जाने वाला व्यय है जैसे- भूमि, मशीन, भवन आदि।

राजस्व व्यय:- यह अर्थव्यवस्था में सरकारी विभागों में सामान्य कार्यों पर किया जाने वाला व्यय है जिसके द्वारा किसी भौतिक परिसम्पत्ति का निर्माण नहीं होता है जैसे-वेतन, दैनिक खर्च आदि।

पूँजी प्राप्तियां:- ये सरकार द्वारा जनता से लिये गये ऋण जिन्हे बाजार ऋण कहते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक या विदेशी संस्थानों से लिये गये ऋण आदि।

वित्त विधेयक:- वित्त विधेयक में आगामी वित्तीय वर्ष के लिए सरकार के करारोपण प्रस्तावों को प्रस्तुत किया जाता है। जिसका स्वीकृति संसद से आवश्यक होती है।

धन विधेयक:- संविधान के अनुच्छेद 110(1) में उल्लिखित किसी विषय से सम्बन्धित होता है। जो वित्त विधेयक तो होता है। इसका संबन्ध विशेषतया कराधान, ऋणादान अथवा व्यय से होता है। वित्त विधेयक की धन विधेयक के रूप में प्रमाणित लोक सभा अध्यक्ष द्वारा होती है।

17.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 2 2.रिक्त स्थान भरिए

1.112, 2. 1 अप्रैल से, 31, 3. 31 मार्च

17.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.सुन्दरम, के0पी0 (1990), भारतीय लोक वित्त एवं वित्तीय प्रशासन, सुल्तान चन्द एण्ड संस, नई दिल्ली।

2.भट्टाचार्य, माहित (2000) लोक प्रशासन के नए आयाम, जवाहर पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

3.कौर, इन्द्रजीत (2000) लोक प्रशासन, एस बी पीडी पब्लिशिंग हाउस, आगरा 30 प्र0।

4.अवस्थी, ए0 पी0,(2000) वित्त प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा 30 प्र0।

5.फाड़िया, बी.एल. (2010) भारतीय लोकप्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

17.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. लाल, जी० एस० (1982), भारत में लोक वित्त तथा वित्तीय प्रशासन, एच० पी० कपूर नई दिल्ली।
2. मुसग्रेव एण्ड मुसग्रेव (1990), लोक वित्त: सिद्धान्त एवं व्यवहार, मैग्रा हिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क।
3. थावराज, एम० जे० के० (1982), भारत का वित्तीय प्रशासन, सुल्तान चन्द एण्ड संस नई दिल्ली

17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वर्तमान कल्याणकारी राज्य की अवधारणा में वित्तीय प्रबन्ध क्यों महत्वपूर्ण हो गया है ?
2. भारत में व्यय के आधार पर बजट को कितने भाग होते हैं स्पष्ट कीजिए।
3. बजट क्रियान्वयन प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए।

इकाई 18 सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण- लोक लेखा समिति, अनुमान समिति, लोक उपक्रमों पर समिति विभागीय समितियां, नियंत्रक महालेखा परीक्षक

इकाई की संरचना

- 18.1 प्रस्तावना
- 18.2 उद्देश्य
- 18.3 वित्त पर संसदीय नियंत्रण
 - 18.3.1 लोक लेखा समिति
 - 18.3.1.1 लोक लेखा समिति के कार्य
 - 18.3.1.2 लोक लेखा समिति के नियन्त्रण का स्वरूप
 - 18.3.1.3 लोक लेखा समिति का मूल्यांकन
 - 18.3.2 अनुमान समिति
 - 18.3.3 विभागीय समितियाँ
 - 18.3.4 लोक उपक्रम समिति
- 18.4 नियन्त्रक महालेखा परीक्षक
 - 18.4.1 नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की संवैधानिक स्थिति
 - 18.4.2 नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के कर्तव्य
 - 18.4.3 नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की पद एवं स्थिति का मूल्यांकन
- 18.5 सांराश
- 18.6 शब्दावली
- 18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 18.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 18.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 18.10 निबन्धात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

भारत में लोक प्रशासन के वित्तीय प्रबन्ध व बजट का निर्माण प्रक्रिया से सम्बन्धित यह इकाई है, इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि भारतीय प्रशासन क्या हैघसंधीय शासन एवं राज्य शासन क्या हैघ्

वित्त प्रशासन का जीवन रक्त है, प्रशासन के प्रबन्ध में वित्त शरीर और उसकी छाया के रूप में जुड़े हैं। किसी भी संगठन, उद्योग, कार्यालय और उद्यम के क्रियान्वयन हेतु कर्मचारी और पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है, जिसे केवल वित्त के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। प्रशासकीय इंजन का ईंधन वित्त है। प्रशासन का प्रबन्ध बिना उसके असम्भव है। भारत में लोककल्याणकारी और विकासात्मक राज्य की अवधारणा के परिणामस्वरूप सरकार के सामाजिक और विकासात्मक कार्यों में अप्रत्याशित वृद्धि बनी हुई है। जिस हेतु राजस्व एकत्रण, क्रियान्वयन एवं विधायी नियंत्रण की महती आवश्यकता है। जो उपलब्ध वित्तीय स्रोतों के इष्टतम प्रयोग को बनाए रखे।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भारत में वित्तीय प्रबन्ध के आशय, तत्व, सिद्धांत एवं बजट के माध्यम से उसके सम्पूर्ण कार्यक्षेत्र का विवेचन करेंगे। हम इसके साथ ही भारत में बजट निर्माण प्रक्रिया का भी चरण बद्ध उल्लेख करेंगे।

18.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. वित्त पर संसदीय नियंत्रण को जान सकेंगे।
2. बजट के क्रियान्वयन पर प्रशासनिक नियन्त्रण के पश्चात संसद द्वारा नियन्त्रण के औचित्य का वर्णन कर सकेंगे।
3. लोक लेखा समिति के महत्व को लिख सकेंगे।
4. अनुमान समिति निर्माण की प्रक्रिया कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।

18.3 वित्त पर संसदीय नियंत्रण

सार्वजनिक राजस्व का प्रमुख स्रोत जनता से कर के रूप में धन प्राप्त होता है। भारतीय लोकतन्त्र में जन प्रतिनिधियों की मंजूरी के बिना कोई कर लगाया जाएगा न कोई कर बिना जन प्रतिनिधियों की मंजूरी के विनियोजन किया जाएगा। विधायिका द्वारा बजट का अनुमोदन उक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु करती है। परन्तु वित्तीय चक्र की पूर्णता तब है, जब संसद व्यय पर नियन्त्रण रख सके। संसदीय निगरानी को अधिक प्रभावी और अधिक सार्थक बनाने के लिए संसद को ऐसी ऐजेंसी की आवश्यकता होती है जिस पर सम्पूर्ण सदन का विश्वास हो। इस उद्देश्य की पूर्ति वह अपनी संसदीय समितियों के माध्यम से करती है। समितियों का औचित्य निम्न तथ्यों से ज्ञात होता है। (1) विधायी कार्यों की बढ़ती जटिलता। (2) कार्यभार की अधिकता। (3) विपक्ष की भूमिका की प्रधानता का संचालना। (4) परम्परागत द्वितीय सदन की भूमिका का निर्वहण। (5) दलगत राजनीति से परे दृष्टिकोण। (6) अनुभव एवं योग्यता का सशक्त मंच।

संसदीय समितियाँ एक ओर संसद और जनता के बीच कड़ी का कार्य करती हैं, तो दूसरी तरफ सरकार और जनता के बीच समितियों की प्रासंगिकता इस परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण है कि इसमें वित्त सम्बन्धी विधायी विचार विमर्श को सार्थक बनाने के लिए पूरी व्यवस्थापिका सभा की बजाय सभा के कुछ सदस्यों जो कि वित्तीय मामलों में विशेष रूचि रखते हैं, ये युक्त एक समिति द्वारा इस पर विचार करने की आवश्यकता पर बल दिया गया। सार्वजनिक वित्त सम्बन्धी इस द्विमुखी प्रक्रिया-बजट निर्माण और बजट पर नियन्त्रण रखने के लिए संसदीय समितियों को तीन श्रेणियों में विभक्त करते हैं:-

(1) वित्तीय समितियाँ

(अ) लोक लेखा समिति

(ब) अनुमान समिति

(2) विभागीय समितियाँ

(3) सार्वजनिक उपक्रम सम्बन्धी समितियाँ

संसदीय समितियाँ

वित्तीय समितियाँ

विभागीय समितियाँ

लोक उपक्रम सम्बन्धी समितियाँ

लोक लेखा समिति

अनुमान समिति

18.3.1 लोक लेखा समिति

बजट के क्रियान्वयन पर कार्यपालिका और प्रशासनिक नियन्त्रण के पश्चात संसद द्वारा नियन्त्रण का औचित्य इस बात में निहित है कि संसद ही विनियोग विधेयक द्वारा कार्यपालिका को विभिन्न प्रयोजनों के लिए व्यय करने के लिए अनुमोदन प्रदान करती है। संसद उस शक्ति को सम्पन्न करने के लिए प्रश्न काल, काम रोको प्रस्ताव आदि संसदीय तकनीक का प्रयोग कर सकती है, परन्तु इस कार्य को अधिक सूक्ष्मता तथा कुशलता द्वारा लोक लेखा समिति द्वारा सम्पन्न किया जाता है। जोकि लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन पर विचार करती है संसद सदस्य वित्तीय स्वरूप के उतने जानकार नहीं होते परन्तु नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक वित्तीय स्वरूप का विशेषज्ञ होता है, इस कारण इसके प्रतिवेदन का महत्व बढ़ जाता है। अतः एक लोकतन्त्रात्मक शासन पद्धति में उसके प्रतिवेदन के तदन्तर लोक-लेखा समिति द्वारा समीक्षा विशिष्ट नियन्त्रण के साथ-साथ राजनीतिक नियन्त्रण को साकार करती है। संसद द्वारा नियन्त्रण के लिए समिति को अपनाने के कारण निम्नलिखित है। (1) संसद का विशाल आकार और सदस्यों की सामान्य पृष्ठभूमि के साथ वित्तीय मामलों में सूक्ष्मताओं की जानकारी न होना ही रूचि का पाया जाना। अतः बड़े संसदीय स्वरूप में प्रतिवेदन पर चुने हुए सदस्यों की समिति द्वारा ही सूक्ष्मता एवं गहनता से जानकार सदस्यों द्वारा जो वित्त मामलों के सम्बन्ध में ज्ञान एवं रूचि रखते हैं परीक्षण किया जा सकता है। (2) राजनीति दल आधारित संसदीय व्यवस्था ऐसे कार्यों के लिए अकार्यकारी है। क्योंकि संसद में प्रत्येक विचार विमर्श दलीय भावना को प्रकट करते हैं। अतः वित्तीय मामलों पर विचार विमर्श स्वतन्त्र और निपक्ष हो जो कि समिति द्वारा बेहतर रूप से पूर्ण किया जाता है।

लोक लेखा समिति की अवधारणा ब्रिटिश संसदीय पद्धति की देन है। ब्रिटेन में यह सन् 1861 में अस्तित्व में आयी इसके परिणाम स्वरूप सार्वजनिक विनियोजनों में नियोजित धन पर संसदीय नियन्त्रण ही प्राप्त न किया, बल्कि संसदीय नियन्त्रण में वृद्धि हुई। भारत में लोक लेखा समिति संसद की सबसे पुरानी और बहुत ही महत्वपूर्ण समिति है। सर्वप्रथम 1919 के भारत सरकार अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार 1921 में प्रथम लोक लेखा समिति की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य सरकारी लेखा की छानबीन करना तथा उसमें की गई अनियमितता को उदघाटित करना था। भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात ब्रिटिश प्रणाली से प्रभावित होकर अप्रैल, 1950 में लोक समिति की स्थापना की गई मोटे तौर पर स्वतन्त्र भारत में भी इस कमेटी का स्वरूप तथा कार्यक्षेत्र वही है जो ब्रिटिश भारत में गठित समिति के लिए प्रचलन में था तथापि बदले परिप्रेक्ष्य में इसके स्वरूप में आवश्यक परिवर्तन भी किए गए हैं।

लोक लेखा समिति में सदस्यों की संख्या 22 होती है जिसमें 15 लोक सभा से 7 राज्यसभा से होते हैं। समिति में सदस्यों का निर्वाचन एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के

आधार पर होता है, जिसके द्वारा विभिन्न राजनीतिक दलों को संसद में अपनी दलीय शक्ति के अनुपात में ही प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है, जिसके द्वारा विभिन्न राजनीतिक दलों को संसद में अपनी दलीय संख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। समिति का अध्यक्ष लोक सभा अध्यक्ष द्वारा नियुक्त किया जाता है। शुरुवात में सत्तादल के सदस्य की नियुक्ति लोक लेखा समिति में अध्यक्ष पद पर होती थी। परन्तु 1967 से विरोधी दल से अध्यक्ष बनाया जाने लगा है। यदि लोक सभा का उपाध्यक्ष समिति का सदस्य चुना जाता है, तो वह ही समिति का अध्यक्ष होता है। एम0 आर0 मसानी विरोधी दल के प्रथम सदस्य थे, जो इस समिति के अध्यक्ष मनोनीत किए गए। समिति का कार्यकाल मई से अप्रैल तक एक वर्ष का होता है। अध्यक्ष एवं सदस्य का कार्यकाल एक वर्ष का होता है, जिनका पुर्ननिर्वाचन किया जा सकता है। भारत की लोक-लेखा समिति ब्रिटेन से दो तरह से भिन्न है, पहली इसमें राज्य सभा का प्रतिनिधित्व दिया गया है जबकि ब्रिटेन में लॉर्ड सभा (उच्च सदन) के सदस्य इसके सदस्य नहीं होते हैं। दूसरा लोक लेखा के प्रतिवेदन लॉर्ड सभा में पटल नहीं रखे जाते, जबकि भारत में दोनों सदनों में प्रतिवेदन रखे जाते हैं।

18.3.1.1 लोक लेखा समिति के कार्य

लोक लेखा समिति का मुख्य कार्य सदन में प्रस्तुत किये गए नियंत्रक व महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन का परीक्षण करने यह देखना है कि संसद द्वारा विनियोजित धन का कार्यपालिका के प्राधिकारियों द्वारा “माँगों के क्षेत्र के भीतर” व्यय हुआ है अथवा नहीं। इस वाक्यांश का भाव है:-

- (1) व्यय संसद के विनियोजित धन से अधिक नहीं बढ़ना चाहिए।
- (2) व्यय उसी उद्देश्य के लिए किया गया हो, जिस उद्देश्य के लिए संसद ने उस पर मतदान किया है।
- (3) व्यय उन्हीं अधिकारियों द्वारा किया गया हो, जो वैधानिक रूप से व्यय के लिए सक्षम थे।
- (4) कार्यपालिका ने एक अनुदान में बची हुई राशि दूसरी मद के लिए व्यय करके संसद की अवहेलना तो नहीं की है।
- (5) अनुमोदित नीतियों तथा कार्यक्रमों तथा पुनर्विनियोजित अधिकृत व सक्षम अधिकारियों के द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार हुआ है या नहीं।
- (6) सभी वित्तीय मामलों में नैतिकता के उच्चस्तरीय मानदण्डों को बनाये रखना।

उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त लोक लेखा समिति प्रत्येक ऐसे विषय की जाँच करती है, जिसमें वित्तीय वर्ष के दौरान किसी सेवा पर संसद द्वारा स्वीकृत धनराशि से अधिक व्यय किया गया है। ऐसे अतिव्ययों का आगामी वित्तीय वर्षों में नियमन किया जाए, उपरोक्त सिफारिशों को प्रतिवेदन के रूप

में प्रस्तुत करती है। जैसा कि कौल और शकधर कहते हैं, कि “समिति का कार्य व्यय की औपचारिकताओं के बाहर व्यय सम्बन्धी, विवके, वफादारी और मितव्ययिता सम्मत हो।” यह वित्तीय अनुशासन और सिद्धान्तों पर भी विचार विमर्श करती है। समिति उन अनियमितताओं का भी परीक्षण कर सकती है जो कि सार्वजनिक रूप से प्रकट हो जाए या जिनके सम्बन्ध में सरकार को अवगत कराया जाता है, चाहे ऐसे विषयों पर औपचारिक लेखा प्रतिवेदन प्रस्तुत न भी किया गया हो। लोक लेखा समिति वित्त के नियन्त्रण के कार्य को पूर्ण अवैयक्तिक रूप से सम्पन्न करती है। यह देखती है कि व्यवस्था कहाँ भंग हुई है, या नियन्त्रण उपायों को सुझाना जिससे भविष्य में अपव्यय और हानियों को रोका जा सके। लोक लेखा समिति अपने कार्य को व्यक्ति विशेष पर टिप्पणी किए बिना पूर्ण करती है, परन्तु समिति अपनी अनुषंशा के अनुरूप मंत्रालय और विभागों से कार्यवाही की अपेक्षा रखती है।

18.3.1.2 लोक लेखा समिति के नियन्त्रण का स्वरूप

लोक लेखा समिति द्वारा कार्यपालिका पर वित्तीय क्षेत्र में किए जाने वाले नियन्त्रण का स्वरूप निम्नवत है:-

1. लोक लेखा समिति द्वारा कार्यपालिका के ऊपर नियन्त्रण विशेषज्ञ नियन्त्रण के समान होता है। यह समिति विभिन्न विषयों पर विशेषज्ञों की राय लेती है। इसके सदस्यों को संसदीय वित्तीय प्रक्रिया का अच्छा ज्ञान होता है। अतः सम्मिलित आधार पर यह सिफारिशें करते हैं, और आवश्यक होने पर उपसमिति की नियुक्ति भी करते हैं।
2. लोक लेखा समिति का मुख्य उद्देश्य बजट के विनियोजन पर नियंत्रण करना है। यह धन के खर्च में की गई अनियमितताओं को उदघाटित करती है, और खर्च करने वाले को अपने कर्तव्य के प्रति सजग करती है।
3. वित्त विभाग एवं नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के मध्य या अन्य विभागों एवं नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के मध्य विवाद होने पर समिति न्यायाधीश की भूमिका निभाती है, उपरान्त समिति द्वारा लिए गए निर्णय भविष्य में सरकारी लेन-देन के सम्बन्ध में कानून की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं।
4. समिति का गठन यद्यपि दलीय आधार पर दलों के अनुभवी एवं वरिष्ठ सदस्यों के रूप में किया जाता है, जो बाद में गैर दलीय स्वरूप धारण कर लेते हैं और मतैक्य भाव से कार्य करती है।
5. समिति वित्तीय नियंत्रण के माध्यम से प्रशासनिक मंत्रालयों की प्रक्रियाओं व कार्य विधियों पर नियन्त्रण रखती है। जो भ्रष्ट अधिकारियों तथा कर्मचारियों के स्थानान्तरण, प्रतिनियुक्ति, पदच्युति

तथा समय पूर्व सेवानिवृत्ति के विषयों को प्रभावित करता है। समिति का कार्य यद्यपि बाद में शुरू होता है, परन्तु इसकी छानबीन की प्रभावशीलता का डर अधिकारियों में बना रहता है।

लोक लेखा समिति की कार्यवाही का पूर्णरूपेण अभिलेख रखा जाता है। लेखों और लेखा प्रतिवेदनों के परीक्षण और समिति द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर समिति का सचिवालय प्रतिवेदन का प्रारूप बनाता है, जिसकी एक प्रति समिति के अध्यक्ष के अनुमोदन हेतु एवं एक नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के पास भेजी जाती है। अध्यक्ष की सहमति उपरान्त नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के साथ समिति की बैठक की जाती है, ताकि तथ्यों और अंकों में आवश्यक संशोधनों को किया जा सके। यद्यपि समिति दलीय भावना से परे कार्य करता है, परन्तु मतैक्य न होने पर बहुमत से निर्णय लिया जाता है, मतों की संख्या बराबर हो जाए तो निर्णय समिति का अध्यक्ष निर्णायक मत देने का अधिकार रखता है। लोक लेखा समिति के प्रतिवेदन को उसके अध्यक्ष द्वारा लोक सभा में एवं अधिकृत सदस्य द्वारा राज्य सभा में प्रस्तुत किया जाता है। समिति के प्रतिवेदन को दोनो सदन बिना वाद-विवाद के स्वीकार कर लेते हैं। किसी मतभेद की स्थिति में सरकार समिति को कारणों सहित सूचित करती है।

18.3.1.3 लोक लेखा समिति का मूल्यांकन

लोक लेखा समिति की सिफारिशों को मानना सरकार के लिए अनिवार्य नहीं है, किन्तु सरकार समिति की अधिकांश सिफारिशों को लागू करने का प्रयास करती है। इस सन्दर्भ में आन्तरिक कार्य नियम 27 में कहा गया है कि “लोक सभा सचिवालय की लोक लेखा समिति शाखा एक पूर्ण रखा जाएगा जिसमें लोक लेखा समिति की सिफारिशों को लागू करने के लिए विभिन्न मन्त्रालयों द्वारा उठाए गए अथवा सम्भावित कदमों का ब्यौरा हो.....तथा समिति की अगली बैठक के कम से कम सात दिन पूर्व सभी सदस्यों को वितरित करने की व्यवस्था करें।” समिति की कमियाँ या दुर्बलता निम्न रूप में प्रतिबिम्बित होती है --

1. समिति किसी व्यय की वाद को अस्वीकार नहीं कर सकती है, नीति के व्यापक प्रश्नों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता है।
2. समिति के विचार विमर्श का क्षेत्र नियन्त्रक महालेखा परीक्षक का प्रतिवेदन है। अतः इसकी पूर्ण निर्भरता उसके प्रतिवेदन पर हो जाती है।
3. समिति की कार्यकुशलता में कमी का महत्वपूर्ण कारण वित्तीय लेन-देन के बहुत देर बाद उसके सम्बन्ध में प्रतिवेदन देना है। जो ‘शव परीक्षा’ के रूप में गड़े मुर्दे उखाड़ने की कोशिश करती है। कई

बार उसके प्रतिवेदनों पर संसद में विस्तृत विचार नहीं किया जाता है, और इसकी सिफारिशों को गंभीरता से न लेकर इन्हें केवल औपचारिकता मात्र मान लिया जाता है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि लोक-लेखा समिति का कार्य तब शुरू होता है जब सरकार बजट सम्बन्धी धनराशि को वित्तीय वर्ष में पूरी तरह खर्च कर लेती है। अतः धन के खर्च होने के पश्चात् लोक लेखा समिति द्वारा नियन्त्रण की उपयोगिता के प्रति सन्देह प्रकट किया जाता है इसी कारण आलोचक कहते हैं कि यह व्यय सम्मत त्रुटियों को रोकने की बजाय, की गयी त्रुटियों पर पुनर्विचार करके समय को नष्ट करना है। प्रो० हीरेन मुकर्जी के शब्दों में, “समिति के प्रतिवेदनों का समाचार-पत्रों द्वारा व्यापक प्रचार किया जाता है। अतः यह स्वाभाविक है कि सरकार समिति के सुझावों टिप्पणियों की उपेक्षा नहीं कर सकती इसका यह प्रभाव होता है कि प्रशासन कोई गलत कार्य करने से घबराता है।” तथापि लोक लेखा समिति की प्रभावशीलता बढ़ाने हेतु निम्नांकित सुझाव दिए जा सकते हैं:-

1. जिन मामलों में धन का दुरुपयोग तथा दुर्विनियोजन किया गया है, उनकी तरफ उसी वर्ष संसद तथा लोक लेखा समिति के ध्यान में लाना चाहिए।
2. वित्तीय लेन-देन की परीक्षा साथ-साथ कर लेना चाहिए एवं आवश्यक निर्देश दे, ताकि आगामी वर्षों में गलतियों की पुनरावृत्ति न हो।
3. समिति में सदस्यों की संख्या बढ़ानी चाहिए एवं वित्तीय क्षेत्र के अनुभव को वरीयता देनी चाहिए, साथ ही संसद को उसके प्रतिवेदनों पर गहन विचार-विमर्श करना चाहिए। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि लोक लेखा समिति ने संसदीय लोकतन्त्र बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसकी महती भूमिका के सम्बन्ध में समिति की स्वर्ण जयन्ती पर तत्कालीन राष्ट्रपति ने ये वक्तव्य व्यक्त किया कि, “लोक लेखा समिति हमारे संसदीय जीवन के जीवंतकाल में अस्तित्व में आई सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर हमारी संसद और राज्य विधान सभाएँ कार्यपालिका शक्ति और प्रक्रिया की संरक्षिका बन गयी है। लोक-लेखा समिति को नागरिक सेवकों को बुलाने की शक्ति है, ताकि इस बात का आश्वासन प्राप्त हो सके कि सार्वजनिक धन का उचित प्रयोग हो रहा है। इस प्रक्रिया में पूछताछ के दौरान रहस्य के प्रकट होने का भय ही गलत कार्यों के सम्बन्ध में एक आश्चर्य निरोधक के रूप में कार्य करता है। इस कार्य के लिए समिति को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सांविधानिक अभिकर्ता-नियन्त्रक और महालेखा परीक्षक की सहायता एवं परामर्श मिलता रहता है। अतः निःसन्देह इस पृष्ठभूमि में हमारी संसद की लोक लेखा समिति का ऐसा इतिहास है। जिसके बारे में यह गौरवान्वित अनुभव कर सकती है।”

अभ्यास प्रश्न 1

अउत्तरीय प्रश्न-लघु.

1. वित्त पर संसदीय नियंत्रण के औचित्य को लिखिए।

2. लोक लेखा समिति का क्या आशय है।

बरिक्त स्थान भरिए.

1. लोक लेखा समिति में सदस्यों की संख्या,,,,,,,,,,,,,होती है।

2. लोक लेखा समिति का अध्यक्ष लोक सभा अध्यक्ष द्वारा,,,,,,,,,,,,,से बनाया जाता है।

3. लोक लेखा समिति का मुख्य कार्य सदन में प्रस्तुत किये गए,,,,,,,,,,,,,के प्रतिवेदन का परीक्षण करना है।

18.3.2 अनुमान समिति

संसद को यह शक्ति प्राप्त है, कि वह किसी माँग को स्वीकार कर ले या स्वीकार न करे या उसमें निश्चित रकम की कटौती कर दें। उसे संचित निधि पर भारित खर्चों के अनुमान का भी अधिकार है। यद्यपि अनुमानों पर दीर्घकालीन विचार-विमर्श करती है। परन्तु उसे एक व्यापक वित्तीय नियन्त्रण के लिए यह देखना भी आवश्यक है कि संसद में प्रस्तुत किए गये कार्यक्रमों व परियोजनाओं के लिए निर्धारित अनुदानों की मितव्ययता की दृष्टि से छानबीन की जाए। संसद के पास अनुमानों के तकनीकी पक्षों के रूप में छानबीन का न तो समय न ही शक्ति होती है। अतः इसके लिए संसद की एक ऐसी समिति का गठन किया जाता है, जो संसद के समक्ष प्रस्तुत अनुदान माँगों की विषयवार समीक्षा करती है, तथा व्यय करने से पहले ही खर्च में मितव्ययिता लाने के सुझाव देती है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए विधायिका ने एक अन्य समिति का निर्माण किया है। जिसे प्राक्कलन या अनुमान समिति कहते हैं। अनुमान समिति एक स्थायी वित्तीय समिति है। भारत में यद्यपि सन् 1937 में ही अनुमान समिति के गठन का माँग किया गया। परन्तु समिति का गठन को उस समय स्वीकार नहीं किया गया। उस समय वित्त विभाग के अर्न्तगत एक स्थायी वित्तीय समिति (1921) कार्य कर रही थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात सन् 1950 में अनुमान समिति का गठन किया गया। समिति का गठन प्रतिवर्ष किया जाता है, प्रारम्भ में इसके 25 सदस्य रहते थे, अब उनकी संख्या 30 कर दी गयी है। जो सभी लोकसभा के सदस्य होते हैं। समिति में राजनीतिक दलों को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके, इसके लिए सदस्यों का चुनाव एकल संक्रमणीय मत से आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली द्वारा होता है। इसके अध्यक्ष की नियुक्ति लोक सभा अध्यक्ष द्वारा की जाती है। यदि लोकसभा का उपाध्यक्ष इसका सदस्य होता है, तो वह स्वतः ही इसका अध्यक्ष बन जाता है। मन्त्रीगण अनुमान समिति के सदस्य नहीं होते। सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष होता है उसे अभिसमय के अनुसार उन्हे दो और कार्यवधियों के लिए चुना जाता है, ताकि समिति के कार्य में निरन्तरता और उनका अनुभव

लिया जा सके। समिति का गठन मई माह में होता है, जो जुलाई माह से अपना कार्य शुरू कर देती है। समिति के सहायतार्थ उसका एक कार्यालय भी होता है।

अनुमान समिति सरकार की नीतियों से सम्बन्धित विषयों से सरोकार नहीं रखती है। इसका मुख्य उद्देश्य तो इस बात से संतुष्ट रहना होता है, कि निर्धारित नीति के अन्तर्गत अधिकतम मितव्ययिता के साथ न्यूनतम व्यय किया जाए। यह सरकार द्वारा स्वीकृत योजनाओं व परियोजनाओं को कार्यान्वित करते हुए व्यय में मितव्ययिता लाने के लिए रचनात्मक सुझाव देने वाली संस्था है, संसद के कार्य संचालन के लिए अपनाए गए प्रक्रिया नियमों के अनुसार अनुमान समिति के कार्यों में अक्टूबर 1956 में संशोधन कर काफी व्यापक कर दिया गया है। नवीन प्रावधानों के अनुसार समिति को यह प्रतिवेदन देना है कि, “सरकारी नीति संगतता के आधार पर तैयार किए गए अनुमानों में क्या मितव्ययिताएं, संगठनात्मक सुधार, कुशलता या प्रशासनिक सुधार लागू किए जा सकते हैं, प्रशासन में मितव्ययिता तथा कुशलता त्यागने के लिए क्या नीति विकल्प हो सकते हैं, तथा यह जाँच करना कि किस हद तक नीति के अनुरूप तैयार किए गए अनुमानों के लिए मौद्रिक प्रावधान सही ढंग से किए गए हैं”। इस तरह अनुमान समिति के कार्यों को सार रूप में निम्नलिखित शीर्षों में व्यक्त करते हैं -

1. सरकारी नीति के अनुरूप तैयार किए गये अनुमानों में मितव्ययिता लाने के प्रशासनिक व संगठनात्मक सलाह देना।
2. प्रशासन में कार्यकुशलता व मितव्ययिता लाने के लिए वैकल्पिक नीतियों की सलाह देना।
3. अनुमानों में सन्निहित नीति के अनुरूप मौद्रिक प्रावधानों का औचित्य की परख करना।
4. संसद के सम्मुख बजट अनुमानों के प्रस्तुतीकरण का बेहतर ढंग विकसित करने के लिए सलाह देना।
5. सरकारी अधिकारियों की सुनवाई कर सकती है, और एक ऐसी प्रश्नावली बना सकती है। जिनके प्रश्नों का उत्तर सम्बन्धी विभाग प्रमुख को देना होता है।

समिति का गठन मई में किसी समय कर दिया जाता है। जो प्रतिवर्ष कुछ मन्त्रालयों को अपने विशिष्ट अध्ययन के लिए चुन लिया जाता है और वह जुलाई से कार्य करना प्रारम्भ कर देती है। मन्त्रालयों के चुनाव के सन्दर्भ में 1958 में लोकसभा अध्यक्ष का वक्तव्य है, कि “प्रत्येक लोकसभा के जीवन काल में जहाँ तक सम्भव हो प्रत्येक मन्त्रालय के महत्वपूर्ण बजट अनुमानों की जाँच का एक दौर पूरा किया जाना चाहिए।” वह सालभर के लिए अनुमानों का चयन करके अपने कार्यों की योजना

तैयार करती है। समिति अपने जाँच एवं अध्ययन हेतु प्रशासनिक स्रोत, प्रकाशित सामग्री, निजी संस्थाएँ, अध्ययन दल, मौखिक जानकारी और सरकारी तथा गैर सरकारी गवाही के द्वारा सामग्री एकत्रित करती है। इस हेतु वह उपसमितियों का गठन करती है। जाँच के सन्दर्भ में समिति सरकारी अधिकारियों को स्पष्टीकरण के लिए बुला सकती है। उन्हें प्रश्नावली भेजकर सूचना एकत्र कर सकती है। आवश्यक होने पर आँकड़े चार्ट और अभिलेख माँग सकती है। समिति एक परिपत्र के द्वारा मन्त्रालयों के लिए तैयार किए गए अनुमानों के सन्दर्भ में मुख्यतया निम्न सूचनाएँ माँगी जाती हैं:-

- (1) मन्त्रालय एवं उससे जुड़े अधीनस्थ कार्यालय का गठन तथा कार्य ।
- (2) मन्त्रालय व इसके अधीनस्थ कार्यालयों के उन आधार का विस्तृत ब्यौरा, जिन पर अनुमान तैयारी निर्भर करती है।
- (3) मन्त्रालय के उन कार्यों के पिछले तीन वर्षों का विवरण जो वर्तमान अनुमानों की अवधि में पूरा की जानी है।
- (4) योजनायें व परियोजनायें जो मन्त्रालय शुरू कर रहा है या चल रही है।
- (5) पिछले तीन वर्षों में वर्तमान अनुमानों में उपशीर्षकों के अन्तर्गत किया गया व्यय।
- (6) वर्तमान वर्ष तथा पिछले वर्ष के अनुमानों के खर्च में अन्तर के कारण।
- (7) अन्य किसी भी प्रकार के अनुमान के सन्दर्भ में सूचना जो मन्त्रालय देना चाहता है।

उक्त समस्त सूचनाओं का समिति के सचिवालय द्वारा विश्लेषण करके, सदस्यों के विचार-विमर्श के बाद प्रतिवेदन अध्यक्ष की स्वीकृति से सदस्यों में वितरण कर दिया जाता है, एवं तथ्यात्मक पुष्टि हेतु सम्बन्धित विभाग या मन्त्रालय को गोपनीयता बनाये रखते हुए भेजा जाता है। तदोपरान्त मन्त्रालय की अनुदान मांगों पर बहस पूर्व प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाता है। प्रतिवेदन में प्रमुखतया तीन प्रकार की सिफारिशें होती हैं:- (1) संगठनात्मक तथा कार्यात्मक सुधार सम्बन्धी, (2) मितव्ययिता सम्बन्धी जो अर्थव्यवस्था के सुनिश्चित अनुमान व्यक्त करने वाले हो और (3) मार्गदर्शन सम्बन्धी अन्य सुझाव।

प्रतिवेदन पर अनुमान समिति अपने सचिवालय की सहायता से सिफारिशों को लागू करने के लिए की गयी कार्यवाही की सूचना प्राप्त करती है, जिसे मन्त्रालय से प्राप्त जानकारी को क्रियान्वयन कहते हैं। भारत में अनुमान समिति का कार्य बहुत व्यापक है। इसने सरकारी भूलचूक के अनेक कार्यों को प्रकाश में लाया। इस समिति ने वित्तीय एवं प्रशासकीय दोनों ही क्षेत्रों में सुधार के महत्वपूर्ण सुझाव

दिये है। दूसरे प्रतिवेदन के माध्यम से केन्द्रीय सचिवालय एवं विभागों के पुर्नगठन के लिये सिफारिश प्रस्तुत किया। दूसरी तरफ दामोदर घाटी योजना, हीराकुण्ड परियोजना, भाखड़ा नागल योजना तथा काकरापारा योजना जैसी बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं के कार्य संचालन की प्रशासकीय कमियों को उजागर कर महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन किया। इसके प्रतिवेदन प्रकाशित होते हैं, और जनमत में प्रचारित भी किये जा रहे हैं। इसकी अधिकांश सिफारिशों को सरकार द्वारा स्वीकृति प्राप्त होती है, जिसकी क्रियान्वयन प्रतिवेदन से पुष्टि होती है। फिर भी समिति की अन्तिम सफलता सरकार पर दीर्घकालीन चिन्तन तथा योजना के सम्बन्ध में पड़ने वाले प्रभाव पर निर्भर करता है। इसमें निम्नवत कमियाँ या दुर्बलताएँ दृष्टिगोचर होती हैं:-

1. समिति जिस मन्त्रालय या विभाग की एक बार समीक्षा कर लेती है, दूसरी बार की समीक्षा में बहुत अधिक समय होता है।
2. समिति सामान्य व्यक्तियों का एक समूह है, उसके पास लोक लेखा समिति की तरह नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक जैसा कोई परामर्श विशेषज्ञ उपलब्ध नहीं रहता है।
3. समिति सरकारी नीति के मूल्यांकन एवं विभागीय पुर्नगठन पर अधिक मात्रा में अपनी शक्ति खर्च कर रही है, जबकि अपने मूल कार्य अनुमानों की जाँच करना गौण होता जा रहा है।
4. समिति का कार्य तथ्यों के खोजने की मंशा रूप में नहीं, वह संयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस समितियों के रूप में तथ्यान्वेषी तंत्र के स्थान पर छिद्रान्वेषी तंत्र बनाती जा रही है।
5. समिति स्वयं को लोक सभा के सापेक्ष भूमिका में ले जा रही है।
6. समिति संगठनात्मक सुधार तथा कार्यों के पुर्नवितरण सम्बंधित सुझाव देती है, जो प्रचार महत्तायुक्त होते हैं। अतः सरकार इस तरह की सिफारिशें अस्वीकृत कर देती है।

अनुमान समिति वित्तीय नियंत्रण की दिशा में उपयोगी कार्य कर रही है, जो भारत में प्रशासन की योग्यता तथा उसके स्तर को उन्नत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। इस पर दोषारोपण करते हुए कहा जाता है। कि बहुत बार यह नीति सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करके उन कार्यों को करने लगती है जो वास्तव में उसके नहीं हैं, लेकिन इस बात से पूर्णतः सहमत नहीं हुआ जा सकता है। यह समिति सदन का कार्य नहीं करती बल्कि सदन के अपने कार्य को अच्छी तरह करने में सहायता करती है। इसके कार्य सुझावपरक हैं, जिनको अनुपालन करना सदन पर निर्भर करता है।

18.3.3 विभागीय समितियाँ

विभागीय समितियाँ स्थायी प्रकृति की समितियाँ होती हैं। इस प्रकार की समितियों की स्थापना का मूल ध्येय विभिन्न मन्त्रालयों/विभागों की अनुदान माँगों की समीक्षा संसद में विचार तथा मतदान किए जाने से पूर्व करने के सन्दर्भ में है। दीर्घकालीन संसदीय अनुभव ने प्रकट किया कि विद्यमान संसदीय कार्यप्रणाली में समय की कमी के कारण बजट के अधिकांश भाग को बिना विस्तृत-चर्चा के हीस्वीकार कर लिया जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में सन् 1993 में विभाग सम्बन्धी स्थायी संसदीय समितियों के गठन का निर्णय किया। आरम्भ में सत्रह स्थायी समितियों की स्थापना की गयी। अब इनकी संख्या बढ़कर 25 हो गयी है। प्रत्येक समिति में अधिकतम सदस्य संख्या 31 है, जिसमें 10 राज्यसभा से और 21 लोकसभा से नियुक्त होते हैं। पाँच समितियों के अध्यक्ष राज्यसभा से तथा चार समितियों के अध्यक्ष के सम्बन्ध में सूचना उपलब्ध नहीं है, और शेष के लोकसभा के सदस्य होते हैं। समितियाँ में परीक्षण के उपरान्त अनुदान माँगों पर प्रतिवेदन विचार विमर्श के लिए संसद में प्रस्तुत किया जाता है।

18.3.4 लोक उपक्रम समिति

लोक निगमो/लोक उद्यमों के कार्य संचालन के निरीक्षण परीक्षण और समय-समय पर उनके विषय में संसद में प्रतिवेदन देने के लिए एक संसदीय समिति के गठन की माँग उठती रही। इस तथ्य के पीछे मूल भावना यह थी कि संसद अपने प्रति उत्तरदायी उद्यमों को प्रभावशाली तथा न्याय संगत रूप में नियंत्रण रखने में सफल नहीं रही है। इस प्रकार का समिति के गठन का उद्भव सर्वप्रथम 1953 के अन्त में लोकसभा में लंका सुन्दरम् ने की थी। वर्ष 1956 में जीवन बीमा निगम विधेयक पर चर्चा के दौरान श्री अशोक मेहता ने एक ऐसी स्थायी समिति के गठन के पक्ष में मत रखा था जो राष्ट्रीयकृत उद्योग के कार्य-संचालन की पूरी जांच-पड़ताल करने के लिए आवश्यक उपकरण तथा अधिकारी हो प्रथम लोकसभा अध्यक्ष जी0वी0 मावलंकर ने प्रधानमंत्री को पत्र के माध्यमसे स्वायत्त लोक निगमों के कार्य संचालन की जांच हेतु एक स्थायी संसदीय समिति के गठन की बात रखी थी। योजना आयोग ने भी लोक उपक्रमों पर एक संसदीय समिति के गठन की सिफारिश की थी। परिणतः स्वरूप 1 मई 1964 को लोक उपक्रम समिति की स्थापना की गयी। इस समिति में 22 सदस्य होते हैं जिसमें 15 लोकसभा तथा 7 राज्य सभा के सदस्य होते हैं। सदस्यों का चुनाव एकल संक्रमणीय तथा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर होता है। मई माह के आरम्भ में समिति का गठन कर दिया जाता है जो अगले वर्ष 30 अप्रैल तक रहता है। लोकसभा अध्यक्ष द्वारा समिति के सभापति को नियुक्त किया जाता है। जिसका कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है। समिति के बीस प्रतिशत सदस्य चक्रानुक्रम में प्रत्येक वर्ष सेवानिवृत्त कर दिए जाते हैं।

लोक उद्यम समिति का कार्य उपक्रमों के कार्य संपादन के सभी पक्षों का मूल्यांकन करना है। इसको जिन लोकउपक्रमों के प्रतिवेदन तथा लेखों की जाँच करने का कार्य समिति को दिया गया है, उनकी

उस सन्दर्भ में जाँच करना होता है। लोक उपक्रमों पर नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन का परीक्षण करना, लोक उपक्रमों की स्वायत्तता एवं कार्यकुशलता का परीक्षण करना, कि लोक उपक्रम के कार्यों का प्रबन्ध स्वस्थ व्यावसायिक सिद्धान्तों के अनुरूप किया जा रहा है कि नहीं। इसके साथ ही अध्यक्ष की सलाह से लोक लेखा समिति एवं अनुमान समिति के सन्दर्भित कार्यों को करना होता है।

डॉ० सुभाष कश्यप के अनुसार “समिति द्वारा जाँच सामान्य रूप से उपक्रम के मुल्यांकन के स्वरूप की होती है जिसमें सभी पहलू आ जाते हैं, जैसे उत्पादन, सामान्य अर्थव्यवस्था में अंशदान, रोजगार के अवसर पैदा करना, सहायक उद्योगों का विकास, उपभोक्ता के हितों का संरक्षण, इत्यादि।”

लोक उपक्रम समिति के उपरोक्त कार्यों एवं कार्यवाहियों को देखते हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह समिति बहुत उपयोगी कार्य कर रही है। लोक उपक्रमों के सन्दर्भ में यह लोक लेखा समिति एवं अनुमान समिति के कार्यों को अकेले पूर्ण कर रही है। समिति द्वारा किए गए अध्ययनों के फलस्वरूप ये तथ्य संसद एवं जनता के ध्यान में लाया गया है कि लोक उपक्रमों द्वारा किस प्रकार कार्यालय के भवनों पर, अतिथि गृहों पर, जलपान पर और अधिकारियों के विदेशी दौरो पर भारी धनराशियां व्यय किया गया।

18.4 नियन्त्रक महालेखा परीक्षक

कार्यपालिका अपने समस्त कार्यों के लिए विधानमण्डल के प्रति उत्तर दायी होती है। कार्यपालिका दायित्वों का अनुपालन विधानमण्डल द्वारा तभी करवाया जा सकता है जब वह उनकी जाँच कर उन पर अपना निर्णय दे सकता हो। कार्यपालिका के सामान्य कृत्यों की जाँच सरलता से की जा सकती है, परन्तु कुछ कार्य ऐसे होते हैं, जिनकी जाँच सामान्य लोग नहीं कर सकते हैं। लेखांकन एवं लेखा परीक्षण और कार्यपालिका के वित्तीय लेन-देन का औचित्य अथवा अनौचित्य निर्धारण करना एक तकनीकी कार्य है, और इसके लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है। जबकि संसद सामान्य जन द्वारा निर्वाचित होने के कारण जाँच करने की क्षमता तथा योग्यता नहीं रखती, जबकि संसद का प्रमुख औचित्य है कि वह सरकार के वित्तीय व्यवहारों का परीक्षण करें कि कर दाताओं के धन का सदुपयोग अथवा दुरुपयोग हो रहा है। इस सन्दर्भ में एक वित्तीय विशेषज्ञ की आवश्यकता होती है, इसलिए स्वतन्त्र नियन्त्रक महालेखा परीक्षक का प्रावधान भारतीय संविधान के अन्तर्गत किया गया है। नियन्त्रक महालेखा परीक्षक स्वतन्त्र और निष्पक्ष रूप से कार्य करता है, इसकी स्वतन्त्रता और निष्पक्षता को संविधान के विभिन्न प्रावधानों और इस पद की शक्तियों, कर्तव्यों और सेवाशर्तों से सम्बन्धित कानून द्वारा आश्वस्त किया गया है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 148 से 151 तक नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की नियुक्ति तथा कार्यों के संबन्ध में प्रावधान किए गये हैं। नियन्त्रक महालेखा परीक्षक का पद बहुत ही महत्वपूर्ण है, जिसका प्रमुख दायित्व भारत की संचित निधि में से व्यय किये जाने वाले सभी सार्वजनिक धनो का लेखा परीक्षण करना है। जैसे भारत में लेखा परीक्षण विभाग की स्थापना सन 1853 में ही हो चुकी थी, किन्तु सन 1919 के अधिनियम द्वारा इसकी स्वतन्त्र निकाय के रूप में स्थापना की गई। सन् 1950 के संविधान में महालेखा परीक्षक का नाम बदल कर "नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक" रखा गया तथा उसे सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की भाँति एक संवैधानिक अधिकारी बनाया गया।

संसद ने 1953 के अधिनियम और 1971 के अधिनियम द्वारा क्रमशः नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यकाल तथा सेवा शर्तों एवं कर्तव्यों तथा अधिकारों को परिभाषित किया है। सन् 1976 के बाद लेखांकन सम्बन्धी दायित्व से वह मुक्त कर दिया गया है। अब नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक का कार्य लेखा-परीक्षण ही रह गया है। सन् 1984 के अधिनियम द्वारा जहाँ एक तरफ पेंशन सुविधाओं में वृद्धि का लाभ दिया गया है, वही उसकी शक्तियों में और वृद्धि कर दी गयी है।

18.4.1 नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की संवैधानिक स्थिति

संविधान में नियन्त्रक महालेखा परीक्षक को एक उच्च स्वतन्त्र वैधानिक अधिकारी माना गया है। संविधान में निहित उसके पद की शपथ में यह कहा गया है कि उसे संविधान और विधि की मर्यादा को बनाये रखना है तथा कर्तव्यों को भय, पक्षपात, प्रेम तथा बुरी भावना के बिना सम्पादित करना है। प्रशासन की वित्तीय एकता के सर्वश्रेष्ठ स्तर को बनाये रखने के उद्देश्य एवं कर देने वालों के हितों की रक्षा तथा विधायी नियन्त्रण के उद्देश्य के लिए भी संविधान में नियंत्रक महालेखा परीक्षक की स्वतन्त्रता व निष्पक्षता को निम्न विधियों से बनाये रखा है।

1. संविधान के अनुच्छेद 148 के अनुसार भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक की नियुक्ति अधिपत्र द्वारा राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद् की सलाह से अपने ही हाथों एवं मुहर से करेगा अपना पद पर वह 6 वर्ष तक या 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक जो भी पहले हो वह रहता है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की भाँति तथा उसी रीति तथा उन्ही आधारों पर उसे पदमुक्त किया जा सकता है।

2. संविधान के अनुच्छेद 148 (3) के अनुसार नियंत्रक महालेखा परीक्षक का वेतन तथा सेवा की अन्य शर्तें विधि द्वारा निश्चित होगी तथा नियुक्ति के पश्चात् इसमें किसी प्रकार परिवर्तन नहीं किया जा सकता जिससे उसकी हानि हो।

3. संविधान के अनुच्छेद 148 (4) के अनुसार नियंत्रक महालेखा परीक्षक अपने पद से सेवनिवृत्ति के बाद भारत सरकार या राज्य सरकार के किसी पद पर कार्य नहीं कर सकता।

4. संविधान के अनुच्छेद 148(6) के अनुसार उसका वेतन भत्ते एवं पेशन भारत की संचित निधि से देय होंगे।

18.4.2 नियंत्रक महालेखा परीक्षक के कर्तव्य

नियंत्रक महालेखा परीक्षक प्रथम नियंत्रक के रूप में यह देखता है कि भारत की संचित निधि से संसद द्वारा बनाये गये कानूनों के अनुसार ही समस्त धनराशि निकाली जाए। दूसरा समस्त सरकारी धन का व्यय संसद द्वारा पास किये गये कानून एवं नियमों के अनुसार किया जाय। इस सम्बन्ध में उसके कर्तव्य निम्नवत् हैं -

1. संघ, राज्य और राज्य संघ क्षेत्र की संचित निधि से किये गये व्यय का परीक्षण करना और उन पर प्रतिवेदन देना कि व्यय विधि के अनुसार है या नहीं।

2. संघ और राज्य की आकस्मिक निधि से किये गये व्यय ही जाँच और उन पर प्रतिवेदन देना।

3. संघ या राज्य के विभाग द्वारा किये गये सभी व्यापार और विनिर्माण के लाभ-हानि लेखाओं की जाँच और उन पर प्रतिवेदन देना।

4. संघ अथवा राज्य के अनुरोध पर किसी भी सरकारी विभाग की आय की जाँच करना।

5. संघ और राज्य से वित्त पोषित सभी स्थानीय संस्थाओं, निकायों, प्राधिकारों और सरकारी कम्पनियों, निगमों की प्राप्ति और व्यय की जाँच और उस पर प्रतिवेदन देना।

नियंत्रक महालेखा परीक्षक संघ तथा राज्य सरकारों के लेखों की जाँच के बाद महालेखाकार द्वारा संघ तथा राज्य सरकार के लिए अलग अलग जाँच प्रतिवेदन तैयार किये जाते हैं। संघ के लेखाओं से सम्बन्धित प्रतिवेदनों को राष्ट्रपति के समक्ष और राज्य से सम्बन्धित प्रतिवेदनों को राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत करता है। जिन्हें वे संसद एवं राज्य विधानमण्डलों में उनके अनुमोदन के बाद प्रस्तुत किया जाता है। संसद में प्रस्तुत प्रतिवेदन के साथ लो लेखा समिति नियंत्रक महालेखा परीक्षक की सहायता आगे की जाँच- पड़ताल में लेती है। इसी सन्दर्भ में कहा जाता है कि "नियंत्रक महालेखा परीक्षक लोक लेखा समिति का मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक होता है।"

18.4.3 नियंत्रक महालेखा परीक्षक की पद एवं स्थिति का मूल्यांकन

नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के कार्य एवं दायित्व अतिमहत्वपूर्ण हैं, इसलिए संविधान में उसे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समान स्थिति और अधिकार दिये गये हैं। संघ के स्तर पर जहाँ वह मात्र लेखा परीक्षण का कार्य देखता है, वहीं राज्यों में वह लेखा परीक्षण के साथ लेखा का कार्य भी पूर्ण करता है। भारतीय संसदीय प्रजातंत्र का वह एक महत्वपूर्ण स्तम्भ है। संसद द्वारा स्वीकृत धन के सही उपयोग करने की दिशा में वह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संघ और राज्य सरकारों के लेखों और आय-व्यय की देख रेख करके, धन का दुरुपयोग, धोखा, लूट एवं हेरा-फेरी के मामलों को संसद एवं विधानमण्डलों में जानकारी देकर यह सार्वजनिक द्रव्य का सजग प्रहरी और रखवाला की भूमिका निभाता है। नियन्त्रक महालेखा परीक्षक वित्त मंत्रालय से अलग सार्वजनिक व्यय का नियंत्रण नहीं करता। वह तो उद्देश्यपरक यंत्र प्रदान करता है जो सार्वजनिक वित्त के नियंत्रण की स्थिति को अनुकूल बनाते हैं। नियन्त्रक महालेखा परीक्षक ने समय समय पर अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों जैसे बाफोर्स घोटाला, ताबूत घोटाला, 2 जी स्पेक्ट्रम आवंटन घोटाला आदि को सामने लाकर जहाँ अपने पद की स्थिति एवं गरिमा का परिचय दिया है, वही भारतीय राजनीति में तूफान ला दिया, लेकिन इसके बावजूद यह पद आलोचना की निगाह से बच नहीं सका है।

कतिपय आलोचकों ने उसे जागरूक पहरेदार के स्थान पर ऐसा 'रक्त पिपासु शिकारी कुत्ता' कह डाला है जो सरकारी अधिकारियों की टांग पकड़ लेता है, उन्हें आगे बढ़ने नहीं देता और प्रशासन के कार्य में कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है। बोफोर्स तोप सौदे के सन्दर्भ में नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट को देखते हुए एन0 के0 पी0 साल्वे तत्कालीन नियन्त्रक महालेखा परीक्षक श्री टी0 एन0 चतुर्वेदी को मसवरा तक कह डाला और महाअभियोग की धमकी दी गई। लोक प्रशासन के अमरीकी विद्वान पाल एपलवी ने भारत में नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के पद एवं स्थिति तथा भारतीय लेखा परीक्षण पद्धति की आलोचना करते हुए इसे औपनिवेशिक शासन की विरासत कहा उनके अनुसार भारत में नियन्त्रक महालेखा परीक्षक को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया गया जिसने प्रशासनिक अधिकारियों को कार्य के प्रति निष्क्रिय बना दिया। श्री ए0 के0 राय के अनुसार "नियन्त्रक महालेखा परीक्षक न तो अनाधिकार हस्तक्षेप करने वाला दस्तदाज और नहीं गन्दी नालियों का निरीक्षक है, किन्तु अपनी लेखा परीक्षण के समय वह गन्दगी अवश्य देखता है, उसका कर्तव्य है कि वह इस तरफ संसद एवं विधानमण्डल का ध्यान खींचें और उसे यह जॉच सौंप दे।" उपरोक्त तथ्यों के आधार पर ही कहा जाता है कि भारत में नियन्त्रक महालेखा परीक्षक वित्तीय प्रशासन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उसे प्रशासन को समझने की निश्चयात्मक रीति से व्यवहार करना चाहिए, इसके कार्यों को और अधिक प्रभावशाली बनाने की आवश्यकता है तथापि कुछ सुझावों को कार्यान्वित करने से इसके कामकाज को आधुनिक समय की आर्थिक तथा औद्योगिक आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित करके इसे प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न 2

लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. अनुमान समिति के गठन के मुख्य उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
3. वित्त नियंत्रण में विभागीय समिति की भूमिका को समझाइए।
5. नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के लिए भारतीय संविधान में दिये गये भिन्न भिन्न उपबन्धों को बताइए।

18.5 सांराश

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हमें यह जानने और समझाने का अवसर प्राप्त हुआ है कि संसदीय शासन प्रणाली में वित्त पर नियंत्रण करने के लिए किस प्रकार के उपबंध हमारे संविधान निर्माताओं किए हैं। जिसके तहत संसदीय समितियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिनमें हमने लोक लेखा समिति के संगठन और कार्यों का अध्ययन किया है, जिसमें यह देखा कि इसका न केवल संगठन संसदीय परम्पराओं के अनुरूप किया गया है वरन् यह वित्त पर नियंत्रण रखने वाली महत्वपूर्ण समिति है।

इसके साथ ही साथ हमने अनुमान समिति, विभागीय समितियों और लोक उपक्रम समिति के विभिन्न पक्षों का भी अध्ययन किया है। अन्ततः हमने वित्त पर नियंत्रण रखने वाले प्रमुख पक्ष - नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की संवैधानिक स्थिति उसके कार्यों का अध्ययन करते हुए उसके पद और स्थिति का मूल्यांकन किया है। जिसमें हमने देखा कि नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के कार्य एवं दायित्व अति महत्वपूर्ण हैं, इसलिए संविधान में उसे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समान स्थिति और अधिकार दिये गये हैं। संघ के स्तर पर जहाँ वह मात्र लेखा परीक्षण का कार्य देखता है, वहीं राज्यों में वह लेखा परीक्षण के साथ लेखा का कार्य भी पूर्ण करता है।

18.6 शब्दावली

लोक लेखा समिति:- नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन पर संसद जिस समिति द्वारा गहन परीक्षण करती है उसे लोक लेखा समिति कहते हैं।

अनुमान समिति:- यह संसद द्वारा अनुमोदित विभिन्न मन्त्रालयों/विभागों के अनुमानों का तथा उन अनुमानों की आधारभूत नीति से संबंधित कार्यक्रमों तथा योजना के निष्पादन में आवश्यक रियायत को ध्यान में रखते हुए विस्तृत परीक्षण करती है, और अपना सुझाव प्रतिवेदन के रूप में संसद को सौपती है।

लोक उपक्रम समिति:- लोक उपक्रमों की कार्यप्रणाली के अध्ययन हेतु संसदीय नियमों के अन्तर्गत गठित समिति होती है।

कार्यपालिका:- प्रशासन का वह तंत्र, वह अभिकरण जो संबंधित नीतियों के निर्माण करवाने और अनुमोदन होने के बाद उनका निष्पादित करता है।

बजट का क्रियान्वयन:- वित्त विधेयक तथा विनियोग विधेयक के पारित होते ही राजस्व वसूली तथा अधिकृत मदों पर व्यय के लिए सरकार को वैधानिक अधिकार मिल जाता है। वित्त मंत्रालय का राजस्व विभाग राजस्व वसूली के लिए उत्तरदायी होता है। जिसके दो उप विभाग हैं। १. केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड २. केन्द्रीय उत्पाद और सीमा शुल्क बोर्ड।

सरप्लस बजट:- ऐसा बजट जिसमें सरकार की आय उसके व्यय से अधिक होती है।

पूँजी बजट:- पूँजी बजट के अन्तर्गत पूँजी प्राप्ति और पूँजी भुगतान का विवरण होता है।

भारत का संचिव कोष:- सरकार की सम्पूर्ण राजस्व आय, ऋण प्राप्ति तथा उसके द्वारा दिये गए ऋण की अदाएगी से प्राप्त आय को संचित निधि कहते हैं। सरकार के समस्त व्यय इसी कोष से संसद की अनुमति से किया जाता है।

आयोजन व्यय:- ऐसे व्यय जिनकी व्यवस्था केन्द्रीय योजना में रहती है, आयोजन व्यय कहलाता है।

आकस्मिकता निधि:- भारतीय संविधान के प्रावधानों के अन्तर्गत एक ऐसी निधि का गठन सरकार करती है। जिसका उपयोग आकस्मिक घटनाओं का सामना करने के लिए किया जाता है और इस निधि से राष्ट्रपति की अनुमति से अग्रिम निकले जा सकते हैं।

गैर योजना व्यय:- इसमें सरकार के उन सभी खर्चों को शामिल किया जाता है, जो योजना के अन्तर्गत नहीं आते। इसमें ब्याज, पेन्शन, राज्यों को वैधानिक अन्तरण, रक्षा, आन्तरिक सुरक्षा और विदेशों से सम्बन्ध सन्दर्भित व्यय हैं।

गैर कर राजस्व:- सरकार की ब्याज प्राप्ति, और शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि सेवाओं के प्रशासनिक प्राप्तियाँ गैर कर राजस्व के अन्तर्गत आती हैं।

18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 अ.लघु-उत्तरीय प्रश्न के लिए देखिए- 1-2.3, 2-2.4

ब.रिक्त स्थान भरिए-1. 22, 2.विरोधी दल,3. नियन्त्रक महालेखा परीक्षक

अभ्यास प्रश्न 2 अ.लघु-उत्तरीय प्रश्न के लिए देखिए- 1-2.5, 2-2.6, 3-2.8.1

18.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सुन्दरम, के0पी0 (1990), भारतीय लोक वित्त एवं वित्तीय प्रशासन, सुल्तान चन्द एण्ड संस, नई दिल्ली।

कौर, इन्द्रजीत (2000) लोक प्रशासन, एस बी पीडी पब्लिशिंग हाउस, आगरा 30 प्र0।

अवस्थी, ए0 पी0,(2000) वित्त प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा 30 प्र0।

लाल, एस0 एन0 (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था, शिवम पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

दुबे, रमेश, शर्मा, हरिश्चन्द्र (1998) भारत में लोक प्रशासन कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।

18.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भार्गव, आर0 एन0 (1980), भारतीय लोक वित्त, बी0 डी0 भार्गव एंड सन्स चदौसी।

लाल, जी0 एस0 (1982), भारत में लोक वित्त तथा वित्तीय प्रशासन, एच0 पी0 कपूर नई दिल्ली।

थावराज, एम0 जे0 के0 (1982), भारत का वित्तीय प्रशासन सुल्तान चन्द एण्ड संस नई दिल्ली।

शर्मा, के0 के0 (2000) फाइनेन्सियल एंड मिनिस्ट्रेशन इन गर्वनमेन्ट, विकास पब्लिशिंग हाउस।

18.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वित्त पर नियंत्रण में वित्तीय समितियों की भूमिका की विवेचना कीजिए।
2. अनुमान समिति के प्रमुख कार्यों एवं भूमिका को बताइए।
3. लोक उपक्रम समिति की कार्यप्रणाली का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 19 लेखांकन,लेखा परीक्षण

इकाई की संरचना

- 19.1 प्रस्तावना
- 19.2 उद्देश्य
- 19.3 लेखांकन: अर्थ और महत्व
 - 19.3.1 लेखांकन के तत्व एवं लेखा पद्धतियाँ
 - 19.3. भारतीय लोक लेखा व्यवस्था एवं लेखा पद्धति के चरण
- 19.4 लेखा परीक्षण: अर्थ एवं महत्व
 - 19.4.1 लेखा परीक्षक की विधियाँ एवं लेखा परीक्षण प्रक्रिया
 - 19.4.1.1 वित्तीय लेखा परीक्षण
 - 19.4.1.2 नियमितता लेखा परीक्षण
 - 19.4.1.3 राजस्व/आय वसूली लेखा परीक्षण
 - 19.4.1.4 निष्पादन लेखा परीक्षण
 - 19.4.1.5 लेखा परीक्षण का आलोचनात्मक मूल्यांकन
 - 19.4.1.6 लोक परीक्षण एवं लेखांकन का पृथक्करण
- 19.5 सांराश
- 19.6 शब्दावली
- 19.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 19.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 19.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 19.10 निबन्धात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

भारत में लोक प्रशासन के वित्तीय प्रबन्ध व बजट का निर्माण प्रक्रिया से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है, इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि भारतीय प्रशासन क्या है | संधीय शासन एवं राज्य शासन क्या है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भारत में वित्तीय प्रबन्ध के आशय, तत्व, सिद्धांत एवं बजट के माध्यम से उसके सम्पूर्ण कार्यक्षेत्र का विवेचन करेंगे। हम इसके साथ ही भारत में बजट निर्माण प्रक्रिया का भी चरण बद्ध उल्लेख करेंगे।

19.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. लेखांकन का अर्थ, महत्व एवं इसकी विशेषताएं को जान सकेंगे।
2. लेखांकन के तत्व एवं लेखा पद्धतियाँ का वर्णन कर सकेंगे।
3. लेखांकन से होने वाले लाभ एवं हानि और प्रशासन में इसकी उपयोगिता।
4. भारतीय लोक लेखा व्यवस्था को जान सकेंगे।
5. लेखा परीक्षण अर्थ, महत्व, विधियों एवं लेखा परीक्षण प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे।
6. लेखांकन एवं लेखा परीक्षण में अन्तर उसके लाभ हानि और प्रशासन में इसकी उपयोगिता।

19.3 लेखांकन: अर्थ और महत्व

लेखांकन का अभिप्राय है सभी प्रकार के वित्तीय लेन-देन का सुव्यवस्थित एवं लिखित रूप से हिसाब रखना है कि लोक धन का उपयोग संसद या विधानमण्डल द्वारा स्वीकृत बजट के अनुसार हुआ है या नहीं।

किसी देश के कुशल और सुदृढ़ वित्तीय प्रशासन के लिए तथा सार्वजनिक धन के दुरुपयोग को दूर करने हेतु लेखांकन का होना अनिवार्य है, क्योंकि इसी आधार पर वह उनका लेखा परीक्षण करता है। वित्तीय प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में सार्वजनिक कोषों के एकीकरण से लेकर उन्हें सुनिश्चित नीतियों के अन्तर्गत व्यय करने सम्बन्धी प्रशासनिक क्रियाओं को शामिल किया जाता है। लोक व्यय को सुनिश्चित नीतियों के अन्तर्गत व्यय करने की जानकारी आमजन तथा उनके चुने प्रतिनिधियों को नियमित रूप से प्राप्त होते रहना जरूरी है। इसी कारण हर देश की सरकार को लोक लेखा की व्यवस्था करनी पड़ती है, और साथ ही इस बात का ध्यान रखा जाता है कि लोक कोषों में जो भी धनराशि खर्च की जाए वह कुछ मान्य सिद्धान्तों के अनुरूप हो ताकि कोषों का दुरुपयोग न हो। लेखा एक कार्यकारी प्रकृति कार्य है जो कि कार्यपालिका के द्वारा रखा जाता है। प्रो० के० एस० लाल के शब्दों में “पूर्णतया एवं आंशिक रूप से वित्तीय प्रकृति के लेन-देन अथवा सौदों का वित्त के आधार पर विवरण रखना, वर्गीकरण करना और संक्षेपीकरण करना तथा उनके परिणामों की व्याख्या करना ही लेखांकन है।” प्रो० एम० पी० शर्मा के अनुसार “वित्तीय लेन-देन की नियमित लिखित सूची या प्रपत्र को ही लेखा कहते हैं, चाहे ये लेन-देन सरकारी हो अथवा निजी इस प्रकार सार रूप में कहे तो लेखांकन में वित्तीय प्रकृति के लेन-देन का संग्रहण, अभिलेखन, वर्गीकरण तथा संक्षेपीकरण की प्रक्रिया को अपनाया जाता है जिससे कोषों पर लेन-देन करने वाले लोगों की विश्वसनीयता सुनिश्चित हो सके। नीति-निर्माण तथा प्रशासनिक उद्देश्यों से वित्तीय हालातों तथा परिचालन से सम्बन्धित सूचनाएँ प्रदान हो सके जिसके आधार पर बजटीय प्रावधानों के अनुरूप व्यय की सीमाएँ निर्धारित की जा सकें।

लोक धन के लेखांकन की आवश्यकता निम्नांकित कारणों से है:-

1. बजट निर्माण की प्रक्रिया को सुनिश्चित करने हेतु एक व्यवस्थित लेखा का होना जरूरी है।
2. लेखांकन के द्वारा प्राप्त आंकड़ों व सूचनाओं के आधार पर देश के लिए नीतियों का निर्धारण सरल हो जाता है साथ ही उनको क्रियान्वयन आसान हो जाता है।
3. राष्ट्र के वित्तीय मानचित्र का वर्णन संकलित आँकड़ों द्वारा होता है जिसकी स्पष्ट जानकारी लोक लेखों के द्वारा ही प्राप्त होती है।

4. लेखांकन के द्वारा उत्तरदायित्वों का निष्पादन सरल हो जाता है और इस बात की जानकारी आसान हो जाती है कि किस कार्य के लिए कौन अधिकारी उत्तरदायी है।

5. लेखांकन के द्वारा प्राप्त आँकड़ों के आधार पर विभिन्न प्रकार की नीतियों कार्यक्रमों और परियोजनाओं का मूल्यांकन सरलता से किया जाता है।

6. लेखांकन के इस बात की जानकारी उपलब्ध करता है कि सार्वजनिक धन का उपयोग संसद विधानमण्डल द्वारा स्वीकृत प्रावधान के अनुसार हुआ कि नहीं। इस सन्दर्भ में बजट में जो प्रावधान हुआ या उसका उल्लंघन तो नहीं किया गया।

7. लेखांकन सरकार के आन्तरिक नियंत्रण का प्रमुख साधन है। जिसके माध्यम से सरकार अपने व्यय का अपनी सीमा के अन्दर स्वतः समायोजन करती है।

19.3.1 लेखांकन के तत्व एवं लेखा पद्धतियाँ

लेखा अभिकरण का प्रमुख कर्तव्य होता है कि लोक लेखों में बजट प्रावधानों के अनुरूप खर्च की जानकारी तथा वित्त विधेयक के प्रावधानों के अनुसार आय एकत्रीकरण की प्रक्रिया की जानकारी उपलब्ध होनी चाहिए। इस लिए लोक लेखों को उन्ही 'शीर्षों' तथा उप-शीर्षों में तैयार किया जाता है जो बजट में शामिल किए जाते हैं। लोक-लेखों का प्रारूप नियन्त्रक महालेखा परीक्षक द्वारा स्वीकृत प्रारूप के अनुरूप होता है। लोक लेखों में समाज के अलग अलग वर्गों की भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से रूचि बनी रहती है। अतः एक अच्छे सशक्त लोक लेखांकन में निम्नांकित आवश्यक तत्व / विशेषताएं होनी चाहिए -

1. लेखों की केन्द्रीकृत प्रणाली होनी चाहिए और सभी प्रकार के वित्तीय लेखों को तैयार करने, अनका पर्ववेक्षण करने का अन्तिम उत्तरदायित्व किसी एक व्यक्ति या संस्था के पास होना चाहिए, ताकि ठीक समय पर लेखा को तैयार होना सुनिश्चित रहे।
2. सरकारी कोषों को वर्गीकृत रूप में दिखाया जाना चाहिए। इसमें पूँजीगत लेखा तथा राजस्व लेखा आर्थिक लेखा तथा कार्यात्मक लेखा आदि को आवश्यकतानुसार निरूपित किया जाना चाहिए, ताकि अर्थव्यवस्था की स्थिति के बारे में वास्तविक जानकारी विभिन्न आयामों से प्राप्त की जा सके।
3. लेखांकन कार्य दोहरा लेखा प्रणाली पर आधारित होना चाहिए ताकि त्रुटि की सम्भावना को टाला जा सके और जान कर की कई त्रुटियों को प्रकाश में लाया जा सके।
4. लोक लेखों की तैयारी बजट नियन्त्रण के उपागमों को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए। इसमें सरकारी प्राप्ति, ऋणों, विनियोजनों से सम्बन्धित प्रविष्टियाँ व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत की जानी चाहिए।

5. निष्पादन बजट प्रणाली की आवश्यकताओं को देखते हुए सरकारी व्यय को कार्यक्रमों, उद्देश्यों तथा कार्यों के आधार पर विभक्त करके प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

6. सभी गैर राजस्व वाली मदों को राजस्व मदों से बाहर रखना चाहिए। राजस्वों के स्रोत तथा निधि के जरिए वर्गीकृत करना चाहिए और ऐसा मानकीकृत वर्गीकरण के अनुसार होना चाहिए।

7. लेखांकन नियमित एवं वार्षिक आधार पर होना चाहिए। उपरोक्त बातों के ध्यान में रखकर तैयार किए जाने वाले मात्र राजनीतिक आवश्यकताओं के प्रतीक मात्र नहीं होते, बल्कि इनकी कार्यात्मक उपयोगिता होती है और सरकार के सभी विभागों की वित्तीय तस्वीर स्पष्ट करते हैं।

लोक लेखों को लेखा पद्धतियाँ के आधार पर निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है

1. नगद लेखा पद्धति

इस पद्धति में लेखा आय व्यय का विवरण तब ही लिखा जाता है जब नकदी प्राप्त हुई हो अथवा दी गई हो। यह लेखा पद्धति लागत आधारित बजट व्यवस्था के अनुरूप है, क्योंकि इससे किसी वित्तीय वर्ष के सन्दर्भ में ही वास्तविक सेवा लागतों का आकलन करना सम्भव होता है। इस पद्धति की सबसे बड़ी कमी यह है कि सरकार की आर्थिक स्थिति के बारे में सिर्फ उतनी ही जानकारी देती है जितना कि एक व्यक्ति का बैंक कोष उसकी क्षमता का प्रतिबम्ब करता है।

2. लागत लेखा पद्धति

यह लेखा की वह पद्धति है जिसमें लागतों को विभिन्न गतिविधियों में विभागानुसार आबंटित किया जाता है। सरकार के विविध क्रियाकलापों को चलाने एवं उन्हें चालू हालत में रखने की लागतों का पता देती है। यह सरकार के उत्पादक अंगों के सन्दर्भ में अधिक उपयोगी होती है। भारत में केन्द्र और राज्य सरकारों के लेखा उन्ही शीर्षकों और उपशीर्षकों के अन्तर्गत रखे जाते हैं जिसके अन्तर्गत बजट के विविध मद सरकारी लेखा को प्राप्ति एवं परिव्यय के आधार पर बनाया जाता है। इस प्रकार इस पद्धति का प्रयोग बजट प्रावधानों में समाहित व्यावसायिक आधार पर सरकार द्वारा संचालित व्यक्तिगत इकाइयों की उपादेयता की जाँच तक ही सीमित रहता है। परन्तु सरकार द्वारा लेखे ऐसे तैयार कराए जाते हैं कि वह देखने में स्पष्ट हो तथा समझने में सरल हो इस रूप में यह तीन प्रकार के होते हैं-

नियन्त्रण लेखे- यह लेखे प्रशासनिक अधिकारियों की विश्वसनीयता की जाँच के लिए तैयार होते हैं। इसमें लोक राजस्व के एककीकरण सुरक्षित संचय वाले अधिकारियों के सन्दर्भ में सरकार द्वारा राजस्व लेखे तथा निधि लेखे तैयार किए जाते हैं। राजस्व लेखे में आय की विभिन्न आगम को दिखाते हैं। विनियोजन लेखे में व्यय को शीर्षों और उपशीर्षों के अन्तर्गत दिखाते हैं। जबकि निधि

लेखे में सामान्य निधि, विशिष्ट राजस्व तथा व्यय कोष, ऋण निधि, स्थायी अनुदान निधि परिवर्तनीय निधि, लोक न्याय निधि और अस्थायी निधि शीर्षों के अर्न्तगत सूचनाएं एकत्रित की जाती है।

प्रशासनिक आन्तरित सुविधा लेखे-इन्हे प्रोप्राइटरी लेखे कहते है जो सरकार की सुविधा के लिए उसकी आगम तथा व्यय की सतत जानकारी को प्राप्त करने के लिए तैयार होते है।

विस्तृत पूरक लेखे-आमजन को सरकार के दायित्वों तथा परिसम्पतियों एवं आय-व्यय की नियमित एवं स्पष्ट जानकारी देने हेतु पूरक रूप में सरकार द्वारा यह लेखे प्रतिवर्ष या दो वर्ष के अन्तराल पर जारी किये जाते है।

19.3. भारतीय लोक लेखा व्यवस्था एवं लेखा पद्धति के चरण

भारत राज्यो का संघ होने के कारण राज्य एवं संघ दोनो स्तरों पर लोक लेखों की प्रबन्ध व्यवस्था का संवैधानिक प्रावधान किया गया है। यहां कार्यपालिका को लेखांकन कार्य से अलग रख कर नियन्त्रक महालेखा परीक्षक को एक स्वतन्त्र संवैधानिक इकाई के रूप में इस कार्य की जिम्मेदारी सौंपी गई है। प्रत्येक राज्य में नियुक्त महालेखाकार लेखों को तैयार करने में नियंत्रक महालेखा परीक्षक को सहायता प्रदान करते है। जहाँ केन्द्र एवं राज्य दानो सरकारो के आय-व्यय का हिसाब रखा जाता है। केवल रेलवे के लेखो का प्रबन्ध इसका वित्त आयुक्त एवं रक्षा मंत्रालय के लेखों का कार्य सेना के महालेखाकार या वित्त मन्त्रालय द्वारा प्रतिनियुक्त वित्तिय सलाहकार द्वारा सम्पाति किया जाता है।

नियंत्रक महालेखा परीक्षक भारत के राजस्व और पूंजी खाते को राष्ट्रपति के निर्देशानुसार तैयार करता है। वह सरकार के किसी भी अधिकारी से इन खातों को तैयार करने में जरूरी किसी सूचना के लिए जानकारी ले सकता है। महालेखा परीक्षक को यह पूर्ण अधिकार है कि वह लेखा परीक्षक कार्यालय में रखे जाने वाले खातों के रूप के सन्दर्भ में निर्देश जारी करें। लेकिन इसके बारे में राष्ट्रपति की मंजूरी आवश्यक है जो पूंजी और राजस्व खाते के रूप को प्रभावित करें। यदि किसी बड़े मद के अन्तर्गत किसी छोटे मद को शामिल किये जाने के विषय में कोई विवाद अथवा शंका उठ खड़ी होती है तो नियंत्रक महालेखा परीक्षक का निर्णय अन्तिम होगा। महालेखा परीक्षक का यह अधिकार होता है कि वह उस रूप को निर्धारित करे जिसके अनुसार लेखा-परीक्षा विभाग के समक्ष खाता प्रस्तुत करने वाले अधिकारी अपना कार्य सम्पादित करे। महालेखा परीक्षक को इस कार्य के सम्पादन हेतु अपने अधिनस्थ ऐसे अधिकारियो की व्यवस्था करनी पड़ती है जो सरकार अथवा राष्ट्रपति को अपेक्षित जानकारी दे सके और इन सूचनाओं की प्रकृति ऐसी होनी चाहिए कि महालेखा परीक्षक के नियंत्रण के अर्न्तगत रखे गए खातों में से उन्हे प्राप्त किया जा सके।

लेखा पद्धति के चरण

भारत मे लेखा पद्धति की प्रक्रिया निम्न चरणों में होती है:- भारत में प्रारम्भिक लेखा का कार्य जिला स्तर परस्थापित राज्य कोष द्वारा किया जाता है, जहाँ विजिय लेन-देन का प्रारम्भिक कार्य होता है।

जिला राजकोष द्वारा प्रत्येक माह में दो बार अपने प्राप्तियों तथा भुगतान के लेखे प्रमाणकों के साथ महालेखाकार के दफ्तर में पहुंचाये जाते हैं।

चरण -- भारतीय लेखा पद्धति के कार्यकरण

1. जिला राजकोष में वित्तीय लेन देन का लेखा
2. महालेखाकार कार्यालय में लेखा एवं वर्गीकृत करना
3. अंकेषकों द्वारा लेखों का अंकेक्षण
4. महालेखा परीक्षक द्वारा वार्षिक आधार पर लेखों को तैयार करना
6. लेखों को अंकेक्षण प्रतिवेदन के साथ राष्ट्रपति/राज्यपाल को सौंपना
7. राष्ट्रपति/राज्यपाल द्वारा बजट अधिवेशन के समय प्रस्तुत करवाना

महालेखाकार के कार्यालय में राज्य के विभिन्न राजकोषों, भारतीय रिजर्व बैंक की तथा स्टेट बैंक अथवा उनकी शाखाओं से प्राप्त लेखों का संकलन तथा वर्गीकरण किया जाता है। सभी प्रकार की आमदनियों तथा भुगतानों को निम्नांकित चार शीर्षकों के अर्न्तगत वर्गीकृत किया जाता है –

1. राजस्व लेखे
2. पूँजी लेखे
3. ऋण लेखे
4. अवशिष्ट लेखे ।

ये सूचना प्रति माह पूर्व माह के सन्दर्भ में तैयार कर ली जाती है। संसद द्वारा स्वीकृत विनियोजन तथा वित्त विधेयक की मर्दों के अनुकूल अन्तिम रूप से लोक लेखे तैयार हो इस परिप्रेक्ष्य में लेखा तैयार करते समय सम्बन्धित प्राप्तियों तथा व्ययों को मुख्य शीर्षों, सूक्ष्म शीर्षों तथा उप-शीर्षों में विभाजित करके दिखाते हैं। राजस्व मर्दों को रोमन लिपि पू, प्पू, प्पू, प्ट आदि में तथा व्यय मर्दों को अरबी लिपि 1, 2, 3, 4 आदि में दर्शाया जाता है।

वार्षिक आधार पर महालेखाकार लेखा एकीकरण करता है और एकीकरण के बाद महालेखाकार द्वारा लेखों को नियंत्रक महालेखा परीक्षक के समक्ष प्रस्तुत करता है जहाँ नियंत्रक महालेखा परीक्षक लेखा लेखाधिकारियों की सहायता से इसका परीक्षण करता है जो लेखा को तीन शीर्षको-

1. विनियोजन
2. वित्त लेखे तथा
3. सम्मिलित वित्तीय लेखा के अर्न्तगत तैयार करवाता है।

नियंत्रक महालेखा परीक्षक लेखा का परीक्षण करके अपने प्रतिवेदन तैयार करता है और राष्ट्रपति/राज्यपाल को प्रत्येक वर्ष के जनवरी-फरवरी माह में पेश करता है। राष्ट्रपति/राज्यपाल इसे बजट अधिवेशन के दौरान संसद विधानसभाओं में प्रस्तुत करने के वैधानिक दायित्व का निर्वाह करते हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. नकद लेखा पद्धति क्या है ?
2. लोक लेखा की प्रमुख विशेषताओं को समझाइए ?
3. नियंत्रक महालेखा परीक्षक किन शीर्षको के अर्न्तगत लेखा तैयार करता है ?

19.4 लेखा परीक्षण: अर्थ एवं महत्व

ब्रिटेन ही ऐसा सर्वप्रथम देश था जिसने सार्वजनिक लेखाओं के लेखा-परीक्षण की विधि का विकास किया था। यह लोक वित्त पर संसदीय नियन्त्रण का अपरिहार्य अंग है। लेन-देन के पूर्ण होने के पश्चात् लेखाओं की जाँच तथा परीक्षण ही लेखा परीक्षण कहलाता है। इस जाँच का उद्देश्य किसी भी अनाधिकृत, अवैध या अनियमित व्ययों, दोषपूर्ण वित्तीय कार्य विधियों की खोज तथा विधानमंडल को तत्सम्बन्धी सूचना देना एवं पता लगाना होता है कि प्रशासनने अपने उत्तरदायित्व को सच्चाई के साथ पूरा किया है या नहीं। लेखा परीक्षण अधिकारी कार्यपालिका से स्वतन्त्र, परन्तु व्यवस्थापिका के अभिकर्ता के रूप में कार्य करता है। इस का कार्य एक जासूस के समान सम्पन्न किये गये वित्तीय लेन-देन एवं यह खोजना है कहाँ तक प्रशासन ने अपने उत्तरदायित्व को एकनिष्ठा और सच्चाई के साथ परिपूर्ण किया है।“

लेखा परीक्षण लेखा प्रतिवेदन की ऐसी जाँच पड़ताल है जो यह सुनिश्चित करने के लिए की जाती है कि प्रतिवेदन पूर्णतया एवं सत्य रूप से उन सभी सौदों को प्रतिबिंबित करता है, जिसे वह सम्बन्धित है। इसका मुख्य उद्देश्य यह जाँचना होता है कि किए गये व्यय के लिए सम्बन्धित अधिकारी से स्वीकृति ले ली गयी है या नहीं और धन उन्ही कार्यों पर व्यय किया गया या नहीं जिस सन्दर्भ में स्वीकृति प्रदान की गई थी इसी परिप्रेक्ष्य में लेखा परीक्षण को लोकतन्त्र का पाँचवा स्तम्भ कहा जाने लगा है। ये स्तम्भ है (1) कार्यपालिका, (2) न्यायपालिका, (3) व्यवस्थापिका (4) मीडिया, तथा (5) लेखा परीक्षण। पहला स्तम्भ कार्यपालिका लोकतन्त्र का सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग है जो जनता द्वारा चुने प्रतिनिधियों द्वारा गठित होती है। वही संसद में सभी प्रकार के कानूनों को बनाती है और प्रशासन चलाने के लिए राजस्व के एकत्रीकरण एवं विनियोजन के नियम स्वीकृत करती है। व्यवस्थापिका इसके एकत्रीकरण एवं विनियोजन को मूर्त रूप प्रदान करती है। न्यायपालिका और मीडिया एक स्वस्थ लोकतंत्र के संचालन के लिए आवश्यक है। लेखा परीक्षण संसद की वरिष्ठता को सुनिश्चित करता है कि निर्धारित राशि का व्यय उन्ही उद्देश्यों एवं उसी अधिकारी की सहमति से व्यय करे जिसकी सहमति एवं उद्देश्य के लिए संसद ने स्वीकृति दी है।

लेखा परीक्षण प्रशासन को मूल्य प्रदान करता है। सभी देशों में लेखा परीक्षण को एक आवश्यक बुराई न मानकर एक अच्छे सथी के रूप में कार्यविधि विषयक एवं तकनीकी अनियमितताओं तथा व्यक्तियों के दोषों को सामने लाता है चाहे वे मूल्यांकन से जुड़ी त्रुटियाँ हों या असावधानियाँ अथवा कपट के इरादे से किए गये कार्य हैं। अन्तिम विश्लेषण के रूप में कहे तो लेखा-परीक्षण की निम्न महत्ता सार्वभौमिक है:-

- (1) इसके द्वारा यह पता लगाया जाता है कि व्यय निर्धारण सीमा से अधिक तो नहीं हुआ है।
- (2) धन का व्यय नियमानुसार हुआ है या नहीं।
- (3) धनराशि के व्यय करने के पूर्व समस्त कानूनी एवं वित्तीय नियमों का पालन किया गया है या नहीं।
- (4) धन के व्यय करने के प्रावधान को ध्यान रखना चाहिए।
- (5) इसका उद्देश्य फिजूलखर्ची एवं अपव्यय को रोकना तथा नियंत्रित करना है।

19.4.1 लेखा परीक्षक की विधियाँ एवं लेखा परीक्षण प्रक्रिया

लोक लेखों की सत्यता तथा राजकीय लेन-देनों की वैधानिकता की जाँच के लिए लेखा परीक्षण की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रक्रिया से यह जानकारी प्राप्त की जाती है कि क्या लोक व्यय स्थापित विधियों तथा नियन्त्रक के अनुरूप हुआ है। व्यवस्थापिका द्वारा पारित विनियोजक विधेयक के अनुसार किया है, इस हेतु आवश्यक प्रशासनिक स्वीकृति ली गई और वित्तीय विवेक की मान्य धारणाओं का अनुपालन हुआ है। इस व्यापक कार्य को पूरा करने में अलग-अलग मंत्रालयों में स्थित लेखा अधिकारी तथा अलग-अलग राज्यों में कार्य कर रहे मुख्य लेख अधिकारी नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की सहायता करते हैं। इस हेतु उपयोगी विभिन्न लेखा परीक्षण की विधियाँ निम्न हैं:-

19.4.1.1 वित्तीय लेखा परीक्षण

वित्तीय लेखा परीक्षण वी लेखा परीक्षण है जिसमें भारतीय लेखा परीक्षण एवं लेखा कार्य विभाग यह सुनिश्चित करता है कि प्रशासनिक कार्य केवल निर्धारित कानून, वित्तीय नियमों एवं प्रक्रियाओं के अनुरूप ही नहीं हो बल्कि विधि सम्मत हो और कोई अपव्यय न हो। जब किसी प्रशासनिक कार्य का परिणाम क्षय, अपव्यय अथवा अनुचित व्यय होता है तो लेखा परीक्षक का यह कर्तव्य होता है कि इस सम्बन्ध में विशेष ध्यान दे तथा संसद के समक्ष प्रतिवेदन प्रस्तुत करें। जैसे किसी सिंचाई परियोजना में लेखा परीक्षण का वास्तविक निर्माण के प्रशासनिक ढाँचे से कोई सम्बन्ध नहीं होता न ही इसके क्षेत्र से गुजरने से जो प्रशासनिक मामले हैं। लेखा परीक्षक प्रशासनिक तथ्यों की जाँच नहीं करता हव देखता है कि परियोजना का रेखांकन अपर्याप्त आँकड़ों के आधार पर किया गया जिस के कारण परियोजना में परिवर्तन करने पड़े और अतिरिक्त व्यय करना पड़ा तथा वित्तीय परिणाम आशा

के अनुरूप नहीं मिल पाता लेखा परीक्षक गलत रेखांकन के कारण राजस्व क्षय को संसद के सम्मुख लाकर करदाताओं के हितों की रक्षा करता है। गम्भीर वित्तीय अनियमित और निर्धारित कानून एवं वित्तीय व्यवस्था तथा नियमों के अनुरूप कार्य पूर्ण न होने पर लेखा परीक्षक हस्तक्षेप करता है। इस लेखा परीक्षण में परम्परागत वित्तीय नियमों के व्यापक सिद्धान्तों का लेखा परीक्षण भी शामिल है।

19.4.1.2 नियमितता लेखा परीक्षण

नियमितता लेखा परीक्षण का मुख्य ध्येय यह सुनिश्चित करना है कि सभी व्यय संविधान में दिए गये प्रसंगोचित प्रशासनिक वित्तीय बजट सम्बन्धी एवं लेखा पद्धति संबंधी व्यवस्थाओं एवं नियमों तथा संसद द्वारा बनाए गये कानूनों के अनुरूप है। नियमितता लेखा परीक्षण यह सुनिश्चित करता है कि लोक व्यय के लिए निधि का प्रावधान है जो सन्दर्भित अधिकारी द्वारा अधिकृत है। लोक व्यय विधिक प्रावधानों द्वारा व्यय के लिए अधिकृत अधिकारी के अनुमति से किया गया। इस सन्दर्भ में भुगतान की माँग नियमों के अनुसार तथा उचित रूप में की गई है। लोक व्यय हेतु आवश्यक सभी प्रारम्भिक आवश्यकता अनुमान, स्वीकृति आदि को पूरा करके ही व्यय किया गया। व्यय जिस अवधि में व्यय के लिए स्वीकृत प्राप्त हो उसके पश्चात बिना नई स्वीकृति के न किया जाए। भुगतान करने वाले अधिकारी को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि इस सन्दर्भ में नियमों का पालन किया जा रहा है। भुगतान की प्रमाणिकता को देखना चाहिए दोहरापन न हो ऐसी व्यवस्था बनें। समस्त भुगतानों का मूल लेख पत्र सही सही नामांकित होना चाहिए। समस्त व्यय उन्हीं कार्यों में हो जिसके लिए निर्धारित है एवं व्यय विनियोजित धनराशि से अधिक न हो। इस प्रकार लोक व्यय का नियमितता लेखा परीक्षण एक अर्द्धन्यायिक प्रकृति का कार्य है जो लेखा परीक्षण अधिकारी द्वारा किया जाता है। इसमें नियमों आदेशों तथा संविधान की व्याख्या करना सम्मिलित है।

19.4.1.3 राजस्व/आय वसूली लेखा परीक्षण

राजस्व/आय वसूली लेखा परीक्षण केन्द्रीय एवं राज्य स्तर पर आगम (उत्पाद कर, निगमकर, आय कर, बिक्री कर आदि) की वसूली के लिए होता है। इस लेखा परीक्षण में लेखा परीक्षक का कार्य यह सुनिश्चित करना है कि इन आगमों की वसूली के लिए पर्याप्त नियमों एवं प्रक्रियाओं का गठन कर लिया गया है तथा राजस्व विभाग उनका पालन कर रहा है। यह कार्य कर निर्धारण, कर वसूली तथा राजस्व के अचित आबंटन पर प्रभावशाली नियंत्रक रखने के लिए आवश्यक है।

19.4.1.4 निष्पादन लेखा परीक्षण

किसी भी व्यय के सन्दर्भ में लेखा परीक्षण की पूर्णतया बिना उसके निष्पादन के मुल्यांकन के अपर्याप्त है। स्वतंत्रता के बाद सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से विकास एवं सामाजिक उन्नति के लिए भारी पूँजी निवेश किया है। जिसका लाभ आशा के अनुरूप है या नहीं यह जनता को जानने का अधिकार है। इसी परिप्रेक्ष्य में निष्पादन बजट की व्यवस्था आरम्भ की गई। तदनुसार पिछले कुछ समय से व्यय को वास्तविक परिणामों से जोड़ने की आवश्यकता ने सरकार को लेखा परीक्षण के कार्यों के बारे में पुनः सोचने पर बाध्य किया है कि नियमितता लेखा परीक्षण, वित्तीय

लेखा परीक्षण एवं आय लेखा परीक्षण व्यय पर संसदीय नियंत्रण के लिए आवश्यक है। वही इन परियोजनाओं कार्यक्रमों तथा योजनाओं की उपलब्धियों का निरीक्षण परीक्षण करना चाहिए कि इनके परिणाम अनुकूलता से नीचे क्यों जा रहे हैं। फलस्वरूप निष्पादन अनुष्ठान या दक्षता लेखा परीक्षण का आवश्यकता उत्पन्न हो रही है।

निष्पादन लेखा परीक्षण यह बतता है कि साधनों का अनुकूलतम तरीके से विनियोजन कर उसका दक्षतापूर्ण उपयोग हुआ या नहीं। यह परियोजना के परिभाषित लाभों एवं साधनों के प्रयोग

उत्पादक उद्देश्य की किसी सीमा तक प्रयोग हुआ है इसकी जानकारी प्रदान करता है। इस लेखा परीक्षण का विषय क्षेत्र सीमित है। वर्तमान में सार्वजनिक उद्यमों में निष्पादन लेखा परीक्षण का उपयोग किया जा रहा है।

भारतीय लेखा परीक्षण और लेखा विभाग की स्थापना 1753 में हो गई थी परन्तु स्वतन्त्र भारत लेखा परीक्षण का प्रारम्भ 1919 में हुआ था। महालेखापरीक्षक भारत-सरकार के नियन्त्रण से मुक्त था। जिसकी नियुक्ति भारत सचिव द्वारा होती थी जो स्रमाट की इच्छा पर्यन्त अपने पद पर रहता था। गर्वनर जनरल की सपरिषद् के माध्यम से भारत सचिव को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करता था। भारत शासन अधिनियम 1935 के द्वारा उसके स्तर एवं महत्व में वृद्धि की गई जिसे संघीय न्यायालय के न्यायाधीश के समान पदच्युत करने की प्रक्रिया द्वारा उठाया जा सकता था। कार्यपालिका से उसकी स्वतन्त्रता सुनिश्चित करने के सन्दर्भ में यह व्यवस्था की गई की सेवानिवृत्ति के बाद वह ब्रिटिश क्राउन के अधीन अन्य कोई पद ग्रहण नहीं करेगा।

1950 में संविधान लागू होने साथ भारत के महालेखा परीक्षक के पद का नाम बदलकर भारत का लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक कर दिया गया। सार्वजनिक कोषागार से धनराशि निकालने पर उसका नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया है, जो भारत के वित्तीय प्रशासन को लेखा नियंत्रक तथा महापरीक्षक की अविभाज्य सत्ता के अधीन कर दिया गया है। सामान्य रूप में भारत का लेखा नियन्त्रक तथा महापरीक्षक निम्न कार्य को पूर्ण करता है -

1. राजकोष तथा निगमों पर नियन्त्रण रखता है।
2. सरकार के विरुद्ध उत्पन्न होने वाले स्वत्वाधिकारों को निपटाना तथा समायोजित करना।
3. वह संघीय तथा राज्य सरकारों के उन समस्त आय-व्यय का लेखा परीक्षण करता है। जिनका सम्बन्ध आकस्मिकता निधि और सार्वजनिक लेखाओं से होता है।
4. वह सरकार द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त उपक्रमों, कम्पनियों एवं सांविधिक निगमों के लेखाओ का परीक्षण करता है।

5. संघीय एवं राज्यों के वार्षिक लेखाओं का संकलन करता है और अंकेक्षण प्रतिवेदन तैयार कर प्रस्तुत करता है।

6. पूरे वित्तीय प्रशासन पर विधायी नियन्त्रण की एक इकाई के रूप में काम करता है।

इस प्रकार लेखा नियन्त्रक तथा महापरीक्षक कार्यपालिका के वित्तीय मामलों का लेखा परीक्षण कर संघीय व्यवस्था का प्रतिवेदन राष्ट्रपति के माध्यम से संसद में और राज्यों का प्रतिवेदन राज्यपाल के माध्यम से विधानमंडल के समक्ष रखता है।

19.4.1.5 लेखा परीक्षण का आलोचनात्मक मूल्यांकन

भारतीय लेखा परीक्षण व्यवस्था एक प्रशासनिक कार्य के रूप में चलायमान है। नियंत्रक महालेखा परीक्षक संघ एवं राज्य के सन्दर्भ में अपना प्रतिवेदन संविधान के व्यवस्था के अनुसार राष्ट्रपति तथा राज्यपाल को कार्यपालिका के प्रमुख कारण सौपता है जो इसे संसद एवं विधामंडल में प्रस्तुत करते हैं। इसी सन्दर्भ में पॉल एच0 ऐपल्बी लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के पद को समाप्त करने सम्बन्धी सिफारिश अपने भारतीय प्रशासन सम्बन्धी दूसरे प्रतिवेदन में करते हैं। उनके अनुसार लेखा नियंत्रक तथा महापरीक्षक का कार्य उपनिवेशिक शासन की विरासत है। भारतीय प्रशासन में निर्णय करने तथा कार्य करने के प्रति जो व्यापक एवं घावक अनिच्छा हमें दिखाई पड़ती है, इसका मुख्य कारण लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक है।

भारतीय संविधान नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक को यह आदेश देता है कि वह “यह सुनिश्चित करे कि लेखों में दिखायी गयी धन राशि वैधानिक रूप से जिस उद्देश्य के लिए निर्धारित की गई थी, उसी में उपयोग हुई, सही समय पर विनियोजन के लिए स्वीकृति ली गई” उक्त कथन भारत में लेखा परीक्षक के कार्य को कानूनी औपचारिकता तक ही सीमित कर देते हैं। व्यय के औचित्य के बारे में महालेखा परीक्षक को अपनी राय देने का कोई वैधानिक अधिकार नहीं देते। जिस कारण महालेखा परीक्षक सार्वजनिक व्यय में अपव्यय, अविवेक अथवा दुरुपयोग पर साफ-साफ परिलक्षित होने पर भी प्रतिवेदन में इस प्रकार कोई टिप्पणियाँ अपवादस्वरूप व्यक्त करता है।

भारत में लेखांकन एवं लेखा परीक्षण के कार्यों को राज्यों एवं संघीय लेखा एवं लेखा परीक्षण विभाग, पेन्शन से सम्बन्धित और केन्द्रशासित प्रदेशों के लिए पृथक्ता न पाया जाना हमारी व्यवस्था की एक बड़ी कमजोरी को दर्शाता है।

भारतीय लेखा परीक्षण की जो आलोचना की जाती है ब्रिटिश प्रशासन प्रणाली पर आधारित है, जिसमें महालेखा परीक्षक को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान है। लेखा परीक्षक देश के वित्त का प्रहरी होता है। साविधिक लेखा परीक्षण हमारे संविधान के प्रमुख लक्षणों में है, और यह सरकार के उद्देश्यों में बाधक नहीं अपितु लोकतान्त्रिक सरकार के मूल आवश्यकताओं में से है। लेखा परीक्षक व्यय की दिशा में प्रवाहित होने वाले सार्वजनिक धन को एवं स्वस्थ अभिकरण प्रदान करता है, अतः इसे

समाप्त या शिथिल नहीं किया जा सकता। अशोक चन्द्रा का कथन इस स्थान पर उद्धृत करना उचित ही होगा: “सभी मान्य प्रजातन्त्रों में लेखा-परीक्षण किसी आवश्यक बुराई के रूप में सहन नहीं किया जाता बल्कि एक मूल्यवान मित्र समझा जाता है। एक ऐसा मित्र जो व्यक्तियों की प्रक्रिया सम्बन्धी गलतियों की ओर उनका ध्यान आकर्षित करता है, भले ही वे गलतियाँ निर्णय सम्बन्धी त्रुटियों, लापरवाही या बेईमानी के कार्यों अथवा अभिप्रायों से सम्बन्धित हों। दुर्भाग्य से भारत में पूरक सम्बन्धी इस अवधारणा का अभी विकसित होना शेष है। यहाँ तो लेखा परीक्षण को बाहरी कुछ असंगत तथा कुछ अवरोधक क्रिया समझा जाता है। इस प्रकार प्रशासकीय प्रणाली में लेखा परीक्षक के सुझावों को मानने में स्वाभाविक विरोध विकसित होने लगा है। यह प्रवृत्ति अभी हाल के वर्षों में अधिक विकसित हो गई है। वास्तव में स्वतन्त्रता प्राप्ति तथा कल्याणकारी राज्य की अवधारण स्वीकार किए जाने के साथ ही उद्देश्य प्रयत्न तथा सफलता की आवश्यकता का विकास होना आवश्यक है.....। इस प्रकार लेखा-परीक्षण तथा प्रशासन के मध्य दृष्टिकोण के पुनर्वावलोकन तथा सम्बन्धों के पुनर्संयोजन की आवश्यकता का सर्वाधिक महत्व बढ़ गया है।”

19.4.1.6 लोक परीक्षण एवं लेखांकन का पृथक्करण

भारत में 1976 तक लेखांकन तथा लेखा परीक्षण का कार्य एक ही संस्था नियंत्रक तथा महालेखाकार कार्यालय के अधिकार में था तथा नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक दोनों कार्यों के लिए उत्तरदायी था लेकिन अन्य देशों में ये कार्य पृथक-पृथक पाये जाते हैं। भारत में प्रशासनिक सुधार से सम्बन्धित अनेक समितियों मुडीमैन समिति (1924), इंचेप समिति (1923) साइमन समिति(1926) आदि ने लेखांकन और लेखापरीक्षण के पृथक्करण की सिफारिश की थी। स्वतन्त्र भारत के प्रथम नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक नरहरि राव ने भी इस संयुक्त प्रणाली की कटु आलोचना की थी। 30 प्र० विधान मण्डल के प्रथम अध्यक्ष श्री राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने 1952 में नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यालय में गबन की घटना का उल्लेख करते हुए निम्न विचार व्यक्त किया कि जब एक ही कार्यालय हिसाब तैयार करता है और हिसाब की जाँच करने का कार्य भी करता है तो बेईमानी की काफी सम्भावना रहती है, क्योंकि ऐसा काम करने वाला व्यक्ति यह जानता है कि वह यदि किसी प्रकार गड़बड़ करेगा तो भी वह पकड़ा नहीं जायेगा क्योंकि अनत में उसे ही लेखा परीक्षण करनी है।” लोक लेखा समिति तथा लोक सेवा समिति ने भी दोनों के प्रथक्करण की सिफारिश की। अतः उपरोक्त सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए 1976 में केन्द्र सरकार ने लेखांकन एवं लेखा परीक्षण को पृथक कर दिया तथा केन्द्र सरकार के स्तर पर नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक को लेखांकन के दायित्व से मुक्त कर दिया गया।

वस्तुतः लेखांकन एवं लेखा परीक्षण को पृथक करना वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में एक तार्किक सुधार माना जाता है इसके पक्ष एवं विपक्ष में निम्नांकित तर्क दिए जाते हैं।

लेखांकन एवं लेखा परीक्षण से पृथक्करण के पक्ष में निम्नांकित तर्क दिये जाते हैं।

1. लेखा के कार्यों की प्रकृति कार्यकारी है। जबकि लेखा परीक्षण के कार्यों की प्रकृति अर्द्ध-विधायकीय है। इन दोनों कार्यों की प्रकृति में अन्तर होने के कारण इनको पृथक किया जाना उचित है।

2. वित्तीय प्रशासन के अनुशासन के लिए भी उचित नहीं दिखता, कि जो अधिकारी लेखा के लिए उत्तरदायी हो, स्वयं उसी के द्वारा लेखा परीक्षण किया जाए। अतः निष्पक्ष लेखा परीक्षण की प्रणाली को विकसित करने हेतु दोनों कार्यों को एक दूसरे से पृथक किया जाना चाहिए।

3. अगर दोनों कार्यों को एक अधिकारी के क्षेत्राधिकार में शामिल किया जाता है तो उसका कार्यभार अत्यधिक होता है परिणामस्वरूप वह लेखा परीक्षण जैसे गम्भीर अध्ययन एवं विश्लेषण-उन्मुखी कार्य की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाता। अतः पृथक्करण के आधार पर नियंत्रक व महालेखा परीक्षक अपना अधिकतम ध्यान लेखा परीक्षण पर दे सकता है।

4. नियंत्रक व महालेखा परीक्षक के पास कार्यभार अधिक होने के कारण लेखा को अंतिम रूप देने में अधिक समय लगता है जिससे लेखा परीक्षण के कार्य में भी अनावश्यक विलम्ब होता है।

5. नियंत्रक व महालेखा परीक्षण के द्वारा लेखा के कार्य सम्पन्न किये जाने के कारण संबंधित मंत्रालयों एवं विभागों को समय पर अपने वित्तीय लेन-देन की तात्कालिक जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में व्यय पर नियंत्रण रखना मंत्रालय के लिए कठिन हो जाता है। अतः अत्यधिक व्यय की सम्भावना को देखते हुए लेखांकन एवं लेखा परीक्षण का पृथक्करण किया जाना चाहिए और लेखांकन का कार्य संबंधित विभाग को सौंपा जाना चाहिए।

6. दोनों कार्यों का पृथक्करण होने के उपरान्त इनमें विशेषीकरण को प्राप्त करना अधिक संभव है।

लेखांकन एवं लेखा परीक्षण से पृथक्करण के विपक्ष में निम्नांकित तर्क दिये जाते हैं।

1. इंग्लैण्ड में लेखा एवं लेखा परीक्षण के कार्यों को अलग रखा गया है लेकिन वहां से भी अत्यधिक व्यय होने की सूचनाएं समय-समय पर प्राप्त होती रहती है। अर्थात् यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, कि पृथक्करण के माध्यम से अत्यधिक व्यय रोका जा सकता है। भारत में भी केन्द्र सरकार के स्तर पर पृथक्करण के उपरांत भी अत्यधिक व्यय की शिकायतें मिलती रही हैं।

2. मंत्रालय के कार्यभार को उनके मौलिक उद्देश्यों तक सीमित रखने हेतु भी यह आवश्यक है कि लेखा एवं लेखा परीक्षण का पृथक्करण किया जाये।

3. लेखा एवं लेखा परीक्षण के पृथक्करण की प्रक्रिया में अधिक वित्तीय एवं मानवीय संसाधनों की आवश्यकता होगी अर्थात् पृथक्करण से व्यय में वृद्धि एवं मानव शक्ति का पूर्ण उपयोग नहीं।

4. पृथक्करण के पश्चात् लेखा कर्मचारी राज्य सरकारों के नियंत्रण के अन्तर्गत आ जायेंगे। ऐसी अवस्था में वे कार्यपालिका की आलोचना करने तथा अति व्यय को रोकने में कम स्वतंत्र होंगे।

5. अलग-अलग विभागों द्वारा लेखांकन कार्य सम्पन्न होने से लेखाओं के संकलन में अत्यधिक विलम्ब होगा। वर्तमान प्रणाली में नियंत्रक व महालेखा परीक्षक के कार्यालय में संकलन अविलम्ब किया जा सकता है।

6. इस बात की कोई गारण्टी नहीं कि दोनों को पृथक् कर देने से बेहतर परिणाम आयेगे, क्योंकि प्रतिरक्षा एवं रेलवे विभागों में काफी दिनों से लेखांकन का उत्तरदायित्व विभागों को सौंपा गया है लेकिन न तो अधिक कार्यकुशलता का कोई संकेत मिला है और न ही बजट पर प्रभावशाली नियंत्रण कायम हुआ है।

7. लेखा परीक्षण की वास्तविकता को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि नियंत्रक व महालेखा परीक्षक का नियंत्रण लेखा पर भी होना चाहिए, क्योंकि अंततः ये दोनों कार्य भिन्न होते हैं हुए भी परस्पर निर्भर हैं।

8. वर्तमान प्रणाली ने राज्य सरकार के स्तर पर समय की मांग को पूरा किया है अतः इसमें कोई मौलिक परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने भारत में लेखा एवं लेखा परीक्षण के कार्य को पृथक् करने का सुझाव दिया। केन्द्र सरकार के स्तर पर इस सुझाव को व्यवहारिक रूप भी दिया गया एवं राज्य सरकारों से यह अपेक्षा की गई, कि वे अपनी सुविधानुसार पृथक्करण की दिशा में प्रयास कर सकती हैं लेकिन अत्यधिक व्यय की संभावना के कारण राज्य सरकारें इस दिशा में कोई प्रभावशाली कदम नहीं उठा पा रही हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थान भरिए

अ----- भारतीय लेखा परीक्षण और लेखा विभाग की स्थापना में की गई।

ब----- सन्दर्भ में अपना प्रतिवेदन नियंत्रक महालेखा परीक्षक संघ एवं राज्य के के

अनुसार

राष्ट्रपति तथा राज्यपाल को कार्यपालिका के प्रमुख कारण सौंपता है।

सकेन. ्र सरकार के लेखांकन के कार्य से-----में नियंत्रक महालेखा परीक्षक को अलग किया।

19.5 सांराश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हमें लेखाकंन के अर्थ, महत्व एवं इसकी विशेषताओं को जानने का अवसर प्राप्त हुआ है। इसके अध्ययन के साथ ही साथ लेखाकंन के तत्व एवं लेखा पद्धतियों का भी अध्ययन कर सका, और लेखाकंन से होने वाले लाभ एवं हानि और प्रशासन में इसकी उपयोगिताके बारे में जानने और समझाने को मिला है।

यही नहीं इस इकाई में हमने भारतीय लोक लेखा व्यवस्था का भी अध्ययन किया और जिसके बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की है।

यहाँ हम यह भी बताना चाहते हैं कि हमने इस इकाई में लेखा परीक्षण के अर्थ, महत्व, विधियों एवं लेखा परीक्षण प्रक्रिया का भी विस्तृत अध्ययन किया है, जिसमें इसके विभिन्न पक्षों को जानने को मिला है। अंततः हमने लेखाकंन एवं लेखा परीक्षण में अन्तर करते हुए उसके लाभ, हानि और प्रशासन में इसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में अध्ययन किया है, जिसमें हमने देखा कि लेखा के कार्यों की प्रकृति कार्यकारी है, जबकि लेखा परीक्षण के कार्यों की प्रकृति अर्द्ध-विधायकीय है।

19.6 शब्दावली

लेखा अनुदान:- संसद द्वारा अनुमानित व्यय के सम्बन्ध में दिए गए अग्रिम स्वीकृति को लेखा अनुदान कहते हैं, जो बजट की प्रक्रिया पूरी किए बिना आगामी वित्तीय वर्ष के लिए संसद द्वारा स्वीकृत होती है।

लेखा:- 'लेखा' का आशय है संगठन के वित्तीय लेनदेन का समुचित विवरण तैयार करना। लेखा के द्वारा यह सुनिश्चित करना होता है कि धन का इस्तेमाल वैधानिक रीति से उन्ही उद्देश्यों के लिए किया गया है। जिनके लिए संसद से उसकी मंजूरी प्रदान की थी। लेखा के अन्दर वित्तीय कामकाज के बारे में सच्चे आँकड़े होने चाहिए। व्यय करने वाले अधिकारियों द्वारा खर्च किए गए एक-एक पैसे का हिसाब उसमें अंकित होना चाहिए।

पूर्व लेखा परीक्षण:- किसी लेन देन के तत्वों के पूर्ण होने एवं अंतिम लेखा विवरण के रूप में दर्ज किए जाने से पहले का परीक्षण है। यह प्रबन्ध का एक साधन है तथा किसी विभाग में जारी लेनदेन की परिशुद्धता एवं वैधानिकता के ऊपर प्रशासनिक नियंत्रण रखने का काम करता है।

उत्तर लेखा परीक्षण:- यह लेखा परीक्षण लेन-देन के पूर्ण हो जाने तथा उनको विवरण के रूप में अन्तिम रूप से दर्ज कर लेने के बाद इनके परीक्षण से है। उत्तर लेखा परीक्षण तब किया जाता है जब धन वास्तविक रूप से खर्च कर दिया जाता है। वास्तविक रूप से इसी को लेखा परीक्षण कहते हैं।

आन्तरिक लेखा परीक्षण:- इससे विभागीय या प्रशासकीय लेखा परीक्षण कहते हैं। विभागीय अंकेक्षकों द्वारा विभाग के व्यय की राशि का अभिलेख बनाकर लेखा परीक्षण करते हैं तो इसे आन्तरिक लेखा परीक्षण कहते हैं।

बाहरी लेखा परीक्षण:- जब विभाग द्वारा व्यय की राशि एवं वित्तीय अभिलेख का बाहर के लेखा परीक्षकों द्वारा परीक्षण किया जाता है तो उसे बाहरी लेखा परीक्षण कहते हैं।

लेखा परीक्षण प्रतिवेदन:- लेखा परीक्षण के परिणामों के अनुसार व्यय की नियमितता एवं औचित्य पर आवश्यक एवं उचित/न्यायसंगत टिप्पणियों का प्रपत्र लेखा परीक्षण प्रतिवेदन कहलाता है।

19.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2. रिक्त स्थान भरिए

अ.1753, ब.संविधान, स. 1976।

19.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सुन्दरम, के0पी0 (1990), भारतीय लोक वित्त एवं वित्तीय प्रशासन, सुल्तान चन्द एण्ड संस, नई दिल्ली।

भट्टाचार्य, माहित (2000) लोक प्रशासन के नए आयाम, जवाहर पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

कौर, इन्द्रजीत (2000) लोक प्रशासन, एस बी पीडी पब्लिशिंग हाउस, आगरा 30 प्र0।

अवस्थी, ए0 पी0, (2000) वित्त प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा 30 प्र0।

देशमुख, नीलिमा (1998) आर्थिक नीति और प्रशासन, कालेज बुक डिपो, जयपुर।

दुबे, रमेश, शर्मा, हरिश्चन्द्र (1998) भारत में लोक प्रशासन कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।

19.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

थावराज, एम0 जे0 के0 (1982), भारत का वित्तीय प्रशासन सुल्तान चन्द एण्ड संस नई दिल्ली।

भार्गव, आर0 एन0 (1980), भारतीय लोक वित्त, बी0 डी0 भार्गव एंड सन्स चदौसी।

लाल, जी० एस० (1982), भारत में लोक वित्त तथा वित्तीय प्रशासन, एच० पी० कपूर नई दिल्ली।

सिन्हा, आर० के० (1992), भारत में राजकोषीय संघवाद, स्टर्लिंग नई दिल्ली।

19.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोकतंत्र में लेखा परीक्षण के अर्थ एवं महत्व का वर्णन कीजिए।
2. लेखा परीक्षण प्रतिवेदन के महत्व एवं प्रशासनिक उपयोगिता का वर्णन कीजिए।
3. लेखांकन एवं लेखा परीक्षण के औचित्य को समझाइए।

इकाई-20 पंचायतीराज, तिहत्तरवां(73वां) संविधान संशोधन अधिनियम

इकाई की रूपरेखा

- 20.1 प्रस्तावना
- 20.2 उद्देश्य
- 20.3 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायती राज
 - 20.3.1 पंचायतों के विकास के लिए गठित समितियां
 - 20.3.2 बलवंत राय मेहता समिति
 - 20.3.3 अशोक मेहता समिति
 - 20.3.4 जी.वी.के. समिति
 - 20.3.5 डा. एल. एम. सिंघवी समिति
 - 20.3.6 सरकारिया आयोग और पी0 के0 थुंगर समिति
- 20.4 73वें संविधान संशोधन की सोच
 - 20.4.1 73वां संविधान अधिनियम
 - 20.4.2 73वें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताएं
- 20.5 स्थानीय स्वशासन व पंचायतें
- 20.6 सांराश
- 20.7 शब्दावली
- 20.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 20.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 20.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 20.11 निबन्धात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

स्वतन्त्रता पूर्व पंचायतों की मजबूती व सुदृढ़िकरण हेतु विशेष प्रयास नहीं हुए इसके विपरीत पंचायती राज व्यवस्था लड़खड़ाती रही। मध्य काल में मुस्लिम राजाओं का शासन भारत के विभिन्न हिस्सों में फैल गया। यद्यपि स्थानीय शासन की संस्थाओं की मजबूती के लिए विशेष प्रयास नहीं किये गये परन्तु मुस्लिम शासन ने अपने हितों में पंचायतों का काफी उपयोग किया। जिसके फलस्वरूप पंचायतों के मूल स्वरूप को धक्का लगा और वे केन्द्र के हाथों की कठपुतली बन गई। सम्राट अकबर के समय स्थानीय स्वशासन को पुनः मान्यता मिली। उस काल में स्थानीय स्वशासन की इकाइयां कार्यशील बनीं। स्थानीय स्तर पर शासन के सारे कार्य पंचायतों ही करती थीं और शासन उनके महत्व को पूर्णतः स्वीकार करता था। लेकिन मुस्लिम काल के इतिहास को अगर समग्र रूप में देखा जाए तो इस काल में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को मजबूती नहीं मिल सकी।

ब्रिटिश काल के दौरान भी प्राचीन पंचायत व्यवस्था लड़खड़ाती रही। अंग्रेजों शासन काल में सत्ता का केन्द्रीकरण हो गया और दिल्ली सरकार पूरे भारत पर शासन करने लगी। केन्द्रीकरण की नीति के तहत अंग्रेज तो पूरी सत्ता अपने कब्जे में करके एक-क्षत्र राज चाहते थे। भारत की विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था उन्हें अपने मनसूबों को पूरा करने में एक रुकावट लगी। इसलिये अंग्रेजों ने हमारी सदियों से चली आ रही स्थानीय स्वशासन की परम्परा व स्थानीय समुदाय की ताकत का तहस-नहस कर शासन की अपनी व्यवस्था लागू की। जिसमें छोट-छोटे सूबे तथा स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं कमजोर बना दी गई या पूरी तरह समाप्त कर दी गईं। धीरे धीरे सब कुछ अंग्रेजी सरकार के अधीन होता गया। सरकार की व्यवस्था मजबूत होती गई और समाज कमजोर होता गया। परिणाम यह हुआ कि यहां प्रशासन का परम्परागत रूप करीब-करीब समाप्त प्राय हो गया और पंचायतों का महत्व काफी घट गया। अंग्रेजी राज की बढ़ती ताकत व प्रभाव से आम आदमी दबाव में था। समाज में असंतोष बढ़ने लगा, जिसके कारण 1909 में ब्रिटिश सरकार द्वारा एक विकेन्द्रीकरण कमीशन की नियुक्ति की गई। 1919 में “माटेस्क्यू चेम्सफोर्स सुधार” के तहत एक अधिनियम पारित करके पंचायतों को फिर से स्थापित करने का काम प्रांतीय शासन पर छोड़ दिया। अंग्रेजों की नियत तब उजागर हुई जब एक तरफ पंचायतों को फिर से स्थापित करने की बात कही और दूसरी तरफ गाँव वालों से नमक तक बनाने का अधिकार छुड़ा लिया। इसी क्रम में 1935 में लार्ड वैलिंग्टन के समय भी पंचायतों के विकास की ओर थोड़ा बहुत ध्यान दिया गया लेकिन कुल मिलाकर ब्रिटिशकाल में पंचायतों को फलने-फूलने के अवसर कम ही मिले।

हम नब्बे के दशक में भारत सरकार द्वारा पंचायतों को नया स्वरूप देने के उद्देश्य से भारतीय संविधान में किये गये 73वें संशोधन अधिनियम के बारे में पढ़ेंगे। प्राचीन समय में भी देश के गांवों का पूरा कामकाज पंचायतों ही चलाती थी। लोग इस संस्था को गहरी आस्था व सम्मान की की दृष्टि

से देखते थे, इसलिये इसका निर्णय भी सब को मान्य होता था। इसी धारणा को ध्यान में रख कर व सामान्य व्यक्ति की शासन में भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए पंचायतों को संवैधानिक स्थान देने की आवश्यकता हुई। जिसके लिए संविधान का 73वाँ संविधान संशोधन किया गया। जिसका विस्तृत अध्ययन आप इस अध्याय में करेंगे।

20.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप-

- 1.स्थानीय स्वशासन के बारे में जान पायेंगे।
- 2.स्थानीय स्वशासन को वैधानिक रूप देने के लिए संविधान में 73वाँ संविधान संशोधन के विषय में जान पायेंगे।
- 3.73वें संविधान संशोधन के पिछे सोच के कारणों ज्ञान होगा।
- 4.संविधान में मौजूद मुख्य बिन्दुओं की जानकारी मिलेगी ।

20.3 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायती राज

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात पंचायतों के पूर्ण विकास के लिये प्रयत्न शुरू हुए। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी स्वराज और स्वावलम्बन के लिये पंचायती राज के प्रबलतम समर्थक थे। गांधी जी ने कहा था- "सच्चा स्वराज सिर्फ चंद लोगों के हाथ में सत्ता आ जाने से नहीं बल्कि इसके लिये सभी हाथों में क्षमता आने से आयेगा। केन्द्र में बैठे बीस व्यक्ति सच्चे लोकतन्त्र को नहीं चला सकते। इसको चलाने के लिये निचले स्तर पर प्रत्येक गांव के लोगों को शामिल करना पड़ेगा।" गांधी जी की ही पहल पर संविधान में अनुच्छेद-40 शामिल किया गया। जिसमें यह कहा गया कि राज्य ग्राम पंचायतों को सुदृढ़ करने हेतु कदम उठायेगा तथा पंचायतों को प्रशासन की इकाई के रूप में कार्य करने के लिये आवश्यक अधिकार प्रदान करेगा। यह अनुच्छेद राज्य का नीति निर्देशक सिद्धान्त बना दिया गया। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिये विभिन्न कमीशन नियुक्त किये गये, जिन्होंने पंचायती राज व्यवस्था को पुर्नजीवित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया।

भारत में सन् 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्थापित किये गये। किन्तु प्रारम्भ में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को कोई महत्वपूर्ण सफलता नहीं मिल सकी, इसका मुख्य कारण जनता का इसमें कोई सहयोग व रुचि नहीं थी। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सरकारी कामों के रूप में देख गया और गाँववासी अपने उत्थान के लिए स्वयं प्रयत्न करने के स्थान पर सरकार पर निर्भर रहने लगी। इस कार्यक्रम के सूत्रधार यह आशा करते थे कि जनता इसमें आगे आये और दूसरी ओर उनका विश्वास था कि सरकारी कार्यवाही से ही यह कार्यक्रम सफल हो सकता है। कार्यक्रम जनता ने चलाना था, लेकिन वे बनाये उपर से जाते थे। जिस कारण इन कार्यक्रमों में लोक कल्याण के कार्य तो हुए लेकिन लोगों की भागीदारी इनमें नगण्य थी। ये कार्यक्रम लोगों के कार्यक्रम होने के बजाय सरकार के कार्यक्रम बनकर रह गये। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के असफल हाने के कारणों का अध्ययन करने के लिए एक कमेटी गठित की गयी, जिसका नाम बलवन्त राय मेहता समिति था।

अभ्यास प्रश्न-1

1. 1919 के किस सुधार के तहत एक अधिनियम पारित करके पंचायतों को फिर से स्थापित करने का काम प्रांतीय शासन पर छोड़ दिया।
2. पंचायतों को संवैधानिक दर्जा देने के लिए संविधान में.....संविधान संशोधन किया गया।
3. भारत में किस सन् में सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्थापित किये गये।

क. 1950 ख. 1952 ग. 1954 घ. 1956

20.3.1 पंचायतों के विकास के लिए गठित समितियां

पंचायती राज के विकास के लिए समय-समय पर अनेक समितियां गठित की गयीं।

20.3.2 बलवंत राय मेहता समिति

1957 में सरकार ने पंचायतों के विकास पर सुझाव देने के लिए श्री बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की इस रिपोर्ट में यह सिफारिश की गयी कि सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की तुरन्त स्थापना की जानी चाहिए। इसे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का नाम दिया गया। मेहता कमेटी के अपनी निम्नलिखित शिफारिशें रखी।

1. ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड(ब्लाक) स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद। अर्थात् पंचायतों की त्रिस्तरीय संरचना बनायी जाये।
2. पंचायती राज में लोगों को सत्ता का हस्तान्तरण किया जाना चाहिए।
3. पंचायती राज संस्थाएं जनता के द्वारा निर्वाचित होनी चाहिए और सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अधिकारी उनके अधीन होने चाहिए।
4. साधन जुटाने व जन सहयोग के लिए इन संस्थाओं को पर्याप्त अधिकार दिये जाने चाहिए।
5. सभी विकास संबंधी कार्यक्रम व योजनाएं इन संगठनों के द्वारा लागू किये जाने चाहिए।
6. इन संगठनों को उचित वित्तीय साधन सुलभ करवाये जाने चाहिए।

राजस्थान वह पहला राज्य है जहां पंचायती राज की स्थापना की गयी। 1958 में सर्वप्रथम पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 2 अक्टूबर को राजस्थान के नागौर जिले में पंचायती राज का दीपक प्रज्वलित किया और धीरे धीरे गांवों में पंचायती राज का विकास शुरू हुआ। सत्ता के विकेन्द्रीकरण की दिशा में यह पहला कदम था। 1959 में आन्ध्र प्रदेश में भी पंचायती राज लागू किया गया। 1959 से 1964 तक के समय में विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं को लागू किया गया और इन संस्थाओं ने कार्य प्रारम्भ किया। लेकिन इस राज से ग्रामीण तबके के लोगों का नेतृत्व उभरने लगा जो कुछ स्वार्थी लोगों की आँखों में खटकने लगा, क्योंकि वे शक्ति व अधिकारों को अपने तक ही सीमित रखना चाहते थे। फलस्वरूप पंचायती राज को तोड़ने की कोशिशें भी शुरू हो गयीं। कई राज्यों में वर्षों तक पंचायतों में चुनाव ही नहीं कराये गये। 1969 से 1983 तक का समय पंचायती राज व्यवस्था के ह्रास का समय था। लम्बे समय तक पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव नहीं करवाये गये और ये संस्थाएं निष्क्रिय हो गयीं।

20.3.3 अशोक मेहता समिति

जनता पार्टी के सत्ता में आने के बाद पंचायतों को मजबूत करने के उद्देश्य से 12 दिसम्बर 1977 को पंचायती राज संस्थाओं में आवश्यक परिवर्तन सुझाने के लिए में श्री “अशोक मेहता” की अध्यक्षता में 13 सदस्यों की कमेटी गठित की गई। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं में आई गिरावट के लिए कई कारणों को जिम्मेदार बताया। इसमें प्रमुख था कि पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों से बिल्कुल अलग रखा गया है। अशोक मेहता समिति ने महसूस किया कि पंचायती राज

संस्थाओं की अपनी कमियां स्थानीय स्वशासन को मजबूती नहीं प्रदान कर पा रही हैं। इस समिति द्वारा पंचायतों को सुदृढ़ बनाने के लिए निम्न सुझाव दिये गये-

- 1.समिति ने दो स्तरों वाले ढाँचे- जिला परिषद को मजबूत बनाने और ग्राम पंचायत की जगह मण्डल पंचायत की सिफारिश की। अर्थात् पंचायती राज संस्थाओं के दो स्तर हों, जिला परिषद व मंडल परिषद।
- 2.जिले को तथा जिला परिषद को समस्त विकास कार्यों का केन्द्र बनाया जाए। जिला परिषद ही आर्थिक नियोजन करें और जिले में विकास कार्यों में सामन्जस्य स्थापित करें और मंडल पंचायतों को निर्देशन दें।
- 3.पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचन में जिला परिषद को मुख्य स्तर बनाने और राजनैतिक दलों की सक्रिय भागीदारी पर बल दिया।
- 4.पंचायतों के सदस्यों के नियमित चुनाव की सिफारिश की। राज्य सरकारों को पंचायती चुनाव स्थगित न करने व चुनावों का संचालन मुख्य चुनाव आयुक्त के द्वारा किये जाने का सुझाव दिया।
- 5.कमेटी ने यह सुझाव भी दिया कि पंचायती राज संस्थाओं को मजबूती प्रदान करने के लिये संवैधानिक प्रावधान बहुत ही आवश्यक है।
- 6.पंचायती राज संस्थाएं समिति प्रणाली के आधार पर अपने कार्यों का सम्पादन करें।
- 7.राज्य सरकारों को पंचायती राज संस्थाओं के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।
- 8.देश के कई राज्यों ने इन सिफारिशों को नहीं माना, अतः तीन स्तरों वाले ढाँचे को ही लागू रखा गया।

इस प्रकार अशोक मेहता समिति ने पंचायती राज व्यवस्था में सुधार लाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सिफारिशें की, किन्तु ग्राम पंचायतों को समाप्त करने की उनकी सिफारिश पर विवाद पैदा हो गया। ग्राम पंचायतों की समाप्ति का मतलब था, ग्राम विकास की मूल भावना को ही समाप्त कर देना। समिति के सदस्य सिद्धराज ढड्डा ने इस विषय पर लिखा कि “मुझे जिला परिषदों और मंडल पंचायतों से कोई आपत्ति नहीं है किन्तु समिति ने ग्राम सभा की कोई चर्चा नहीं की, जबकि पंचायती राज संस्थाओं की आधारभूत इकाई तो ग्राम सभा को ही बनाया जा सकता था।”

20.3.4 जी.वी.के. समिति

पंचायतों के सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया में सन् 1985 में जी.वी.के. राव समिति गठित की गई। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को अधिक अधिकार देकर उन्हें सक्रिय बनाने पर बल दिया। साथ ही यह सुझाव भी दिया कि योजना निर्माण व संचालित करने के लिये जिला मुख्य इकाई होना चाहिये। समिति ने पंचायतों के नियमित चुनाव की भी सिफारिश की।

20.3.5 डा. एल. एम. सिंघवी समिति

1986 में डा. एल.एम. सिंघवी समिति का गठन किया गया। सिंघवी समिति ने 'गांव पंचायत' (ग्राम-सभा) की सिफारिश करते हुये संविधान में ही नया अध्याय जोड़ने की बात कही जिससे पंचायतों की अवहेलना ना हो सके। इन्होंने ने गांव के समूह बना कर न्याय पंचायतों के गठन की भी सिफारिश की।

20.3.6 सरकारिया आयोग और पी0 के0 थुंगर समिति

1988 में सरकारिया आयोग बैठाया गया जो मुख्य रूप से केन्द्र व राज्यों के संबंधों से जुड़ा था। इस आयोग ने भी नियमित चुनावों और ग्राम पंचायतों को वित्तीय व प्रशासनिक शक्तियां देने की सिफारिश की। 1988 के अंत में ही पी0 के0 थुंगर की अध्यक्षता में संसदीय परामर्श समिति की उपसमिति गठित की गयी। इस समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने की सिफारिश की।

भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व. राजीव गांधी की सरकार ने गांवों में पंचायतों के विकास की ओर अत्यधिक प्रयास करने शुरू किये। श्री राजीव गांधी का विचार था कि जब तक गांव के लोगों को विकास प्रक्रिया में भागीदार नहीं बनाया जाता, तब तक ग्रामीण विकास का लाभ ग्रामीण जनता को नहीं मिल सकता। पंचायती राज के द्वारा वे गांव वालों के, खासकर अनुसूचित जाति, जनजाति तथा महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में बदलाव लाना चाहते थे। उन्होंने इस दिशा में कारगर कदम उठाते हुये 64वां संविधान विधेयक संसद में प्रस्तुत किया। लोकसभा ने 10 अगस्त 1988 को इस विधेयक को अपनी मंजूरी दे दी। मगर राज्य सभा में सिर्फ पांच मतों की कमी रह जाने से यह पारित न हो सका। फिर 1991 में तत्कालीन सरकार ने 73वां संविधान संशोधन विधेयक को संसद में पेश किया। लोक सभा ने 2 दिसम्बर 1992 को इसे सर्व सम्मति से पारित कर दिया। राज्य सभा ने अगले ही दिन इसे अपनी मंजूरी दे दी। उस समय 20 राज्यों की विधान सभाएं कार्यरत थीं। 20 राज्यों की विधान सभाओं में से 17 राज्यों की विधान सभाओं ने संविधान संशोधन विधेयक को पारित कर दिया। 20 अप्रैल 1993 को राष्ट्रपति ने भी इस विधेयक को मंजूरी दे दी। तत्पश्चात् 73वां संविधान संशोधन अधिनियम 24 अप्रैल से लागू हो गया।

20.4 73वें संविधान संशोधन की सोच

पंचायतों को मजबूत, अधिकार सम्पन्न व स्थानीय स्वशासन की इकाई के रूप में स्थापित करने हेतु संविधान में 73वां संशोधन अधिनियम एक क्रान्तिकारी कदम है। 73वें संविधान संशोधन के पीछे निम्न सोच है-

1. निर्णय को विकेन्द्रीकृत करना तथा स्थानीय स्तर पर संवैधानिक एवं लोकतांत्रिक प्रक्रिया शुरू करना।

- 2.स्थानीय स्तर पर पंचायत के माध्यम से निर्णय प्रक्रिया, विकास कार्यों व शासन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना।
- 3.ग्राम विकास प्रक्रिया के नियोजन, क्रियान्वयन तथा निगरानी में गांव के लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करना व उन्हें अपनी जिम्मेदारी का अहसास कराना।
- 4.लम्बे समय से हासिये पर रहने वाले तबकों जैसे महिला, दलित एवं पिछड़ों को ग्राम विकास व निर्णय प्रक्रिया में शामिल करके उन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ना।
- 5.स्थानीय स्तर पर लोगों की सहभागिता बढ़ाना व लोगों को अधिकार देना।

20.4.1 73वां संविधान अधिनियम

स्वतन्त्रता पश्चात देश को सुचारू रूप से चलाने के लिये हमारे नीति निर्माताओं द्वारा भारतीय संविधान का निर्माण किया गया। इस संविधान में नियमों के अनुरूप व एक नियत प्रक्रिया के अधीन जब भी कुछ परिवर्तन किया जाता है या उसमें कुछ नया जोड़ा जाता है अथवा हटाया जाता है तो यह संविधान संशोधन अधिनियम कहलाता है। भारत में सदियों से चली आ रही पंचायत व्यवस्था जो कई कारणों से काफी समय से मृतप्रायः हो रही थी, को पुर्नजीवित करने के लिये संविधान में संशोधन किये गये। ये संशोधन तिहत्तरवां व चौहत्तरवां संशोधन अधिनियम कहलाये। तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की गई। इसी प्रकार चौहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के नगरीय क्षेत्रों में नगरीय स्वशासन की स्थापना की गई। इन अधिनियमों के अनुसार भारत के प्रत्येक राज्य में नयी पंचायती राज व्यवस्था को आवश्यक रूप से लागू करने के नियम बनाये गये। इस नये पंचायत राज अधिनियम से त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने व स्थानीय स्तर पर उसे मजबूत बनाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इस अधिनियम में जहां स्थानीय स्वशासन को प्रमुखता दी गई है व सक्रिय किये जाने के निर्देश हैं, वहीं दूसरी ओर सरकारों को विकेन्द्रीकरण हेतु बाध्य करने के साथ-साथ वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिये वित्त आयोग का भी प्रावधान किया गया है।

73वां संविधान संशोधन अधिनियम अर्थात् “नया पंचायती राज अधिनियम” प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को जनता तक पहुँचाने का एक उपकरण है। गांधी जी के स्वराज के स्वप्न को साकार करने की पहल है। पंचायती राज स्थानीय जनता का, जनता के लिये, जनता के द्वारा शासन है।

73वें संविधान संशोधन अधिनियम की मुख्य बातें

लोकतंत्र को मजबूत करने के लिये नई पंचायत राज व्यवस्था एक प्रशंसनीय पहल है। गांधी जी का कहना था कि “देश में सच्चा लोकतंत्र तभी स्थापित होगा जब भारत के लाखों गांवों को अपनी व्यवस्था स्वयं चलाने का अधिकार प्राप्त होगा। गांव के लिये नियोजन, प्राथमिकता चयन लोग स्वयं

करेंगे। ग्रामीण अपने गांव विकास सम्बन्धी सभी निर्णय स्वयं लेंगे। ग्रामविकास कार्यक्रम पूर्णतया लोगों के होंगे और सरकार उनमें अपनी भागीदारी देगी। गांधी जी के इस कथन को महत्व देते हुये तथा उनके ग्राम-स्वराज के स्वप्न को साकार करने के लिये भारतीय सरकार ने पंचायतों को बहुत से अधिकार दिये हैं। तिहत्तरवें संविधान अधिनियम में निम्न बातों को शामिल किया गया है -

1. 73वें संविधान संशोधन के अर्न्तगत पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। अर्थात् पंचायती राज संस्थाएं अब संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाएं हैं।
2. नये पंचायती राज अधिनियम के अनुसार ग्राम सभा को संवैधानिक स्तर पर मान्यता मिली है। साथ ही इसे पंचायत व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना दिया गया है।
3. यह तीन स्तरों - ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत पर चलने वाली व्यवस्था है।
4. एक से ज्यादा गांवों के समूहों से बनी ग्राम पंचायत का नाम सबसे अधिक आबादी वाले गांव के नाम पर होगा।
5. इस अधिनियम के अनुसार महिलाओं के लिये त्रिस्तरीय पंचायतों में एक तिहाई सीटों पर आरक्षण दिया गया है।
6. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिये भी जनसंख्या के आधार पर आरक्षण दिया गया है। आरक्षित वर्ग के अलावा सामान्य सीट से भी ये लोग चुनाव लड़ सकते हैं।
7. पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष तय किया गया है तथा कार्यकाल पूरा होने से पहले चुनाव कराया जाना अनिवार्य किया गया है।
8. पंचायत 6 माह से अधिक समय के लिये भंग नहीं रहेगी तथा कोई भी पद 6 माह से अधिक खाली नहीं रहेगा।
9. इस संशोधन के अर्न्तगत पंचायतें अपने क्षेत्र के अर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण की योजनायें स्वयं बनायेंगी और उन्हें लागू करेंगी। सरकारी कार्यों की निगरानी अथवा सत्यापन करने का भी अधिकार उन्हें दिया गया है।
10. 73वें संशोधन के अर्न्तगत पंचायतों को ग्राम सभा के सहयोग से विभिन्न जनकल्याणकारी योजनाओं के अर्न्तगत लाभार्थी के चयन का भी अधिकार दिया गया है।
11. हर राज्य में वित्त आयोग का गठन होता है। यह आयोग हर पांच साल बाद पंचायतों के लिये सुनिश्चित आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर वित्त का निर्धारण करेगा।
12. उक्त संशोधन के अर्न्तगत ग्राम प्रधानों का चयन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा तथा क्षेत्र पंचायत प्रमुख व जिला पंचायत अध्यक्षों का चयन निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाना तय है।
13. पंचायत में जबाबदेही सुनिश्चित करने के लिये छः समितियों (नियोजन एवं विकास समिति, शिक्षा समिति तथा निर्माण कार्य समिति, स्वास्थ्य एवं कल्याण समिति, प्रशासनिक समिति, जल

प्रबन्धन समिति) की स्थापना की गयी है। इन्हीं समितियों के माध्यम से कार्यक्रम नियोजन एवं क्रियान्वयन किया जायेगा।

14. हर राज्य में एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना की गई है। यह आयोग निर्वाचन प्रक्रिया, निर्वाचन कार्य, उसका निरीक्षण तथा उस पर नियन्त्रण भी रखेगा।

अतः संविधान के 73वें संशोधन ने नयी पंचायत व्यवस्था के अन्तर्गत न केवल पंचायतों को केन्द्र एवं राज्य सरकार के समान एक संवैधानिक दर्जा दिया है अपितु समाज के कमजोर व शोषित वर्ग को विकास की मुख्य धारा से जुड़ने का भी अवसर दिया है।

20.4.2 73वें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताएं

73वां संविधान संशोधन पंचायती राज से संबंधित है, जिसमें पंचायतों से संबंधित व्यवस्था का पूर्ण विधान किया गया है। इसकी निम्न लिखित विशेषताएं हैं---

- 1- संविधान में “ग्राम सभा“ को पंचायतीराज की आधारभूत इकाई के रूप में स्थान मिला है।
- 2- पंचायतों की त्रिस्तरीय व्यवस्था की गयी है। ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, क्षेत्र स्तर पर (ब्लाक स्तर) क्षेत्र पंचायत व जिला स्तर पर जिला पंचायत की व्यवस्था की गयी है।
- 3- प्रत्येक स्तर पर पंचायत के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष मतदान के द्वारा की जाने की व्यवस्था है। लेकिन क्षेत्र व जिला स्तर पर अध्यक्षों के चुनाव चुने हुए सदस्यों में से, सदस्यों द्वारा किये जाने की व्यवस्था है।
- 4- 73वें संविधान संशोधन में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या में उसके प्रतिशत के अनुपात से सीटों के आरक्षण की व्यवस्था है। महिलाओं के लिए कुल सीटों का एक तिहाई भाग प्रत्येक स्तर पर आरक्षित किया गया है। अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में ही आरक्षण की व्यवस्था है। प्रत्येक स्तर पर अध्यक्षों के कुल पदों का एक-तिहाई भाग महिलाओं के लिए आरक्षित किया गया है।
- 5- अधिनियम में पंचायतों का कार्यकाल(पाँच वर्ष) निश्चित किया गया है। यदि कार्यकाल से पहले ही पंचायत भंग हो जाय तो 6 माह के भीतर चुनाव कराने की व्यवस्था है।
- 6- अधिनियम के द्वारा पंचायतों से संबंधित सभी चुनावों के संचालन के लिए राज्य चुनाव आयोग को उत्तरदायी बनाया गया है।
- 7- अधिनियम के द्वारा प्रत्येक राज्य में राज्य वित्त आयोग का गठन किया गया है, ताकि पंचायतों के पास पर्याप्त साधन उपलब्ध हो। जिससे विभिन्न विकास कार्य किये जा सके।

20.5 स्थानीय स्वशासन व पंचायतें

स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने में पंचायतों की अहम भूमिका है। पंचायतें हमारी संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त संस्थायें हैं और प्रशासन से भी उनका सीधा जुड़ाव है। भारत में प्राचीन काल से

ही स्थानीय स्तर पर शासन का संचालन पंचायत ही करती आयी हैं। स्थानीय स्तर पर स्वशासन के स्वप्न को साकार करने का माध्यम पंचायतें ही हैं। चूंकि पंचायतें स्थानीय लोगों के द्वारा गठित होती हैं, और इन्हें संवैधानिक मान्यता भी प्राप्त है, अतः पंचायतें स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने का एक अचूक तरीका है। ये संवैधानिक संस्थाएं ही आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं ग्रामसभा के साथ मिलकर बनायेंगी व उसे लागू करेंगी। गांव के लिये कौन सी योजना बननी है, कैसे क्रियान्वित करनी है, क्रियान्वयन के दौरान कौन निगरानी करेगा, ये सभी कार्य पंचायतें गांव के लोगों (ग्रामसभा सदस्यों) की सक्रिय भागीदारी से करेंगी। इससे निर्णय स्तर पर आम जनसमुदाय की भागीदारी सुनिश्चित होगी।

स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत हो सकता है जब पंचायतें मजबूत होंगी और पंचायतें तभी मजबूत होंगी जब लोग मिलजुलकर इसके कार्यों में अपनी भागीदारी देंगे और अपनी जिम्मेदारी को समझेंगे। लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिये पंचायतों के कार्यों में पारदर्शिता होना जरूरी है। पहले भी लोग स्वयं अपने संसाधनों का, अपने ग्राम विकास का प्रबन्धन करते थे। इसमें कोई शक नहीं कि वह प्रबन्धन आज से कहीं बेहतर भी होता था। हमारी परम्परागत रूप से चली आ रही स्थानीय स्वशासन की सोच बीते समय के साथ कमजोर हुई है। नई पंचायत व्यवस्था के माध्यम से इस परम्परा को पुनः जीवित होने का मौका मिला है। अतः ग्रामीणों को चाहिये कि पंचायत और स्थानीय स्वशासन की मूल अवधारणा को समझने की चेष्टा करें ताकि ये दोनों ही एक दूसरे के पूरक बन सकें।

गांवों का विकास तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण ग्रामवासियों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जायेगा। जब तक गांव के सामाजिक तथा आर्थिक विकास के निर्णयों में गांव के पहले तथा अन्तिम व्यक्ति की बराबर की भागीदारी नहीं होगी तब तक हम ग्राम स्वराज की कल्पना नहीं कर सकते हैं। जनसामान्य की अपनी सरकार तभी मजबूत बनेगी जब लोग ग्रामसभा और ग्रामपंचायत में अपनी भागीदारी के महत्व को समझेंगे।

अभ्यास प्रश्न-2

1. बलवंत राय समिति का गठन किया गया।

क .1952 ख .1955 ग .1957 घ .1960

2. पंचायतों के विकास के लिए गठित किस समिति ने त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की बात - कही।

3. राजस्थान वह पहला राज्य है जहां पंचायती राज की स्थापना की गयी। सत्यअसत्य/

4.ने 2 अक्टूबर को राजस्थान के जिले में पंचायती राज का शुभारम्भ किया।

5. किस समिति ने पंचायतों की दो स्तरीय व्यवस्था की सिफारिश की थी?

6. जी राव समिति कब गठित .के.वी.की गई?

क .1985 ख .1988 ग .1990 घइनमें से कोई नहीं .

7. किस समिति ने गांव के समूह बना कर न्याय पंचायतों के गठन की सिफारिश की थी?

कपी .राव समिति ग .के.वी.जी .बलवंत राय समिति ख .0 के0 थुंगर घसिंघवी .एम .एल .डा .
समिति

20.6 सांराश

वैदिक काल से चली आ रही पंचायत व्यवस्था देश में लगभग मृतप्राय हो चुकी थी, जिसे गांधी जी, बलवन्त राय मेहता समिति, अशोक मेहता रिपोर्ट, जी. के. राव. समिति, एल.एम.सिंघवी रिपोर्ट के प्रयासों ने नवजीवन दिया। जिसके फलस्वरूप 73वां संविधान संशोधन विधेयक संयुक्त संसदीय समिति की जांच के बाद पारित हुआ। 73वें संविधान संशोधन से गांधी जी के ग्राम स्वराज के स्वप्न को एक नई दिशा मिली है। गांधी जी हमेशा से गांव की आत्मनिर्भरता पर जोर देते रहे। गांव के लोग अपने संसाधनों पर निर्भर रह कर स्वयं अपना विकास करें, यही ग्राम स्वराज की सोच थी। 73वें संविधान संशोधन के पीछे मूलधारणा भी यही थी कि स्थानीय स्तर पर विकास की प्रक्रिया में जनसमुदाय की निर्णय स्तर पर भागीदारी हो। 73वां संविधान संशोधन अधिनियम वास्तव में एक मील का पत्थर है जिसके द्वारा आम जन को सुशासन में भागीदारी करने का सुनहरा मौका प्राप्त हुआ है।

20.7 शब्दावली

सुदृढ़िकरण- सुधार और मजबूत करने की प्रक्रिया

प्रबलतम- मजबूत

स्वावलम्बन- आत्मनिर्भरता

नगण्य- नहीं के बराबर (अनुपस्थित)

हस्तांतरण- एक स्थान से दूसरे स्थान

त्रीस्तरीय - तीन स्तर पर (गाम पंचायत, क्षेत्र पंचायत व जिला पंचायत)

20.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

1. मांटेस्क्यू चेम्सफोर्स सुधार 2. 73वां संविधान संशोधन 3. ख

अभ्यास प्रश्न-2

1. ग 2. बलवंत राय मेहता समिति 3. सत्य 4. पंडित जवाहर लाल नेहरू, नागौर जिला

5. अशोक मेहता समिति 6. क 7. घ

20.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 73वां संविधान संशोधन अधिनियम
 2. पंचायत सन्दर्भ सामाग्री, हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर
-

20.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत में पंचायती राज- के. के. शर्मा
 2. रोल ऑफ पंचायत इन वैलफेयर स्टेट- अब्राहम मैथ्यू
 3. भारत में स्थानीय शासन- एस0 आर0 माहेश्वरी
 4. पंचायती राज में प्रमाण पत्र- डॉ0 घनश्याम जोशी एवं डॉ0 छाया कुंवर(उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल)
 5. भारतीय प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी
-

20.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 73वां संविधान संशोधन अधिनियम किससे संबंधित है, इस अधिनियम में मौजूद मुख्य बातों को स्पष्ट करें?
2. 73वें संविधान संशोधन की मुख्य बातों की विस्तार से चर्चा कीजिए

इकाई 21 नगरीय स्थानीय सरकार चौहतरवा (74वाँ) संवैधानिक संशोधन

इकाई की रूपरेखा

- 21.1 प्रस्तावना
- 21.2 उद्देश्य
- 21.3 चौहतरवें (74वें) संविधान संशोधन का उद्देश्य
 - 21.3.1 संविधान संशोधन की आवश्यकता
 - 21.3.2 चौहतरवें (74वें) संविधान संशोधन के पीछे सोच
 - 21.3.3 नगर निकायों का गठन एवं संरचना
 - 21.3.4 नगर निकायों का कार्यकाल
 - 21.3.5 नगर पालिका की बैठकें व उनकी कार्यवाहियाँ
 - 21.3.6 नगरीय निकायों में वित्तीय प्रबंधन
 - 21.3.7 नगर निकायों में बजट की आवश्यकता व महत्ता
 - 21.3.8 नगरीय निकायों में लगाये जाने वाले कर
 - 21.3.9 मूल्यांकन, छूट एवम वसूली
 - 21.3.10 नगर-निकायों में वार्ड कमेटियाँ
 - 21.3.11 नगर-निकायों से संबंधित विषय
 - 21.3.12 नगर-निकायों के कार्य एवं शक्तियाँ
- 21.4 सांराश
- 21.5 शब्दावली
- 21.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 21.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 21.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 21.9 निबन्धात्मक प्रश्न

21.1 प्रस्तावना

सत्ता विकेन्द्रीकरण की दिशा में संविधान का 73वां और 74वां संविधान संशोधन एक महत्वपूर्ण और निर्णायक कदम हैं। 74वां संविधान संशोधन नगर निकायों में सत्ता विकेन्द्रीकरण का एक मजबूत आधार है। अतः इस अध्याय का उद्देश्य 74वें संविधान संशोधन की आवश्यकता और 74वें संविधान संशोधन में मौजूद उपबंधों और नियमों को स्पष्ट करना है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र के रूप में जाना जाता है। इस लोक तंत्र का सबसे रोचक महत्वपूर्ण पक्ष है सत्ता व शक्तियों का विकेन्द्रीकरण। अर्थात् केन्द्र स्तर से लेकर स्थानीय स्तर पर गांव इकाई तक सत्ता व शक्ति का बंटवारा ही विकेन्द्रीकरण कहलाता है। विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था किसी न किसी रूप में प्राचीन काल से ही भारत में विद्यमान थी। राजा/महाराजाओं के समय भी सभा, परिषद, समितियां सूबे आदि के माध्यम से शासन चलाया जाता था। लोगों को उनकी जरूरतें पूरी करने के लिए निर्णयों में हमेशा महत्वपूर्ण सहभागी माना जाता था। लेकिन जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया, लोगों को शासन व लोक विकास में भागीदारी से अलग कर दिया गया तथा उनके अपने हित व विकास के लिए बनाई जाने वाले कार्यक्रम व नीतियों पर केन्द्र सरकार या राज्य सरकार का नियंत्रण होता गया।

परन्तु यह प्रक्रिया जनता की जरूरतों को पूरी नहीं कर पाती थी, विकास गतिविधियों को चलाने में लोगों की सहभागिता को प्रोत्साहित नहीं करती थी एवं लोगों को भी यह नहीं लगता था कि लागू की जा रही योजना अथवा कार्यक्रम उनका अपना है। इसलिए यह महसूस किया गया कि लोगों को कार्य योजनायें स्वयं बनानी चाहिए, क्योंकि उन्हें अपनी आवश्यकताओं का पता होता है कि किस प्रकार वे अपने जीवन स्तर में सुधार ला सकते हैं एवं वे अपने विकास में सहभागी बन सकते हैं। अतः यह महसूस किया गया कि लोगों के लिए योजना बनाने की प्रक्रिया अनिवार्य रूप से नीचे से उपर की ओर होनी चाहिये क्योंकि लोगों को अपनी जरूरतों की पहचान होती है जिससे वे योजनाओं के वरीयता क्रमों को निर्धारित करते हुए योजना बना सकते हैं। कार्यक्रम क्रियान्वित करने वाले कार्मिक जनता/समुदाय की योजनाओं को समेकित कर सकते हैं। शासन के सबसे छोटे स्तर से लोगों की सहभागिता व शासन में सीधी भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए संविधान का 73वां व 74वां संविधान संशोधन एक प्रमुख कदम है।

21.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप-

1. चौहत्तरवें संविधान संशोधन के अन्तर्गत नगर निकायों के विषय में दी गयी धाराओं के विषय में जान पायेंगे।
2. नगर निकायों के वित्तीय प्रबन्ध, गठन, कार्यकाल, उसकी बैठक और कार्यवाहियों को स्पष्ट करना।
3. नगर निकायों से संबंधित विषय, उनके कार्य एवं शक्तियों के विषय में जान पायेंगे।

21.3 चौहतरवें (74वें) संविधान संशोधन का उद्देश्य

1. देश में नगर संस्थाओं जैसे नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद तथा नगर पंचायतों के अधिकारों में एकरूपता रहे।

2. नागरिक कार्यकलापों में जन प्रतिनिधियों का पूर्ण योगदान तथा राजनैतिक प्रक्रिया में निर्णय लेने का अधिकार रहे।

3. नियमित समयान्तराल में प्रादेशिक निर्वाचन आयोग के अधीन चुनाव हो सके व कोई भी निर्वाचित नगर प्रशासन छः माह से अधिक समयावधि तक भंग न रहे, जिससे कि विकास में जन प्रतिनिधियों का नीति निर्माण, नियोजन तथा क्रियान्वयन में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके।

4. समाज की कमजोर वर्गों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिये (संविधान संशोधन अधिनियम में प्राविधानित/निर्दिष्ट) प्रतिशतता के आधार पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन-जाति व महिलाओं को तथा राज्य (प्रादेशिक) विधान मण्डल के प्राविधानों के अन्तर्गत पिछड़े वर्गों को नगर प्रशासन में आरक्षण मिलें।

5. प्रत्येक प्रदेश में स्थानीय नगर निकायों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये एक राज्य (प्रादेशिक) वित्त आयोग का गठन हो जो राज्य सरकार व स्थानीय नगर निकायों के बीच वित्त हस्तान्तरण के सिद्धान्तों को परिभाषित करें। जिससे कि स्थानीय निकायों का वित्तीय आधार मजबूत बने।

6. सभी स्तरों पर पूर्ण पारदर्शिता रहे।

21.3.1 संविधान संशोधन की आवश्यकता

पूर्व की नगरीय स्थानीय स्वशासन व्यवस्था लोकतन्त्र की मंशा के अनुरूप नहीं थी। सबसे पहली कमी इसमें यह थी कि इसका वित्तीय आधार कमजोर था। वित्तीय संसाधनों की कमी होने के कारण नगर निकायों के कार्य संचालन पर राज्य सरकार का ज्यादा से ज्यादा नियंत्रण था। जिसके कारण धीरे-धीरे नगर निकायों के द्वारा किये जाने वाले अपेक्षित कार्यों/या उन्हें सौंपे गये कार्यों में कमी होनी लगी। नगर निकायों के प्रतिनिधियों की बरखास्ती या नगर निकायों का कार्यकाल समाप्त होने पर भी समय पर चुनाव नहीं हो रहे थे। इन निकायों में कमजोर व उपेक्षित वर्गों (महिला, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति)का प्रतिनिधित्व न के बराबर था। अतः इन कमियों को देखते हुए संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम में स्थानीय नगर निकायों की संरचना, गठन, शक्तियों, और कार्यों में अनेक परिवर्तन का प्राविधान किया गया।

21.3.2 चौहतरवें (74वें) संविधान संशोधन के पीछे सोच

1. संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम द्वारा नगर-प्रशासन को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।
2. इस संशोधन के अन्तर्गत नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद एवं नगर पंचायतों के अधिकारों में एक रूपता प्रदान की गई है।
3. नगर विकास व नागरिक कार्यकलापों में आम जनता की भागीदारी सुनिश्चित की गई है। तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया तक नगर व शहरों में रहने वाली आम जनता की पहुंच बढ़ाई गई है।
4. समाज कमजोर वर्गों जैसे महिलाओं अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्गों का प्रतिशतता के आधार पर प्रतिनिधित्व सुनिश्चित कर उन्हें भी विकास की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया गया है।
5. 74वें संशोधन के माध्यम से नगरों व कस्बों में स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाने के प्रयास किये गये हैं।
6. इस संविधान की मुख्य भावना लोकतांत्रिक प्रक्रिया की सुरक्षा, निर्णय में अधिक पारदर्शिता व लोगों की आवाज पहुंचाना सुनिश्चित करना है।

21.3.3 नगर निकायों का गठन एवं संरचना

1. अधिक आबादी वाले/महानगरीय क्षेत्रों में - नगर निगम का गठन होगा (एक लाख से ज्यादा जनसंख्या वाले नगर)
2. छोटे नगरीय क्षेत्रों में- नगरपालिका परिषद का गठन होगा (50 हजार से एक लाख तक जनसंख्या वाले नगर)
3. संक्रमणशील क्षेत्रों में, नगर पंचायत का गठन होगा। (50 हजार तक जनसंख्या वाले नगर)

नगर निगम, नगर पालिका परिषद व नगर पंचायत स्तर पर जनता द्वारा एक अध्यक्ष निर्वाचित किया जायेगा

नगरीय क्षेत्र के प्रत्येक वार्ड से प्रत्यक्ष रूप से सदस्य निर्वाचित किये जायेंगे जिनकी संख्या वार्डों की संख्या के आधार पर राज्य सरकार द्वारा जारी विज्ञप्ति के अनुसार होगी।

पदेन सदस्य के रूप में नगर निकायों में लोकसभा एवं राज्य विधान सभा के ऐसे सदस्य शामिल किये जायेंगे, जो नगरीय निकाय क्षेत्र (पूर्णतः या भागतः) के निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

पदेन सदस्य के रूप में राज्य सभा व राज्य विधान परिषद के ऐसे सदस्य जो नगरीय निकाय क्षेत्र के अन्दर निर्वाचकों के रूप में पंजीकृत हैं।

नगरपालिका प्रशासन में विशेष ज्ञान या अनुभव रखने वाले निर्दिष्ट/नामित सदस्य स्थानीय निकायों में शामिल किये जायेंगे।

संविधान के अनुच्छेद 243-एस. के प्रस्तर (5) के अधीन स्थापित समितियों के अध्यक्ष यदि कोई हो।

21.3.4 नगर निकायों का कार्यकाल

नगर निगम, नगर पालिका, एवं नगर पंचायतों का कार्यकाल पहली बैठक के दिन से पांच वर्ष तक रहेगा। अगर किसी कारणवश 74वें संविधान संशोधन के नियमों के अनुरूप नगर निकाय अपनी जिम्मेदारियों व उत्तरदायित्वों को पूरा नहीं करते या उनमें अनियमितता पायी जाती है तो पांच वर्ष पूर्व भी राज्य सरकार इन्हें भंग या बर्खास्त कर सकती है। बर्खास्त/भंग करने के 6 माह के अन्दर अनिवार्य रूप से चुनाव करवाकर नया बोर्ड गठित किया जाना आवश्यक है। नगर निकायों को भंग करने से पूर्व सुनवाई का एक न्यायोचित अवसर दिया जायेगा।

21.3.5 नगर पालिका की बैठकें व उनकी कार्यवाहियाँ

कार्यपालक पदाधिकारी द्वारा निश्चित दिन तथा नियत समय पर एक माह में कम से कम एक बैठक आयोजित की जाएगी। अध्यक्ष के निर्देश पर अन्य बैठकें भी कार्यपालक अधिकारी द्वारा बुलायी जा सकती हैं। यदि नगर निकाय के पास कार्यपालक पदाधिकारी नहीं है तो अध्यक्ष बैठक आयोजित करेगा। आवश्यकता पड़ने पर किसी भी दिन या समय पर नोटिस देने के बाद अध्यक्ष द्वारा आपातकालीन बैठक बुलायी जा सकती है। आपातकालीन बैठकों के अतिरिक्त अन्य बैठकों हेतु नोटिस को कम से कम 3 दिन पूर्व सभी सदस्यों को भेजा जाना अनिवार्य होगा। नोटिस की अवधि 3 दिन से अधिक भी हो सकती है। आपातकालीन बैठकों के मामले में यह अवधि कम से कम 24 घंटे की होनी चाहिए। बैठक हेतु प्रत्येक सूचना में बैठक की तिथि, समय तथा स्थान का उल्लेख आवश्यक है। बैठक की गणपूर्ति कुल सदस्यों के एक तिहाई सदस्यों की उपस्थिति मानी जायेगी। गणपूर्ति के अभाव में बैठक स्थगित कर दी जायेगी तथा तय की गई तिथि को बैठक आयोजित की जाएगी। जिसकी सूचना आयोजन के कम से कम तीन दिन पूर्व दी जाएगी। बैठक की कार्यवाही को कार्यवाही पुस्तिका में अंकित किया जाएगा जिस पर अध्यक्ष का हस्ताक्षर होगा कार्यवाही की

प्रतियों को राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा निदेशित प्रधिकारी को तुरन्त भेज दी जाएगी। पारिस्थितियों की अनुकूलता के आधार पर अधिशासी अधिकारी अथवा सचिव द्वारा बैठक से पूर्व सभी सदस्यों को बैठक से सम्बन्धित अभिलेख, पत्राचार जो उस बैठक में विचार किये जायेंगे, दिखाये जायेंगे जब तक कि अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष द्वारा अन्यथा निर्देशित किया गया हो।

अभ्यास प्रश्न-1

1. संविधान का 74वां संविधान संशोधन.....से संबंधित है।
2. एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में नगर निगम गठित होंगे। सही/गलत
3. पचास हजार से एक लाख तक की जनसंख्या वाले क्षेत्रों में गठित होंगे।
क. नगर निगम ख. नगर पालिकाएं ग. नगर पंचायतें घ. इनमें से कोई नहीं
4. पचास हजार तक की जनसंख्या वाले क्षेत्रों में नगर पंचायतों का गठन होगा। सही/गलत
5. नगर निकायों का कार्यकाल होता है।
क. 4 साल ख. 5 साल ग. 8 साल घ. 10 साल

21.3.6 नगरीय निकायों में वित्तीय प्रबंधन

74वें संविधान संशोधन के उपरान्त अब नगर निकायों के आय के निम्नलिखित स्रोत हैं।

1. राज्य वित्त आयोग के द्वारा निर्धारित धनराशि।
2. नगर निकायों द्वारा वसूले गये करों से प्राप्त धनराशि।
3. राष्ट्रीय वित्त आयोग के द्वारा निर्धारित धनराशि।
- 5 राज्य सरकार द्वारा नगरीय निकायों में समय-समय पर अनुदान देने की प्रथा को समाप्त कर राज्य सरकार द्वारा प्राप्त कुल करों में नगरीय स्थानीय निकायों के अंश का निर्धारण किया गया।
- 5 स्थानीय निकायों को दी जाने वाली राशि के वितरण का आधार 80 प्रतिशत जनसंख्या एवं 20 प्रतिशत क्षेत्र के आधार पर निर्धारित किया गया है।
- 5 इसके अतिरिक्त प्रत्येक केन्द्रीय वित्त आयोग प्रतिवर्ष शहरी स्थानीय निकायों के लिए धन आवंटित करता है।

5 आयोग के निर्देशानुसार केन्द्रीय वित्त आयोग द्वारा दी गई राशि का उपयोग वेतन, मजदूरी में नहीं किया जाएगा बल्कि यह सामान्य सुविधाएं जैसे जल निकासी, कूड़ा निकासी, शौचालयों की सफाई, मार्ग-प्रकाश इत्यादि में ही इसका उपयोग किया जाएगा।

5 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में 12वीं अनुसूची के अन्तर्गत जो 18 कार्य/दायित्व शहरी स्थानीय निकायों को दिये गये हैं राज्य सरकार को उन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु नगर निकायों आवश्यक राशि दी जायेगी।

5 नगरपालिका के आय का एक मुख्य स्रोत इसके द्वारा लगाये गये विभिन्न कर एवं शुल्क भी हैं।

21.3.7 नगर निकायों में बजट की आवश्यकता व महत्ता

वित्तीय प्रबन्धन के लिए आय-व्ययक अनुमान/आगणन अर्थात् बजट तैयार करना अत्यन्त आवश्यक है। बजट आय तथा व्यय का एक अनुमान है जो कि अपने संसाधनों के उपयोग के लिए एक प्रकार से मार्ग दर्शक, नीतियों के निर्धारण, व्यय संबंधी निर्णय लेने के लिए मार्ग दर्शक, वित्तीय नियोजन का एक यंत्र तथा संप्रेषण का एक माध्यम है। बजट वित्तीय प्रबन्धक का एक महत्वपूर्ण अवयव है, इसे मात्र औपचारिकता के रूप में नहीं लेना चाहिए।

नगर निकायों में बजट एक विधिक आवश्यकता है, क्योंकि जब तक वित्तीय वर्ष का बजट बोर्ड द्वारा पारित नहीं किया जाता है, तब तक कोई खर्चा नहीं किया जा सकता है। बजट तैयार कर लेने से लक्ष्यों व उद्देश्यों के निर्धारण तथा नीतिगत निर्णय लेने में सहायता मिलती है। बजट के द्वारा वास्तविकता आधारित कार्य नियोजन आसानी से किया जा सकता है अर्थात् योजनाओं व कार्यक्रम की प्राथमिकतायें निर्धारित करने में सहायता मिलती है। इससे कार्य कलापों पर वित्तीय नियन्त्रण रखा जा सकता है और धन का अपव्यय भी रोका जा सकता है। अगर नगर निकाय आय-व्यय का विधिवत व उचित दस्तावेजीकरण करते हैं व उसको आधार मानकर अपना बजट बनाते हैं तो अंशदान, अनुदान, सहायता प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

बजट आवश्यकता आधारित होना चाहिए व इस हेतु “जीरो बेस बजटिंग” (शून्य आधारित बजट) प्रक्रिया को अपनाना चाहिए न कि पिछले आय व्ययक अनुमान पर कुछ प्रतिशत बढ़ोतरी या घटोतरी करें। अगले वित्तीय वर्ष का बजट वर्तमान वित्तीय वर्ष के अन्तिम माह अर्थात् मार्च की 15 तारीख तक बोर्ड द्वारा विचारोपरान्त पारित पारित कर लिया जाना चाहिए। अतः बजट तैयार करने की प्रक्रिया प्रत्येक दशा में अंतिम तिमाही के पूर्वार्द्ध में ही पूर्ण कर ली जानी चाहिए व इस पर बोर्ड बैठक में विस्तृत चर्चा करनी चाहिए जिससे कि नीतिगत निर्णय, प्राथमिकता निर्धारण तथा जनता के

हित में उचित वित्तीय निर्णय लिये जा सकें। चूंकि बोर्ड सभासदों से ही बना है, अतः बजट के माध्यम से सभासदों के बहुमत निर्णय से नीतियों व रणनीतियों का निर्धारण होता है।

21.3.8 नगरीय निकायों में लगाये जाने वाले कर

1. भवनों या भूमि या दोनों के वार्षिक मूल्य पर कर।
2. नगर पालिका की सीमा के अन्तर्गत व्यापार पर कर जिन्हें नगर पालिका की सेवाओं से विशेष लाभ मिलता है।
3. व्यापार, पेशों तथा व्यवसायों पर कर जिसमें सभी रोजगार जिनके लिये वेतन या शुल्क मिलता है वह सम्मिलित हैं।
4. मनोरंजन कर।
5. नगरपालिका के अंदर भाड़े पर चलने वाली गाड़ियों या उसमें रखी गई गाड़ियों पर कर।
6. नगरपालिका के अन्दर रखे कुत्तों पर कर।
7. नगर पालिका के अन्दर रखे सवारी, चालन या बोझे के पशुओं पर कर।
8. व्यक्तियों पर सम्पत्तियों या परिस्थितियों के आधार पर कर।
9. भवनों या भूमि या दोनों के वार्षिक मूल्य पर जल कर।
10. भवन के वार्षिक मूल्य पर उर्तक मूल्य पर उत्प्रवाह कर।
11. सफाई कर।
12. शोचालयों, मूत्रालयों तथा गड्ढों से उत्प्रवाह तथा प्रदूषित जल के एकत्रीकरण, हटाने तथा खात्मा करने के लिए कर।
13. नगर पालिका की सीमा के अन्तर्गत स्थित सम्पत्ति के हस्तांतरण पर कर।
14. संविधान के अन्तर्गत कोई अन्य कर जो राज्य विधायिका द्वारा राज्य में लागू किया जा सके।

कर का प्रावधान- 3 व 8 के कर एक साथ नहीं लगाए जा सकते हैं। 10 व 12 के कर एक साथ नहीं लगाए जा सकते हैं। 13 के अन्तर्गत नगर पालिका के अन्तर्गत अचल सम्पत्ति के हस्तांतरण पर कर

नहीं लगाया जा सकता है। (यदि वह सम्पत्ति नजूल की हो) 5 का कर मोटर गाड़ी, पर नहीं लगाया जा सकता है।

21.3.9 मूल्यांकन, छूट एवम वसूली

भवन या भूमि दोनों पर कर लगाने के लिए नगर निकाय एक मूल्यांकन सूची तैयार कर एक सार्वजनिक स्थल पर प्रदर्शित कर सकते हैं ताकि जिन लोगों को आपत्ति हो वह एक महीने के अन्दर दाखिला कर सकें। जब आपत्तियों का निवारण हो जाता है तब मूल्यांकन सूची को प्रमाणित किया जाता है। प्रमाणित मूल्यांकन सूची नगर निकाय कार्यालय में जमा कर दी जाती है तथा उसे जनता द्वारा निरीक्षण के लिये खुला घोषित कर दिया जाता है। सामान्यतः नई मूल्यांकन सूची पाँच वर्ष में एक बार तैयार की जाती है। नगर निकाय किसी समय मूल्यांकन सूची को बदल सकते हैं या उसमें संशोधन कर सकते हैं। यदि कोई भवन या भूमि वर्ष में 90 या अधिक दिनों तक लगातार खाली रहती है तो नगर पालिका उस अवधि में कर छूट देती है। उस भवन या भूमि के पुनः कब्जे के लिए उस सम्पत्ति के मालिक को 15 दिनों के अंदर नगरपालिका को सूचना देनी होती है। अगर कोई ऐसा नहीं करता तो वह दंड का भागी होता है। दण्ड की राशि वास्तविक कर की दुगुनी राशि से दस गुना राशि से भी अधिक हो सकती है।

नगर पालिका करों से संबंधित अपीलें नगर पालिका कार्यालय में दायर की जा सकती है। साथ ही साथ इसकी एक प्रति जिलाधिकारी के यहाँ भी जाती है। सामान्यतः किसी भी अवधि के लिए देय कर या शुल्क का भुगतान उसकी अवधि के शुरू होने से पूर्व करना होता है। जब व्यक्ति कर का भुगतान समय पर नहीं करता तो उसके विरुद्ध नगरपालिका द्वारा वारंट जारी हो जाता है। ऐसे व्यक्ति के अहाते से सम्पत्ति को जब्त कर उसे नीलामी द्वारा बेचा जा सकता तथा बकायों की वसूली की जा सकती है। जब कोई व्यक्ति किसी कर का बकायेदार हो तो नगरपालिका कलेक्टर से प्रार्थना कर सकती है कि वह ऐसे धन को भू-राजस्व की भाँति वसूल करें, जिसमें कार्यवाही का खर्च शामिल नहीं होगा। कलेक्टर जब बकाया धन से संतुष्ट हो जाता है तो उसे वसूल करने की कार्यवाही करता है।

21.3.10 नगर-निकायों में वार्ड कमेटियाँ

स्थानीय लोग स्थानीय विकास में भागीदारी निभा सकें इसलिए संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम के अन्तर्गत स्थानीय नगरीय सरकार के लिए शक्तियों एवं सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया गया है। संशोधन के माध्यम से विकेन्द्रीकरण के द्वारा ऐसे संस्थागत ढाँचे का निर्माण करने का प्रयास किया गया जिससे सभी स्तर के लोग स्थानीय विकास में भागीदारी निभा सकें। नगरीय निकायों के इस ढाँचे को हम स्थानीय स्वशासन की दो स्तरों पर की गई व्यवस्था के रूप में जानते हैं।

पहला स्तर नगर निकाय स्तर पर चयनित सरकार है जिसमें स्थानीय लोग प्रतिनिधि के रूप में चुनकर आते हैं जो स्थानीय समस्याओं की बेहतर समझ के साथ स्थानीय विकास के लिए प्रयास करते हैं। दूसरे स्तर पर वार्ड कमेटियों के गठन का प्रावधान है जिससे कि वार्ड के स्तर पर भी लोग विकास के लिए नियोजन से लेकर निर्णय लेने की प्रक्रिया एवं विकास कार्यों के क्रियान्वयन में अपनी भागीदारी निभा सकें।

74वें संविधान संशोधन की धारा 243(1) के अनुसार यह व्यवस्था केवल उन शहरों में लागू होती है जिनकी जनसंख्या तीन लाख या उससे अधिक हो। जिन शहरों की जनसंख्या तीन लाख है या उससे कम है, वहाँ पर राज्य सरकार अन्य समितियों को गठित करने को स्वतंत्र है। वार्ड कमेटियाँ पाँच या उनसे अधिक वार्डों से मिलकर बनती हैं, जिसमें एक अध्यक्ष तथा जितने भी वार्ड उस कमिटी में हैं, के चयनित प्रतिनिधि/सदस्य उसके होते हैं।

नगरीय स्थानीय स्वशासन के तीन व्यक्ति जो इससे संबंधी मुद्दों/समस्याओं के बारे में विशेष ज्ञान रखते हों उसके वार्ड के नामित सदस्य होते हैं। उन्हीं में से किसी एक व्यक्ति का चुनाव एक वर्ष के लिए अध्यक्ष के पद के लिए होता है। जो यदि चाहे तो दुबारा अध्यक्ष पद के लिए चुनाव लड़ सकता है।

वार्ड कमिटी का कार्यकाल उक्त नगर निकाय की अवधि के साथ समाप्त होता है।

संविधान के 74वें संशोधन के अनुसार वार्ड कमेटियों का व्यवहारिक रूप में वह स्वरूप नहीं बन पा रहा है जिसकी कल्पना की गई थी। एक सशक्त वार्ड कमिटी की भूमिकाओं में वार्ड/वार्डों की समस्याओं की पहचान कर उनकी प्राथमिकताएं तय करना, नगर निकायों के द्वारा कराये जा रहे कार्यों का निरीक्षण, नियोजन एवं विकासात्मक गतिविधियों का संचालन, वार्षिक आम सभा का आयोजन, म्यूनिसीपल वार्ड की जवाबदेही एवं इनके कार्यों में पारदर्शिता इत्यादि हो सकती है।

21.3.11 नगर-निकायों से संबंधित विषय

12वीं अनुसूची (अनुच्छेद, 243-ब)

नगर निकायों के कृत्यों से सम्बन्धित विषयों का उल्लेख संविधान की 12वीं अनुसूची में किया गया है जो निम्नवत है-

1. नगर के नियोजन सहित शहरी नियोजन।
2. भू-उपयोग का विनियम और भवन-निर्माण

3. आर्थिक व सामाजिक उन्नयन को ध्येय से नियोजना।
4. सड़क एवं पुल।
5. घरेलू उपयोग व औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए जलापूर्ति।
6. जन स्वास्थ्य, स्वच्छता, जल-प्रबन्धन एवं कूड़ा-कचरा निस्तारण।
7. अग्निशमन सेवाएं।
8. परिस्थितिकीय एवं पर्यावरण संरक्षण के ध्येय से शहरी वनीकरण।
9. शारिरिक व मानसिक विकलांगों सहित समाज के कमजोर वर्गों का हित संरक्षण।
10. मलिन बस्ती सुधार एवं उन्नयन।
11. शहरी गरीबी निवारण।
12. नागरिक जन-सुविधाओं जैसे पार्क, उद्यान, और क्रीडा मैदानों की व्यवस्था करना।
13. सांस्कृतिक, शैक्षणिक व सौंदर्यपूर्ण विकास।
14. शव-गृह, कब्रिस्तान और विद्युत शव-दाह-गृह।
15. पशुओं के लिए पीने के पानी के तालाब और पशुओं के प्रति क्रूरता की रोकथाम।
16. जन्म-मृत्यु के आंकड़ों सहित महत्वपूर्ण सांख्यिकी की सूचना।
17. गलियों, पार्किंग स्थल और स्टार्पो के पथ-प्रकाश(लाईट) की सुविधाओं की व्यवस्था और जल-प्रबन्धन।
18. पशु वधशालाओं और चर्मशोधनालाओं का विनियमन; ।

21.3.12 नगर-निकायों के कार्य एवं शक्तियाँ

प्रत्येक नगर निकाय का यह कर्तव्य होगा कि वह अपने क्षेत्र के भीतर निम्नलिखित व्यवस्था करे-

1. सार्वजनिक सड़कों और स्थानों पर पीने का पानी।
2. सार्वजनिक सड़कों और स्थानों पर रोशनी।

- 3.नगरपालिका की सीमा का सर्वेक्षण करना और सीमा चिन्ह लगाना।
- 4.सार्वजनिक सड़कों, स्थानों और नालियों की सफाई करना, हानिकारक वनस्पति को हटाना।
- 5.संतापकारी, खतरनाक या आपत्तिजनक, व्यापार, आजीविका या प्रथा का विनियमन करना।
- 6.आवारा व खतरनाक पशुओं को परिरूद्ध कराना, हटाना या नष्ट करना।
- 7.लोक सुरक्षा, स्वास्थ्य या सुविधा के आधार पर सड़कों या सार्वजनिक स्थानों में अवांछनीय और अवरोध प्रक्षेप हटाना।
- 8.खतरनाक भवनों या स्थानों को सुरक्षित बनाना या हटाना।
- 9.मृतकों के निस्तारण के लिये स्थान अर्जित, अनुरक्षित, परिवर्तित और विनियमित करना।
- 10.सार्वजनिक सड़कों, पुलियों, बाजारों व वधशालाओं, शोचालयों, संडासों, मुत्रालयों, नालियों, जलोत्सारण, निर्माणकार्यों तथा सीवर व्यवस्था सम्बन्धी निर्माण कार्यों का निर्माण, परिवर्तन और अनुरक्षण करना।
- 11.घरेलू, औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए जलापूर्ति उपलब्ध करना।
- 12.सड़क के किनारे तथा सार्वजनिक स्थानों में वृक्ष लगाना और उनका अनुरक्षण करना।
- 13.ऐसे स्थानों में, जहां वर्तमान जल सम्भरण के अप्रर्याप्त या अस्वास्थ्यप्रद होने से वहां के निवासियों के स्वास्थ्य को संकट हो, शुद्ध और स्वास्थ्यप्रद जल के पर्याप्त सम्भरण की व्यवस्था करना, मनुष्यों के उपयोग के लिए प्रयुक्त होने वाले जल को प्रदूषित होने से बचाना और प्रदूषित जल के ऐसे उपयोग को रोकना।
- 14.जल सम्भरण हेतु सार्वजनिक कुंओं को ठीक हालत में रखना उनके जल को प्रदूषित होने से बचाना तथा उसे मनुष्यों के उपयोग योग्य बनाये रखना,
- 15.जन्म और मृत्यु का पंजीकरण सुनिश्चित करना।
- 16.सार्वजनिक टीका लगाने की प्रणाली की स्थापना तथा उसका अनुरक्षण।
- 17.सार्वजनिक चिकित्सालयों और औषधालयों की स्थापना तथा उनका अनुरक्षण या उनकी सहायता करना और सार्वजनिक चिकित्सा सम्बन्धी सहायता की व्यवस्था करना।

18. प्रसूति केन्द्रों, शिशु कल्याण, और जन्म नियंत्रण क्लीनिकों की स्थापना, अनुरक्षण और सहायता करना और जनसंख्या नियन्त्रण, परिवार कल्याण और छोटे परिवार के मानकों को प्रोत्साहित करना।
19. पशु चिकित्सालयों का अनुरक्षण करना या अनुरक्षण हेतु उन्हें सहायता देना।
20. प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना और उनका अनुरक्षण करना।
21. आग बुझाने में सहायता देना और आग लगने पर जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा करना।
22. नगरपालिका में निहित या उसके प्रबंधन में सौंपी गई सम्पत्ति की सुरक्षा करना, उसका अनुरक्षण तथा विकास करना।
23. शासकीय पत्रों पर तत्काल ध्यान देना और ऐसे विवरण और रिपोर्ट तैयार करना जिन्हें राज्य सरकार नगर पालिका से प्रस्तुत करने की अपेक्षा करे,
24. विधि द्वारा उस पर अधिरोपित किसी बाध्यता की पूर्ति करना।
25. चर्म-शोधनशालाओं को निनियमित करना।
26. पार्किंग स्थल, बस स्टाप और जन सुविधाओं का निर्माण और अनुरक्षण करना।
27. नगरीय वानिकी और परिस्थितिकी पहलुओं की अभिवृद्धि और पर्यावरण का संरक्षण करना।
28. समाज के दुर्बल वर्गों के जिनके अन्तर्गत विकलांग और मानसिक रूप से मन्द व्यक्ति हैं हितों का संरक्षण करना।
29. सांस्कृतिक, शैक्षणिक और सौन्दर्यपरक पहलुओं की अभिवृद्धि करना।
30. कांजी हाउस का निर्माण और अनुरक्षण करना और पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण करना।
31. मलिन बस्ती सुधार और उन्नयन।
32. नगरीय निर्धनता कम करना व नगरीय सुख-सुविधाओं, जैसे पार्क, उद्यान और खेल के मैदानों की व्यवस्था करना।

स्वैच्छिक कार्य

उपरोक्त बाध्यकारी कर्तव्यों के अतिरिक्त संविधान में कुछ ऐसे कर्तव्यों का भी उल्लेख है जो बाध्यकारी न होकर स्व-विवेकानुसार की श्रेणी में निम्नवत हैं-

1. उन क्षेत्रों में, जिनमें चाहे पहले निर्माण किया गया हो या नहीं, नवीन सार्वजनिक सड़कों का विन्यास और इस प्रयोजन के लिए भूमि अर्जित करना।
2. मास्टर-प्लान तैयार करना और उसे निष्पादित करना।
3. पुस्तकालय, संग्रहालय, वाचनालय, रेडियो संग्राहों केन्द्रों, कुष्ठाश्रम, अनाथालय, शिशु सदन और महिला उद्धार गृह, पागलखाना हाल, कार्यालय, धर्मशाला, विश्राम-गृह, दुग्धशाला, स्नानगार, स्नानघाट, धोबियों के धुलाई-स्थल, पीने के पानी का स्रोत (ड्रिंकिंग फाउन्टेन), तालाब, कुआं, तथा अन्य लोकोपयोगी निर्माण कार्यों का निर्माण, उनकी स्थापना तथा उनका अनुरक्षण में अंशदान देना।
4. प्राथमिक स्कूलों की स्थापना और उनके अनुरक्षण से भिन्न उपायों द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों का प्रसार करना।
5. जनगणना करना और ऐसी सूचना के लिये इनाम देना, जिससे जन्म-मृत्यु के आंकड़ों का सही रजिस्ट्रीकरण सुनिश्चित हो सके।
6. ऐसी सूचना के लिये इनाम देना जिससे इस अधिनियम के आधीन आरोपित कर के अपवर्चन का या नगर निकाय में निहित या उसके प्रबन्ध या नियन्त्रण में सौंपी गई सम्पत्ति को हानि पहुंचाने या उस पर अतिक्रमण करने का पता लगे।
7. स्थानीय विपत्ति पड़ने पर, सहायता कार्यों की स्थापना और उनका अनुरक्षण करके या अन्य प्रकार से सहायता करना।
8. धारा-298 के शीर्षक छः के उपशीर्षक (क) के आधीन उल्लिखित किसी व्यापार या निर्माण के कार्यान्वयन के लिये उपयुक्त स्थान प्राप्त करना या प्राप्त करने में सहायता देना।
9. सीवेज के निस्तारण के लिये फार्म या कारखाना स्थापित करना और उसका अनुरक्षण करना।
10. कूड़ा-करकट की कम्पोस्ट खाद तैयार करने के लिए प्रबन्ध करना।
11. पर्यटक यातायात की अभिवृद्धि करना।
12. मेले और प्रदर्शिनियां लगाना।

13. गृह और नगर नियोजन योजनाएं तैयार करना और उनका निष्पादन।
14. व्यापार और उद्योग की अभिवृद्धि के लिये उपाय करना।
15. अपने कर्मचारियों के लिये श्रम कल्याण केन्द्र स्थापित करना और ऐसे कर्मचारियों के किसी ऐसोशियेशन संघ या क्लब की सामान्य उन्नति के लिए अनुदान अथवा ऋण देकर उसके कार्याकलापों में सहायता देना।
16. नगर पालिका संघों को संगठित करना और उन्हें अंशदान देना।
17. धारा-7 में या इस धारा के पूर्वगामी उपबन्धों में निर्दिष्ट उपायों से भिन्न ऐसे उपाय करना, जिनसे लोक सुरक्षा, स्वास्थ्य या सुविधा में अभिवृद्धि होने की सम्भावना हो।
18. शिक्षा-वृत्ति पर नियंत्रण के लिये उपाय करना।
19. कोई ऐसा कार्य करना जिसके सम्बन्ध में व्यय राज्य सरकार द्वारा या नगरपालिका द्वारा विहित प्राधिकारी की स्वीकृति से, नगर पालिका निधि पर समुचित प्रभार घोषित किया जाए।

अभ्यास प्रश्न-2

1. 74वें संविधान संशोधन में 12वीं अनुसूची के अन्तर्गत शहरी स्थानीय निकायों को दिये गये हैं।.....
2. नगर निकायों के कार्यों से संबंधित विषयों का वर्णन संविधान की 12वीं अनुसूची में किया गया है। सहीगलत/

21.4 सारांश

सरकार के 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से पुनः नगरीय क्षेत्रों में स्थानीय लोगों को निर्णय लेने के स्तर पर सक्रिय व प्रभावशाली सहभागिता बनाने का प्रयास किया गया है। संविधान का 74वां संशोधन में नगर निकायों - नगर पालिका, नगर निगम और नगर पंचायतों में शहरी लोगों की भागीदारी बढ़ाने में मदद की है। इस संशोधन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अब शहरों, नगरों, मोहल्लों की भलाई उनके हित व विकास संबंधी मुद्दों पर निर्णय लेने का अधिकार केवल सरकार के हाथ में नहीं है। अब नगरों व शहर के ऐसे लोग जो शहरी मुद्दों की स्पष्ट सोच रखते हैं व नगरों, कस्बों व उनमें निवास करने वाले लोगों की नागरिक सुविधाओं के प्रति संवेदनशील हैं, निर्णय लेने की स्थिति

में आगे आ गये हैं। महिलाओं व पिछड़े वर्गों के लिए विशेष आरक्षण व्यवस्था ने हमेशा से पीछे रहे व हाशिये पर खड़े लोगों को भी बराबरी पर खड़े होने व निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने का अवसर दिया है। 74वें संशोधन ने सरकार (लोगों का शासन) के माध्यम से आम लोगों की सहभागिता स्थानीय स्वशासन में सुनिश्चित की है। हर प्रकार के महत्वपूर्ण निर्णयों में स्थानीय लोगों को सम्मिलित करने से निर्णय प्रक्रिया प्रभावी, पारदर्शी व समुदाय के प्रति संवेदनशील हो जाती है।

21.5 शब्दावली

विकेन्द्रीकरण- एक केन्द्र में न रहना, विस्तारित होना

संक्रमणशील- ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तित होने वाले क्षेत्र

गणपूर्ति- किसी भी कार्यवाही की पूर्ति हेतु उपस्थित अनिवार्य सदस्यों की संख्या

कांजी हाऊस- जहाँ आवारा पशुओं को पकड़ कर रखा जाता है

21.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

1. नगर निकाय 2. सही 3. ख 4. सही 5. ख

अभ्यास प्रश्न- 2

1. 18 कार्य/उत्तर दायित्व 2. सही

21.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हार्क नगरीय स्वशासन प्रशिक्षण मार्गदर्शिका।

2. चौहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियम।

3. कुछ आम सवाल - नगरीय स्वशासन, यहाँ मिलेंगे उनके जवाब, 2005, संसर्ग पटना एवं प्रिया नई दिल्ली।

21.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत में पंचायती राज- के. के. शर्मा

2. रोल ऑफ पंचायत इन वैलफेयर स्टेट- अब्राहम मैथ्यू
3. भारत में स्थानीय शासन- एस0 आर0 माहेश्वरी
4. पंचायती राज में प्रमाण पत्र- डॉ0 घनश्याम जोशी एवं डॉ0 छाया कुंवर(उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल)
5. भारतीय प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी

21.9 निबन्धात्मक प्रश्न

- 1.नगर निकायों के गठन एवं संरचना को स्पष्ट करें।
- 2.नगर पालिका की बैठकें व उनकी कार्यवाहियों को स्पष्ट करें।
- 3.नगर निकायों के वित्तीय प्रबन्ध को विस्तार से बतलाइये।
- 4.नगर निकायों से संबंधित विषय बतलाइये।
- 5.नगर निकायों की कार्य एवं शक्तियां एवं स्वैच्छिक कार्य बताएं

इकाई 22 : स्वतन्त्रता पश्चात् जिला प्रशासन, जिलाधिकारी

इकाई की संरचना

- 22.1 प्रस्तावना
- 22.2 उद्देश्य
- 22.3 स्वतन्त्रता पश्चात् जिला प्रशासन
- 22.4 जिलाधिकारी के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व
 - 22.4.1 समन्वयक कार्य
 - 22.4.2 राजस्व एवं आबकारी कार्य
 - 22.4.3 पुलिस कार्य
 - 22.4.4 दंडाधिकारी के कार्य
 - 22.4.5 चुनाव कार्य
 - 22.4.6 विकास कार्य
 - 22.4.7 आपदा प्रबंधन संबंधी कार्य
 - 22.4.8 जनगणना संबंधी कार्य
 - 22.4.9 जिलाधिकारी की बदलती भूमिका
- 22.5 सारांश
- 22.6 शब्दावली
- 22.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 22.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 22.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 22.10 निबंधात्मक प्रश्न

22.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई में हमने यह अध्ययन किया कि सत्ता विकेन्द्रीकरण की दिशा में संविधान के 74वें संशोधन एक महत्वपूर्ण और निर्णायक कदम हैं। 74वां संविधान संशोधन नगर निकायों में सत्ता विकेन्द्रीकरण का एक मजबूत आधार है। अतः इकाई २१ के अध्ययन का उद्देश्य 74वें संविधान संशोधन की आवश्यकता और 74वें संविधान संशोधन में मौजूद उपबंधों और नियमों को स्पष्ट करना है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र के रूप में जाना जाता है। इस लोक तंत्र का सबसे रोचक महत्वपूर्ण पक्ष है सत्ता व शक्तियों का विकेन्द्रीकरण।

प्रस्तुत इकाई २२ में हम स्वतंत्रता के पश्चात जिला प्रशासन और जिलाधिकारी के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे। जिसमें हम यह देखेंगे कि किस प्रकार से लोकतंत्र को अपनाने के कारण, स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप और लक्ष्य में किस प्रकार से परिवर्तन आये हैं। वही जिला प्रशासन और जिलाधिकारी जो स्वतंत्रतापूर्व जनता को दबाकार कार्य करते थे, जो सभी प्रकार की जबाबदेही से मुक्त थे, परन्तु स्वतंत्रता उपरांत अब प्रशासन जनता के दबाव में काम करता है जो अपने सभी कार्यों के लिए जनता के उत्तरदाई है क्योंकि वर्तमान समय में हमारे देश में लोकतंत्र प्रचलित है जिसमें अंतिम सत्ता जनता में ही निहित होती है। इसलिए जिलाधिकारी के कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों में अभूतपूर्व परिवर्तन दिखाई दे रहा है, इन सभी पक्षों का अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे।

22.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से हम

1. यह जान सकेंगे कि स्वतंत्रता पूर्व जिला प्रशासन का स्वरूप क्या था
2. यह जान सकेंगे कि स्वतंत्रता के पश्चात जिला प्रशासन के स्वरूप में किस प्रकार का परिवर्तन आया है
3. यह जान सकेंगे कि स्वतंत्रता के पश्चात जिलाधिकारी के कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों में किस प्रकार का परिवर्तन आया है
4. यह जान सकेंगे कि स्वतंत्रता के पश्चात जिलाधिकारी और जिला प्रशासन किस प्रकार जनता के दबाव में जनता के लिए कार्य करते हैं

22.3 स्वतन्त्रता पश्चात् जिला प्रशासन

हमारे देश में प्रशासनिक सुविधा के लिए संघात्मक शासन प्रणाली की स्थापना की गई है। क्योंकि किसी भी बहुत बड़े क्षेत्र को प्रत्यक्ष रूप से संचालित करना आसान नहीं होता है। इसलिए भारतीय प्रशासन को सुचारू संचालन हेतु, प्रदेश को जिला में विभाजित किया गया है। जहाँ से सभी प्रशासनिक दायित्वों का निर्वहन किया जाता है। इस प्रकार जिला क्षेत्रीय प्रशासन का आधार है जिस पर भारतीय प्रशासन का सम्पूर्ण ढांचा खड़ा है।

स्वतन्त्रता पूर्व देश का प्रशासन अंग्रेजों द्वारा संचालित किया जाता था। यह सर्वविदित है कि अंग्रेजों का उद्देश्य भारतीय जनमानस को सशक्त और सक्षम बनाना नहीं था, वरन उनका प्रमुख उद्देश्य अपना हित साधना था, उनके इस हित साधन की प्रक्रिया में प्रशासन का मुख्य कार्य नियामकीय था जिसमें निषेधात्मक कार्य ही संचालित किए जाते थे न कि सकारात्मक कार्य। इन नियामकीय कार्यों में कानून और व्यवस्था बनाए रखना प्रमुख था। परन्तु स्वतन्त्रता के उपरान्त शासन के स्वरूप में परिवर्तन आया है। हमने संसदीय लोकतन्त्र को अपनाया, जिसमें सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। और उसका अस्तित्व विधायिका के निम्न सदन (केन्द्र में लोकसभा, राज्य में विधानसभा) जिसे जनप्रतिनिधि सदन भी कहते हैं, के बहुमत के समर्थन पर निर्भर करता है। इस कारण से जिला प्रशासन के स्वरूप में भी परिवर्तन आया है क्योंकि, राष्ट्रीय स्तर पर, या राज्य स्तर पर बनाई गई कोई भी नीति हो, उसका क्रियान्वयन, जिला प्रशासन के स्तर पर ही होता है। भारतीय संविधान के द्वारा कल्याणकारी राज्य की स्थापना को लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया है। इसलिए स्पष्ट है कि भारतीय प्रशासन के स्वरूप में जिला प्रशासन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि भारतीय प्रशासन में जिला प्रशासन महत्वपूर्ण है तो, जिला प्रशासन में जिलाधिकारी का पद उसकी भूमिका महत्वपूर्ण है क्योंकि, वह जिला प्रशासन का मुखिया होता है। इसलिए इस इकाई में हम जिलाधिकारी के पद और उसकी भूमिका का अध्ययन करेंगे।

22.4 जिलाधिकारी के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व

जैसा कि हम इस इकाई के प्रारम्भ में देख चुके हैं कि भारतीय प्रशासन में जिलाधिकारी का पद अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि देश के सभी नीतियों का वास्तविक रूप से क्रियान्वयन जिला प्रशासन के स्तर पर ही जिलाधिकारी की देख रेख में ही संचालित किए जाते हैं। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि स्वतन्त्रता के पूर्व जिलाधिकारी के अधिकार और शक्तियाँ ज्यादा थीं, जबकि उनकी जिम्मेदारी कम होती है क्योंकि ब्रिटिशकाल में प्रशासन के लक्ष्य बहुत ही सीमित और नियामकीय प्रकृति के थे जिसका प्रमुख उद्देश्य कानून और व्यवस्था की स्थापना करना था। जबकि स्वतन्त्रता के उपरान्त प्रशासन के लक्ष्य में परिवर्तन आया है। जब लक्ष्य में परिवर्तन का

कारण, शासन के संगठन में परिवर्तन है। अब देश में कोई विदेशी सरकार कार्य नहीं कर रही है। वरन अब ऐसी सरकार कार्य कर रही है जो जनता द्वारा निर्वाचित है और जनता के हित के लिए कार्य कर रही है। इस प्रकार अब सरकार जनता के दबाव में कार्य कर रही है। ऐसी बदली हुई परिस्थिति में प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन आना स्वाभाविक है।

अब जिलाधिकारी के अधिकार में कमी आई है और दायित्वों में वृद्धि हुई है। और जो अधिकार है भी, वे अंग्रेजी शासन के समान जनता को दबाव में रखकर कार्य करने हेतु नहीं वरन वे लोकतन्त्र की भावना के अनुरूप शासन की नीतियों को जनता के हित में क्रियान्वयन करने के लिए है।

चूंकि जिले में जिलाधिकारी शासन का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए सामान्य दिनों में जनकल्याणकारी नीतियों और कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक लागू करने से लेकर आकस्मिक रूप से उत्पन्न संकटकालीन स्थितियों का समाधान कर शान्तिपूर्ण सामाजिक वातावरण तैयार करने की चुनौतिपूर्ण जिम्मेदारी का निर्वहन अपने सूझ-बूझ से करता है।

उपर के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि जिलाधिकारी को अनेकानेक चुनौतिपूर्ण दायित्वों का निर्वहन करना होता है, वे इस प्रकार है-

22.4.1 समन्वयक कार्य

जैसा कि हम उपर देख चुके हैं कि जिलाधिकारी जिलों का प्रशासनिक मुखिया होता है। जो प्रमुख समन्वयक के रूप में कार्य करता है। समन्वयक के रूप में जिलाधिकारी जिले की विभिन्न समन्वय समितियों की बैठकें आहूत करता है, उन समितियों का अध्यक्ष भी वहीं होता है। जिले में जिलाधिकारी संयुक्त परिवार के मुखिया की तरह कार्य करता है, जिसमें वह जिले के विभिन्न विभागोंके कार्यों पर निगरानी रखता है और आवश्यकतानुसार उन्हें निर्देश देता है, जिससे वे सुगमता पूर्वक अपने विभाग से सम्बन्धित दायित्वों का निर्वहन कर सकें। फलस्वरूप जिला प्रशासन के सफलतापूर्वक अपने दायित्वों के निर्वहन से लोकतन्त्र में हमारे संविधान द्वारा निर्दिष्ट लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

22.4.2 राजस्व एवं आबकारी कार्य

जिलाधिकारी अपने दायित्वों के निर्वहन में सर्वप्रथम राजस्व अधिकारी के रूप में ही कार्य करता है। भू-राजस्व के संग्रह के साथ ही साथ आबकारी संग्रह हेतु जिलाधिकारी के पास अधिकारियों की लंबी फौज होती है जिनकी सहायता से वह अपने दायित्वों का निर्वहन करता है। जिनमें उपजिलाधिकारी, तहसीलदार, नायब तहसीलदार, कानूनगो, पटवारी आदि होते हैं। वह विभिन्न विभागों में बकाया की वसूली के लिए भी जिम्मेदार होता है। बकायों में भू-राजस्व बकाया, सिंचाई बकाया आदि। जिलाधिकारी राजस्व संग्रह के लिए मुख्य प्रेरक के रूप में कार्य करता है। वह कृषि

ऋण आवंटन पर निगरानी रखता है और आपदा, अकाल आदि संकटकालीन स्थितियों में ऋण वसूली के स्थगन का आदेश भी जारी करता है।

22.4.3 पुलिस कार्य

सामान्यतया हमें यह दिखाई देता है कि पुलिस प्रशासन एक स्वतंत्र विभाग के रूप में कार्य करता है। परंतु ऐसा नहीं है क्योंकि जिलाधिकारी जिला प्रशासन के समन्वयक के रूप में विभिन्न विभागों की निगरानी और नियंत्रण करता है, जिसमें पुलिस भी शामिल है। पुलिस अधिनियम की धारा-4 में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि जिलाधिकारी को पुलिस पर नियंत्रण और उसे निर्देश देने का अधिकारी प्राप्त है।

राष्ट्रीय सुरक्षा कानून-रासुका, धारा-144 का प्रयोग जिलाधिकारी करता है। आपातकालीन स्थितियों में उसे सेना तक को बुलाने का अधिकार प्राप्त है। वन्य जीव संरक्षण हेतु वन पुलिस और अग्निकांड से निजात पाने हेतु अग्निशमन दल को निर्देशित करता है कि वे आवश्यक कार्यवाही कर समस्या का निराकरण करें। इस प्रकार से स्पष्ट है कि जिले का कोई भी विभाग और उस विभाग का कोई भी मुखिया हो किंतु आवश्यकता महसूस होने पर जिलाधिकारी सभी को निर्देश दे सकता है क्योंकि जिला प्रशासन की सफलता और असफलता के लिए अंतिम रूप से वही उत्तरदायी होती है।

22.4.4 दंडाधिकारी के कार्य

जिलाधिकारी को जिले के कानून और व्यवस्था को बनाए रखने की जिम्मेदारी होती है। इसके साथ-साथ दंडाधिकारी के रूप में प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट की शक्तियां प्राप्त हैं। जिले में अस्त्र-शस्त्र के लाइसेंस उसके द्वारा ही प्रदान किए जाते हैं। लाइसेंस जारी करना भी इनके अधिकार क्षेत्र में आता है। अपराध नियंत्रण के लिए भी अंतिम रूप से जिम्मेदारी इन्हीं की होती है क्योंकि वह जिला प्रशासन का मुखिया होता है।

22.4.5 चुनाव कार्य

जैसा कि हम जानते हैं कि हमारे देश में संसदीय लोकतंत्र को अपनाया गया है। यह प्रणाली संघ और राज्य दोनों स्तरों पर अपनाई गई है। इसलिए संसद और विधानमंडल के चुनाव के सुचारु रूप से संचालित करने का जिम्मा इन पर होता है। ये ही नहीं हमारे देश में त्रि-स्तरीय पंचायती व्यवस्था को भी लागू किया गया है। इसलिए इन सभी के चुनाव के सुचारु संचालन की जिम्मेदारी भी इन्हीं की होती है। जिलाधिकारी अपने इस दायित्वों का निर्वहन जिला निर्वाचन अधिकारी की सहायता से करते हैं। चुनाव के पश्चात विजयी प्रत्याशियों को प्रमाण पत्र भी जिलाधिकारी के द्वारा ही दिया जाता है।

22.4.6 विकास कार्य

जैसा कि हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि स्वतंत्रता के पश्चात सरकार की प्राथमिकताएं बदल गई हैं। चूंकि लोकतंत्र जनता के प्रति उत्तरदायी शासन है जो कि जनता की भलाई के लिए विभिन्न विकास योजनाओं को चलाता है और जिनका क्रियान्वयन जिला स्तर पर ही होता है। जिलाधिकारी जिला प्रशासन का मुख्य अधिकारी होता है इसलिए वह विकास अधिकारी के रूप में इन विकास योजनाओं के सफल क्रियान्वयन को सुनिश्चित करता है। इसके साथ ही साथ जिला समाज कल्याण अधिकारी से परामर्श कर कल्याणकारी योजनाओं को लागू करता है। पंचायतीराज व्यवस्था में भी जिलाधिकारी महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि जिला पंचायत में वह पदेन सदस्य होता है।

22.4.7 आपदा प्रबंधन संबंधी कार्य

आपदा दो प्रकार के होते हैं। 1- प्राकृतिक आपदा 2- मानवजनित आपदा

प्राकृतिक आपदाओं में बाढ़, भूकंप, महामारी, अकाल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि के समय घायलों का उपचार विस्थापितों के आवास एवं भोजन की व्यवस्था तथा उनको पुनःस्थापित करने का कार्य महत्वपूर्ण है।

22.4.8 जनगणना संबंधी कार्य

जैसा कि हम जानते हैं कि प्रत्येक दस वर्ष के अंतराल पर जनगणना होती है। इस जनगणना कार्य को संपन्न कराने की जिम्मेदारी जिलाधिकारी की होती है। इस कार्य का संपादन वह जिला जनगणना अधिकारी की सहायता से करता है। जनगणना उपरांत इसकी सूचना केन्द्रीय सांख्यिकीय विभाग को देता है।

22.4.9 जिलाधिकारी की बदलती भूमिका

इसमें हम यह सर्वप्रथम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि जिलाधिकारी की बदलती भूमिका का अध्ययन करने के लिए हमें यह भी देखना होगा कि स्वतंत्रता पूर्व प्रशासन किस प्रकार से कार्य करता था और आजादी के बाद किस प्रकार से। साथ ही यह भी देखना होगा कि स्वतंत्रता के बाद समय-समय पर प्रशासन के पुनर्गठन के कारण और नित्य नवीन चुनौतियों के परिप्रेक्ष्य में किस प्रकार से जिलाधिकारी की भूमिका में किस रूप में परिवर्तन आए हैं और वर्तमान में उनका स्वरूप क्या है।

यहां हम बताते चलें जिसकी चर्चा हम पूर्व में कर चुके हैं कि आजादी से पूर्व प्रशासन जनता के हित में लिए उनकी भलाई के लिए कार्य नहीं करता था। क्योंकि उस वक्त यहां पर लोकतंत्र नहीं था वरन अंग्रेजी शासन था जो अपने हित के लिए कार्य कर रहा था। इसलिए उस समय आम जनता के कोई अधिकार नहीं थे वरन केवल दायित्व थे। इसलिए प्रशासन का कार्य नियामकीय प्रकृति का था।

जिसका प्रमुख उद्देश्य कानून और व्यवस्था बनाए रखना था। जिससे अंग्रेजी शासन को अपने हित की सिद्धि में किसी प्रकार के अवरोध का सामना न करना पड़े।

किन्तु स्वतन्त्रता के बाद लोकतन्त्र में प्रशासन कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को साकार करने के लिए काम करने लगा! प्रशासन अब जनता पर दबाव बनाकर अपने हित के लिए कार्य नहीं कर रहा है वरन् वह अब जनता के दबाव में, जनता के हित के लिए कार्य कर रहा है! प्रशासन की स्थिति में अब परिवर्तन हो गया है! अब वह स्वामी की स्थिति में न होकर जनता के सेवक के रूप में कार्य कर रही है!

इसलिए अब सभी नीतियाँ जनता के हित को ध्यान में रखकर निर्मित हो रही हैं और उनका क्रियावमन हो रहा है! इन नीतियों का क्रियान्वयन जिला प्रशासन के स्तर पर ही हो रहा है, जिसका प्रमुख जिलाधिकारी होता है! इसलिए जिलाधिकारी की स्थिति बहुत ही महत्वपूर्ण हो गयी है!

परन्तु समय के साथ कार्यभार की वृद्धि के कारण जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के गठन के फलस्वरूप अब विकास कार्यों से, औपचारिक रूप से काफी हद तक जिलाधिकारी अलग हो गया है! किन्तु यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि जैसा कि हम पूर्व में बता चुके हैं कि जिलाधिकारी जिला प्रशासन में समन्वयक की भूमिका में होता है और जिले प्रशासन की सफलता और असफलता के लिए अन्तिम रूप से वहीं जिम्मेदार होता है इस विकास कार्यों पर वह निगरानी रखता है।

भारतीय संविधान में 73 वें संवैधानिक संशोधन द्वारा पंचायती राज व्यवस्था का उपबंध किया गया और उसे लागू किया गया साथ ही 74 वें संवैधानिक संशोधन नगरीय स्थानीय स्वशासन का उपबंध कर उसे लागू किया गया, जिसके लिए क्रमशः अनुसूची 11 और 12 को भारतीय संविधान में शामिल किया गया। इसलिए पंचायतीराज और नगरीय निकाय के कार्यों में वृद्धि से जिलाधिकारी के दायित्वों में वृद्धि हुई क्योंकि जिलाधिकारी जिला पंचायत का पदेन सदस्य होता है।

चूँकि बहुत से विभाग अब सीधे शासन से निर्देश प्राप्त करते हैं इसलिए जिलाधिकारी की स्थिति में दिखाई देता है परन्तु तेजी से हो रहे सामाजिक परिवर्तन के दौर में सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक चुनौतियों का निराकरण करने में जिलाधिकारी का व्यक्तित्व उसके पद और भूमिका को और अधिक महत्ता प्रदान कर देता है।

उपरोक्त तथ्यों के बावजूद स्वतन्त्रता के बाद जिलाधिकारी के पद, स्थिति और सत्ता और प्रभाव में गिरावट आई है! क्योंकि लोकतन्त्र को अपनाने के कारण वह अब स्वामी की स्थिति के बजाय सेवक की स्थितियों में है। यद्यपि इसमें परिवर्तन अभी पूरी तरह से नहीं हो पाया है। लोकतान्त्रिक

शासन में मंत्री, अपने विभाग का अध्यक्ष होता है। इसलिए वह जिलाधिकारी पर अपने पंचायती राजव्यवस्था लागू होने, और स्थानीय नेताओं की सक्रियता से भी उस पर दबाव बना रहता है। एक अन्य प्रमुख कारण होता है लगातार हो रहे स्थानान्तरण के कारण भी वह उतना प्रभावशाली तरीके से कार्य नहीं कर पाता है।

22.5 सारांश

अन्ततः हम यह कहना चाहते हैं कि देश की आजादी के 65 वर्ष पूरे हो रहे हैं और हमने बहुत से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चुनौतियों का समाधान भी किया है। सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के नये आयामों को भी हम छू सके हैं। किन्तु यह भी एक सत्य है कि हमें अभी बहुत कुछ करना बाकी है क्योंकि आज भी समाज में हासिये पर शदियों से रहे समुदायों के लिए बहुत कुछ करना बाकी है। जैसे यदि हम उत्तराखण्ड को देखते हैं तो पहाड के सूदूर गांवों में अभी भी बुनियादी सुविधाओं की पहुँच वैसी गुणवत्तापरक नहीं है जिससे कि उनके जीवन में गुणवत्तापरक सुधार या किसी बड़े परिवर्तन संभव हों। इस लिए अभी भी ऐसे वंचित क्षेत्रों और समुदायों के लिए अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है। चूंकि इन तबकों और क्षेत्र के विकास, कल्याण और सशक्तीकरण से संबंधी जो भी नीतियाँ बनेगी, उनके बनने में ही महत्ता नहीं है, वरन् उनका सफलतापूर्वक क्रियान्वयन एक महत्वपूर्ण चुनौती है। चूंकि स्थानीय स्तर पर (जिला स्तर पर) इन नीतियों और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी जिला प्रशासन की होती है। इसलिए इस कार्य में जिला प्रशासन की महत्ता सदैव बनी रहेगी। और जिला प्रशासन का मुखिया होने के नाते जिलाधिकारी का पद और भूमिका उसकी सत्ता और प्रभाव महत्ता को प्राप्त करता रहेगा। उत्तराखण्ड के पर्वतीय जनपदों में तो विशेष रूप से क्योंकि दुर्गम पहाडों पर प्राकृतिक आपदायें आम समस्या बन गई हैं जिनमें वर्षा में बादल फटना, भूस्खलन, शीत ऋतु में अति बर्फबारी के कारण और ग्रीष्म काल में जंगलों भीषण आग आम समस्या के रूप में दिखाई देता है। इसलिए नित्य विकास, कल्याण और सशक्तीकरण संबंधी नीतियों को सफलतापूर्वक लागू करने के साथ-साथ इन आपदाजनित स्थितियों के निराकरण से भी जिलाधिकारी ही अन्तिम रूप से उत्तरदायी होता है। इसलिए उसकी भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण बनी रहेगी। हों आवश्यकता इस बात की है कि वे लोकतन्त्र की भावना के अनुरूप अपने इन दायित्वों का निर्वहन करते रहें।

अभ्यास प्रश्न

1. ७३ वें संवैधानिक संशोधन का सम्बन्ध पंचायतीराज से है। सत्य असत्य/
2. स्वतंत्रतापूर्व जिला प्रशासन की प्रकृति नियामकीय थी। सत्य असत्य/
3. स्वतंत्रता के उपरान्त जिला प्रशासन जनता के दबाव में कार्य करता है। सत्य असत्य/
4. स्वतंत्रता के उपरान्त जिलाधिकारी के कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों में परिवर्तन लोकतान्त्रिक

शासन प्रणाली अपनाने के कारण आई है। सत्य असत्य/

22.6 शब्दावली

नियामकीय कार्य – वे कार्य जो कानून और व्यवस्था की स्थापना से सम्बंधित होते हैं

सकारात्मक कार्य - वे कार्य जो मानव जीवन को सरल और उन्हें सक्षम बनाने के लिए किए जाते हैं

22.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य

22.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया
भारतीय लोक प्रशासन	-	अवस्थी एवं अवस्थी

22.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	डी.डी. बसु
भारतीय लोक प्रशासन	-	एस.सी. सिंहल

22.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वतंत्रता के पश्चात जिलाप्रशासन के स्वरूप में किस प्रकार का परिवर्तन आया है ? इसको स्पष्ट करते हुए जिलाधिकारी के कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों की विवेचना कीजिये ?